विश्व हिंदी पत्रिका

2017

विश्व हिंदी सचिवालय
मॉरीशस

विश्व हिंदी पत्रिका
2017

विश्व हिंदी पत्रिका
2017

प्रधान संपादक
प्रो. विनोद कुमार मिश्र

संपादक
डॉ. माधुरी रामधारी

विश्व हिंदी सचिवालय
स्विफ़्ट लेन, फ़ॉरेस्ट साइड 74427
मॉरीशस

World Hindi Secretariat
Swift Lane, Forest Side 74427
Mauritius

info@vishwahindi.com
Website : www.vishwahindi.com
Phone : 00-230-6761196, Fax : 00-230-6761224

ISSN No. : 1694-2477

सहायक संपादक
श्रीमती श्रद्धांजलि हजगैबी-बिहारी

विश्व हिंदी पत्रिका-संपादकीय टीम
श्रीमती उषा देवी आकाजिया-राम, श्रीमती त्रिशिला आपेगाडु,
सुश्री जयश्री सिबालक, श्रीमती विजया सरजु

निवेदन

विश्व हिंदी पत्रिका में प्रकाशित लेखों के विचार लेखकों के अपने हैं।
विश्व हिंदी सचिवालय और संपादक मंडल का उनके विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है।

पृष्ठ सज्जा
श्वेता चौधरी

स्टार पब्लिकेशंस प्रा. लि , ४/५ बी , आसफ अली रोड ,
नई दिल्ली ११०००२ (भारत) द्वारा प्रकाशित

अनुक्रम

हिंदी : उद्भव, विकास एवं स्वरूप

1.	हिंदी का उद्भव और विकास	डॉ. महाश्वेता चतुर्वेदी	03
2.	हिंदी की रूप–संरचना	डॉ. रवीन्द्र कुमार पाठक	09
3.	भाषा की प्रकृति और हिंदी	डॉ. परमानंद पांचाल	15
4.	हैदराबाद की दक्खिनी हिंदी	डॉ. अनीता गांगुली	19

हिंदी : साहित्य एवं संस्कृति

5.	गांधी, हिंद स्वराज और हिंदी कविता	डॉ. स्वाति श्वेता	27
6.	हिंदी और क्रोएशियन : भाषा, साहित्य एवं संस्कृति में साम्यता	डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र	33
7.	लोक–साहित्य, हिंदी की नींव	श्री धनराज शंभु	41
8.	मॉरीशस में हिंदी बाल–साहित्य तथा उसका भविष्य	श्री सोमदत्त काशीनाथ	46
9.	अंग्रेज़ी पद्य–रचना में देवनागरी का प्रयोग	श्री भूपेन्द्र कुमार दवे	53

हिंदी–शिक्षण एवं शोध

10.	बोलचाल की हिंदी सीखना–सिखाना	डॉ. हीरालाल बाछोतिया	59
11.	हिंदी प्रचारिणी सभा द्वारा हिंदी भाषा का पठन–पाठन एवं परीक्षाएँ	श्री यंतुदेव बुधु	62
12.	हिंदी : पूर्व प्रस्थानों का संधान	डॉ. रणजीत साहा	65
13.	फ़िजी में हिंदी शिक्षण	श्रीमती मनीषा रामरक्खा	71
14.	मध्य और पूर्वी यूरोप में हिंदी–शिक्षण और शोध	डॉ. इमरै बंघा	74
15.	अमेरिका में हिंदी शिक्षण व प्रशिक्षण	डॉ. विजय गम्भीर	80

हिंदी : सूचना–संचार, प्रौद्योगिकी एवं अनुवाद

16.	हिंदी पत्रकारिता की भाषा पर वैश्वीकरण का प्रभाव	डॉ. माला मिश्र	87
17.	इक्कीसवीं शती में सूचना प्रौद्योगिकी और प्रयोजनमूलक हिंदी	डॉ. रमा नवले	94
18.	डिजिटल मीडिया और हिंदी	श्रीमती सुनीता पाहूजा	98
19.	सूचना व संचार प्रौद्योगिकी और हिंदी अनुसंधान	श्री रोहित कुमार हैप्पी	104
20.	भूमंडलीकरण के दौर में मीडिया की भाषाई चुनौतियाँ	श्री राकेश कुमार दुबे	110

हिंदी : नाटक एवं रंगमंच

21.	विविधरंगी छवियों का आकर्षक कॉलिज : भारतीय रंगमंच	डॉ. मनीषा शर्मा	119
22.	अमेरिका में हिंदी विकास में रंगमंच का योगदान	डॉ. कुसुम नैपसिक	125
23.	सूरीनाम में हिंदुस्तानी रंगमंच का उद्भव और विकास	श्रीमती भावना सक्सैना	130
24.	हिंदी रंगमंच की ऐतिहासिक यात्रा	डॉ. के. एस. सुधा अनंत पद्मनाभ	135
25.	मॉरीशस का प्रथम हिंदी नाटक : 'जीवन–संगिनी'	डॉ. अलका धनपत	139
26.	मॉरीशस में हिंदी नाट्य समारोह का आयोजन	श्री राकेश श्रीकिसुन	144
27.	सूर्यदेव सिबोरत जी से एक भेंट–वार्ता	डॉ. उदय नारायण गंगू	150

अनुक्रम

	हिंदी : विविध आयाम		
28.	विश्व पटल पर हिंदी	डॉ. मजीद शेख	157
29.	स्वामी शंकरानंद संन्यासी : जिन्होंने बढ़ाया दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी का मान	डॉ. राकेश कुमार दूबे	162
30.	उपनिवेशों में हिंदी के प्रचार में आर्य समाज का योगदान एवं प्रासंगिकता	डॉ. एन. के. चतुर्वेदी	166
31.	दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी की विकास–यात्रा	श्रीमती सौभाग्यवती धनुकचन्द	170
	विद्वानों के वक्तव्य		
32.	वैश्विक हिंदी : चुनौतियाँ एवं समाधान	श्री अतुल कोठारी	174
33.	विश्व हिंदी सचिवालय की एक सार्थक पहल	श्री रामदेव धुरंधर	178
	टिप्पणियाँ, अनुभव एवं विचार बिंदु		
34.	साहित्य और इतिहास : कुछ मौखिक स्रोत	डॉ. देवेन्द्र चौबे	181
35.	हिंदी : राष्ट्रभाषा/विश्वभाषा	श्री गोवर्धन यादव	185
36.	'मोहन राकेश एवं 'आधे–अधूरे' का शिक्षण' विषय पर आयोजित विचार–मंच के अवसर पर संदेश	श्री राजीव कुमार ओखोजी	191
37.		श्री लेखराजसिंह पांडोही	192
38.		सुश्री प्रियंका सुखलाल	193
39.	'युवकों द्वारा लघुकथा–लेखन' विषय पर आयोजित विचार–मंच के अवसर पर संदेश	श्री निरंजन बिगन	195
	2017 में हिंदी जगत् की चयनित खबरें		
40.	2017 में हिंदी जगत् की चयनित खबरों का विश्व हिंदी समाचार में प्रकाशन	विश्व हिंदी सचिवालय	197
	श्रद्धांजलि		
41.	श्रद्धांजलि 2017	विश्व हिंदी सचिवालय	205
42.	महाकवि गुलाब खंडेलवाल	प्रतिभा खंडेलवाल	210

MINISTRY OF EDUCATION AND HUMAN RESOURCES,
TERTIARY EDUCATION AND SCIENTIFIC RESEARCH

संदेश

विश्व हिंदी पत्रिका के इस नए अंक के माध्यम से आप सभी पाठकों के समक्ष एक बार फिर अपने विचार प्रकट करते हुए अत्यंत हर्ष हो रहा है।

विश्व हिंदी सचिवालय तथा शिक्षा व मानव संसाधन, तृतीयक शिक्षा एवं वैज्ञानिक अनुसंधान मंत्रालय का कई वर्षों से स्थापित सहयोग तथा सम्बंध मज़बूत होता जा रहा है। अपने कार्यकाल में मैंने सचिवालय को नई योजनाओं के साथ उन्नति करते हुए देखा है। सचिवालय के विविध कार्यक्रमों एवं गतिविधियों में मंत्रालय की हमेशा से गहरी रुचि रही है। हिंदी भाषा के उन्नयन, संवर्धन तथा इस भाषा की वैश्विक पहचान में निखार लाने और हिंदी शिक्षण के क्षेत्र में विकास लाने के लिये सचिवालय सतत् नवीन पद्धतियों के साथ आगे बढ़ा है।

सचिवालय द्वारा कार्यशालाओं, सम्मेलनों, संगोष्ठियों, प्रतियोगिताओं आदि के आयोजन विश्व हिंदी समुदाय को एक साथ जोड़ते हैं। इन आयोजनों के माध्यम से सचिवालय का मुख्य उद्देश्य है–'अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी का प्रचार करना तथा हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने के लिये वैश्विक मंच तैयार करना।

'विश्व हिंदी पत्रिका' का प्रकाशन इस उद्देश्य की पूर्ति का एक महत्वपूर्ण साधन है। पत्रिका का यह नया अंक सचिवालय के लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में एक सार्थक पहल है। पत्रिका में विश्व के प्रसिद्ध हिंदी विद्वानों द्वारा हिंदी भाषा और साहित्य पर की गयी शोध की गहनता के साथ–साथ विषयों की विविधता ने भी इसे महत्तपूर्ण दस्तावेज़ बना दिया है।

हमेशा की तरह सराहनीय प्रकाशन के लिए विश्व हिंदी सचिवालय तथा उनकी संपादन टीम को बधाई व भावी योजनाओं के लिए शुभकामनाएँ।

विश्व हिंदी समाज और सचिवालय के लिये एक और सफल वर्ष की कामना के साथ विश्व हिंदी पत्रिका के पाठकों को नव वर्ष 2018, विश्व हिंदी दिवस और मकर संक्रांति की हार्दिक शुभकामनाएँ।

श्रीमती लीला देवी दुकन–लछुमन
24 अक्टूबर, 2017

भारतीय उच्चायुक्त
पोर्ट लुई, मॉरीशस

HIGH COMMISSIONER OF INDIA
PORT LOUIS, MAURITIUS

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है कि विश्व हिंदी सचिवालय द्वारा अपनी वार्षिक 'विश्व हिंदी पत्रिका' के 9वें अंक का लोकार्पण आगामी विश्व हिंदी दिवस के अवसर पर किया जा रहा है। आज हिंदी भारत और भारतेतर विश्व के बीच संपर्क का स्वर्ण सूत्र है और निकट भविष्य में हिंदी को वैश्विक स्वीकृति प्राप्त होने की अत्यंत संभावनाएँ हैं। आज हिंदी का वैश्विक विस्तार जहाँ स्वर्णिम भविष्य के प्रति आशान्वित करता है, वहीं भारतीय संस्कृति, आध्यात्मिकता, नैतिकता और सार्वभौम दर्शन को विश्व में प्रसारित करने में सहायक भी सिद्ध रहा है।

'विश्व हिंदी पत्रिका' के प्रकाशन के द्वारा सचिवालय हिंदी के बहुआयामी वैश्विक विकास को रेखांकित करने की दिशा में सतत अग्रसर है। आज एक ओर हिंदी विश्व की कुछ गिनी–चुनी भाषाओं के समानांतर एक वैकल्पिक भाषा के रूप में चुनौती बनकर खड़ी है, वहीं दूसरी ओर भारत के आर्थिक विकास की सहयात्री के रूप में पूरी शिद्दत से अपनी उपस्थिति भी दर्ज करा रही है। ज्यों–ज्यों हिंदी का परिवार वृहत्तर रूप धारण कर विश्वभाषा पथ पर द्रुत गति से अग्रसर हो विश्व–आकाश में पैर पसार रहा है, त्यों–त्यों लोगों को हिंदी का महत्व भी समझ में आ रहा है।

वैश्विक स्तर पर विकसित बाज़ारवाद ने भी हिंदी के क्षितिज को व्यापक विस्तार दिया है और भारत के बढ़ते आर्थिक, सामरिक तथा राजनैतिक प्रभाव को देखते हुए हिंदी को सीखने एवं जानने की ललक इन दिनों विदेशों में बढ़ती जा रही है। अंतरराष्ट्रीय संबंधों को और अधिक मज़बूती प्रदान करने तथा विश्व जन–मन को भारतीय संस्कृति और सभ्यता से पूर्ण परिचित कराने में सचिवालय की अहम भूमिका सुनिश्चित किए जाने की महती आवश्यकता है। अब समय आ गया है कि दुनिया के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने के लिए हिंदी को साहित्य की सीमा रेखा से बाहर निकल कर साहित्येतर विषयों में भी अपना योगदान देना होगा।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि अगले कुछ महीनों में सचिवालय का अपना भवन निर्मित हो जाने के बाद हिंदी के प्रचार–प्रसार में तेज़ी आएगी और सचिवालय अपनी विभिन्न गतिविधियों के द्वारा विकास की डगर पर अग्रसर हो सकेगा। वर्ष 2018 में विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन भी मॉरीशस में होने जा रहा है। हिंदी के वैश्विक महत्व के उक्त आयोजन में सचिवालय की भूमिका भी महत्वपूर्ण रहेगी। मुझे पूरा विश्वास है कि भारत एवं मॉरीशस सरकार के निरंतर सहयोग एवं सचिवालय के अथक प्रयासों से हिंदी अपने निर्धारित लक्ष्य को अवश्य प्राप्त करेगी।

10 जनवरी 2018 को विश्व हिंदी दिवस के उपलक्ष्य में विश्व हिंदी पत्रिका के 9वें अंक के लोकार्पण के अवसर पर सचिवालय एवं समस्त हिंदी सेवियों को हार्दिक शुभकामनाएँ देता हूँ तथा आशा करता हूँ कि नव वर्ष में हिंदी अपने नए संकल्प के साथ अपना मार्ग प्रशस्त करेगी।

अभय ठाकुर

6th Floor, LIC Building, John Kennedy Street, Port Louis, Mauritius
Tel : (230) 2083775/6 Fax : (230)2088891/2086859
Email : coined@intnet.mu hcidm@intnet.mu
Website : www.indiahighcom-mauritius.org

सृजन की डगर: कितनी सीधी कितनी टेढ़ी ....

हिंदी के बहुआयामी विकास एवं विस्तार में सृजनात्मक लेखन की महती भूमिका रही है। अपने आविर्भाव काल से लेकर अब तक हिंदी जनता की भाषा रही है और जन सरोकारों के लिए जानी भी जाती रही है। सदियों से इसका संरक्षण एवं संवर्धन संतों, कवियों एवं लेखकों ने किया है। यह फ़ारसी और अंग्रेज़ी के बीच अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करते हुए आज जिस भी मुकाम पर है, उसमें उसकी रचना–धर्मिता के सतत् प्रवाह का योगदान है। कोई भी भाषा जनोन्मुखी तभी होती है जब उसमें सृजित साहित्य जन–मन की आशाओं एवं आकांक्षाओं को तृप्त करने में सफल एवं सक्षम हो। संसार में वही भाषा संघर्ष करते हुए सतत आगे बढ़ती है जिसने स्तरीय साहित्य दिया हो। जिस भी भाषा में पढ़ने लायक, लिखा जाएगा वह भाषा कभी मर नहीं सकती तथा उसके द्वारा पोषित साहित्यिक निधियाँ चिरंजीवी रहेंगी। हिंदी के समुज्ज्वल भविष्य को गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने हिंदी के गीतों को सुनकर पहचान लिया था और कहा था कि हिंदी की उर्वरता कभी कम नहीं हो सकती और एक दिन हिंदी की फसल लहलहायेगी। गणेश शंकर विद्यार्थी ने भी हिंदी की ताकत को पहचानते हुए उसकी साहित्यिक शक्ति को पहचान दिलाने का सतत् प्रयास किया। हिंदी के भावी विकास की स्वर्णिम संभावनाएँ तभी तक बनी रहेंगी जब तक उनमें रचा गया साहित्य भी जन–मन की आशाओं–आकांक्षाओं को पूरा करता रहेगा।

आज हिंदी का परचम साहित्य के साथ–साथ प्रशासन, बाज़ार, सिनेमा, अनुवाद, संचार आदि अनेक क्षेत्रों में लहरा रहा है। आधुनिक भारत में हिंदी निरंतर भारत की समग्र चेतना को वाणी देने का सार्थक प्रयास कर रही है और देश–देशांतर में बोली भी जा रही है तथा भारतीय राष्ट्रीयता की नैसर्गिक हमराही बनी। वह राष्ट्रीयता जो न धर्म पर टिकी है, न भाषा पर और नाही संस्कृति पर। हिंदी अपने जीवन–प्रवाह में निरंतर गतिमान है और भारतीयता को परिभाषित करते हुए वैश्विक विस्तार दे रही है किंतु तुलनात्मक दृष्टि से देखें, तो यह पता चलता है कि उन्नीसवीं सदी समूचे विश्व को हिंदी की ओर आकर्षित करती रही है किंतु 20वीं सदी में उसकी गति थोड़ी मंद पड़ी और 21वीं सदी में बाज़ारवाद ने हिंदी को नए अर्थ दिए तथा सृजनशीलता में कमी के आसन्न खतरे से सचेत भी किया।

वैश्विक परिदृश्य में हिंदी को अपनी उपस्थिति का एहसास कराने के लिए रचनाधर्मिता को सशक्त बनाना ही पड़ेगा ताकि बाज़ार से इतर पाठकों का एक बड़ा वर्ग साहित्य का रसास्वादन करने से वंचित न रहे। प्राचीन लेखकों, कवियों की साहित्यिक विरासत को आगे बढ़ाने में नए सृजनकर्मी तैयार किये जाने की ज़रुरत है । भारत से बाहर विशेष रूप से प्रवासी देशों का युवा–वर्ग प्रेरणा एवं प्रोत्साहन के अभाव में रचनाधर्मिता से विरत हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में 'कल आज और कल' के बीच सामंजस्य बिठाये जाने की तात्कालिक आवश्यकता है। यद्यपि विश्व स्तर पर विकसित बाज़ारवाद ने हिंदी के क्षितिज को विस्तार दिया है और बाज़ार के अनुरूप हिंदी का प्रयोजनमूलक रूप जो दुनिया के सामने आया है, वह उपभोक्ता समाज की आवश्यकता के अनुरूप है एवं हिंदी के पारंपरिक साहित्य से एकदम भिन्न है। हिंदी के प्रसार का यह एक नवीनतम् आयाम है। क्रय–विक्रय की प्रक्रिया में तो हिंदी ने अपना अहम स्थान बना लिया है।

आज बाज़ार से लेकर विचार तक संचार से व्यवहार तक भूमंडलीकृत भाषा का प्रचार हो रहा है और हिंदी की समावेशी प्रकृति ने उसे और गतिशीलता प्रदान की है एवं जन–स्वीकृति भी पा रही है। मीडिया और साहित्य की दोस्ती ने भी हिंदी को स्वर्ण पंख लगा दिए हैं। नए पाठकों का एक वर्ग तैयार हुआ है। सूचना क्रांति द्वारा हिंदी का अभिव्यक्ति–कौशल बढ़ा है। हिंदी की काव्य

संपदा और शब्द–शक्ति में गुणात्मक वृद्धि देखी गई है। हिंदी की शब्द–संपदा लाखों तक पहुँच गयी है जब कि तथाकथित 'विश्व भाषा' में कुछ हज़ार तक ही सीमित है। समावेशी प्रकृति के कारण ही अन्य भाषाओं के शब्दों की स्वीकृति भी तेज़ी से बढ़ी है। हिंदी के पठन–पाठन का दायरा भी काफ़ी बढ़ा है। दुनिया के सैकड़ों विश्वविद्यालयों में हिंदी के शिक्षण–प्रशिक्षण का आरम्भ और विस्तार हुआ है। अनुसंधान और सृजन के नए गवाक्ष खुले हैं। हिंदी संचार एवं संपर्क के अलावा वित्त, वाणिज्य, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, मीडिया एवं विज्ञापन का भाषिक मेरुदण्ड बन गयी है। सार्थक विस्तार उसके सुनहले भविष्य की कहानी लिखने को तत्पर है। विश्व में भारतीयता हिंदी से परिभाषित होती रही है और अभिव्यक्ति भी पाती रही है।

विश्व मानव की अपेक्षाओं की पूर्ति में हिंदी ही सहायक है। आज आर्थिक प्रगति, मानसिक शांति और प्रतिस्पर्धा से उपजा संघर्ष रचनात्मक मानवमूल्य से ओत–प्रोत साहित्य की माँग करता है। ऐसे में साहित्य की सम्पदा को मज़बूती प्रदान करने हेतु सृजनात्मक लेखन को एक कारगर हथियार बनाया जा सकता है। वैश्विक स्तर पर सृजन–कार्य को गतिशील बनाने और हिंदी की साहित्यिक विरासत से विश्व जन–मन को अभिसिंचित कर एक खूबसूरत संसार के सृजन में रचनात्मक भूमिका सुनिश्चित की जा सके तथा कुछ नया करने की प्रक्रिया सतत् चलती रहे ताकि मानवीय संबंधों की ईमानदार परिणति सही अर्थों में हो सके।

प्रो. विनोद कुमार मिश्र
महासचिव

हिंदी की प्रकृति, विस्तार एवं लोकप्रियता

'विश्व हिंदी पत्रिका' में प्रकाशित होने वाले सूचनापरक एवं शोधपरक लेखों को इस वर्ष नवीन ढंग से वर्गीकृत करने का विनम्र प्रयास किया गया है। पत्रिका के इस 9वें अंक में 'हिंदी के विविध आयाम', 'विद्वानों के वक्तव्य', 'टिप्पणियाँ, अनुभव एवं विचार–बिंदु', '2017 में हिंदी जगत् की चयनित खबरें' तथा 'श्रद्धांजलि' से पहले, पाँच निम्नलिखित उपशीर्षकों के आधार पर शोध–लेखों का विभाजन किया गया है –

(i) हिंदी : उद्भव, विकास एवं स्वरूप
(ii) हिंदी : साहित्य एवं संस्कृति
(iii) हिंदी : शिक्षण एवं शोध
(iv) हिंदी : सूचना–संचार एवं प्रौद्योगिकी
(v) हिंदी : नाटक एवं रंगमंच

हिंदी जानने के हर आकांक्षी के लिए यह आवश्यक है कि वह सर्वप्रथम हिंदी की प्रकृति से परिचित हो। हिंदी के उद्भव, विकास एवं स्वरूप के सम्यक् ज्ञान के आधार पर हिंदी की प्रकृति की सही समझ सरलतापूर्वक प्राप्त की जा सकती है। 'विश्व हिंदी पत्रिका 2017' के प्रारंभ में डॉ. महाश्वेता चतुर्वेदी, डॉ. रवीन्द्र पाठक, डॉ. परमानन्द पांचाल एवं डॉ. अनीता गांगुली के गहन शोध एवं चिंतन पर आधारित वे प्रमाणित लेख प्रकाशित किए गए हैं, जो हिंदी की प्रकृति स्पष्ट करते हैं। हिंदी की प्रकृति से अवगत होते हुए पाठक हिंदी के वैश्विक विस्तार से संबंधित लेखों की ओर बढ़ेगा।

आदिकाल से वर्तमानकाल तक 'साहित्य', 'शिक्षण' एवं 'संचार' हिंदी के विस्तार के तीन प्रमुख कारक रहे हैं। साहित्यकारों की कलम कई युगों से हिंदी में शब्द बहाती आ रही है। मध्य युग एवं आधुनिक युग में जो अद्भुत साहित्य रचा गया, वह विश्व के कोने–कोने तक पहुँचकर भारतीय संस्कृति का बोधक बना। कबीर, सुर, तुलसी, बिहारी, भारतेंदु, प्रेमचंद, प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी आदि के पद्य एवं गद्य साहित्य ने जहाँ हिंदी को अमरत्व प्रदान किया, वहाँ वर्तमानकाल में विश्व के पाँचों महाद्वीपों में रचा जा रहा साहित्य हिंदी के उन्नयन में भगीरथ भूमिका निभा रहा है। 'विश्व हिंदी पत्रिका 2017' में मॉरीशस, भारत एवं क्रोएशिया में सृजित काव्य–साहित्य, लोक साहित्य, बाल साहित्य एवं पूर्वी भाषा हिंदी तथा पश्चिमी भाषा क्रोएशिया के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन और अंग्रेज़ी पद्य–रचना में देवनागरी के प्रयोग पर आधारित सारगर्भित लेख साहित्य सृजन के सद्प्रयासों द्वारा हिंदी की समृद्धि का परिचय देते हैं।

हिंदी में लेखन के साथ पुस्तकों का प्रकाशन भी नित्य होता रहा है। प्रवासी देशों में हिंदी पुस्तकें छपती ही हैं, पर हिंदी के आदि धाम भारत के प्रकाशकों का कहना है कि अन्य भाषाओं की तुलना में हिंदी में पुस्तकों की छपाई एवं बिक्री अत्यधिक है। विविध हिंदी साहित्यिक पुस्तकों एवं पाठ्य–पुस्तकों की सहज उपलब्धि ने हिंदी–शिक्षण की नींव को विशेष बल प्रदान किया है। वैश्विक स्तर पर औपचारिक शिक्षा–व्यवस्था के अंतर्गत हिंदी–शिक्षण करने वाले विद्यालयों की संख्या बढ़ती गयी है। बहुभाषी देश मॉरीशस में अंग्रेज़ी एवं फ्रेंच का सर्वाधिक वर्चस्व है, परंतु पिछले पाँच सालों से यह देखा जा रहा है कि 'आर्डेन', 'ओर्चार्ड किड्स', 'लीसे मोरिसिएँ' आदि अंग्रेज़ी एवं फ्रेंच माध्यम से शिक्षा प्रदान करने वाले स्कूलों में भी हिंदी की कक्षाएँ आरंभ होकर व्यवस्थित रूप से चलने लगी हैं। इतिहास साक्षी है कि

'साहित्य' के बाद 'शिक्षण' ही देश–विदेश में हिंदी के विस्तार का प्रमुख कारण रहा है। अतः स्वाभाविक है कि वार्षिक पत्रिका के इस अंक के तीसरे वर्ग में हिंदी–शिक्षण से संबंधित विचारोत्तेजक लेखों को समुचित स्थान दिया गया है।

हिंदी विस्तार का तीसरा आधार निस्संदेह 'संचार' है। उन्नीसवीं शताब्दी से पत्रकारिता ने हिंदी को जन–जन तक पहुँचाने का बृहत् कार्य किया है। आज भारत और मॉरीशस में प्रकाशित अनेकानेक पत्र–पत्रिकाओं के अतिरिक्त कनाडा से 'वसुधा', ओंटारियो से 'हिंदी चेतना,' अमेरिका से 'हिंदी यू.एस.ए. – एक चिंतन', न्यू यॉर्क से 'हिंदी जगत्' तथा 'सौरभ', इंग्लैण्ड से 'पुरवाई', न्यू ज़ीलैण्ड से 'दर्पण', गौटेंग से 'हिंदी खबर', कोलम्बो से 'श्री लंका समाचार', ऑस्ट्रेलिया से 'भवन ऑस्ट्रेलिया' आदि पत्रिकाओं का प्रकाशन वैश्विक हिंदी की जीवंतता का प्रमाण है। हिंदी में संचार को नया आयाम देने में कम्प्यूटर, इंटरनेट और मोबाइल का भी करिश्मा देखा जा रहा है। इस अंक में 'इक्कीसवीं शती में सूचना–प्रौद्योगिकी और प्रयोजनमूलक हिंदी', 'डिजिटल मीडिया और हिंदी', 'सूचना व संचार प्रौद्योगिकी और हिंदी अनुसंधान' आदि शीर्षकों से छपे सामयिक लेख विश्व भाषा के रूप में हिंदी की बढ़ती स्वीकृति के सूचक हैं।

सन् 2013 से विश्व हिंदी पत्रिका के लिए किसी एक निर्धारित विषय पर शोध–लेख की विशेष माँग की जाती रही है। पिछले पाँच वर्षों में निम्नलिखित विषयों पर लेख आमंत्रित किए गए –

विश्व हिंदी पत्रिका	**निर्धारित विषय**
2013	हिंदी एवं सूचना–संचार प्रौद्योगिकी
2014	हिंदी एवं प्रवासी साहित्य
2015	वैश्विक स्तर पर ई–प्रचारक योजनाएँ
2016	हिंदी के विविध आयाम
2017	हिंदी नाटक एवं रंगमंच

यद्यपि हिंदी के विस्तार के तीन प्रमुख आधार 'साहित्य', 'शिक्षण' एवं 'संचार' हैं, तथापि हिंदी की लोकप्रियता के दो प्रधान कारक 'हिंदी नाटक' एवं 'हिंदी सिनेमा' हैं। हिंदी सिनेमा के आविर्भाव से भी पूर्व और आज तक हिंदी नाटक एवं रंगमंच के प्रति गहन आकर्षण ने असंख्य कला–प्रेमियों को हिंदी प्रेमी एवं हिंदी नाटककार बना दिया है। इस पत्रिका में हिंदी नाटक एवं रंगमंच से संबंधित तथ्यपरक लेख इस तथ्य का पुष्टिकरण करते हैं कि हिंदी की लोकप्रियता को उन्नत करने के लिए हिंदी नाटकों एवं रंगमंच को अनवरत बढ़ावा देना है।

विश्व हिंदी पत्रिका का यह नौवाँ संस्करण सुधी पाठकों को इस विश्वास के साथ सुपुर्द किया जा रहा है कि विश्व हिंदी समुदाय हिंदी की प्रकृति, विस्तार और लोकप्रियता के महत्वपूर्ण बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए, पूर्ण सक्रियता के साथ हिंदी को गगन तक विस्तृत करने के अपने प्रयासों में आगे बढ़े और विश्व भाषा के रूप में हिंदी अधिक निखरे।

सन् 2017 का अंतिम मास गति के साथ बीत रहा है और वर्ष 2018 के पदचाप की ध्वनि तीव्रतम होती जा रही है। नव वर्ष हिंदी के संवर्धन के अगले पड़ाव की नवचेतना का संदेश लेकर आए, यही हमारी कामना है।

डॉ. माधुरी रामधारी
उपमहासचिव

हिंदी : उद्‌भव, विकास एवं स्वरूप

- हिंदी का उद्‌भव और विकास - डॉ. महाश्वेता चतुर्वेदी
- हिंदी की रूप-संरचना - डॉ. रवीन्द्र कुमार पाठक
- भाषा की प्रकृति और हिंदी - डॉ. परमानंद पांचाल
- हैदराबाद की दक्खिनी हिंदी - डॉ. अनीता गांगुली

हिंदी का उद्‌भव और विकास

–डॉ. महाश्वेता चतुर्वेदी

हिंदी संसार की वैज्ञानिक भाषा है, जिसका जन्म आदिभाषा 'संस्कृत' से हुआ है। यही आदिभाषा विश्वभाषाओं का मूलोद्‌गम है। मानव जाति की भाषाओं की परस्पर तुलना करने से ज्ञात होता है कि इनमें आश्चर्यजनक और अद्‌भुत समानता है।

मानव सर्वप्रथम एशिया खण्ड के मध्य में रहता था। धीरे–धीरे उसकी संतति का विकास हुआ तथा अपना मूल निवास छोड़कर वह अन्य देशों में जा बसा।

संसार की समस्त भाषाएँ तीन भागों में विभाजित हैं :

1) आर्य भाषाएँ – इस भाग में संस्कृत, प्राकृत तथा उससे विकसित अन्य आर्य भाषाएँ – अंग्रेज़ी, फ़ारसी, यूनानी, लैटिन आदि।

2) सामी भाषाएँ – इस भाग में इब्रानी–अरबी तथा हब्शी भाषाएँ हैं।

3) यूनानी भाषाएँ– इस भाग में मुगली, चीनी, जापानी, द्रविड़ी (दक्षिणी भारत की) और तुर्की भाषाएँ हैं।

1. आर्य भाषाएँ **:** यह अनिर्णीत है कि सम्पूर्ण आर्य भाषाएँ फ़ारसी, यूनानी, लैटिन, रूसी आदि वैदिक संस्कृत से निकली हैं। ईरान में मीड़ी भाषा के द्वारा फ़ारसी का जन्म हुआ। दूसरे भाग के लोगों ने संस्कृत का प्रचार किया, जिससे प्राकृत के द्वारा इस देश की प्रचलित आर्य भाषाएँ निकली हैं, संस्कृत से निकली प्राकृत द्वारा हिंदी का जन्म हुआ। भाषाओं की समानता के लिए कुछ शब्द प्रस्तुत हैं **:**

संस्कृत	मीडी	फ़ारसी	यूनानी	लैटिन	अंग्रेज़ी	हिंदी
पितृ	पतर	पिदर	पाटेर	पेटर	फादर	पिता
मातृ	मतर	मादर	माटर	मेटर	मदर	मातृ
भ्रातृ	ब्रतर	ब्रादर	फ्राटर	फ्रातर	ब्रदर	भाई
नाम	नाम	नाम	अनोमा	नामेन	नेम	नाम
दुहितृ	दुग्धर	दुख्तर	थिगाटेर	थिगाटेर	डाटर	धी

आर्य लोगों की भाषा वैदिक संस्कृत थी, जिसे देववाणी भी कहते हैं, क्योंकि वैदिक भाषा यही है। रामायण, महाभारत और कालिदास आदि के काव्य की भाषा बहुत पीछे की है। अष्टाध्यायी आदि व्याकरणों में वैदिक और लौकिक नामों में से दो प्रकार की भाषाओं का उल्लेख पाया जाता है और दोनों के नियमों में बहुत कुछ अंतर है।

अशोक के शिलालेखों और पतंजलि ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि इसकी सत्र के कोई तीन सौ वर्ष पूर्व उत्तरी भारत में एक ऐसी भाषा प्रचलित थी, जिसमें भिन्न–भिन्न बोलियाँ शामिल थीं। बालक, नारी एवं शूद्र आर्य भाषा का उच्चारण सही रूप में नहीं कर पाते थे, जिससे अशुद्ध भाषा का जन्म हुआ, जिसका नाम प्राकृत पड़ा, जो 'प्रकृति' शब्द से उत्पन्न हुआ, जिसका अर्थ 'स्वाभाविक' या 'ग्रामीण' है। वैदिक साहित्य में 'गाथा' नाम से जो छन्द पाये जाते हैं, उनकी भाषा पुरानी

जन्म : 1950

शिक्षा :
- डी. लिट्
- पी.एच.डी.
- एल. एल. बी
- एम.ए. (अंग्रेज़ी, संस्कृत, हिंदी)
- डिप्लोमा (योग एण्ड नेचुरोपैथी)

व्यवसाय : एसोसिएट प्रोफ़ेसर (हिंदी), आर. पी. पी. जी. कालेज

प्रकाशन :
- हिंदी में 77 पुस्तकें प्रकाशित।
- 10 अंग्रेज़ी काव्य–संग्रह तथा 3 पुस्तकें अंग्रेज़ी गद्य की।
- संस्कृत में 3 कृतियाँ प्रकाशित। प्रकाशनार्थ 20 पांडुलिपियाँ तैयार।
- अनेकानेक पत्र–पत्रिकाओं में लेख, कविताएँ, कहानियाँ, गजलें आदि नियमित प्रकाशित ।
- अनुवाद–चारों वेदों के चुने हुए सौ–सौ मंत्रों का "वेदायन" नामक कृति में प्रकाशन।

पुरस्कार :
- लगभग 100 से अधिक सम्मान व पुरस्कार देश तथा विदेशों से प्राप्त हुए हैं।
- शिक्षक श्री सम्मान . 2011 (उ.प्र. शासन) लखनऊ
- साहित्य भूषण सम्मान. 2016 (उ.प्र. शासन) लखनऊ
- लगभग 30 शोधार्थियों को पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त हो चुकी है।

संस्कृत से भिन्न है, जिससे स्पष्ट है कि वैदिक काल में भी प्राकृत थी।[1]

सुविधा के लिए इस प्राकृत को प्रथम प्राकृत कहा जा सकता है। इस प्रथम प्राकृत ने ही कई शताब्दियों के बाद दूसरी प्राकृत का रूप धारण किया। प्राकृत का पुरातन व्याकरण प्रथम सदी के वररुचि द्वारा सृजित है। वैदिक कालीन विद्वानों ने देववाणी को प्राकृत भाषा की भ्रष्टता से बचाने के लिए उसका संस्कार करके व्याकरण के नियमों से उसे नियंत्रित कर दिया तथा इस परिमार्जित भाषा का नाम 'संस्कृत' पड़ा। संस्कृत भी पहली प्राकृत की किसी भाषा से शुद्ध होकर उत्पन्न हुई। संस्कृत को नियंत्रित करने के लिए पाणिनि का व्याकरण सर्वाधिक प्रचलित और प्रसिद्ध है, जिसका नाम 'अष्टाध्यायी' है। पहली प्राकृत में संस्कृत की संयोगात्मकता तो वैसी ही थी, किन्तु व्यंजनों के अधिक प्रयोग के कारण उसकी कर्णकटुता बहुत बढ़ गई थी। पहली तथा दूसरी प्राकृत में अन्य भेदों के सिवा यह भी भेद हो गया था कि कर्णकटु व्यंजनों के स्थान पर स्वरों में मधुरता आ गई।

बौद्ध धर्म के प्रचार से दूसरी प्राकृत उत्पन्न हुई, जो पाली भाषा के नाम से प्रसिद्ध है। कुछ समय बाद इसकी तीन शाखाएँ हो गईं; शौरसेनी, मागधी और महाराष्ट्री। शौरसेनी उत्तर प्रदेश की भाषा बनी, मागधी मगध और बिहार की भाषा थी, जिसको अर्धमागधी भी कहते थे, जो शौरसेनी और मागधी के योग से बनी थी। जैन तीर्थंकर इसी अर्धमागधी में अपने उपदेश देते थे तथा पुराने जैन ग्रन्थ इसी भाषा में थे।

कालान्तर में दूसरी प्राकृत में भी परिवर्तन हुआ, लिखित प्राकृत का विकास रुका, कथित प्राकृत परिवर्तित हुई तथा इसी विकास पूर्ण भाषा का नामकरण अपभ्रंश किया गया। ये अपभ्रंश भाषाएँ भिन्न–भिन्न स्थानों में भिन्न–भिन्न प्रकार की थीं। "सम्भवतः ग्यारहवें शतक तक अपभ्रंश भाषा में कविता होती थी। प्राकृत के अन्तिम वैयाकरण हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण में अपभ्रंश का उल्लेख किया है। हिंदी का जन्म अपभ्रंश से हुआ है, जिसका प्रचार बहुत पहले पश्चिम भारत में था।"[2]

"हिंदी भाषा दो अपभ्रंशों से निर्मित है–एक नागर अपभ्रंश, जिससे पश्चिमी हिंदी और पंजाबी निकली है।[3] दूसरा अर्ध मागधी का अपभ्रंश, जिससे पूर्वी हिंदी निकली है; इसे काव्यमय भाषा में कह सकते हैं –

"प्राचीन संस्कृत से लौकिक संस्कृत पहली प्राकृत,
पहली प्राकृत से दूसरी प्राकृत या पाली,
पाली से शौरसेनी अर्धमागधी मगधी
शौरसेनी से नागर अपभ्रंश है आई,
अर्धमागधी से अपभ्रंश है उपजी
नागर अपभ्रंश से पश्चिमी हिंदी आई
पूर्वी हिंदी भी इसी धार से है उपजी,
पूर्वी हिंदी से वर्तमान हिंदी आई,"

"प्राकृत भाषाएँ ईसवी सन् के कोई आठ – नौ सौ वर्ष तक और अपभ्रंश भाषाएँ ग्यारहवें शतक तक प्रचलित थीं।" हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण में हिंदी की प्राचीन कविता के उदाहरण पाए जाते हैं। "पृथ्वीराज रासो" में षट्भाषा का मेल है, जिसमें हिंदी का प्राचीन रूप है–

"भल्ला हुआ जु मारिया बहिणी महारा कंतु।
लज्जेजँ तु क्यं सिअहु जह भग्गा घर ऐतु।।"[4]

मनीषी जन हिंदी भाषा और साहित्य के विकास को चार भागों में विभाजित करते हैं :

(1)आदि हिंदी वीरकाल – 200–2400 और धर्मकाल 1500–1600, यह उस हिंदी का नमूना है, जो अपभ्रंश से पृथक होकर साहित्यिक कार्य के लिए बनी। वीरकाल में भाषा पूर्णरूप से विकसित नहीं हुई थी। इसी काल में जगनिक नामक कवि ने किसी ग्रन्थ के आधार पर "आल्हा" नामक ग्रन्थ रचा। इस ग्रन्थ की मूल भाषा बुदेलखण डी खड़ी थी। इस काल के अधिकांश कवि वैष्णव थे। वैष्णव सिद्धान्त का आरम्भ रामानुजाचार्य से हुआ, जो दक्षिण के निवासी तथा बारहवीं सदी के थे, रामानन्द के शिष्यों में कबीर थे, जिनका समय 1512 ई. का है, जिनके ग्रन्थों में प्रमुख हैं– साखी, सबद, रेख्ता तथा बीजक/हनकी भाषा, ब्रजभाषा और हिंदी, जिसे लल्लूलाल ने 'खड़ी बोली' नाम दिया।

इसी समय मीराबाई हुई, जिन्होंने कृष्ण–भक्ति में डूबकर साहित्य रचा। 1528 ई. से 1532 तक बाबा नानक जी का समय है, जो नानक पंथी सम्प्रदाय के प्रचारक और आदि ग्रन्थ के लेखक हैं। शेरशाह के आश्रय में मलिक मुहम्मद जायसी ने 'पद्मावत' रचा।

वैष्णव भक्ति के अन्य भेद में कृष्ण को आराध्य माना जाता है। वल्लभाचार्य ने 16वीं सदी के आदि में उत्तर भारत में अपने मत का प्रचार किया। इनके आठ शिष्य अष्टछाप के नाम से प्रसिद्ध हैं– सूरदास, कृष्णदास, गोविन्ददास, चतुरभुजदास, परमानन्द, नन्ददास, छीत स्वामी तथा कुंभनदास। इस पंथ के 84 गुरुओं के दर्शन "चौरासी वैष्णव की वार्ता" नामक ग्रन्थ में पाए जाते हैं।

अक्टूबर 1556–1605 के समय में ब्रजभाषा की कविता की अच्छी उन्नति हुई। अकबर स्वयं ब्रजभाषा में कविता करते थे। अकबर

के दरबार के कवियों में रहीम, फ़ैजी, फ़हीम, टोडरमल, बीरबल, नरहरि, हरिनाथ, गंगादि प्रमुख हैं।

(2) मध्य हिंदी – यह हिंदी काव्य के सतयुग का नमूना है, जो 1600–1800 ई. तक रहा, इस काल में काव्य तथा भाषा, दोनों की उत्पत्ति हुई। मध्यकालीन युग के प्रसिद्ध कवि लोकनायक तुलसीदास (1573–1624 ई. तक) जिन्होंने हिंदी प्रबन्ध काव्य 'रामचरितमानस' लिखकर न केवल हिंदी भाषा का गौरव बढ़ाया, अपितु जनमानस के हृदय के परिष्कार हेतु उसका महिमामय सृजन किया। तुलसी ने ऐसे समय में रामचरितमानस का सृजन किया जब मुगल राज्य दृढ़ हो रहा था और हिन्दू समाज अनीतियों के कारण पतनोन्मुख हो रहा था। मानसिक विकारों का जैसा चारूचित्रण तुलसी ने किया है, वैसा अन्य किसी कवि ने नहीं किया। अन्य प्रसिद्ध कवियों में केशव, बिहारी, भूषण, मतिराम और नाभादास हैं।

केशवदास ने साहित्यिक ग्रन्थ लिखे। इनके ग्रन्थों में 'कविप्रिया', 'रसिकप्रिया' और 'रामालंकृत मंजरी' सुप्रसिद्ध हैं। 'रामचन्द्रिका' और 'विज्ञान गीता' भी इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। बिहारी लाल ने 1650 ई. के आस–पास "बिहारी सतसई" पूर्ण की। इस ग्रन्थ रत्न में काव्य के प्रायः सभी गुण विद्यमान हैं। भूषण ने 1671 ई. में 'शिवराज भूषण' रचा तथा कई अन्य ग्रन्थ भी लिखे।

इस काल के उत्तरार्ध में (1700–1800) राज्य क्रान्ति के कारण काव्य की विशेष उन्नति नहीं हुई। इस काल के प्रसिद्ध कवियों में प्रियादास कृष्ण, कवि भिखारीदास, ब्रजवासीदास तथा सूरत मिश्र आदि हैं।

(3) आधुनिक हिंदी – यह काल 1800–1900 ई. तक है। इस काल में हिंदी गद्य की उत्पत्ति हुई। अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना और छापे के प्रचार से इस शताब्दी में गद्य और पद्य की अनेक कृतियाँ प्रकाशित हुईं। सन् 1857 के विद्रोह के बाद देश में शांति स्थापित हुई तथा समाचार–पत्र, नाटक, उपन्यास और समालोचना का लेखन आरम्भ हुआ, जो हिंदी की उन्नति का विशेष चिह्न है। इसमें खड़ी बोली का काव्य लिखा जाने लगा। साथ ही, हिंदी में संस्कृत के शब्दों का प्रयोग निरंकुश रूप से बढ़ने लगा। इस काल में शिक्षा के प्रसार से हिंदी की विशेष उन्नति हुई। पादरी गिल क्राइस्ट की प्रेरणा से लल्लूलाल जी ने 1804 ई. में 'प्रेमसागर' लिखा, जो आधुनिक हिंदी गद्य का प्रथम ग्रन्थ है, इनके अन्य ग्रन्थ 'राजनीति सभा विलास', 'लाल चन्द्रिका' तथा 'सिंहासन पच्चीसी' हैं। इस काल के प्रसिद्ध कवियों में पद्माकार (1815), ग्वाल (1815), पूजनेश (1816), रघुराज सिंह (1834), दीनदयाल गिरि (1855) और हरिश्चन्द्र हैं।

गद्य लेखकों में लल्लूलाल जी के बाद पादरी लोगों ने कई विषयों की पुस्तकें लिखीं तथा अंग्रेज़ी में अनूदित कर प्रकाशित कराईं। शिक्षा विभाग के लेखकों में श्रीलाल पं. वंशीधर वाजपेयी और राजा शिव प्रसाद सिंह हैं, जिनकी रचनाएँ उर्दू ढंग की हैं। आर्यसमाज की स्थापना के बाद हिंदी की प्रचुर उन्नति हुई। अनेक उत्तम ग्रन्थ हिंदी कोश तथा हिंदी व्याकरण पर केन्द्रित पुस्तकें प्रकाशित हुईं। इस काल के प्रमुख लेखक ऋषि दयानन्द ने 'सत्यार्थ प्रकाश' जैसी पुस्तक हिंदी में लिखी। अन्य हैं–राजा लक्ष्मण सिंह, पं. अम्बिकादत्त व्यास, राजा शिव प्रसाद सिंह और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र। इन लेखकों में सर्वप्रमुख है, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जिन्होंने भावी लेखकों के लिए हिंदी की उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया। भारतेन्दु के बाद वर्तमान काल में सबसे प्रसिद्ध लेखक और कवि पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं. श्रीधर पाठक, पं. अयोध्यासिंह उपाध्याय और मैथिलीशरण गुप्त हैं, जिन्होंने उच्चकोटि के ग्रन्थों का प्रणयन कर हिंदी भाषा और साहित्य का गौरव बढ़ाया।

आधुनिककालीन अन्य लेखकों में सुप्रसिद्ध हैं : श्याम सुन्दरदास, पं. रामचन्द्र शुक्ल और प्रेमचंद। कवियों में जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, पं. माखनलाल चतुर्वेदी, उपेन्द्रनाथ अश्क, यशपाल, नन्ददुलारे वाजपेयी, जैनेंद्रकुमार, दिनकर और बच्चन हैं। कवयित्रियों में महादेवी वर्मा और सुभद्रा कुमारी चौहान हैं।

'हिंदी' के नाम को लेकर विद्वानों में मतभेद है। कई विद्वानों के अनुसार हिंदी तथा उर्दू एक ही भाषा के दो नाम हैं, किन्तु कुछ विद्वानों के अनुसार दोनों अलग–अलग बोलियाँ हैं। राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द के अनुसार शहरों तथा नगरों में, हिंदू और मुसलमान, धर्म संबंधी और वैज्ञानिक शब्दों को छोड़कर प्रायः एक ही भाषा में संवाद करते हैं तथा पारस्परिक विचारों का आदान–प्रदान कर लेते हैं, किन्तु राजा लक्ष्मणसिंह के अनुसार दोनों जातियों का धर्म–व्यवहार–विचार और उद्देश्य एक नहीं है, तब उनकी भाषा पूर्णतया एक कैसे हो सकती है? भाषा का मुसलमानी रूपान्तर केवल हिंदी में नहीं, अपितु बंगला, गुजराती आदि भाषाओं में भी पाया जाता है।"[5]

"हिंदी और उर्दू हिन्दुस्तानी की शाखाएँ हैं, जो पश्चिमी हिंदी का एक भेद है। इस भाषा का नाम 'हिन्दुस्तानी' अंग्रेज़ों द्वारा दिया गया है, जिससे बहुधा उर्दू का बोध होता है।" [6]

हिंदी कई नामों से प्रसिद्ध है, जैसे–हिन्दवी, (हिंदुई), खड़ी बोली।

मुसलमानों की भाषा के भी कई नाम हैं – हिन्दुस्तानी, उर्दू, रेख्ता तथा दक्खनी। हिंदी का पुराना नाम 'आर्य भाषा' अर्थात् श्रेष्ठों की भाषा है। महामहोपाध्याय पं. सुधाकर द्विवेदी के अनुसार उक्त नाम भास्वती की टीका में आया है। हिंदी तथा उर्दू मूल रूप में एक भाषा है; संस्कृत के शब्दों की बहुलतावाली 'हिंदी' है और उर्दू–फ़ारसी के शब्दों की बहुलतावाली 'उर्दू' है। हिंदी देवनागरी लिपि में तथा उर्दू फ़ारसी लिपि में लिखी जाती है। यदि देवनागरी में उर्दू लिखी जाये, तो भाषा–भेद का अन्तर पता नहीं चलता।

हिंदी के तीन नाम और प्रसिद्ध हैं– (1) ठेठ हिंदी, (2) शुद्ध हिंदी, (3) उच्च हिंदी। कुछ विद्वान् 'हिंदी' को 'नागरी' भी कहते हैं।

यही हाल यहाँ के अनपढ़ लोगों में भी देखा जाता है। अशिक्षित 'सूक्ष्म' को 'छुच्छिम' कहते हैं। उनसे 'क्ष' का उच्चारण नहीं होता है। जो लोग 'वर्षा' को 'बरखा' कहते हैं, उनसे भी 'ष' का उच्चारण लुप्त हो गया है। इस तरह 'ज्ञान' को 'ग्यान' कहने वालों से भी 'ज्ञ' का उच्चारण जाता रहा है। कहने का मतलब यह कि अशिक्षा या असभ्यता ध्वनियों को कम तो कर देती है, पर सभ्यता और विद्वत्ता ध्वनियों को बढ़ा नहीं सकती। इससे यह सिद्ध हुआ कि विस्तृत और क्लिष्ट उच्चारण मौलिक हैं और संकुचित तथा सरल उच्चारण अपभ्रंश हैं–परिवर्तन हैं। अर्थात् जिन भाषाओं में कम और सरल ध्वनियाँ हैं, वे अपभ्रंश हैं। इस कसौटी पर देखते हैं कि वैदिक भाषा की वर्णमाला संसार की समस्त भाषाओं से विस्तृत, विज्ञानपूर्ण और क्लिष्ट है। अतः सिद्ध है कि वही प्राचीन है, ज्ञानियों की है और असल है। शेष समस्त भाषाएँ उसी की बिगड़ी हुई शाखा और प्रशाखा हैं :–

संसार में जितनी भाषाएँ हैं, उन सबसे अधिक विस्तृत, पूर्ण और

लुप्ताक्षर	संस्कृत रूप	अपभ्रंश	अर्थ
ऋ	ऋत	राइट	सत्य
घ	मेघ	मेह	बादल
च	चरक	सरक	वैद्यक का ग्रन्थ
च	चन्द्रगुप्त	सेन्ड्राकोटस	नाम
च	वनचर	बनजर	जमीन
छ	छाया	साया	परछाई
ट	विष्टर	बिस्तर	बिछौना
ट	उष्ट	उश्तर	ऊँट
थ	स्थान	स्तान	जगह
द	द्वौ	टवौ	दो
ध	धनी	गनी	धनवान
ध	विधवा	विडव	विधवा
ध	सिन्धु	हिन्दु	देश
ध	बुद्ध	बुत	नाम
ध	दधि	दोग	दही
प	अप्, आप्	आब	पानी
प	कोटपाल	कोतवाल	कोतवाल
प	गोप	गोबा	अहीर

क्लिष्ट उच्चारण वेद–भाषा में ही है। सभी प्रसिद्ध भाषाओं की ध्वनियों की संख्या से स्पष्ट हो जायेगा कि सबसे अधिक उच्चारण वेद–भाषा में ही हैं। चीनी भाषा में 204, संस्कृत में 47, रूसी भाषा में 35, फ़ारसी में 31, तुर्की और अरबी में 28, स्पेनिश में 27, अंग्रेज़ी में 26, फ्रेंच में 25, लेटिन और हिब्रू में 20 और बाल्टिक में 17 उच्चारण हैं।

इन संख्याओं से प्रकट हो रहा है कि वैदिक भाषा की ही वर्णमाला विस्तृत है। यद्यपि देखने में चीनी भाषा की उच्चारण संख्या बड़ी हैं, पर वह यथार्थ में बड़ी नहीं है। चीनी भाषा में जो 204 ध्वनियाँ हैं, वे थोड़ी–सी ही ध्वनियों के विस्तार हैं, तो एक ही वर्ण हल, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत भेद से चार प्रकार का, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित भेद से 12 प्रकार का और अनुनासिक और सानुनासिक भेद से 24 प्रकार का होता है। हमारी वर्णमाला में 47 ध्वनियाँ हैं। उनको यदि 24 से गुणा करें, तो समस्त ध्वनियाँ एक हज़ार से भी अधिक हो जाती हैं। दूसरी भाषाओं की जो ध्वनियाँ हैं, वे भी एक ही उच्चारण के कई भेदों के साथ लिखी हैं। अंग्रेज़ी की 26 ध्वनियाँ प्रसिद्ध हैं। पर 'के' 'क्यू' तथा 'सी' के उच्चारण एक ही हैं। 'जे' और 'जेड' का उच्चारण भी एक ही है। यदि ये अक्षर भी निकाल डाले जायें, तो वर्ण बहुत ही थोड़े रह जायेंगे। इसी तरह फ़ारसी में अलिफ़ और एन या जीम, जाल, जे, ज्वाद और जोम या सीन, शीन, स्वाद और से आदि उच्चारण एक ही ध्वनि के बोधक हैं। यदि ये सब निकाल डाले जायें, तो उनमें भी बहुत ही थोड़ी ध्वनियाँ रह जायेंगीं। कहने का मतलब यह कि वैदिक वर्णमाला की भांति संसार की किसी भाषा में विस्तृत वर्णमाला नहीं है। जिस तरह संस्कृत की वर्णमाला विस्तृत है, वैसी ही संसार की समस्त ध्वनियों से वह क्लिष्ट भी है। ऋ, ऌ, ष, क्ष, ज्ञ, घ, छ, ढ, ध, भ, ङ, ह्व, ण, ळ आदि ऐसे उच्चारण हैं, जो

दूसरे देशवालों से कहते ही नहीं बनते। दूसरों को जाने दीजिए। हमारे देश ही में करोड़ों आदमी ऐसे हैं, जिनसे ङ, ह्व, ऋ, ल और ज्ञ आदि का उच्चारण ठीक–ठीक नहीं करते बनता। यहाँ हम कुछ नमूने दिखलाते हैं, जिनसे स्पष्ट हो जायेगा कि आर्य, सेमिटिक और तुरानी भाषाएँ किस प्रकार संस्कृत के विस्तृत और क्लिष्ट उच्चारणों को छोड़–छोड़कर संकुचित और सरल उच्चारणों की ओर दौड़ रही हैं।

भाषा–परिवर्तन के नियम

भाषा परिवर्तन का सिद्धान्त सर्वमान्य है। कोई भाषा, यदि उसकी रोकथाम का अच्छा बन्दोबस्त न हो, तो कुछ काल के बाद वह परिवर्तित हो जाती है। किस क्रम से परिवर्तन होता है, इस बात को पाश्चात्य विद्वान अब तक निश्चित नहीं कर सके। डॉक्टर मंगलदेव कहते हैं कि 'कालांतर में भाषा इतनी परिवर्तित हो जाती है कि उसके एक रूप को जानने वाला उसके दूसरे रूप को आसानी से नहीं समझ सकता (पृ.104)। यह परिवर्तन कहाँ तक किस–किस प्रकार का हो सकता है, इसका कोई निश्चित नियम नहीं है (पृ.157)। इस प्रकार मालूम किए गए साधारण सिद्धान्त संभव है, पीछे से अन्य परिवारों से सम्बन्ध रखनेवाली भाषाओं के अध्ययन से कुछ अंशों में बदलाव पड़े (पृ.145)। प्रत्येक भाषा में वर्णविकार सम्बन्धी नियम विशेष हो सकते हैं, (पृ. 152)।

जब परिवर्तन के नियम मालूम नहीं हो सकते, तब यह भी मालूम नहीं हो सकता कि दो कुटुम्ब की भाषाओं की विभिन्नता के बीच में क्या–क्या सिद्धान्त काम कर रहे हैं, तब भाषाओं का वर्गीकरण किस आधार से किया जा सकता है? और कैसे संसार की भाषाओं की एकता स्थापित हो सकती है? इस प्रश्न पर विचार करते हुए वर्गीकरण के प्रकारों के विषय में डॉक्टर साहब लिखते हैं कि 'भाषाओं का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जाता है। एक तो उनकी आकृति या रचना की समानरूपता की दृष्टि से (आकृति मूलक वर्गीकरण) और दूसरे उनकी उत्पत्ति या परिवार की एकता की दृष्टि से (पारिवारिक या उत्पत्ति मूलक वर्गीकरण)। पहली दृष्टि में 'भाषाओं के इतिहास आदि की ओर ध्यान न देकर उनके शब्दों के रूप, आकृति या सामान्य रचना को ही देखकर वर्गीकरण किया जाता है (पृ. 238)। दूसरे प्रकार के वर्गीकरण का मुख्य आधार भाषाओं के वास्तविक ऐतिहासिक सम्बन्ध पर होता है' (पृ. 238)। आपके कहने का मतलब यह है कि भाषाओं के वर्ग समानरूपता और ऐतिहासिक खोज पर निर्भर हैं। खोज की असंभावना पर विचार करते हुए आप लिखते हैं कि वर्तमान शब्दों के मूल शब्दों की खोज के लिए उनका किसी प्राचीन साहित्यिक भाषा या साधारण प्राचीन लेखों में पाया जाना आवश्यक है। ऐसा न होने पर मूल शब्दों का वास्तव में क्या रूप था, यह कहना कठिन या असम्भव–सा होता है। जिन भाषाओं में प्राचीन लेख नहीं मिलते हैं, उनमें आधुनिक स्थानीय और प्रान्तीय बोलियों की तुलना से हमें अधिक प्राचीन स्वरूप का ज्ञान नहीं हो सकता, केवल साधारण इतिहास का अनुमान किया जा सकता है (पृ.151)। शब्दों की तुलना करते हुए हमें उनके अर्थों की समानता पर भी ध्यान देना चाहिए। शब्दों के इतिहास के अनुसंधान में शब्द और अर्थ का घनिष्ठ सम्बन्ध है–इस बात को न भूलना चाहिए। शब्द और अर्थ भाषा के बाह्य और अन्तरीय रूप हैं (पृ.150)'।

संस्कृत का विकास भी मूलावेद भाषा से हुआ है, किन्तु वैदिक भाषा की पुत्री होकर भी संस्कृत उससे भिन्न हैं–

(1) वेदभाषा का व्याकरण संस्कृत भाषा से भिन्न है। संस्कृत में अकारान्त पुलिंग द्विवचन में 'औ' होता है, जैसे 'रामौ' किन्तु वेद में 'आ' है। यदि संस्कृत और वेदभाषा एक ही होती, तो संस्कृत के व्याकरणानुसार वेद में **'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया'** के स्थान में **'द्वौ सुपर्णौ सयुजौ सखायौ'** होता।

(2) वेद में एक लकार अधिक है, जिसे 'लेट्' लकार कहते हैं। यह संस्कृत में ही नहीं प्रत्युत संसार भर की किसी भाषा में नहीं है।

(3) वेदभाषा में एक अक्षर अधिक है, जो संस्कृत साहित्य में नहीं आता। वह अक्षर 'ळ' है और 'अग्निमीळे पुरोहितम्' मन्त्र में आता है।

(4) वेदभाषा अपना अर्थ स्वरों से पुष्ट करती है। यह कौशल संसार की किसी भाषा में नहीं है।

(5) वेदों के बहुत से शब्द जिन अर्थों में आते हैं, वेही शब्द संस्कृत में उन्हीं अर्थों में नहीं आते।

प्रथम प्राकृत से संस्कृत, दूसरी प्राकृत से पाली, फिर पाली से शौरसेनी में परिवर्तन हुआ, इसी विकसित भाषा का नाम अपभ्रंश है तथा अपभ्रंश से हिंदी का जन्म हुआ और हिंदी का निरंतर विकास हुआ।

'हिंदी वैज्ञानिक भाषा के रूप में विश्वभाषाओं में दूसरे स्थान पर है। हिंदी भाषा ही नहीं, संस्कृति है। साथ ही, राष्ट्रीय अस्मिता की सूचक है। लगभग दो सौ भाषाओं को बोलने तथा समझने वाले लोग भारत में हैं किन्तु देवनागरी में निबद्ध हिंदी उन्हें अनुभूति कराती है, कि वे सब भारतीय हैं। भगवान राम और कृष्ण उत्तर प्रदेश के ही नहीं पूरे विश्व के हैं। 18 भाषाओं को संविधान में राष्ट्रभाषा का स्थान मिला है, किन्तु सम्पर्क भाषा की मान्यता केवल हिंदी को प्राप्त है।'

यही राष्ट्रभाषा की अधिकारिणी है, क्योंकि इसे बोलने और

समझने वाले सर्वाधिक हैं; भारत में ही नहीं विश्वभर के लोग टूटी–फूटी हिंदी समझ लेते हैं। हिंदी को देवनागरी का वरदान प्राप्त है तथा यह सम्पर्क भाषा का दायित्व भी भली–भांति निभा रही है।

हिंदी में वैज्ञानिक, धार्मिक तथा प्रशासनिक विषयों का सफलतापूर्वक निर्वाह किया जा सकता है। हिंदी हमारी सभ्यता और संस्कृति की संवाहक है। एकता के सूत्र में बाँधने वाली यही हिंदी है। हिंदी संसार भर में सर्वाधिक सम्पन्न और वैज्ञानिक भाषा है, जैसा बोला जाता है, वैसा ही लिखा भी जाता है। हिंदी का हर अक्षर वैज्ञानिक है– 'आ' पूर्णता का, 'ई' गति का और 'ऊ' ओम का प्रतीक है तथा पूरी वर्णमाला का प्रत्येक अक्षर वैज्ञानिक तथा सार्थक है। गोपथ–ब्राहमण में भर्गः शब्द आया है– भ–र–ग तीनों अक्षरों के अर्थ हैं–

(क) भ – इति भासयति लोकान्
(ख) र – इति राजयति लोकान्
(ग) ग – इति गमयति लोकान्
पा – रक्षा करना,
धा – धारण करना
मा – नापनी [7]

पाश्चात्य विद्वानों ने भी देवनागरी लिपि में निबद्ध 'हिंदी' को संसार की सर्वाधिक वैज्ञानिक भाषा के रूप में स्वीकार किया है, हिंदी की समास शैली, संक्षिप्तता तथा सूक्ष्म अर्थभेद की क्षमता अन्य किसी भाषा में नहीं। 'आन्टी' शब्द सभी महिलाओं के लिए प्रयुक्त होता है, किन्तु ताई, चाची, मामी का भेद हिंदी ही बता सकती है। हिंदी में सभी अक्षर समाकृति हैं। 14 अक्षर तथा 38 व्यंजन हैं। य, र, ल, व अन्तस्थ हैं। रोमन में एकाधिक लिपि के लिए एकाधिक संकेत हैं– (के–सी–क्यू) किन्तु हिंदी में ऐसा नहीं है।

आँग्ल भाषा शब्दकोश की संख्या 5 लाख से अधिक नहीं है, जबकि हिंदी में 27 लाख 20 हज़ार शब्द हैं। एक धातु से कम–से–कम 200 शब्द बन सकते हैं। अतः मैंने काव्यामृतम् नाम संस्कृत श्लोक संग्रह में कहा है–

''जननी संस्कृत भाषा चास्या
सार्वभौम संस्कृति सम्पन्ना,
यत्साकाशानान्याभाषा
धन्यामान्या हिंदीभाषा।''

विश्व व्यापिनी हिंदी की लोकप्रियता है कि बेल्जियम के फ़ादर कामिल बुल्के के हिंदी–प्रेम ने उन्हें भारत की नागरिकता लेने को विवश किया। उनका रामायण–प्रेम विश्वविदित है। फ़ीजी, सूरीनाम तथा मॉरीशस के हिंदी लेखकों का हिंदी की उन्नति में योगदान अविस्मरणीय है, ब्रिटेन के लंदन विश्वविद्यालय, कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय तथा यॉर्क विश्वविद्यालय में हिंदी नियमित रूप से पढ़ाई जा रही है।

ऑस्ट्रेलिया के पैट्रिकसक्लिंग, पॉलैण्ड के राजदूत प्रो. ब्रिस्की तथा रूस के विद्वान चेलीशेव का हिंदी अनुराग अविस्मरणीय है। चेलीशेव ने निराला पर हिंदी में ग्रंथ लिखा है। रोमानिया के प्रो. अंका ने हनुमान चालीसा का रोमेनियन भाषा में अनुवाद किया। शीघ्र ही दलाई लामा ने हिंदी भाषियों तक पहुँच बनाने के लिए वेबसाइट तैयार करवाई है। रस्किन बांड ने जो मूलतः अंग्रेज़ी लेखक है, हनुमान चालीसा का अंग्रेज़ी अनुवाद 'Hanuman to the rescue' नाम से किया, जिसका हिंदी अनुवाद है– 'हनुमान आये बचाने'। गिरिराज किशोर ने हिंदी के उद्‌भव से लेकर हिंदी के विकास की प्रक्रिया, हिंदी की वैज्ञानिकता तथा लोकप्रियता पर प्रकाश डाला है। हिंदी संसार की सर्वाधिक सम्पन्न भाषा है, यह निर्विवाद है। भाषा वन्दना गीत है–

वैज्ञानिकता से ये पोषित
ये देवनागरी आमोदित
भारती भाल पर तिलक रूप
हो गये विदेशी भी मोहित।
वेदोपनिषद् पीयूष खान
मानवता का जो यशोगान।
हिंदी महान। हिंदी महान। [8]

संदर्भ ग्रंथ :

1– ***'हिंदी व्याकरण'***, कामता प्रसाद गुरू नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, संवत् 2060 वि– पृ. 6
2– उपरिवत् पृष्ठ 11
3– वही
4– वही पृष्ठ 12
5– वही पृष्ठ 17
6– ***'हिंदी भाषा की उत्पत्ति'***, राजाराम, पृ. 125
7– ***'भाषा–परिवर्तन के नियम'***, डॉ. मंगल देव, पृ. 157
8– ***'जय हिंदी जयनागरी'***, साहित्य भूषण

बरेली, उत्तर प्रदेश
drmahashweta02@gmail.com

हिंदी की रूप–संरचना

–डॉ. रवीन्द्र कुमार पाठक

जन्म : औरंगाबाद (बिहार)

शिक्षा :

- ❖ पी.एच.डी. (हिंदी के प्रमुख व्याकरणों का समीक्षात्मक अनुशीलन, 2004)
- ❖ एम.ए. (हिंदी, 1999, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी)

व्यवसाय :

- ❖ सह–प्राध्यापक (हिंदी)
- ❖ अध्यक्ष, 'भारतीय भाषा केन्द्र (हिंदी, उर्दू)', दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गया

प्रकाशन :

- ❖ भाषाशास्त्र, काव्यशास्त्र व हाशिये की वैचारिकी (खासकर स्त्री–विमर्श) से सम्बद्ध शोध और आलोचनात्मक लेखन ।
- ❖ 5 पुस्तकें (3 स्वतंत्र, 2 सम्पादित) और 60 से अधिक स्वतंत्र आलेख प्रकाशित ।
- ❖ पुस्तकें – 'हिंदी–व्याकरण के नवीन क्षितिज', 'समान्तर दृष्टि की राह', 'जनसंख्या–समस्या के स्त्रीपाठ के रास्ते...' ।
- ❖ 'भारतीय भाषा परिषद्' (कोलकाता) द्वारा निर्मित 'हिन्दी–साहित्य कोश' (चार खण्ड) के लिए 25 प्रविष्टियों का लेखन ।
- ❖ 'एन.सी.ई.आर.टी.'(दिल्ली) द्वारा निर्मित पाठ्य–सन्दर्भ–पुस्तकों के लिए विषय–विशेषज्ञ के रूप में पाठ–लेखन/संपादन ।
- ❖ 'चेतांशी' पत्रिका (पटना) में भाषा और स्त्री के सम्बन्ध पर 'आधी भाषा' नाम से कॉलम–लेखन।

मनुष्य ने अपने भाव/विचार की अभिव्यक्ति के लिए युगों के अभ्यास से जिस सर्वसमर्थ माध्यम/पद्धति का विकास किया, वह है 'भाषा'। भाषा की व्याकरणिक संरचना की सबसे बड़ी इकाई 'वाक्य' और सबसे छोटी इकाई 'ध्वनि' होती है। 'वाक्य' व्याकरणिक संरचना की सबसे बड़ी इकाई होकर भी सम्प्रेषण की मूलभूत या सबसे छोटी इकाई है। कारण, मनुष्य वाक्यों में ही सोचता है और अपनी इच्छा या आवश्यकता के अनुरूप वाक्यों में ही बोलता है। वाक्य से नीचे उतरकर हम भाषिक व्यवहार कर ही नहीं सकते, भले हमारे द्वारा प्रयुक्त वाक्य कभी पूर्ण व्याकरणिक संरचना वाला न होकर कुछ अपूर्ण (अध्याहृत) सा दिखाई दे, पर होता है वह वाक्य ही। जैसे– 'नमस्ते!' – स्पष्ट है कि अभिवादन में प्रयुक्त यह भाषाई संरचना देखने में तो शब्द जैसी लगती है, पर वस्तुत; यह ('मैं आपको नमस्ते कर रहा/रही हूँ' के आशय को व्यक्त करने वाला) वाक्य है।

आमतौर पर भाषा की लघुतम सार्थक इकाई 'शब्द' को कहा जाता है, किन्तु व्याकरण–दर्शन के सन्दर्भ में यह बात कुछ संशोधनीय है। कारण, 'शब्द' की स्थिति 'कोश' में होती है, जो भाषा–संरचना के एक घटक के रूप में हमारे मन में कायम रहता है। बाहर ग्रंथ–रूप में मूर्त्त 'शब्दकोश' (Dictionary) हम सबके मनस्थ कोशों का प्रतिबिम्ब–सा होता है । कोशस्थ शब्द अपने में अनेक अर्थ–सम्भावनाओं को समाहित किए हुए वहाँ स्थित होता है। 'शब्द' अपने मूल रूप में भाषिक व्यवहार में नहीं आता। कोश से निकलकर कोई शब्द जब भाषा–व्यवहार (वाक्य) में प्रयुक्त होता है, तो बहुत सम्भव है कि वह अपने में कुछ रूपान्तर करे। वाक्य–प्रयुक्त होते ही वह अन्य वाक्यस्थ शब्दों से सम्बद्ध होता है और अपनी अनेक अर्थ–सम्भावनाओं में से किसी/कुछ खास के लिए बँधकर, निश्चित प्रकार्य का साधक बनता है। वाक्यांग बनते ही शब्द एक नवीन सत्ता ग्रहण करता है, जिसे भारतीय भाषा–दर्शन में 'पद' कहा जाता है।[1] इस तरह भले ही भाषा की लघुतम सार्थक इकाई 'शब्द' को कहा जाता है, किन्तु वस्तुतः वाक्य–प्रयुक्त सबसे छोटी स्वतन्त्र सार्थक इकाई 'पद' है । यहाँ 'स्वतंत्र' विशेषण ध्यातव्य है। बात यह है कि भाषाई व्यवहार में कुछ ऐसी इकाइयाँ भी आती हैं, जो स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त होने पर तो कुछ भी अर्थ नहीं रखतीं, लेकिन किन्हीं अन्य इकाइयों से जुड़कर सार्थक होती हैं। जैसे– 'लड़के ने पेड़ लगाया।' – वाक्य में आया हुआ 'ने' अलग से प्रयुक्त होने पर तो कुछ भी अर्थ नहीं रखता, किन्तु 'लड़का' के साथ जुड़कर उसके कर्त्तापन के अर्थ को (अधिक पुष्ट रूप में) व्यक्त करता है और इस रूप में अपने को

भी सार्थक बनाता है। इस वाक्य में तीन पद हैं – 'लड़के ने', 'पेड़' और 'लगाया '।

अगर हम 'भाषा' या 'भाषा–प्रयोग' पर अधिक तर्कसंगत ढंग से विचार करें, तो कह सकते हैं कि ध्वनियों या 'शब्दों/पदों' के संयोजन से 'वाक्य' नहीं बनते, बल्कि वाक्य ही भाषा की सहज इकाई है, जिसे तोड़ने या विश्लेषित करने से 'पद/शब्द' या 'ध्वनियाँ' निकलकर आती हैं। पदों की व्याख्या के लिए भारतीय व्याकरण उसमें निहित जिस मूल शब्द तत्त्व की कल्पना करता है, उसे 'प्रकृति' (Root) कहते हैं। अभी तक विवेचित कोशस्थ 'शब्द' वस्तुतः इसी का नामान्तर है। पूर्वविवेचित तथ्यों के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि 'लड़के ने' पद में प्रकृति है – 'लड़का'। इसी तरह, 'लगाया' पद में प्रकृति है – 'लगा'। यह बात भी समझने की है कि 'लड़का' व 'लगा' शब्द वाक्य में प्रयुक्त नहीं होते। प्रयुक्त होते हैं इनके साधित रूप (पद) – 'लड़के ने' और 'लगाया'। 'लड़का' व 'लगा' इन वास्तविक प्रयुक्त इकाइयों यानी पदों के विश्लेषण हेतु कल्पित की गयीं तकनीकी इकाइयाँ हैं।

भारतीय व्याकरण–चिन्तन में 'पद' को 'रूप' भी कहा गया है। अगर ऐसा नहीं होता तो 'शब्द–रूप', 'धातु–रूप' जैसे पारिभाषिक शब्द बहुतायत से प्रयुक्त नहीं होते। (पर, जैसा कि आगे विवेचन किया गया है, आजकल आधुनिक भाषाविज्ञान की संकल्पना 'Morph' के हिंदी–प्रतिशब्द के तौर पर 'रूप' शब्द का इस्तेमाल किया जाने लगा है) । पद के रूप में ढलने के लिए शब्द में कुछ व्याकरणिक अंशों का संयोग ज़रूरी होता है। ये अंश 'सम्बन्ध–तत्त्व' (रचना–तत्त्व) कहलाते हैं, जिन्हें (या जिनमें से कुछ विशेष को) भारतीय भाषा–चिन्तन में 'विभक्ति' कहा गया है। यानी,

पद = शब्द + सम्बन्ध–तत्त्व/विभक्ति ।

'शब्द' को 'पद' (रूप) में रूपायित करने वाला मूल तत्त्व 'व्याकरणिक कोटि'[2] है । हिंदी भाषा में कार्यरत ऐसी कोटियाँ हैं – कारक, वचन, पुरुष, (कभी–कभी 'लिंग' भी), काल, वाच्य, प्रकार (Mood) और पक्ष (Aspect)। ये शब्द को 'पद' की भूमिकाओं में ढालने के क्रम में उनमें 'सम्बन्ध–तत्त्व' या 'विभक्ति' नामक व्याकरणिक अंश भी जोड़ती हैं। जैसे – 'लड़के ने पेड़ लगाया' – वाक्य में प्राप्त पद 'लड़के ने' में 'लड़का' शब्द है और उसमें जुड़े अंश 'ए'+ 'ने' (लड़का+ए+ने = लड़के ने) 'सम्बन्ध–तत्त्व' हैं, जिनमें से 'ए' विभक्ति है और 'ने' परसर्ग। 'लड़का पेड़ लगाता है' – वाक्य में 'लड़का' पद 'लड़का' शब्द में '0' (शून्य) विभक्ति के योग से बना है। 'पेड़' में भी सम्बन्ध–तत्त्व है, पर वह '0' (शून्य) है। 'पेड़' भी इस तरह पद है, 'लगाया' भी। हिंदी भाषा में 'विभक्ति' का पूरक या स्थानापन्न तत्त्व भी होता है। 'लड़के ने' पद में 'ने' परसर्ग विभक्ति–पूरक है।

'लड़का ने ' और 'पेड़' जहाँ संज्ञा शब्द के रूप (कारक–रूप) हैं, वहीं 'लड़की पढ़े' – में 'पढ़े' क्रियापद (क्रिया–रूप) है । इसका मूल शब्द है 'पढ़', जिसमें 'ए' विभक्ति जुड़ी हुई है। वही यहाँ सम्बन्ध–तत्त्व है। भारतीय भाषा–दर्शन में क्रियापदों के मूल (Root) को 'धातु' कहते हैं और क्रिया–भिन्न (क्रियेतर) पदों के मूल को 'प्रातिपदिक' कहा जाता है (जैसे – 'पढ़े' में 'पढ़' धातु है और 'लड़का ने' में 'लड़का' प्रातिपदिक)। इसी तरह क्रियापद की रचना हेतु आने वाली विभक्ति 'क्रिया–विभक्ति' (या 'धातु–विभक्ति') कहलाती है तथा क्रिया–भिन्न (क्रियेतर) पद की रचना में उपयोगी विभक्ति 'कारक–विभक्ति'।

उपर्युक्त विषय को एक अन्य तरह से भी समझा जा सकता है। किसी वाक्य में दो तरह के तत्त्व होते हैं – 'अर्थ–तत्त्व' और 'सम्बन्ध–तत्त्व'। दोनों में सम्प्रेषण के लिहाज़ से प्रधानता अर्थ–तत्त्व की होती है। सम्बन्ध–तत्त्व का कार्य विभिन्न अर्थ–तत्त्वों को आपस में सम्बन्धित करना है, ताकि 'वाक्य' अस्तित्व ग्रहण करे। उदाहरणस्वरूप, 'कमला ने प्रतिभा से लेक्चरर का पद पाया, पैरवी या घूस से नहीं।' – हिंदी के इस वाक्य में 'कमला', 'प्रतिभा', 'लेक्चरर', 'पद', 'पा'(ना), 'पैरवी', 'या', 'घूस' और 'नहीं' – ये 9 अर्थ–तत्त्व हैं, जो अर्थ–विशेष से सम्बद्ध या उसके वाचक हैं। इन्हें एक साथ उक्त क्रम से रख देने मात्र से हिंदी भाषा में वाक्य तो बनेगा नहीं। जब वाक्य ही नहीं बनेगा, तब इनसे कोई विचार अभिव्यक्त कैसे होगा? वाक्य बनाने के लिए इनमें 'सम्बन्ध–तत्त्व' (रचना–तत्त्व) जुड़ने अनिवार्य हैं। उपर्युक्त वाक्य में 'ने', 'से', 'का', 'से' के साथ 'पाया' में आये 'या' को लेकर 5 सम्बन्ध–तत्त्व हैं, जो उक्त वाक्य का संघटन करते हैं। इनमें प्रथम 4 सम्बन्ध–तत्त्व विश्लिष्ट यानी शब्द/अर्थ–तत्त्व से अलग हैं और अन्तिम ('या') संश्लिष्ट यानी शब्द/अर्थ–तत्त्व से मिला हुआ है। इसी तरह, 'घोड़े तगड़े हैं'– इस वाक्य में 'घोड़ा'/'तगड़ा' में लगा 'ए' भी संश्लिष्ट है।

'पद' और 'वाक्य' की रचना से सम्बद्ध उपर्युक्त प्रतिपादन थोड़े से बाह्य अन्तर के साथ, अधिकतर भाषाओं (हिंदी, संस्कृत, रूसी, अंग्रेज़ी आदि योगात्मक[3] भाषाओं) के लिए यथार्थ है। परन्तु, अयोगात्मक[4] भाषाओं (जैसे– चीनी) में 'शब्द' व 'पद' का यह भेद नहीं दिखता। उनमें जो कोशस्थ शब्द है, वह उसी रूप में वाक्य/भाषा–व्यवहार में प्रयुक्त होता है। फिर भी वाक्य में प्रयुक्त होकर वे 'पद' ही कहलाएँगे। दूसरे शब्दों में, अयोगात्मक भाषा में शब्दों या अर्थ–तत्त्वों को क्रम से रख देने भर से वाक्य बन जाता है। योगात्मक भाषाओं में 'शब्द' के 'पद' बनने, यानी वाक्य–प्रयुक्त होने के क्रम में अक्सर उसमें कुछ जुड़ता है अथवा प्रायः उनमें रूपान्तर होता है, जबकि अयोगात्मक भाषाओं में ऐसा कोई रूपान्तर कतई नहीं होता।

हिंदी योगात्मक वर्ग की भाषा है, पर संस्कृत की तुलना में यह काफ़ी हद तक वियोगात्मकता के गुण रखती है। मतलब, हिंदी भाषा में वाक्य–प्रयुक्त सार्थक इकाइयों (पदों) की रचना में सम्बन्धकारी तत्त्वों (परसर्ग, प्रत्यय आदि) का जुड़ाव सदा अनिवार्य नहीं है और यदि सम्बन्धकारी तत्त्व हैं भी, तो उनका मूल शब्द (प्रकृति) से प्रकट रूप से संश्लिष्ट होना अनिवार्य नहीं है। इसके साथ, कभी–कभी तो हिंदी में भी (बिल्कुल अयोगात्मक भाषाओं की तरह) ऐसा सम्भव है कि कोई शब्द अपने उसी रूप में वाक्य–प्रयुक्त हो जाए। जैसे – 'लड़का पेड़ लगाता है', 'तू पेड़ लगा।' पहले वाक्य में 'लड़का' और दूसरे वाक्य में 'लगा', उपर्युक्त विवेचन के अनुसार 'शब्द' (प्रकृति) की तरह प्रतीत होकर भी पद हैं ।[5] 'लड़का' व 'लगा' शब्द इनमें रूपाकृति में बिना किसी परिवर्तन के 'पद' बनकर प्रयुक्त हुए हैं। 'पद' वस्तुतः 'शब्द' के उस साधित रूप को कहते हैं, जो वाक्य–प्रयुक्त होता है। अयोगात्मक भाषाओं के बारे में भारतीय व्याकरण–चिन्तन की भाषा में कहा जा सकता है कि उनमें 'रूप'–रचना नहीं होती हो, पर उनके वाक्य में 'पद' ही रहते हैं, न कि 'शब्द'।

रूप (Morph) और रूपिम (Morpheme):

अब तक हमें ज्ञात हो चुका है कि वाक्य–संरचना की लघुतम स्वतन्त्र सार्थक इकाई 'पद' है (जिसे भारतीय व्याकरण–परम्परा 'रूप' भी कहती है)। हिंदी का एक प्रयोग लेकर विचार करते हैं –

'आर्थिक भ्रष्टाचारियों से ज़्यादा घिनौने और बेशर्म हैं मानवीय भ्रष्टाचारी। पहले उन्हीं को दण्ड देना होगा – कठोरतम दण्ड!' – इसमें पद 'भ्रष्टाचारियों से' की रचना 'भ्रष्टाचारी + ओं + से' हुआ है, जिसमें 'ओं + से' विभक्ति (व परसर्ग) नामक सम्बन्ध–तत्त्व है। 'भ्रष्टाचारी' प्रकृति (शब्द) नामक तकनीकी इकाई है[6], जो शब्दकोश में स्थित रहती है, जहाँ से उतरकर यहाँ पद ('भ्रष्टाचारियों से') बनी हुई है। 'दण्ड' पद में निहित प्रकृति (शब्द) भी है 'दण्ड' ही, क्योंकि 'दण्ड' (पद) = दण्ड (शब्द) + 0 (विभक्ति) + 0 (परसर्ग)। इन दोनों शब्दों – 'भ्रष्टाचारी' व 'दण्ड' में से पहला यौगिक यानी व्युत्पन्न शब्द है, क्योंकि 'भ्रष्टाचार + ई' से बना है। 'ई' अंश प्रत्यय कहलाता है। इसमें स्वयं सार्थकता नहीं होती, परन्तु मूल सार्थक अंश 'भ्रष्टाचार' के साथ संलग्न होकर उसे अर्थ–विशेष (भ्रष्टाचार करने वाला/भ्रष्टाचार से जुड़ा आदि) में गतिमान करता हुआ अपनी सार्थकता सिद्ध करता है। 'भ्रष्टाचार' भी यौगिक शब्द है – 'भ्रष्ट+आचार' – यह 'शब्द+शब्द' का मेल है ।

हिंदी में सामान्यतः यहीं तक विश्लेषण किया जाता है और 'आचार' को अखण्डनीय शब्द मान लेते हैं। पर, हम चाहें तो इसका आगे भी विश्लेषण कर सकते हैं और ऐसा करना तर्कपूर्ण भी है। एक दृष्टि से 'आचार' भी यौगिक शब्द निकलता है – 'आ + चार' – यह 'उपसर्ग + शब्द' के रूप में व्युत्पन्न है। **'चार'** शब्द के मूल अर्थ (चलना, प्रवाहित होना[7]) आदि में 'आ' पहले जुड़कर अर्थ–परिवर्तन लाता है। अब अर्थ हो गया – 'आचरण'। 'आ' अंश में स्वयं सार्थकता नहीं है, जैसी कि 'चार' में है। पर, उससे जुड़कर, उसे नया अर्थ देते हुए 'आ' भी अपनी सार्थकता सिद्ध करता है। 'बेशर्म' भी यौगिक शब्द है – 'शर्म' शब्द में 'बे' उपसर्ग के मिलने से बना। सार्थक शब्द 'भ्रष्ट', 'दण्ड', 'शर्म' आदि (और कोष्ठकस्थ विश्लेषण के अनुसार 'चार' भी) एक दृष्टि से समान तल पर हैं। इन्हें अब और अधिक खण्डित किया जाए, तो जो टुकड़े होंगे वे सार्थक शब्द/सार्थक शब्दांश न रह जाएँगे – यह स्पष्ट है। ऐसे शब्द **'रूढ़'** या **'अव्युत्पन्न'** कहलाते हैं। इस समस्त विश्लेषण में हमें 'दण्ड', 'भ्रष्ट', 'शर्म' (और 'चार' भी) के साथ 'ई', 'आ', 'ओं' और 'से' ऐसे भाषिक अंश मिले, जिनसे छोटी सार्थक इकाई नहीं हो सकती। इन्हें आधुनिक भाषाविज्ञान की शब्दावली के अनुसार, रूप (Morph) कहा जाता है। यानी, रूढ़ शब्द (रूढ़ प्रकृति, 'उपसर्ग' व 'प्रत्यय' नामक

शब्दांश एवं 'विभक्ति (व परसर्ग)' ही रूप (Morph) हैं। इनके योग से कोई यौगिक शब्द व्युत्पन्न होता है अथवा पद की रचना होती है। यानी, ये यौगिक शब्दों और पदों के घटक या संरचक हैं। उक्त प्रथम वाक्य में सामान्यतः 'अर्थ', 'इक', 'भ्रष्ट', 'आचार',' ई', 'ओं', 'से', 'ज़्यादा', 'घिनौना', 'ए', 'और', 'बे', 'शर्म', 'हैं', 'मानव', 'ईय', 'भ्रष्ट', 'आचार', 'ई' – ये 20 रूप (Morph) निकाले जा सकते हैं। यदि 'आचार (आ + चार)' एवं 'हैं (ह् + ऍं)' का भी विखण्डन उचित समझें, तो रूप 22 हो जाते हैं।

इस प्रकार, रूप (Morph) भाषा की व्यवहृत न्यूनतम अर्थवान इकाई है। यह जिस (अर्थ–तत्त्व) को अभिव्यक्त करने के लिए भाषा–प्रयोग में आता है, वह भाषा–व्यवहार में आये अर्थ का सबसे छोटा टुकड़ा होता है, जिसे 'रूपिम' (Morpheme) कहते हैं। अर्थात्, भाषा में व्यवहृत हुए अर्थ (प्रकार्य) की लघुतम इकाई को रूपिम कहते हैं। यानी, रूपिम का सम्बन्ध एक अर्थ/प्रकार्य के बोध से है। रूपिम अमूर्त आर्थिक इकाई है, रूप (Morph) उसका ध्वनि–रूप है, यानी भाषा–प्रयोग में उसका संरचनात्मक प्रतिनिधित्व करने वाला।

'लड़के ने कहा।' – इस वाक्य में परम्परागत भारतीय व्याकरणिक दर्शन के अनुसार दो ही 'पद' हैं, जिसे वहाँ 'रूप' भी कहा गया है – 'लड़के ने' तथा 'कहा'। परन्तु, आधुनिक भाषावैज्ञानिक दृष्टि से न्यूनतम अर्थ–तत्त्व (रूपिम) के प्रकाशक ध्वनि–तत्त्व को रूप (Morph) कहते हैं। इस लिहाज़ से इसमें निम्न 5 रूप हैं:–

(क) 'लड़के ने' पद में — 'लड़का + ए + ने' – 3 रूप

(ख) 'कहा' पद में – 'कह + आ' – 2 रूप

'क' में न्यूनतम अर्थ–इकाइयाँ (रूपिम) कम से कम चार हैं –

1. अपने साथ संलग्न प्राकृतिक लिंग यानी 'सेक्स' आदि अर्थ समेत, लड़का नामक वस्तु–विशेष।
2. उसका एक संख्या वाला (एकवचन) अर्थ
3. कर्तृत्व अर्थ।
4. भूतकालिक अर्थ आदि।

इनके प्रकटीकरण के लिए भाषा में उक्त 3 ध्वनि–रूप आये। आधुनिक भाषावैज्ञानिक दृष्टि से ये ही **'रूप'** (Morph) की संज्ञा पाते हैं। इसी तरह, 'ख' में दो रूपिम हैं :

1. कहने का भाव
2. भूतकालिक अर्थ

इनके प्रकाशन के लिए भाषा में उक्त 2 ध्वनि–रूप आये हैं। 'कह' रूप (1) को प्रकाशित करने के लिए आया और 'आ' रूप (2) के लिए आया। ये ही **'रूप'** (Morph) की संज्ञा पाते हैं। हिंदी का वाक्य–'वे उठें' के 'उठें' पद में 4 रूपिम हैं, जिनके प्रकाशक 2 रूप हैं – 'उठ + ए'। (संलग्न सारिणी द्वारा इसे भली–भाँति समझा जा सकता है।)

पूर्वोक्त वाक्य (**'आर्थिक... कठोरतम दण्ड।'**) के रूपों (Morph) में से 'दण्ड', 'शर्म' व 'भ्रष्ट' की सार्थकता का स्तर अलग है; 'ई', 'आ', 'ओं', 'बे' और 'से' का अलग। पहले वर्ग के 'रूप' (Morph) अपने–आप में अर्थवान हैं; चाहे वे किसी भाषिक व्यवहार में अथवा अन्य 'रूप' (Morph) से संयोग में आएँ या नहीं आएँ; वे स्वयमेव सार्थक हैं। ऐसे रूप 'मुक्त रूप' कहलाते हैं। दूसरे वर्ग के रूपों की सार्थकता तब तक सम्भव नहीं है, जब तक वे किसी भाषाई प्रक्रिया के तहत प्रथम वर्ग के रूप के साथ जुड़ते नहीं। इसी से वे **'बद्ध रूप'** कहलाते हैं। हिंदी के कुछ भाषाविज्ञानी **'मुक्त' व 'बद्ध'** विशेषणों का प्रयोग 'रूप' (Morph) के लिए न करके 'रूपिम' (Morpheme) के लिए करते हैं।[8] परन्तु, मेरी समझ से वह ठीक नहीं है। कारण कि 'रूपिम' रूपों से व्यक्त होने वाला अर्थ–तत्त्व है, जो मानसिक सम्प्रत्यय है। उसकी बद्धता या मुक्ति कैसी ? 'बद्ध' या 'मुक्त' तो उसका ध्वनिक प्रतिनिधि 'रूप' (Morph) होगा।

हिंदी में सम्बन्ध–तत्त्वों के मुख्य प्रकार –

1. शब्द–स्थान/क्रम — अयोगात्मक भाषाओं में (जैसे–चीनी) में वाक्यगत शब्द–क्रम भी सम्बद्ध–तत्त्व की भूमिका में होता है। थोड़ी–बहुत यह स्थिति हिंदी, अंग्रेज़ी (और समास–रचना के प्रसंग में संस्कृत) आदि भाषाओं में भी है, जिसमें किसी शब्द का क्रम बदल देने से उसकी व्याकरणिक स्थिति और उसका आशय दोनों बदल जाते हैं। जैसे –

पतंग उड़ रही है। (कर्त्ता)

साहिल और गायत्री **पतंग** उड़ा रहे हैं। (कर्म)

2. सम्बन्ध–निर्माता स्वतंत्र शब्द – हिंदी में इस कोटि के सम्बन्ध–तत्त्व हैं– परसर्ग ('ने', 'को', 'से', 'पर', 'द्वारा', 'भर') आदि, जो वाक्य में निश्चित स्थान पर आकर वाक्यगत सम्बन्धों के साधक होते हैं। जैसे – 'अरविन्द पर विश्वास करना कठिन है।'

3.शून्य सम्बन्ध–तत्त्व/शून्य विभक्ति – भाषा में जब 'पद' बिल्कुल 'शब्द' की तरह अविकृत रूप में दिखलाई पड़ता है, तो वैसी स्थिति में यह मान लिया जाता है कि विभक्ति या सम्बन्ध–तत्त्व तो इन शब्दों में लगा, परन्तु लगकर लुप्त हो गया। यानी, शून्य विभक्ति (ज़ीरो इन्फ़्लेक्शन) लगी। जैसे 'तू जा'; 'I go' या 'लता गच्छति।' – जैसे वाक्यों में आये 'तू', 'Go', 'लता' आदि पद बिल्कुल क्रमशः 'तू', 'Go', 'लता' आदि शब्दों की तरह दिखाई पड़ते हैं। वस्तुतः ये 'शून्य विभक्ति' से साधित पद हैं ।

4.शब्द में कुछ व्याकरणिक अंशों का योग – यह योगात्मक भाषाओं में प्रचलित होता है। इसके तीन प्रकार हैं :

(क) आदियोग ('उपसर्ग') – 'देश' शब्द में अलग–अलग उपसर्गों के योग से प्रदेश, विदेश, अनुदेश, सन्देश, आदेश आदि ढेरों शब्द बनेंगे।

(ख) मध्ययोग ('विकरण') – 'नीति+ इक = नैतिक' में 'इक' प्रत्यय (अन्त–योग) पहले के स्वर 'ई' को 'ऐ' भी बना रहा है।

(ग) अन्तयोग('प्रत्यय'/'विभक्ति') – लड़का + ए = लड़के। जा + ऊँ = जाऊँ । लड़का + ए + को = लड़के को। इसी तरह 'गा' शब्द (धातु) से 'गाना', 'गायक' आदि ढेरों शब्द बनेंगे।

5. ध्वनि–गुण – यदा–कदा **सुर** (Tone) व **बलाघात** भी पद–साधक हैं। हिंदी की जनपदीय भाषाओं में भी यह गुण है। जैसे– मगही में 'कर' (= करो) तथा 'करऽ' (= कीजिये। आदरार्थक रूप)। भोजपुरी में 'कऽरब' (= मैं करूँगा / करूँगी) तथा 'करबऽ' (= आप करेंगे? तुम करोगे?)। अंग्रेज़ी में Contact' (क्रिया – जुड़ना, सम्पर्क करना), Contact (संज्ञा – जुड़ाव, सम्पर्क)।

6.अन्तर्वत्ती स्वर में परिवर्तन –. अंग्रेज़ी 'Sing' से 'Sang' या 'Sung' बनना स्वर–परिवर्तन से हुई पद–रचना का उदाहरण है। वैसे तो हिंदी में **'पका'** से **'पक'** धातु बनना इसी का उदाहरण है – मोहन रोटी पका रहा है। **(कर्तृवाच्य)**, रोटी पक रही है । **(कर्मकर्तृवाच्य)**

उपर्युक्त विवेचन से यह भी पता चलता है कि शब्द (मतलब यौगिक शब्द) की रचना (व्युत्पत्ति) की कम–से–कम तीन प्रक्रियाएँ हिंदी में हैं :–

(क) रूढ़/यौगिक + रूढ़ / यौगिक शब्द। जैसे– भ्रष्ट + आचार। इसे **समास–प्रक्रिया** कहते हैं।

(ख) रूढ़/यौगिक शब्द + प्रत्यय। जैसे– भ्रष्टाचार + ई = भ्रष्टाचारी। इसे **प्रत्यय–प्रक्रिया** कहते हैं।

(ग) उपसर्ग + रूढ़/यौगिक शब्द। जैसे – बेशर्म = बे + शर्म। समालोचना = सम्+आलोचना। (यदि पूर्वोक्त विखण्डन – 'आ + चार' को उचित समझें, तो 'आचार' भी ऐसा ही शब्द है।

तीसरी प्रक्रिया हिंदी में गौण है तथा इसे **समास–प्रक्रिया** में ही अन्तर्भूत किया जा सकता है। पूर्वोक्त वाक्य में और भी यौगिक शब्द आये हैं। उनका गठन देखते हैं – आर्थिक = अर्थ + इक। मानवीय = मानव + ईय। कठोरतम = कठोर + तम। तीनों में **प्रत्यय–प्रक्रिया** घटित हुई है।

भारतीय आर्यभाषाओं का विकास मुख्यतः संयोगात्मकता से वियोगात्मकता की दिशा में होता आ रहा है। 'हिंदी' एक आधुनिक भारतीय आर्यभाषा है, जो वियोगात्मकता के अन्तिम छोर पर स्थित भाषाओं में से है। हिंदी की उपरि–विवेचित रूप–संरचना में यह तथ्य परिलक्षित होता है।

सन्दर्भ और टिप्पणियाँ –

1. रामदेव त्रिपाठी, 'हिंदी भाषानुशासन' (1986), बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, पृ. 196–200 इस पुस्तक के 'मूल शब्द और पद' अध्याय में इस विषय पर समुचित प्रकाश डाला गया है।

2. रवीन्द्र कुमार पाठक, 'व्याकरणिक कोटियाँ' अध्याय, 'हिंदी व्याकरण के नवीन क्षितिज' (2010), भारतीय ज्ञानपीठ,

दिल्ली, पृ. 115–132

3. जिन भाषाओं में प्रत्यय, विभक्ति/परसर्ग आदि व्याकरणिक तत्त्वों से वाक्यगत शब्दों के व्याकरणिक सम्बन्ध की रचना होती है, उन्हें योगात्मक भाषा कहते हैं। जैसे – संस्कृत, फ़ारसी, तुर्की, रूसी, अंग्रेज़ी, हिंदी, संथाली आदि।

4. जिन भाषाओं में प्रत्यय, विभक्ति–परसर्ग आदि व्याकरणिक सम्बन्धकारी तत्त्व नहीं होते और बिना इन के योग के वाक्यगत शब्दों के व्याकरणिक सम्बन्ध की रचना होती है, उन्हें अयोगात्मक भाषा कहते हैं। जैसे – चीनी, तिब्बती, स्यामी, अनामी, सुडानी आदि। इन भाषाओं में हर शब्द स्वतन्त्र होता है तथा किसी शब्द से किसी शब्द की व्युत्पत्ति नहीं होती। वाक्य में शब्द–क्रम, सुर (Tone) तथा कहीं–कहीं स्वतन्त्र सम्बन्धसूचक अव्ययों के प्रयोग से वाक्यगत शब्दों की व्याकरणिक कोटि या उनके व्याकरणिक सम्बन्ध का बोध होता है।

5. किशोरीदास वाजपेयी, 'हिंदी शब्दानुशासन' (संवत् 2055), नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ–118 हिंदी की व्यवस्था के बारे में वाजपेयी जी ने लिखा है–"यहाँ तो 'अर्थ–संकेतित शब्द' ही 'पद' है, यही वाक्य का अंश है। चाहे उसमें कोई विभक्ति हो, या न हो!"

6. यदि अन्य प्रसंगों में यह (जैसे – 'भ्रष्टाचारी आज के शिष्टाचारी बने हुए हैं।') प्रयुक्त हो भी रहा है, तो यही माना जाएगा कि यह शब्द नहीं है, बल्कि पद बनकर आया है, भले प्रकट रूप से इसमें विभक्ति (परसर्ग) न लगी हो।

7. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की 'राम की शक्तिपूजा' कविता में 'चार' का प्रयोग 'संचरण' या 'प्रवाहित' होने के अर्थ में किया गया है – 'खो रहा दिशा ज्ञान स्तब्ध है पवन–चार।'

8. रामकमल पाण्डेय, 'हिंदी संरचना का शैक्षिक स्वरूप' (1984), विराट् प्रकाशन, गोपीगंज (उत्तर प्रदेश), पृ–85

वैश्ना नारंग, 'समसामयिक भाषाविज्ञान'(2008), यश पब्लिकेशन्स, दिल्ली, पृ–102

श्री पाण्डेय और श्रीमती नारंग ने 'मुक्त' और 'बद्ध/आबद्ध' विशेषण के साथ रूपिमों का विवेचन किया है।

ग्रंथ–सूची:

1. कामताप्रसाद गुरु (1952), 'हिंदी व्याकरण' (संशोधित संस्करण), नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
2. किशोरीदास वाजपेयी (संवत् 2055), 'हिंदी शब्दानुशासन', नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
3. के. ए. एस. अय्यर (1991), 'भर्तृहरि का वाक्यपदीय', राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर
4. जाल्मन दीमशित्स (1983), 'हिंदी व्याकरण', रादुगा प्रकाशन, मास्को
5. पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु' (2003), 'भाषा–विमर्श : नव्य भाषावैज्ञानिक सन्दर्भ', वाणी प्रकाशन, दिल्ली
6. रवीन्द्र कुमार पाठक (2010), 'हिंदी व्याकरण के नवीन क्षितिज', भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
7. रामकमल पाण्डेय (1984), 'हिंदी–संरचना का शैक्षिक स्वरूप', विराट प्रकाशन, ज्ञानपुर रोड, गोपीगंज (उत्तर प्रदेश)
8. रामदेव त्रिपाठी (1986), 'हिंदी भाषानुशासन', बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना
9. विद्यानिवास मिश्र (1994), 'भारतीय भाषाशास्त्रीय चिन्तन' (सम्पादित), राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर
10. वैश्ना नारंग (2008),'समसामयिक भाषाविज्ञान', यश पब्लिकेशन्स, गांधी नगर, दिल्ली
11. सूरजभान सिंह (2000), 'हिंदी का वाक्यात्मक व्याकरण', साहित्य सहकार, विश्वासनगर, दिल्ली–32
12. Aryendra Sharma (1994), `A Basic Grammar Of Modern Hindi', Kendriya Hindi Nideshalaya, Delhi

औरंगाबाद, भारत

rkpathakaubr@gmail.com

भाषा की प्रकृति और हिंदी

–डॉ. परमानंद पांचाल

भाषा एक समाज सापेक्ष क्रिया है, एक सामाजिक व्यवहार है, क्योंकि समाज में विचारों का आदान–प्रदान भाषा के माध्यम से ही होता है, चाहे वह मौखिक हो या लिखित अथवा सांकेतिक। व्यक्ति समाज से भाषा सीखता है और समाज में ही इसका प्रयोग करता है। सामाजिक व्यवहार के रूप में भाषा परिवर्तनशील एवं अनेकरूपा होती है और इसके तत्वों में यादृच्छिक के गुण विद्यमान होते हैं।

परिवर्तनशील समाज के साथ–साथ भाषा में भी परिवर्तन होते रहते हैं और आवश्यकतानुसार भाषा में अभिव्यक्ति के लिए नए शब्द और प्रयुक्तियाँ आती रहती हैं, जिससे भाषा के सामर्थ्य में वृद्धि होती है, उसकी क्षमता बढ़ती है। यही भाषा का विकास होता है। कोई भी भाषा सर्वप्रथम एक क्षेत्र विशेष के जन–समुदाय की बोली के रूप में विकसित होती है। जब उस समुदाय का सम्पर्क अन्य समुदायों की बोलियों से होता है तब परस्पर आदान–प्रदान से उसकी शब्द–सम्पदा में भी विस्तार होता है और शैली में भी परिवर्तन आता है। विभिन्न बोलियों के परस्पर सम्पर्क से एक विस्तृत बोली समूह का निर्माण होता है। ऐसे ही विभिन्न बोली समूहों के परस्पर सम्पर्क से एक सम्पूर्ण भाषा का विकास होता है। इसके विकास और प्रवाह में इन बोलियों और बोली–सूमहों का ही विशेष योगदान होता है, जो उसे जीवन्तता प्रदान करती है, विस्तार देती है। भाषा में नए शब्द और शैलियाँ सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार आते रहते हैं, जिससे भाषा में संप्रेषणीयता बढ़ती है। उसकी सजीवता, कुशलता और उसके सामर्थ्य में वृद्धि होती है। सामाजिक बदलाव के कारण कुछ शब्द अपनी प्रासंगिकता भी खो बैठते हैं और कालान्तर में वे सामाजिक स्मृति के पटल से ही गायब हो जाते हैं। ग्रामीण समाज में कृषि से सम्बंधित ऐसे अनेक शब्द थे, जो आज की पीढ़ी के लिए अज्ञात और अनजाने होते जा रहे हैं। वैज्ञानिक उपलब्धियों और प्रौद्योगिक विकास के कारण नए–नए

जन्म : औरंगाबाद (बिहार)

शिक्षा :
- ❖ पी.एच.डी. (हिंदी के प्रमुख व्याकरणों का समीक्षात्मक अनुशीलन, 2004)
- ❖ एम.ए. (हिंदी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी,1999)

व्यवसाय :
- ❖ महामंत्री, नागरी लिपि परिषद्, नई दिल्ली
- ❖ प्रधान संपादक, नागरी संगम पत्रिका
- ❖ अमीर खुसरो अकादेमी तथा मातृभाषा विकास परिषद् के अध्यक्ष (संप्रति)
- ❖ पाँचवें तथा आठवें विश्व हिंदी सम्मेलनों में नागरी लिपि पर बीज–भाषण

प्रकाशन :
- ❖ हिंदी के मुस्लिम साहित्यकार, दक्खिनी हिंदी: विकास और इतिहास, कोहिनूर (निबंध–संग्रह)
- ❖ हिंदी भाषा और साहित्य के विभिन्न रूपों पर निरंतर लेख और निबंध प्रकाशित लगभग 400 लेख और निबंध प्रकाशित
- ❖ 20 ग्रंथों का प्रकाशन
- ❖ दक्खिनी हिंदी की पारिभाषिक शब्दावली, विदेशी यात्रियों की नज़र से भारत, भारत के सुन्दर द्वीप (पुरस्कृत) पुस्तकों का प्रकाशन
- ❖ कथा दशक, हिंदी भाषा : राजभाषा और लिपि, भारत की महान् विभूति 'अमीर खुसरो', सोहनलाल द्विवेदी तथा दक्खिनी हिंदी काव्य–संचयन
- ❖ उर्दू पुस्तकों का हिंदी अनुवाद

पुरस्कार :
- ❖ भारत सरकार द्वारा राहुल सांकृत्यायन पर्यटन पुरस्कार
- ❖ दिल्ली हिंदी अकादेमी साहित्य पुरस्कार
- ❖ जैनेंद्रकुमार सम्मान
- ❖ हिंदी रत्न सम्मान
- ❖ हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा 'विद्यावाचस्पति' की मानद् उपाधि।

सदस्य :
- ❖ भारत सरकार के कई मंत्रालयों की हिंदी सलाहकार समितियों के सदस्य
- ❖ हिंदी की सर्वोच्च समिति, केंद्रीय हिंदी समिति के सदस्य
- ❖ साहित्य अकादमी (5 वर्ष) के सदस्य

शब्द हमारी भाषाओं में आ रहे हैं और कुछ पुराने शब्द शनैः शनैः लुप्त भी होते जा रहे हैं। भाषा की यह प्रक्रिया स्वाभाविक और सहज रूप से चलती रहती है। कोशकार भी अपने नए संस्करणों में आगत शब्दों को स्थान देते रहते हैं।

यदि भाषा में नए शब्दों का प्रवेश नहीं होगा, तो उसकी क्षमता और उसका स्वाभाविक विकास रुक जाएगा और यह गतिशील समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में समर्थ नहीं रह जाएगी। उसके स्वाभाविक विकास के अवरुद्ध होने से एक समय ऐसा भी आ सकता है कि वह भाषा केवल इतिहास की वस्तु बनकर रह जाए। कबीर ने इसीलिए भाषा को "बहता नीर" कहा था, क्योंकि जिस प्रकार "बहता नीर" अपने समीपवर्ती सभी जल–स्रोतों का जल लेकर और अधिक वेग से प्रवाहमान होता है, उसी प्रकार भाषा भी विभिन्न स्रोत्रों से आगत शब्दों से पोषित होकर निरन्तर विकास के पथ पर अग्रसर होती है। इसी से वह समृद्धि और जीवन्तता प्राप्त करती है।

यदि भाषा इन स्रोत्रों के योगदान से वंचित हो जाए, तो इसके विकास का मार्ग भी अवरूद्ध हो जाएगा। इसकी परिणति भी वैदिक युग की महान् सरिता "सरस्वती" के समान ही हो जाएगी। इतिहास साक्षी है कि वैदिक सरस्वती जो सिन्धु और सुरसरिता गंगा से भी विशाल नदी थी और जिसकी यशोगाथा में ऋग्वेद में 89 ऋचाएँ मिलती हैं, कालान्तर में लुप्त हो गई। क्यों ? भूगर्भशास्त्रियों का मानना है कि यमुना और सतुलज जैसी सहायक नदियों के जलस्रोत्रों से सरस्वती वंचित हो गई और वह कालान्तर में शुष्क होकर अपना अस्तित्व ही खो बैठी। गंगा और सिंधु को निरन्तर अनेक नदियों और जल–स्रोतों का जल यथावत् उपलब्ध रहा। इसलिए वे अजस्र वेग से आज भी प्रवाह्मान है। कहा भी गया है। –

"जोगी रवां रहे तो बेहतर
आबे–दरिया बहे तो बेहतर।"

अर्थात् जोगी का विचरते रहना और नदी के पानी का बहते रहना ही उत्तम है। कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी भारतीय भाषाओं को नदियाँ कहकर सम्बोधित किया था – "भारतीय भाषाएँ नदियाँ हैं और हिंदी महानदी। कबीर का 'भाषा' से तात्पर्य हिंदी भाषा से ही था। संस्कृत को "कूप जल" बताने से उसका आशय संस्कृत का तिरस्कार कदापि नहीं था, उसका उद्देश्य केवल यह बताना था कि संस्कृत अब केवल एक सीमित वर्ग की भाषा बनकर रह गई है और जनसामान्य में अपनी संवाद क्षमता को खो बैठी है। हिंदी ही एक जीवन्त भाषा के रूप में जनसमुदाय के विचारों की संवाहिका है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने जनसम्पर्क से कटी भाषाओं को जड़ बताया था। उनका कहना था जिस भाषा में सभी का योगदान नहीं रहता वह भाषा तो देव मन्दिर में अधिष्ठित मूर्ति के समान जड़ होकर ही रह जाती है। एक अमेरिकन लेखक श्री एच. एल. मेनकिन ने 1919 में भाषा के इस गुण को अन्य प्रकार से व्यक्त करते हुए लिखा था।

एक जीवन्त भाषा उस व्यक्ति के समान है, जो हेमरेज से पीड़ित है, जिसे दूसरी भाषाओं से निरन्तर रक्त रूपी नए शब्दों की आवश्यकता रहती है। जिस दिन भी उसके द्वार बन्द हो जाएँगे, वह मरना आरम्भ हो जाएगी।[1] हिंदी के इस जनसुलभ स्वरूप की कबीर ने ठीक ही पहचान की थी और अपने विचारों की अभिव्यक्ति का सहज और सबल माध्यम बनाया था। कबीर ही हिंदी के ऐसे पहले कवि थे, जिन्होंने हिंदी को व्यापक क्षेत्र की भाषा के रूप में लोकप्रियता प्रदान की और पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण तक इस जनभाषा को अपने विचारों का माध्यम बनाकर इसके व्यापक विकास में अपना अप्रतिम योगदान दिया।

कबीर और उनके परवत्ती सन्त कवियों ने इस भाषा को समस्त उत्तरी और मध्य भारत के विशाल क्षेत्र में सम्पर्क भाषा के रूप में विकसित होने का मार्ग प्रशस्त किया। इसे गति दी, प्रवाह प्रदान किया। तभी से इस भाषा की पहचान भारत की एक व्यापक भाषा के रूप में होने लगी। कबीर के समय में अवधी, भोजपुरी, ब्रज, मैथिली और राजस्थानी की बोलियाँ और खड़ी बोली (देशी भाषा) अपने–अपने क्षेत्र में विकसित हो रही थीं, किन्तु कबीर ने क्षेत्रीय प्रभाव से ऊपर उठकर उस भाषा का प्रयोग किया, जो कालान्तर में हिंदी के परिनिष्ठित स्वरूप का आधार बनी। हिंदी के लिए कबीर का यह प्रयास एक वरदान के रूप में सिद्ध हुआ–

"बोली मेरी पूरब की लेकर चले कबीर, पश्चिम में भी उतने ही लोकप्रिय हुए जितने पूरब में।"

यही नहीं उत्तर और दक्षिण में भी उन्हें व्यापक मान्यता मिली। इनके व्यापक भ्रमण और इनकी सार्वदेशिक शिष्य परम्परा

ने हिंदी को भी व्यापकता प्रदान की, जिसके लिए यह भाषा सदा उनकी ऋणी रहेगी। कबीर की भाषा में हमारी सामासिक संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने के गुण विद्यमान हैं।

कबीर और उनके अनुयायियों तथा मध्ययुगीन सन्तों ने इस भाषा को अपने उपदेशों में प्रचार का माध्यम बनाया। साधु–सन्त गाँव–गाँव में घूमकर साखी शब्दों द्वारा लोगों में धर्म और सदाचार का प्रचार करते थे। रात्रि के समय मंदिरों और पूजास्थलों पर एकत्रित लोगों को इकवारे की तान पर शब्द–साखी सुनाते थे। उसके बाद गाँव के लोग उन्हें अगले गाँव तक छोड़ आते थे। यह क्रम चलता रहता था। सभी वर्गों और विचारों के लोग बड़े श्रद्धा–भाव से उन्हें सुनने आते थे। इस भाषा के व्यापक प्रचार–प्रसार में इस प्रकार इन सन्तों का ही सबसे अधिक योगदान रहा। सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टि से व्यापक भू–भाग को जोड़ने वाली स्वाभाविक भाषा के रूप में इसका विकास हुआ। कालान्तर में इसी से राष्ट्रभाषा का स्वरूप स्थिर हुआ। गांधीजी और अन्य राष्ट्र नेताओं ने इसी रूप में इसकी पहचान की।

मध्यकाल में भाषाओं की न तो कोई सीमा–रेखा ही थी और न ही कोई पक्का नाम होता था। सभी लोग एक–दूसरे क्षेत्र की भाषाओं को समझने का प्रयत्न भी करते थे। भाषाई संकीर्णता नाम की कोई चीज नहीं थी। पश्चिम में गुरू नानक देव जी ने भी इसी प्रचलित भाषा में अपना सन्देश दिया। गुरू नानक देव जी ने व्यापक रूप से देशाटन किया था। उनकी भाषा में भारत की क्षेत्रीय भाषाओं के शब्द समाहित होते गए। उनके बाद के गुरुओं ने भी भाषा के इसी व्यापक रूप को ग्रहण किया। सूफ़ी सन्तों की भाषा में भी अरबी और फ़ारसी शब्दों के साथ–साथ देशी भाषाओं के शब्द भी सम्मिलित हो गए। शेख फ़रीद, बुल्लेशाह (पंजाब) से लेकर मौ. दाऊद और जायसी (उत्तर प्रदेश) और वन्दानवाज गेसू दराज तथा मीरांजी (मृ. 1496 ई.) बुरहानुद्दीन जानम (1454 ई.) भी दक्षिण में लगभग उसी से मिलती–जुलती भाषा में प्रचार कर रहे थे। यही नहीं असम में शंकर देव, राजस्थान में मीरा, महाराष्ट्र में नामदेव (1270 ई.) ज्ञानेश्वर (1271 ई.) और एकनाथ (1528–99) आदि सन्तों ने भी भाषा के क्षेत्र में व्यापक दृष्टिकोण अपनाया था। इनसे पूर्व गोरखनाथ की वाणी भी किसी प्रदेश की सीमाओं में नहीं बंधी थी। गोरख की शिष्य परम्परा ने पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार को एक ही भाषाई क्षेत्र में बदल दिया था। राजस्थान में जन्मी मीरा गुजरात और दिल्ली में ही नहीं, काशी और प्रयाग में भी उतनी ही लोकप्रिय हुई थी। मध्य भारत में जन्मे भूषण की कविताएँ छत्रपति शिवाजी महाराज के दरबार में भी उतनी ही श्रद्धा और चाव से सुनी जाती थी। गुरू अंगद देव जी ने गुरू ग्रंथ साहब के संकलन और सम्पादन में भाषाई संकीर्णता को पास तक नहीं फटकने दिया था। उन्होंने ब्रज, पंजाबी, मराठी, आदि भाषाओं के सन्तों के वचन पवित्र गुरू ग्रंथ साहब में संकलित कर भाषा को उदात्त और भव्य स्वरूप प्रदान किया था। उस काल में भाषा किसी क्षेत्र की सीमाओं और नाम की कैद में बन्द नहीं होती थी। यातायात और संचार के साधन उस काल में भले ही अल्प थे, किन्तु लोगों में भाईचारा और सौहार्द, सांस्कृतिक और सामाजिक आदान–प्रदान निरन्तर होता रहता था। साधु, सन्त, जोगी और फ़कीर पैदल चलकर ही सारे देश को सांस्कृतिक एकता के सूत्र में बाँधने का कार्य स्वतः ही करते थे। इसी से भाषाई कड़ियाँ एक–दूसरे से जुड़ती रहती थीं। शब्द इन भाषाई नदियों में तैरते हुए, भाषाओं की परस्पर निकटता में वृद्धि करते थे। यही कारण है कि जन–सामान्य में भाषाई सहिष्णुता पनपती रहती थी। कोई संकीर्णता या कटुता नहीं आने पाती थी। लोग एक–दूसरे की बातों को ध्यानपूर्वक सुनकर उनमें रस लेते थे।

आज जिसे हम हिंदी कहते हैं, ऐसा कोई विशेष नाम इस भाषा के लिए नहीं था। यह केवल 'भाषा' या 'भाखा' के नाम से ही अधिकांशतः जनसामान्य में प्रचलित थी। मुसलमानों ने यहाँ आकर जब यहाँ के लोगों को 'हिन्दू' कहा तब यहाँ के लोगों की भाषा को 'हिन्दवी' कहा, वही 'हिन्दवी' बनी और फिर 'हिंदी' हो गई।

तुलसी जी ने इसे केवल भाषा ही कहा

"भाषा भनति भूत भल सोई,

सुरसरि सम हितकर सब होई।"

जायसी ने भी इसे 'भाषा' की ही संज्ञा दी थी। "लिखी भाषा चौपाई कहै।" केशव तो भाषा में लिखते हुए हीनता की भावना से ग्रस्त दिखाई पड़ते हैं–

"भाषा बोलि न जान ही, जिनके कुल के दास
तिन भाषा कविता करी जड़मति केशवदास।"

कालान्तर में यही भाषा विभाजित होती गई। इसे ही अलग जामा पहनाकर 'उर्दू' का नाम भी दिया गया। भारत के विभाजन के लिए अंग्रेज़ी सरकार ने भाषा–विभाजन का अपने षड्यंत्र को कारगर साधन के रूप में प्रयोग किया। ब्रिटिश हिंदी लेखक रूपर्ट स्नेल भी अपनी पुस्तक 'Hindi and Urdu since 1800' में इस तथ्य को स्वीकार करते हैं। इस भाषा में व्यापकता और सर्वग्राह्यता के वे गुण विद्यमान हैं कि आज यही भाषा (उर्दू रूप में) पाकिस्तान और (हिंदी रूप में) भारत की राजभाषाएँ हैं, जिनका आधार मूल रूप से खड़ी बोली ही है। भारत और पाकिस्तान ही नहीं विश्व में भारत मूल के लोग जहाँ–जहाँ भी जाकर बस गए हैं, उन्होंने इस भाषा को जीवित रखा है। मॉरीशस, फ़िजी, त्रिनिडाड एवं टोबैगो, सूरीनाम तथा गुयाना आदि क्षेत्रों में बसे इन लोगों को भारत की इस भाषा और संस्कृति के प्रति अगाध प्रेम है।

किसी भी भाषा का विकास उसके प्रयोग पर निर्भर करता है। प्रयोगशालाओं पर नहीं। आज प्रायोजित भाषा की बात की जाती है। भाषा का प्रायोजन उसे एक दिशा देने का प्रयास मात्र है। उसका स्वाभाविक विकास तो उसके प्रयोक्ताओं पर ही निर्भर होता है। कृत्रिम भाषा अधिक दिन ठहर नहीं सकती। वह तो बोलने वालों के प्रवाह पर निर्भर करती है। विश्व में "एस्प्रेन्टो" जैसे अनेक भाषायी प्रयोग हो चुके हैं, किन्तु वे कितने सफ़ल हुए यह सभी जानते हैं। भाषा एक प्रवाह होता है। उसके उस नैसर्गिक प्रवाह को रोकना या उल्टा मोड़ना उचित नहीं। इस तरह यदि कोई कृत्रिम भाषा बनाई जाएगी, तो वह जनता से दूर जा पड़ेगी। इसलिए अपनी सुविधा के लिए भाषा में वैसा कोई मौलिक उलट–फेर करना उचित नहीं। हाँ, विभिन्न प्रान्तों के लोग चाहे जैसी भी हिंदी लिख–बोल सकते हैं; जो रूप स्वतः ग्राह्य हो जाएगा, जिसे अधिकांश जनता नैसर्गिक रूप में स्वीकार कर लेगी, वह स्थिर हो जाएगा।[1] बाबू राव विष्णु पराड़कर ने भी भाषा की इसी प्रकृति को और भी स्पष्टता प्रदान करते हुए लिखा है –

"जीवित भाषा बहती नदी है, जिसकी धारा नित्य एक ही मार्ग से प्रवाहित नही होती।"

भाषा में बदलाव इसकी एक निरन्तर प्रक्रिया है, हम इसे जड़ स्वरूप नहीं बना सकते और न इसे अपने ढंग से कोई मोड़ दे सकते हैं। आज दूरसंचार के माध्यमों के बढ़ते विकास के कारण विश्व बहुत छोटा हो गया है। इसका प्रभाव हमारी भाषा के विकास पर भी पड़ा है। सिनेमा, रेडियो, दूरदर्शन तथा भू–उपग्रहों द्वारा त्वरित समाचार ने संचार जगत् में एक तूफ़ान खड़ा कर दिया है। सिनेमा और फ़िल्मों के कारण हिंदी की लोकप्रियता में सर्वाधिक बढ़ोतरी हुई है। हिंदी फ़िल्मों के गीत जन–जन की जिह्वा पर मौजूद हैं। इन्हीं गीतों के कारण हिंदी न जानने वाले भी हिंदी फ़िल्मों को देखने में रुचि ले रहे हैं, जिससे हिंदी की लोकप्रियता बढ़ी है। इसकी व्यापकता में विस्तार हुआ है। भाषा में भी आश्चर्यजनक बदलाव आ रहा है। कुछ लोग भले ही इसे भाषा में विकार की संज्ञा दें, किन्तु भाषा का प्रवाह तो रोके से रूकता नहीं। यह अपना रास्ता स्वयं बनाता है। इसीलिए भाषा व्याकरण के आधार पर नहीं चलती। व्याकरण ही भाषा का अनुसरण करता है। व्याकरण तो भाषा के मार्ग की निशानदेही मात्र करती है। उसका नियमन नहीं। सुविधा के लिए जो नियम बनाए जाते हैं, वे स्थायी और स्थिर नहीं रह पाते। आज के भूमंडलीकरण के युग में विश्व की भाषाएँ बड़ी तीव्रता के साथ एक–दूसरे के समीप आती जा रही हैं। हमें हिंदी भाषा में भी बदलाव की इस प्रवृत्ति को उदारता के साथ स्वीकार करना होगा, ताकि वह सशक्त, समृद्ध और सर्वग्राह्य होकर लोगों को राष्ट्रीय स्तर पर जोड़े, साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को भी मूर्तरूप प्रदान करे।

संदर्भ ग्रंथ:

1. A living language is like a man suffering incessantly from small hemorrhages, and what it needs above all else is constant transactions of new blood from other tongues. The day the gates go up, that day it begins to die.

- H.L. Mencken

दिल्ली, भारत
pnpanchal30@gmail.com

हैदराबाद की दक्खिनी हिंदी

–डॉ. अनीता गांगुली

हैदराबाद में ही कुछ सदियों पहले हिंदी का आविर्भाव हुआ। मुहम्मद तुगलक दौलताबाद आया था, तो हिंदी भाषा भी उसके साथ आयी थी। वहाँ की भाषा यहाँ की (तेलुगु, कन्नड़, मराठी) मिलकर दक्खिनी बनी थी। किसी समय फ़ारसी लिपि में भी दक्खिनी लिखी गयी थी। दक्खिनी तेलुगु लिपि में भी लिखी गयी (पुरुषोत्तम कवित के नाटक)। ब्रजमिश्रित दक्खिनी पायी गयी (नवरस)। पुरानी दक्खिनी एवं वर्तमान दक्खिनी में बहुत अंतर है। निजाम के शासनकाल में उर्दू यहाँ की राजभाषा थी। साथ ही, शिक्षा का माध्यम भी उर्दू होती थी। चिकित्सा, इंजीनियरिंग, वकालत सभी पढ़ाई उर्दू में होती थी। आश्चर्य होता है कि अब हिंदी माध्यम से उच्च शिक्षा करने में क्यों कठिनाई आ रही है। उस समय दक्खिनी हिंदी बोलचाल तथा संपर्क का माध्यम थी, जो उर्दू से प्रभावित थी। तेलंगाना में तेलुगु भाषियों के कारण दक्खिनी पर तेलुगु का प्रभाव पड़ा तथा पड़ोसी भाषा मराठी के शब्दों का उसमें पाया जाना स्वाभाविक है। इस प्रकार उर्दू, तेलुगु एवं मराठी की विशेषताओं से मिश्रित हैदराबादी दक्खिनी हिंदी का स्वरूप है। यहाँ की स्थानीय बोली है, जिसको हम निम्नलिखित तीन स्तरों पर देखेंगे–

1. ध्वनि स्तर

(अ) इसमें स्पर्श महाप्राण की स्थिति कमज़ोर है।

(आ) ह ध्वनि शब्द–मध्य एवं शब्दांत में लुप्त होती है। जैसे–
उन्होंने > उनो, इन्हें > इनो, नहीं > नई, कहते > कते

(इ) इसमें ऋ, ड़, ढ़ का उच्चारण नहीं पाया जाता है।

(ई) उर्दू भाषियों में 'क' को 'ख' कहने की प्रवृत्ति है। जैसे–
क़रीब > खरीब, कासिम > खासिम, कसम > खसम आदि

(उ) दक्खिनी हिंदी में 'त' को द्वित्व करने की प्रवृत्ति है। जैसे–
इतना > इत्ता, इत्ते। कितना > कित्ता, कित्ते, उतना > उत्ता, उत्ते

जन्म : कोलकाता (1954)

शिक्षा :

- पी.एच.डी. (हिंदी एवं बंगला क्रियाएँ, आगरा विश्वविद्यालय)
- एम.ए. (संस्कृत, हिंदी)
- डिप्लोमा (भाषा–विज्ञान)

व्यवसाय :

- दस वर्षों तक हिंदी–शिक्षण सामग्री का निर्माण।
- उराँव क्षेत्र में आदिवासी कुडुख बोली पर कार्य तथा पहली, दूसरी एवं तीसरी कक्षा के लिए कुडुख में पाठ्यपुस्तकों के निर्माण में सहायता।
- मेघालय, मणिपुर एवं नागालैंड में क्षेत्र–सर्वेक्षण का कार्य ।
- 20 वर्षों से हिंदीतर भाषी राज्यों (तमिल, तेलुगु, कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र, गोवा, पांडिचेरी एवं अंडमान निकोबार) के हिंदी अध्यापकों का प्रशिक्षण ।
- तीन वर्ष तक (1994–97) फिनलैंड के हेलसिंकी विश्वविद्यालय के छात्रों को बंगला, हिंदी एवं कुडुख भाषाओं का अध्यापन तथा भारतीय संस्कृति से परिचित कराना।
- हिंदी संबंधी जानकारी प्राप्त करने के लिए स्वीडन, नोर्वे, डेनमार्क, रूस, पौलेंड एवं इटली का दौरा।
- 1996 में फ़िनलैंड विश्वविद्यालय की ओर से ट्रिनीडाड में हुए पंचम विश्व हिंदी सम्मेलन में प्रतिभागिता।

प्रकाशन :

- हिंदी एवं भाषाविज्ञान से संबंधित अनेक लेख प्रकाशित,
- हिंदी एवं बंगला की सहायक क्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन
- हिंदी–फ़िनिश शब्दकोश,
- सरल हिंदी व्याकरण (सहलेखक),
- फ़िनलैंड जैसा मैंने देखा बरसात की एक शाम,
- कहावतों की संस्कृति (तुलनात्मक अध्ययन)

(ऊ)दक्खिनी में 'ट' को 'त' में तथा 'प' को 'फ' में तथा 'झ' को 'ज' में परिवर्तन करने की प्रवृत्ति है। जैसे–

टुकड़ा > तुकड़ा, पत्थर > फत्तर, झगड़ा > जगड़ा

2. शब्द स्तरः

तेलुगु, मराठी एवं उर्दू के अनेक शब्द हैदराबादी दक्खिनी हिंदी में आ गये हैं :

(अ) **तेलुगु शब्दः** जुड्डू (चोटी), चिल्लर (रेज़गारी), पोट्टा (लड़का), पोट्टी (लड़की), बंडी (सभी गाड़ियों के लिए, यहाँ तक कि ठेला और रेहड़ी के लिए भी), बाबू (सामान्य रूप से छोटे बच्चे तथा अपरिचित छोटे बच्चों को संबोधित करने में), कुप्पा (ढेर), गंपा (टोकरा), दोब्बा (मोटा), मुंजल (ताड़ का फल)

(आ) **मराठी शब्दः** सपोटा (चीकू), चुपके (अकारण), चुपकेइच (गुस्सा करती), कमती (कम), जासती ज़्यादा), घट्ट (गाढ़ा), घट्ट दाल (गाढ़ी दाल), हऊ (हाँ), नक्को, नको (नहीं), झाड़ (पेड़)

(इ) **उर्दू शब्द :** रोज (प्रतिदिन), दीदे (आँखें), गोश्त (माँस), बोटी (माँस के टुकड़े) शोरबा (रसा) आदि

3. व्याकरण स्तर

(अ) **अकारांत एवं उकारांत शब्दों का बहुवचन में विकार**

(i) अकारात शब्द बहुवचन में आँ प्रत्यय में बदल जाते हैं। जैसे– घर > घराँ, झाड़ > झाड़ाँ, आम > आमाँ, जाम (अमरूद) जामाँ, मौज (केला) > मौजाँ, बात > बाताँ, लोग > लोगाँ, किताब > किताबाँ, औरत > औरताँ।

(ii) अंग्रेज़ी शब्द भी इसी प्रकार बदलते हैं–
पेन > पेनाँ, टिकट > टिकटाँ, रेल > रेलाँ।

(iii) कभी–कभी उकारांत शब्द (बहुत कम) भी इसी नियम के तहत आते हैं–
लड्डू > लड्डूआँ, चाकू >= चाकूआँ।

(आ) **आकारांत की प्रबल प्रवृत्ति**

दक्खिनी के संज्ञा शब्दों में आकारांत की प्रवृत्ति काफ़ी है। जैसे –

आमा के बांगा में बड़ा बड़ा झाड़ा
बातचीता करता जंगल को निकला
मुर्गा बागा देता तो सुभै होती
बोहत देर तक दो जने कामा करते
मुहल्ल्हे के लोगा बाता करते।

नोट – दक्षिण की भाषाओं में अकारांत के स्थान पर आकारांत की प्रवृत्ति है। उसी का प्रभाव इसमें दिखायी देता है। तेलुगु भाषी शब्द के आरंभ तथा मध्य में व्यंजनमिश्रित 'आ' का उच्चारण द्विमात्रिक करते हैं। परंतु अंतिम आकार दीर्घ न होकर त्रिमात्रिक हो जाता है।

(इ) **सर्वनाम**

(i) मैं, हम, तू, तुम के रूप मेरे, हमारे, तेरे, तुमारे बनते हैं ।

(ii) वह, वे, ये के रूप वो, इन/इनो, उन/उनो बनते हैं।
('वह' के लिए 'वो' तथा 'आदरार्थक' के लिए 'इनों, उनों' अधिक प्रचलित हैं।)

(iii) तिर्यक रूपों में परसर्ग लगता है। जैसे–

मैं तुमारे कू बोली
हमारे कू चाहिए
तेरे कू क्या होना

(ई) विशेषण

(i) विशेषण में लिंग सुरक्षित रहता है। जैसे– कित्ते लोगाँ, मेरी बाताँ, फूलाँ की किताब

(ii) दक्खिनी हिंदी में भी मानक हिंदी की तरह 'लोग' शब्द लगाकर बहुवचन बनाये जाते हैं।
जैसे– हम लोगाँ, तुम लोगाँ, अपन लोगाँ, इन लोगाँ, उन लोगाँ।

(iii) अहिंदी भाषियों की तरह ही हैदाराबादी दक्खिनी हिंदी में 'अपना' का प्रयोग नहीं है।

(उ) क्रिया विशेषण

(i) यहाँ, वहाँ, कहाँ आदि के स्थान पर इधर, उधर, किधर का प्रयोग होता है। जैसे– किधर कू जा रा

(ii) समयवाचक क्रिया–विशेषणों में 'सवेरे कू', 'तीन बजे कू' द्रविड़ का प्रभाव है, परंतु 'सुबह में', 'शाम में' आदि का प्रयोग काफ़ी व्यापक है। जैसे–

सुभै में घूमने कू रैता

शाम में टी.वी. देखता

(ऊ) निपात

दक्खिनी की एक विशेषता 'च/इच/एच' अवधारक वाचक है, जिसे हिंदी में निपात (ही) भी कहते हैं। इसका प्रयोग बोलचाल में अधिक होता है। जैसे–

(i) आकारांत या इकारांत में 'च' का प्रयोग होता है। जैसे–

खाता ही > खाताच, बोलता ही > बोलताच, करता ही > करताच, इतना ही > इत्ताइच, होना ही > होनाच, गली में ही > गलीच, जाना ही > जानाच

(ii) अकारांत, ओकारांत और एकारांत में 'इच' का प्रयोग होता है, जैसे–

परसो ही > परसोंइच, सुबह ही > सुबहीच, इधर ही >इधरीच, घर में ही > घर मेंइच, चुपके ही > चुपकेइच, अंदर ही > अंदरीच

इनका वाक्यों में प्रयोग देखिए–

मैं खाताच नहीं, बोलताच नहीं, करताच नहीं, सूरज डूबराच था, अब्बू अंदरीच है।

(ए) **लिंग**

गधा धोबी के साथ धोबीघाट चलती थी

कुत्ता कभी–कभी वेदना का अनुभव करती

कुत्ता नहीं भौंकती

चोर घर लूटी करने अंदर घुस गये

वह गधे को लकड़ी से मारा

पहाड़ दिखायी पड़ी

(ऐ) क्रिया

डालना – फ़ैन डालो ('चलाओ' के अर्थ में)
खाना डालो ('देने' के अर्थ में) बीस पूरिया मेरे कू खिला डाली

लगाना – चाय लगा दिया ('रखने' के अर्थ में)
खाना लगा दिया ('परोसने' के अर्थ में)

बजना – बाता दिल में लगा लिया ('मन में रखने' के अर्थ में)
छः बजे हो गये ('बज गये' के अर्थ में)

आना – मुझे स्वप्न आया ('देखने' के अर्थ में)

चलना – मैं सुबह–सुबह चलाता हूँ। ('टहलने' के अर्थ में)
वह चलकर स्कूल जाता है ('पैदल' के अर्थ में)
दृश्य मेरी आँखों के सामने चलते रहते हैं ('आते रहते हैं' के अर्थ में)

उतारना – उसने फ़ोटो उतारा ('खींचने' के अर्थ में)

निकालना – कैमरे से फ़ोटो निकाला ('खींचने' के अर्थ में)
झाड़ से आम निकाला ('तोड़ने' के अर्थ में)
जोर से हवा निकली ('चली' के अर्थ में)
टिकट निकाल लिया ('लेने' के अर्थ में)

करना – आशा पैदा किया ('होने' के अर्थ में)
खेलने में रुचि कराया ('दिखाने' के अर्थ में)
वह शपथ करता है ('लेने' के अर्थ में)

लेना/ला लेना – पकड़ लेके
शादी कर लेके गया
देख लेके आया/ला लेके आओ
ला लेके आया।
(सभी पूर्वकालिक कृदंत के अर्थ में)
तुम दुकानाँ से किताबाँ ला लो
(यह दक्खिनी में खास है। रंजक क्रियाओं में पूर्वकालिक कृंदत का व्यापक प्रयोग यहाँ की विशेषता है।)

रहना– उनों कामाँ कर ले रै। रंजक क्रियाओं में 'रहा' का प्रयोग भी काफ़ी व्यापक है।

कहकर/ बोलकर/बोलके – अम्मा मेरे को जाओ बोल के बोली–
(माँ ने मुझसे कहा कि तुम जाओ)
आपके कोन जाओ बोले– (आपको

किसने कहा कि आप जाएँ।

कभी–कभी ये क्रियाएँ 'ज़रूरी' के अर्थ में आती हैं, जैसे –

मैं जाना बोलके गया (मैं इसी कारण गया कि जाना ज़रूरी था।)

नोट : तेलुगु की संरचना का प्रभाव है।

उदाहरण–

तिनवलेननि तिनुचुन्नानु (तेलुगु में)

खाना बोलकर खा रहा हूँ (हिंदी में)

आधुनिक दक्खिनी हिंदी के उदाहरण

देखिए– कंप्यूटर जब बोलता तो दूसरा पासवर्ड देते

('बोलना' क्रिया का प्रयोग अलग अर्थ में है)

पकड़ना – 'पकड़ना' क्रिया का भी अनेक अर्थों में प्रयोग होता है। जैसे–

इंडिपेंडेंट हाउस पकड़कर एपार्टमेंट बना रहे हैं । ('खरीदकर' के अर्थ में)

किराया पकड़ लिया ('लेने' के अर्थ में)

सुबह बस पकड़ने जाते ('चढ़ने' के अर्थ में)

शाम कू चार बजे पानी पकड़ते ('भरने' के अर्थ में)

विभूति पकड़कर घर कू गया ('लेकर' के अर्थ में)

बताना– मैं तुमकू साड़ी बताती ('दिखाने' के अर्थ में)

तुम तुमारी किताब बताओ।

नानी कहानी बताती है ('सुनाने' के अर्थ में)

कते – उनो कल आते कते, अब आते न कते रात कू जोरो का पानी पड़ा कते ('कहने' के अर्थ में। वाक्य के अंत में आता है।)

कुछ अन्य प्रयोग

- सो– ऐसा हुआ सो है– ('योजक' के अर्थ में)

  ये कामाँ होय सो बाद आओ ('परसर्ग' के अर्थ में)

  बूट्टी में रखे सो किताब नहीं मिल रहे ('जो' के अर्थ में)

  फ्राका पैने सो लड़की– ('जो... वह' के अर्थ में)

  फ़ोन पर बोले सो बाताँ याद रक्खो ('जो... वे' के अर्थ में)

  ('सो' यहाँ पर कर्ता और क्रिया– विशेषण के रूप में आता है।)

- क्या – 'क्या' का प्रयोग अंत में होता है या फिर एक विशेष लहजे में बिना प्रश्नवाचक शब्द के इसे व्यक्त किया जाता है। जैसे–

  खाना खाते? या नहीं खाते। मेरे को पैसे देते?

  खाना खाते क्या? उनो भी आते क्या?

  दक्खिनी में 'क्या' शब्द का काफ़ी प्रयोग होता है। यह वाक्य के अंत में आता है और द्रविड़ भाषा का प्रभाव है, क्योंकि द्रविड़ भाषा में प्रश्नवाचक शब्द निश्चयार्थक वाक्यों के अंत में प्रत्यय जोड़ने से बनता है। जैसे–

  अतनु दुकानमु वेलतुनाडू (वह दुकान जा रहा है)

  अतनु दुकानमु वेलतुनाडा (क्या वह दुकान जा रहा है?)

  अतनु पनि चेस्तुनडू (वह काम कर रहा है।)

  अतनुपनि चेस्तुनाडा (क्या वह काम कर

रहा है?)
क्या बी नको खाओ (कुछ मत खाओ)
क्या तो भी (कुछ है)
मैं क्या बी नई करा। (कुछ के अर्थ में)

• क्या कि – वो क्या कि बोल रा (पता नहीं वह क्या कह रहा है) 'क्या कि' वाक्य के आरंभ में आता है। इसमें कुछ हद तक निषेध भी छिपा रहता है।

• कोन बी, कोनसा बी, कोन तो बी ('कोई' के अर्थ में आते हैं।)

नोट : क्या बी, कोन भी हैदराबादी हिंदी की विशेषताएँ हैं

• दक्खिनी के कुछ विशेष शब्द –
कोन भी नई करे (किसी ने नहीं किया)
ये कोन भी नई खाता (यह कोई भी नहीं खाता)
कोन सा भी लेलो (कोई सा/कोई एक ले लो)
होना/माँगना– तुमारे को क्या होना ('चाहता' /'चाहिए' के अर्थ में मेरे को चाइकिल होना।)

नोट : दक्खिनी में 'चाहिए' नहीं है। कभी–कभी इस तरह के वाक्यों का प्रयोग भी होता है–

''इतना बस होता कि नहीं होता'' अर्थात् इतना पर्याप्त है या नहीं। 'माँगना' क्रिया का प्रयोग 'चाहिए' के अर्थ में होता है–क्या माँगता?

क्रिया की द्विरुक्ति– 'अक्सर दुकानदार कहते हैं। दक्खिनी में क्रिया की द्विरुक्ति हिंदी से अधिक है। जैसे–
तुम वो देखे कि नई देखे।
नोट : इसके अलावा एक बात और स्पष्ट करना चाहूँगी कि दक्खिनी में क्रिया की द्विरुक्ति हिंदी से अधिक है। जैसे–
तुम वो देखे कि नई देखे, उनों आये नई आये।

क्रियार्थक संज्ञा – दक्खिनी हिंदी में चाहिए के स्थान पर क्रियार्थक संज्ञा का प्रयोग अधिक मिलता है। जैसे–
तुम जाना, तुम चलना। दूसरे क्रियार्थक संज्ञा वाले कुछ वाक्यों में तिर्यक रूपों का प्रयोग मिलता है। जैसे–
मेरे कू सिलने को आता।
मेरे कू गोश्त पकाने को आता।

नक्को/नको– आज स्कूल नक्को जाओ ('नहीं' के अर्थ में) वार्तालाप में नक्को 'नहीं चाहिए' का अर्थ देता है।
खाना खाते क्या?
नक्को या अब्बी नको

नोट: हैदराबादी हिंदी में 'मत' का प्रयोग नहीं है। 'नई' भी निषेध को व्यक्त करता है।

जैसे– मेरे कू नई खाना
इसके अलावा अधिक बल प्रयोग के लिए न को – नको (नहीं, नहीं) दो बार भी प्रयुक्त होता। वास्तव में यह मराठी से आया है।

गिरना – दीदी बीमार गिर गयी थी ('होने' के अर्थ में)
छत गिरी थी ('डालने' के अर्थ में)
मैं उसको बातों से गिराएगा ('हराने' के अर्थ में)
कैमरे में फ़ोटो गिरा– (फ़्लैश के अर्थ में)

टूटना– नींद विलंब से टूटा ('खुलने' के अर्थ में)
दूध टूट गया ('फटने' के अर्थ में)

छूटना – अब्बू की नींद छूट गयी ('जागने' के अर्थ में)
नोट : 'नींद' और 'सोना' दोनों शब्दों का अर्थ एक ही लेते हैं। जैसे–
सब थक गये इसलिए नींद में गये।

रखना – गुस्सा रख लिया था ('होने' के अर्थ में)

मारना –– उसको मार लगी ('चोट' लगने के अर्थ में)
भगवान को नारियल मारा ('फोड़ने' के अर्थ में)

बैठना/सूखना– सोच बैठता था ('सोचते' के अर्थ में)
वह कभी भी सूख नहीं जाती ('नहीं सूखने'

के अर्थ में)

पिनाया – बच्ची को फिराक पिनायी ('पहनने' के अर्थ में)

फेंकना – गणेश जी को पानी में फेंकते हैं । ('विसर्जन' के अर्थ में)

ठहर–ठहर – ठैरते–ठैरते जाता ('रुक–रुककर जाने' के अर्थ में)

पूछना – साधु ने उससे सोना पूछा ('मांगने' के अर्थ में)
उसने पैसा पूछा ('मांगने' के अर्थ में)
इसमें तेलुगु का प्रभाव है– अतनु डब्बुलु अडियेडू

(अ) **संरचनागत प्रयोग**

ने– हैदराबादी दक्खिनी हिंदी में 'ने' का प्रयोग नहीं मिलता। जैसे– तुम खाये क्या? अनुशा शादी कर ली, परंतु कभी अनावश्यक ने' भी दिखायी देता है। जैसे–
उसने रात भर सोया नहीं।

को/कू – सुरेश घर को गया
मैं मेरे घर कू जा रा
मोहन रोटी को खाने के लिए गया
अपन को जाना है।
गोभी खाने कू दिल बोला
रात कू जोरो का पानी पड़ा
मैं स्कूल कू गया ('को' के अर्थ में)

का – मुझको जाने का है/मुझको देखने का है ('जाना है, देखना है' के अर्थ में)

के वास्ते – मैं दुल्हे के वास्ते खाना पकाई ('के लिए' के अर्थ में)

येई वास्ते– 'इसलिए' के अर्थ में

कने – सीता कने गयी थी, मेरे कने नई आओ ('के पास' के अर्थ में)

पे– वो काम पे गया ('पर' के अर्थ में)

क्रिया– धरती को सिचाओ

के – पूर्व कालिक कृदंत में 'कर' या 'ये' के स्थान पर 'के' का प्रयोग होता है। जिसके उदाहरण पहले भी आये हैं। जैसे–
बिगर बोलके, बिगर पूछके, बिगर बताके चला गया
दस रोजा हो गये उनकू करीमनगर को गये।

काल – हैदराबादी दक्खिनी में कालवाची सहायक क्रियाओं– 'है', 'था', 'गा' का लोप रहता है। अगर हैदराबाद के बस स्टैंड पर पूछा जाए–
यह बस बिरला मंदिर जाएगी क्या? तो उत्तर मिलेगा – जाता, जाता। पुनः पूछने पर उत्तर मिलेगा– जाता, जाता बोलता फिर भी पूछता।

यानी कि हर जगह अपूर्ण पक्ष का प्रयोग होता है। कुछ विद्वानों ने इसे हिंदी का सरलीकरण कहा है। कहीं–कहीं मैं जातूँ, मैं खातूँ भी सुनने को मिलता है। अर्थात् दक्खिनी में सहायक क्रियाओं का अभाव है। भविष्यतकाल के लिए –
ग' प्रत्यय का प्रयोग नहीं होता तथा भूतकाल में यदा कदा 'था' आ जाता है। जैसे– तुम क्यूँ नहीं बोले, बोले तो अब्बाजान सामान दिलाते थे।

पूरक वाक्यों में ही 'है' आता है। जैसे–
ये मेरे अब्बा है।
कभी–कभी 'होते' भी सुनने में आता है
ये मेरे अब्बा होते।

कुछ विशेष शब्दों का प्रयोग

हवला – हवला समझा क्या? लाल डिब्बे से उतरा समझा क्या?
'हवला' का अर्थ 'मूर्ख' है एवं 'लाल डिब्बे' से मतलब है 'गँवार'

क्योंकि गाँव की बसें लाल रंग की होती हैं।

ईद – ईद के दिनों वो आये थे
(किसी भी त्योहार को ईद कहते हैं।)

मस्ती – बहुत मस्ती मिला ('खुशी' के अर्थ में)

बड़े लोगा – इसके काफ़ी अर्थ है– आदरणीय, वृद्ध, उम्र में बड़े बुजुर्ग तथा पूर्वज आदि।

हल्लू–हल्लू– लिबास पेन को हल्लू–हल्लू आ री चे (आ रही है)
हल्लू हल्लू चढ़ते हल्लू हल्लू उतरते (बस से चढ़ते उतरते वक्त कंडक्टर का वाक्य)
हल्लू हल्लू कल्लू पीना

नोट : यह हल्लू शब्द हिंदी के हौले–हौले से बना है।

कल/परसूँ – "परसूइच बाता हुई" यह हिंदी का परसों नहीं। साल, माह या
सप्ताह पहले भी का हो सकता है। अर्थात् 'आज से पूर्व' के अर्थ में आता है।

धूपकाला – धूपकाला में बाहर नक्को फिरो ('गर्मी' के अर्थ में)

कायकू – 'क्यों, किसलिए' के अर्थ में

पीच्छे – सूरज डूब्बे पीच्छे आना ('बाद' के अर्थ में)
इसके स्थान पर 'आये बाद गये बाद' भी आता है। जैसे– मम्मी के आये बाद आना

गये – गये साल वह आया था। ('पिछले' के अर्थ में)

मुंडी – सब लोगा आकर उसके पावा में मुंडी रख दिया। ('सिर' के अर्थ में)

जादा – जादा उधार करते ('ज़्यादा' के अर्थ में)

बाजू – मड़गी के बाजू से रास्ता जाता ('बगल से' के अर्थ में)

तलक – झाड़ तलक जाना पड़ता ('तक' के अर्थ में)

जभी – मैं कामाँ जभीच करा ('तब ही या कब ही' के अर्थ में)

बिगर – 'बिना, बगैर' के अर्थ में

सरका – उसके सरका दूसरा नई देखा ('की तरह' के अर्थ में)

घंटा – कभी–कभी बजे के लिए घंटे का प्रयोग करते हैं। जैसे– मैं पाँच घंटे आऊँगी। अर्थात् पाँच बजे।

इसके अलावा 15 मिनट के लिए पाव शब्द का प्रयोग होता है। जैसे– अभी पाव घंटा रुको (ऑटो वाले से)
यह आधा घंटा, एक घंटा, डेढ़ घंटा आदि के तर्ज पर बना है।

कहावतें – हैदराबादी हिंदी की कुछ विशेष कहावतें–

दीदे मटकाना– (आँखें मटकाना)

तीन दिन की खुशी– चार दिन की चाँदनी

बात अच्छा है, तो जग भला– आप भला, तो जग भला

पैर में चप्पल डाल बैठी– चलने को तैयार

जान चक्की में पड़ना– परेशान होना

लड़की ऊपर नीचे हो रही थी– अनिश्चय की स्थिति (दुर्घटना में)

खाया पिया कुछ नहीं गिलास फोड़ा बाराने– काम बिगड़ जाना

इस प्रकार हैदराबाद की दक्खिनी हिंदी अपनी विलक्षण विशेषताओं से युक्त है। प्रत्येक विश्व हिंदी सम्मेलन में इसे हिंदी की बोलियों में शामिल किये जाने की माँग होती रहती है।

हैदराबाद, भारत
anitaganguly1954@gmail.com

हिंदी : साहित्य एवं संस्कृति

- गांधी, हिंद स्वराज और हिंदी कविता - डॉ. स्वाति श्वेता
- हिंदी और क्रोएशियन : भाषा, साहित्य एवं संस्कृति में साम्यता - डॉ. रवींद्रनाथ मिश्र
- लोक-साहित्य हिंदी की नींव - श्री धनराज शंभु
- मॉरीशस में हिंदी बाल-साहित्य तथा उसका भविष्य - श्री सोमदत्त काशीनाथ
- अंग्रेज़ी पद्य-रचना में देवनागरी का प्रयोग - श्री भूपेन्द्र कुमार दवे

गांधी, हिंद स्वराज और हिंदी कविता

–डॉ. स्वाति श्वेता

जन्म : 14–12–1975

शिक्षा :

- ❖ पी.एच.डी., (गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर)
- ❖ एम.ए. (अनुवाद, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर)
- ❖ एम.ए. (हिंदी, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर)

व्यवसाय : प्रभारी, हिंदी विभाग, गार्गी कॉलिज, दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रकाशन :

- ❖ राम की शक्ति पूजा : साहित्य–शास्त्र का संदर्भ।
- ❖ फ़िल्मों और टेलीविजन की भाषा – 'हिंदी की बहुआयामी प्रासंगिक्ता' पुस्तक में पाठगत योगदान।
- ❖ कैरेक्टर सर्टिफ़िकेट – लघुकथा संग्रह।
- ❖ महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय से प्रकाशित तुलनात्मक कोश में 5 लेख।

यूनानी दार्शनिक 'प्रोटागोरस' का कहना है, "आदमी अपना पैमाना स्वयं है। इसी आधार पर हमें गांधी के कथन को देखने की ज़रूरत है। "मेरा जीवन ही मेरा संदेश है।"

गांधी के जीवन का अवलोकन करें, तो हम पाएँगे कि गांधी ने अपने जीवन में दृढ़ इच्छा शक्ति, नैतिक पक्ष और सत्य जैसे मूल्यों को आत्मसात किया और एक बड़े 'आइकॉन' के रूप में उन्होंने राष्ट्रीय भूमिका का कार्य करते हुए मानव–मांगल्य के लिए चिन्ता व्यक्त की और उसके लिए वे निरन्तर ऐसे उपक्रम करते रहे, जिससे मानवता बर्बरता की ओर न बढ़े।

लुई फिशर का कथन है – "उनकी पैगम्बर जैसी दृष्टि थी और उन्होंने महसूस किया कि युद्धों से राष्ट्रों के बीच की खाई अधिक चौड़ी होगी और उनके बीच समझदारी घटेगी और इस प्रकार अधिक युद्धों तथा अधिक घृण्य के लिए रास्ता तैयार होगा और अन्ततः मानवता बर्बरता तक पहुँच जाएगी। यह विश्व–शांति के लिए गांधी जी की देन है।"

कहना न होगा कि जो घृणा करते हैं, वे शांति नहीं चाह सकते। जिनका कार्यक्रम विनाश पर अवलंबित है, वे शांति में योग नहीं दे सकते। गांधी जी ने इसी भाव को स्वर दिया।

गांधी जी अपने युग के ऐसे हस्ताक्षर थे, जिनका देश की समग्र चेतना पर प्रभाव था। यही कारण रहा कि साहित्य पर भी उनका गहरा प्रभाव पड़ा। राष्ट्रीय संस्थाओं के संस्थापन और संगठन की ओर गांधी जी की विशेष रुचि थी। उनकी प्रेरणा और सक्रिय रुचि से अनेक राष्ट्रीय विद्या–केन्द्रों की स्थापना हुई, जिनमें प्रमुख हैं – नेशनल कॉलिज कलकत्ता, पटना नेशनल कॉलिज, विहार विद्यापीठ, काशी विद्यापीठ, बंगाल नेशनल यूनिवर्सिटी, गुजरात विद्यापीठ।

लुई फ़िशर के अनुसार – "गांधी ने भारत के किसानों मज़दूरों और बुद्धिजीवियों को समाज में अपने निजी महत्व की भावना प्रदान की। उन्होंने उन्हें सिर्फ़ स्वतंत्रता–आन्दोलन में भरती ही नहीं किया, वरन् उनका व्यक्तिगत मान भी बढ़ाया और इस प्रकार उन्हें सर्ववादी सिद्धान्त का विरोधी बना दिया।"

फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ पाकिस्तान टाइम्स के संपादक ने अपने संपादकीय में लिखा – "अपनी क़ौम और मिल्लत पर शहीद होनेवाले तारीख़ में अनेक हैं, लेकिन दूसरी क़ौम के लिए, दूसरी मिल्लत के लिए और वह भी इस दौरे में जब आपस में बैर हो, शहीद होने वालों में अभी तक सिर्फ़ गांधी का नाम है।"

'हिन्द स्वराज' इसी गांधी की महत्वपूर्ण कृति है। पाण्डेय शशिभूषण शीतांशु के लेख 'हिन्द स्वराज' बनाम 'स्वतंत्र भारत का स्वराज' से उद्धृत ये पंक्तियाँ भारत के लिए इसके लिखे जाने की सोद्देश्यता को सामने लाती हैं।

"इसमें निरूपित सिद्धान्त और नीति–योजना के आधार पर अंग्रेज़ों और अंग्रेज़ी सभ्यता को निष्कासित कर स्वतंत्रता प्राप्त करना और द्वितीयतः आज़ादी मिलने के बाद इन्हीं सिद्धांतों और नीति–योजनाओं के आधार पर 'स्वराज' को सही अर्थ में स्वरूपित और आचरित करना। गांधी पूरे विश्व में उच्चतम् नैतिकता, अहिंसा और सत्याग्रह के प्रचार–प्रसार के आकांक्षी थे। इस दृष्टि को ही गिरिराज किशोर ने 'गांधी का वैश्वीकरण की तरफ़ बढ़ता कदम कहा है।"

'हिंद स्वराज' पहली बार दिसंबर 1909 में 'इंडियन ओपीनियन' के गुजराती संस्करण के दो आनुक्रमिक अंकों में प्रकाशित हुआ। इसकी रचना संवादात्मक प्रोक्ति के रूप में हुई है। "यह संवाद एक संपादक और अनाम पाठक के बीच चलता है। इसमें पाठक सावरकर और लंदन के उग्रवादी छात्रों तथा मेहता की लाइन पर तर्क देता है। यहाँ गांधी ने अपनी बात एक आधुनिक अखबार के संपादक के मुँह से कहलाई है तथा पश्चिमी सभ्यता की निंदा की है और भारतवासियों को उन्नतशिर करते हुए महत्त्व प्रदान किया है। अतः यह समझना घोर भूल होगी कि यह संवाद गांधी के व्यक्तित्व के ही दो पक्षों के बीच चल रहा है।"

पाण्डेय शशिभूषण शीतांशु के अनुसार–'हिन्द स्वराज' की सबसे बड़ी विशेषता गांधी द्वारा 'स्वराज' के किए गए अर्थ–स्पष्टीकरण को लेकर है। इसमें उन्होंने स्पष्ट किया है कि प्रत्येक व्यक्ति का अपने ऊपर शासन और नियन्त्रण ही 'स्वराज' है। राजनीतिक स्तर पर यही गृहशासन या आत्मशासन है। इसे यदि संतोषप्रद और सफल होना है, तो आत्मशासन को उस नियंत्रण पर आधारित होना चाहिए, जहाँ नेता और नागरिक–दोनों ही अपने–अपने ऊपर इसे आचरित करें। पर आज़ाद भारत ने 'स्वराज' के इस अर्थ को आज तक नहीं जाना। 'हिन्द–स्वराज' को बिल्कुल 'आउट ऑफ़ डेट' कहने से पहले जवाहर लाल नेहरू ने 'स्वराज' की इस अर्थवत्ता पर गहराई से सोचा होता, जिसे सारा औद्योगिक विकास करने के बाद भी वे भारतीयों को नहीं दे सके।"

कहना न होगा कि 'हिन्द स्वराज' सामाजिक संपर्क को महत्व देता है और योग्य पश्चिमी व्यक्तियों की उचित प्रशंसा भी करता है। यह कटाव–भरे एकाकीपन को हटाता–मिटाता है तथा 'घृणा' को निर्मूल करता, खारिज करता है। 'हिन्द स्वराज' भारत में पाश्चात्य रंग में रंगे श्रेष्ठ जनों के विशिष्ट वर्ग को आम जनता से अपनी दूरी पहचानने तथा उन्हें अपने–अपने जीवन को सरलीकृत करने के लिए कहता है। 'हिन्द स्वराज' एक योद्धा का 'मेनिफ़ेस्टो' था।

यह भारत को प्रभावित करने वाला गांधी का अस्त्र था। 'हिन्दस्वराज' में उन्होंने सर्वत्र बंदूक, औद्योगीकरण और पश्चिम की आलोचना की है और सत्याग्रह, सरल जीवन और भारत की श्रेष्ठ सभ्यता की उच्चता को स्थापित किया है। 'हिन्द स्वराज' में एक ही साँस में भौतिकतावाद और मशीनरी दोनों को खारिज किया गया है। भौतिकतावाद से अभिप्राय है लोभ, लालच तथा मशीनरी से अभिप्राय है वैयक्तिक अर्थ–केन्द्रण। भौतिकतावाद और मशीनरी दोनों के केन्द्र में पैसा है और पैसा निश्चय ही मोह पैदा करता है।

पाण्डेय शशिभूषण शीतांशु के अनुसार– 'हिन्द स्वराज' का प्रतिपाद्य भारत की यूरोप से, ब्रिटेन से तुलना करते हुए अपनी पुरानी शिक्षा–पद्धति और अपनी सभ्यता को तार्किक रूप में न केवल श्रेष्ठ दिखाना है, बल्कि उसे अपने आचरण में अपनाना भी है। गांधी मानवता के हित की दृष्टि से इसके पक्षधर रहे हैं। पश्चिमी सभ्यता परिग्रही है, पर भारत की सभ्यता अपरिग्रही रही है। गांधी अपनी अपरिग्रही सभ्यता को महत्व देते हैं और उसे श्रेष्ठ मानते हैं। शिक्षा के संदर्भ में गांधी की मान्यता है कि "हमारे पुराने स्कूल ही काफ़ी हैं। यहाँ नीति को पहला स्थान दिया जाता है। वह सच्ची प्राथमिक शिक्षा है। उसपर हम जो इमारत खड़ी करेंगे वह टिक सकेगी। वे अपनी भाषा की उन्नति के पक्षधर थे। उनका यह मानना बहुत सही था कि "अंग्रेज़ी शिक्षा से दंभ, राग, जुल्म वगैरह बढ़े हैं। अंग्रेज़ी शिक्षा पाए हुए लोगों ने प्रजा को ठगने में, उसे परेशान करने में कुछ भी उठा नहीं रखा है। अतः गांधी चाहते थे कि जो लोग अंग्रेज़ी पढ़े हुए हैं, उनकी संतानों को पहले तो नीति सिखानी चाहिए, उनको मातृभाषा सिखानी चाहिए और हिन्दुस्तान की एक दूसरी भाषा सिखानी चाहिए। वे पुख्ता हो जाएँ तब भले ही वे अंग्रेज़ी शिक्षा पाएँ।"

गांधी ने हिंद स्वराज में तो एक अहिंसक सभ्यता की ही स्थापना करनी चाही है। वे बर्बर और क्रूर सभ्यता

के खिलाफ़ इसी कारण मुखर होते हैं, क्योंकि उनकी दृष्टि में अंधाधुन्ध मशीनीकरण का अर्थ हुआ; दूसरों के हाथ से काम को छीनना। जब दूसरों का हक छीना जाएगा, तब ज़ाहिर–सी बात है कि हिंसा होगी। गांधी ने इस प्रकार हिंद स्वराज को एक अहिंसक दस्तावेज़ के रूप में प्रस्तुत किया। गांधी के 'अहिंसा' का महत्त्व उसकी लोक–व्याप्ति के कारण सबसे ज़्यादा है। अहिंसा कोई स्थूल वस्तु नहीं है, जो आज हमारी दृष्टि के सामने है। किसी को न मारना इतना तो है ही, कुविचार मात्र हिंसा है। उतावली हिंसा है। द्वेष हिंसा है। किसी का बुरा चाहना हिंसा है। अहिंसा को प्रेम के नियम के रूप में गांधी ने व्याख्यायित किया, इसका तात्पर्य हुआ कि निर्वैयक्तिक प्रेम। निर्वैयक्तिक प्रेम में अधिकतम त्याग की भावना रहती है।

हिंदी का छायावाद युग गांधी–युग की साहित्यिक उपलब्धि है। छायावादी कवियों और स्वच्छन्दतावादी लेखकों के अलावा इस युग में कुछ ऐसे विश्रुत साहित्यकार भी हुए, जो गांधी जी के सत्याग्रह–आंदोलन के सक्रिय कार्यकर्ता थे और इन्होंने गांधी जी के आचार–पक्ष से भी काफ़ी प्रभाव ग्रहण किया। माखनलाल चतुर्वेदी, नवीन, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त आदि ऐसे कवि हैं। कथा लेखकों में प्रेमचंद और जैनेन्द्र पर गांधी–दर्शन का प्रभाव स्पष्ट है।

कविता की बात करें तो उल्लेख सोहनलाल द्विवेदी का भी होगा। सोहनलाल द्विवेदी के काव्य पर गांधीवाद का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। सोहनलाल द्विवेदी ने जनता में राष्ट्रीय–चेतना जाग्रत करने, उनमें देशभक्ति की भावना भरने और नवयुवकों को देश के लिए बड़े से बड़े बलिदान देने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने एक युगपुरुष के रूप में गांधी का स्तवन किया। उनके कई गीतों में गांधी का 'खादी प्रेम' एक धागे में पिरोया गया। आपका 'खादी गीत' नामक गीत इस क्रम की कड़ी बना ......

"खादी के धागे–धागे में, अपनेपन का अभिमान भरा।
माता का इसमें मान भरा, अन्यायी का अपमान भरा।
खादी के रेशे–रेशे में, अपने भाई का प्यार भरा।
माँ–बहनों का सत्कार भरा, बच्चों का मधुर दुलार भरा।
खादी में कितने ही दलितों के दग्ध की दाह छिपी।
कितनों की कसक कराह छिपी,
कितनों की आहत आह छिपी।

गांधी जी ने युग की आत्मा को प्रकाशित किया। सोहनलाल जी ने गांधी जी को युग–पुरुष के रूप में चित्रित किया। उदाहरण के लिए उनकी कृति 'युगावतार गांधी' की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए ...

"चल पड़े जिधर दो डग मग में,
चल पड़े कोटि पग उसी ओर।
पड़ गयी जिधर भी एक दृष्टि,
गड़ गए कोटि दृग उसी ओर।
जिसके शिर पर निज धरा हाथ,
उसके शिर–रक्षक कोटि हाथ।
जिस पर निज मस्तक झुका दिया,
झुक गए उसी पर कोटि माथ।"

इन पंक्तियों में गांधी एक साधारण से व्यक्ति नहीं, अपितु 'युग–पुरुष' हैं, जिनके मार्ग पर चलने के लिए कोटि नर–नारी एक पंक्ति से खड़े हैं। जिस तरफ़ भी उनकी नज़र पड़ती हैं, करोड़ों आंखें उसकी ओर देखने लगती हैं इन्हीं अनुयायियों का बहुत सुन्दर उल्लेख सोहनलाल द्विवेदी ने उपर्युक्त पंक्तियों में किया है। कविता 'युगधार' में उन्होंने बापू के अलौकिक कृतित्व और व्यक्तित्व को छूने की कोशिश की है।

"चल पड़ा कौन मर मिटने
लेकर कुछ वीरों की टोली ?
सुलगा दी मग–मग पग–पग में
किसने आज़ादी की होली ?
हैं मुटठी भर हड्डियां ?
भले ही कह लो तुम इनको शरीर
संसार कंपाता चलता है,
वह भारत का नंगा फ़कीर।
हे कोटि रूप, हे कोटिनाम,
हे कोटि चरण, हे कोटिबाहु,
तुम एक मूर्ति, प्रति–मूर्ति कोटि,
हे कोटि मूर्ति तुमको प्रणाम।"

मैंने बहुत पहले 'जय गांधी' नामक उनकी काव्य

रचना के संबंध में उनका कथन पढ़ा था कि इस कविता में उन्होंने लोकप्रिय राष्ट्रीय रचनाओं को एक स्थान पर संजोने का प्रयास किया है। 'हिन्द स्वराज' से प्रेरित हो राष्ट्र की मुक्ति के लिए वे अहिंसात्मक अभियान में एक सच्चे सैनिक की तरह आगे बढ़े। उन्होंने गांधी जी को राष्ट्र–मुक्ति का सूत्रधार मानकार उनमें बोधिसत्व का पुनः दर्शन किया। 'चेतना' नामक उनकी काव्य कृति इसका उदाहरण है।

"धन्य धरा वह आज कि जिसमें
तुमने जन्म लिया।
धन्य जाति यह आज कि
जिसको तुमने मुक्त किया है।
तुम्हें देखकर किया विश्व ने
बोधिसत्व का दर्शन।"

एक अन्य स्थान पर वह स्वतन्त्रता के वीरों का आह्वान करते हुए कहते हैं –

"न हाथ एक शस्त्र हो, न साथ एक अस्त्र हो
न अन्न नीर वस्त्र हो, हटो नहीं, डटो वहीं
बढ़े चलो, बढ़े चलो।"

सोहनलाल द्विवेदी ने गांधी जी के विषय में स्वयं लिखा था कि उन्होंने उनके अंधेरे पथ में सदैव प्रकाश फैलाया। स्वतंत्रता उस युग की आकांक्षा थी और द्विवेदी जी ने महात्मा गांधी को 'युग–पुरुष' की संज्ञा दी–

"युग बढ़ा तुम्हारी हँसी देख
युग हटा तुम्हारी भृकुटि देख।
तुम अचल मेखला बन भू की
खींचते काल पर अमिट रेख।"

सोहनलाल द्विवेदी के काव्य ने गांधी जी के आदर्शों को जनता तक पहुँचाने में अभूतपूर्व योगदान दिया –

"तुम बोल उठे युग बोल उठा
तुम मौन बने युग मौन बना
कुछ कर्म तुम्हारे संचित कर
युग कर्म जगा, युग धर्म बना।"

कहना न होगा कि सोहनलाल द्विवेदी जी की समस्त रचनाओं में गांधी जी का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। श्री क्षेमचन्द 'सुमन' का कथन है, "जब भी कभी हिंदी साहित्य की गांधीवादी विचारधारा का मूल्यांकन किया जाएगा तब उनकी रचनाएँ अपनी विशिष्टता के लिए कनिष्टिकाधिष्टित रहेंगी।"

केदारनाथ सिंह की निम्नलिखित कविता से उद्धृत पंक्तियों को हिन्द स्वराज के परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है।

"छोटे–से आँगन में
माँ ने लगाए हैं
तुलसी के विरवे दो
पिता ने उगाया है
बरगद छतनार
मैं अपना नन्हा गुलाब
कहाँ रोप दूँ?
मुट्ठी में प्रश्न लिए दौड़ रहा हूँ वन वन
पर्वत–पर्वत
रेती–रेती
बेकार।"

इस कविता की रचना आज़ादी के दस सालों के पश्चात् हुई। यहाँ 'हिन्द स्वराज' की नीतिपरक कथनों का अभाव कवि को खलता दिखाई दे रहा है। कवि द्वारा कहा गया 'छोटे से आँगन' से अभिप्राय विभाजन के बाद का हमारे देश का छोटा–सा आँगन है। 'माँ' से अभिप्राय भारत माता से है और 'पिता' से अभिप्राय राष्ट्रपिता गांधी से है। 'तुलसी' के विरवे दो' से अभिप्राय हिंदू और मुसलमान की पवित्र मनुष्यता से है। 'बरगद छतनार' से अभिप्राय धर्म निरपेक्षता से है। 'बरगद छतनार' स्मरण रहे कि आज़ादी के पहले का है, पर तुलसी के विरवे ठीक आज़ादी के समय के हैं। स्वतंत्र देश का नन्हा गुलाब रोपने के लिए दौड़ रहा है पर वह जहाँ भी गया उसे वन ही वन मिला (हिंसक हृदय), उसे रेती–रेती ही मिला (अनुवार हृदय)। कहना न होगा कि प्रेम और शांति का प्रतीक वह गुलाब ऐसी ज़मीनों में नहीं केवल हृदय में रोपा जा सकता है।

अन्य कविताएँ जो गांधी और गांधीवाद को केंद्र में

रख कर लिखी गई, उनका उल्लेख करना भी यहाँ आवश्यक है।

हरिवंशराय बच्चन की कविता 'बापू' इनमें से एक है–

"थैलियाँ समर्पित की सेवा के हित हज़ार
तुम हटे न तिल भर
गई दानवी शक्ति हार।"[7]

" इन आँखों को था बुरा देखना नहीं सहन
जो नहीं बुरा कुछ सुनते थे वही श्रवन
सुख यही की जिससे कभी न निकला बुरा वचन।''

अम्बिका प्रसाद दिव्य की कविता 'गांधी पारायण' गांधी के व्यक्तित्व को उकेरती हैं –

"नहीं पिघलते लोग विरोधी
आमिष भोजी अतिशय क्रोधी
काँच तोड़ पथ पर बिखराते
लाकर कंटक कहीं बिधाते
बापू कर से उन्हें उठाते।
लगे न उनको स्वयं हटाते
बापू कहता कुछ नहीं कंटक बिखरे देख
लग न जाये ये किसी को लिखे रक्त से लेख।
बन कर पदगामी अन्तर्यामी चले मार्ग पर जाते
जग का हित करने सब दुःख हरने
फिरते कष्ट उठाते।''[9]

रामधारी सिंह 'दिनकर' ने भी अपनी कविता 'बापू' नाम से लिखी –

" बाँवी से कढ़ बाहर आवे
वह दनुज मुझे भी खाने को
मैं हो आया तैयार
प्रेम का अन्तिम मूल चुकाने को
भर गया पेट इतने से ही?
मुझको खाने की चाह नहीं
पर याद रहे
मैं सहज छोड़ देने वाला हूँ राह नहीं।"

बाल कृष्ण शर्मा नवीन के काव्य संकलन 'आज के लोकप्रिय हिंदी कवि' में बापू पर आधारित निम्नलिखित पंक्तियाँ गांधी की वैयक्तिक महानता को स्थापित करती हैं –

व्रतरत तुम, तुम उपवासनिष्ठ
तुम नित असंग तुम यज्ञधाम
तुम कर्मनरित, रवि तारकमन,
तुमने न रंच जाना विराम
तुम महानिष्क्रमण–क्षण में भी बढ़ कर बोले–
हे राम, राम।"

गिरिजाकुमार माथुर ने 'धूप के धान' संकलन में गांधी की मृत्यु पर लिखा –

"तप में रची हड्डियों से जन बज हुआ निर्माण
मिट्टी नवयुग तन का
हर कन रवि की नई उठान
तुमने मरकर मृत्यु मिटा दी विश्व निहाल हुआ
सूरज डूब गया धरती का सायंकाल हुआ ।''

भगवतीचरण वर्मा ने अपनी कविता 'प्रथम स्वतंत्रता दिवस' में गांधी का शील निरूपित किया है –

उस परम तपस्वी गांधी ने
निष्काम साधना में तपकर
इस घृणा क्रोध से फटी हुई
पृथ्वी की आहत छाती पर
जो प्रेम, अहिंसा दया
प्रेम का लिखा एक इतिहास नया ।"[10]

भवानी प्रसाद मिश्र गांधीवादी कवि हैं, उनकी प्रसिद्ध कविता 'गांधी का सपना' में गांधी का शील निरूपित किया गया है –

"यह अछूत वह काला–गोरा
यह हिंदू वह मुसलमान है
वह मज़दूर और मैं धनपति
यह निर्गुण वह गुण निधान है
ऐसे सारे– सारे भेद मिटेंगे जिस दिन अपने
सफल उसी दिन होंगे गांधी जी के सपने।"[11]

नरेश मेहता की प्रसिद्ध कविता 'प्रार्थना पुरुष' में गांधी को पिता के समक्ष प्रायश्चित करते दिखाया गया।

"वह माँस आदि का खाना
फिर छुपकर बीड़ी पीना
इन सारे कृत्यों के हित
पैसों की चोरी करना
पतन–पतन यह महापतन
चीत्कार कर उठा मोहन
परितापित वैष्णव के
भर आये दोनों लोचन
प्रस्तुत कर दी मोहन ने
निज पतन कथा सब लिखकर
संतोष हुआ बाबा को बेटे के इस साहस पर
जब रुग्ण पिता ने उसको
निःशब्द क्षमा कर डाला
परितप्त तिमिर को चीर
फैला संतोष उजाला।"

गांधी को केंद्र में रखकर लिखी कविता 'नोआखाली' भी इस कड़ी में एक महत्त्वपूर्ण कविता रही है नोआखाली स्थान का नाम है –

"वह निखिल बन्धु अनुराग छलकता लाया
आया वह
यह सन्देश निशा ने पाया
जिनकी बाती का अंश मात्र ही जलता
जिनके समग्र में ज्वाल नई हैं ढलता
कब कहाँ रुक सका प्रभात तिमिर से
जागी वह अन्तर ज्योति अभय में फिर से
काली तमसा के नव निशान्त
तुम आओ इस तिमिर त्रास में
सुविश्वास बरसाओ।
वे गेह जो कि गिर गए
पेड़ श्रीहत हैं
वे भी जा नथ में उठे पड़े अक्षत हैं।
जागे तुम से हे तीर्थ के यात्री
युग दिवस तुम्हारे हेतु प्रेम युद्ध नत हैं।
जन–जन में एक प्रतीति गीति सरसाओ
काली तमसा के नव निशान्त तुम गाओ।"

हिंदी साहित्य में मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, अम्बिका प्रसाद दिव्य, सुमित्रानन्दन पंत, गिरिजा कुमार माथुर, शिवमंगल सिंह 'सुमन' आदि अन्य अनेक कवियों ने अपनी–अपनी कविताओं में गांधी और गांधीवाद को केन्द्र में रखा। टी. वी. प्रभाशंकरन 'प्रेमी' की पुस्तक आधुनिक हिंदी कविता में गांधीवाद का प्रभाव, इस दिशा में अनेक पट खोलती नज़र आती है।

कहना न होगा गांधी आकल्पित मूल्य (conceptual value) को मानने वाले और उसे ही क्रियात्मकता में परिचालित करने वाले चिंतक और प्रोक्ता थे।

संदर्भ :

1) लुई फ़िशर – साप्ताहिक हिंदुस्तान, 5 अक्तूबर 1953
2) लुई फ़िशर – साप्ताहिक हिंदुस्तान, 5 अक्तूबर 1952
3) पाण्डेय शशि भूषण 'शीतांशु', 'हिंद स्वराज' बनाम स्वतंत्र भारत का स्वराज, वाक, अंक 9, वाणी प्रकाशन
4) पाण्डेय शशि भूषण 'शीतांशु', 'हिंद स्वराज' बनाम स्वतंत्र भारत का स्वराज, वाक, अंक 9, वाणी प्रकाशन
5) पाण्डेय शशि भूषण 'शीतांशु', 'हिंद स्वराज' बनाम स्वतंत्र भारत का स्वराज, वाक, अंक 9, वाणी प्रकाशन
6) पाण्डेय शशि भूषण 'शीतांशु', 'हिंद स्वराज' बनाम स्वतंत्र भारत का स्वराज, वाक, अंक 9, वाणी प्रकाशन
7) हरिवंश राय बच्चन की पुस्तक 'मेरी श्रेष्ठ कविताएँ', राजपाल एण्ड संस 1984
8) हरिवंश राय बच्चन की पुस्तक 'मेरी श्रेष्ठ कविताएँ', राजपाल एण्ड संस 1984
9) अम्बिका प्रसाद दिव्य की कविता 'गांधी पारायण', अजयगढ़ साहित्य सदन, 1969
10) भगवती चरण वर्मा की पुस्तक 'मेरी कविताएँ'
11) भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य–संकलन 'गांधी पंचशती'

नई दिल्ली, भारत
swati&shweta@ymail.com

हिंदी और क्रोएशियन : भाषा, साहित्य एवं संस्कृति में साम्यता

–श्री रवींद्रनाथ मिश्र

जन्म : 12 जुलाई, 1957, पितंबरपुर, महुलिया, अंबेडकर नगर (उ.प्र.)

शिक्षा :
- पी.एच.डी. – बी.एड (मुंबई विश्वविद्यालय)
- एम.ए. (कर्नाटक विश्वविद्यालय)
- बी.ए. (इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

व्यवसाय :
- अध्यापन एवं प्रशासकीय कार्य, 1979 से गोवा में
- प्रवक्ता, प्रपाठक, आचार्य, अधिष्ठाता, भाषा एवं साहित्य संकाय, हिंदी विभाग, गोवा विश्वविद्यालय, 1990
- अतिथि आचार्य–हिंदी, ज़ाग्रेब विश्वविद्यालय, क्रोएशिया, यूरोप (अप्रैल 2016 से जुलाई 2017)

प्रकाशन :
- 'डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन', 'समीक्षाएँ : विविध आयाम'
- 'काव्यास्वाद के नव्य निकष',
- 'साहित्य : विविध परिदृश्य'
- 'अंतिम दशक की हिंदी कविता'।
- देश की विभिन्न हिंदी पत्र–पत्रिकाओं एवं संपादित पुस्तकों में 80 आलेख तथा कोंकणी कविताओं, कहानियों एवं निबंधों का हिंदी में अनुवाद 'समकालीन भारतीय साहित्य' एवं 'भाषा' पत्रिका, नई दिल्ली में प्रकाशित।

सम्मान :
- हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा 'विद्यावाचस्पति' की मानद् उपाधि।

किसी भी देश की भाषा, साहित्य और संस्कृति के बीच परस्पर घनिष्ठ संबंध होता है। वैश्विक धरातल पर विभिन्न देशों की भाषा, साहित्य और संस्कृति में स्वरूपगत भेद हो सकता है, लेकिन मानवीय मूल्य, संवेदना, जीवन और जगत की धड़कन सबमें विद्यमान होती है। इस दृष्टि से हिंदी और क्रोएशियन भाषा, साहित्य और संस्कृति में साम्यता दृष्टिगोचर होती है। कला को किसी विशेष भू–भाग तक सीमित नहीं किया जा सकता। साहित्य का निर्माण भाषा से होता है। भाषा और साहित्य दोनों मिलकर संस्कृति का उन्नयन और संवर्धन करते हैं। जहाँ भाषा विचारों और भावों के आदान–प्रदान का सशक्त माध्यम है, वहीं साहित्य जीवन और जगत की संवेदनात्मक अनुभूतियों की कलात्मक अभिव्यक्ति है तथा संस्कृति मानव जीवन के अंतरंग एवं बाह्य पक्षों की उद्घाटक है। परिवर्तन की प्रक्रिया में इनमें बदलाव होना स्वाभाविक है। यदि ऐसा न हो, तो उनमें जड़ता आ जाएगी। जड़ता मृत्यु का सूचक है। परिवर्तन से ही जीवंतता बनी रहती है। प्रेमचंद ने लिखा है "हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो–जो हम में गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं, क्योंकि अब और ज़्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।"[1]

प्राचीन काल में परिवर्तन की प्रक्रिया शनैः शनैः थी। आज भूमंडलीकरण के दौर में सब कुछ त्वरित गति से बदल रहा है। जहाँ भाषा को वैज्ञानिक रूप देकर उसमें सुधार किया जा रहा है, वहीं साहित्य की विषयवस्तु एवं रूप में भी बदलाव की प्रक्रिया जारी है। साहित्य में बौद्धिक पक्ष प्रबल हो रहा है। संस्कृति के धरातल पर पूर्व और पश्चिम की बर्लिन दीवार ढह रही है। मैं संक्षिप्त रूप से भाषाई स्तर पर संस्कृत, हिंदी और

क्रोएशियन की चर्चा करूँगा। हिंदी और ह्रवाती भारोपीय भाषा परिवार की भाषाएँ हैं। इस परिवार की प्राचीन भाषाएँ, संस्कृत, लैटिन और ग्रीक हैं। संस्कृत हिंदी की जननी है, तो ग्रीक और लैटिन ह्रवाती की। दसवीं शताब्दी के आसपास पश्चिमी और पूर्वी यूरोप में क्रमशः लातीनी और यूनानी भाषा का प्रभाव था। ह्रवाती काव्य का प्रारंभ गलगोलित्सा लिपि के द्वारा जनबोली साहित्य के रूप में हुआ। कालान्तर में ह्रवाती काव्य का उदय इसी लिपि में हुआ, लेकिन नगरों में लातीनी के प्रभाव के कारण इसका विकास नहीं हो सका। पुरातत्व की खोज के अनुसार प्राचीन क्रोएशियन साहित्य की रचना लातीनी लिपि में की गई। अतएव क्रोएशियन भाषा की जननी लैटिन है। जोकि स्प्लिट के पेतारतस्रीनी (काला पीटर) की समाधि पर अंकित है।

"इस गंदे गर्त में जान सकोगे मनुष्य क्या है ?
उन्माद के बीच न जाना
मैंने दूसरों का भला क्या है ?
जब तक जीया, विश्व में भय बना था मैं।
इससे अधिक स्वयं के लिए कुछ नहीं कह सकता मैं।"[2]

भारत और क्रोएशिया की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अवलोकन करें तो दोनों देशों का इतिहास संघर्षों का रहा है। ह्रवाती और हिंदी भाषा का आर्विभाव इन्हीं संघर्षों के बीच हुआ। हिंदी का विकास अपभ्रंश के बाद ब्रज और अवधी भाषा (आज की बोली) से एवं ह्रवाती का चाकावी बोली से हुआ। उस समय दोनों भाषाओं का साहित्य मौखिक बोली की लोक परंपरा में था। जिसे कालान्तर में लिपिबद्ध किया गया। क्रोएशियन लोकगीत "चिड़िया गौरैया" में गौरैया को रोते हुए देखकर पर्वतबाला ने कहा "मत रो चिड़िया गौरैया तू! / क्यों रोती है ? क्या दुःख तुझको?/ बोली तब चिड़िया गौरैया : / क्या बोलूं? ओ पर्वतबाला ! /रहने दे एकाकी मुझको, हे गिरि–बाला! / दुःख के कारण रोती हूँ मैं। / खो बैठी हूँ भारत मैं अपने प्रियतम को/ कोई नहीं है, जिसके संग भारत जाऊं मैं।"[3] मैंने मारियाना के सहयोग से "जंतुओं की भाषा" और "मेढकी" नामक दो क्रोएशियन लोक कहानियों का अनुवाद हिंदी में किया। प्रस्तुत काव्य पंक्तियों और इन दो कहानियों के अनुवाद से लगा कि लोक साहित्य चाहे किसी भी देश का हो उसमें कथ्य की सरलता, मार्मिकता एवं भावोद्‌गार का गुण सबमें प्रमुख होता है।

ध्यातव्य है, कि किसी भी भाषा और साहित्य में मूलतः चार प्रकार के शब्दों का प्रयोग होता है। तत्सम, तद्भव, विदेशी और देशज। संस्कृत, लैटिन, ग्रीक, भाषा के जो मूल शब्द भारोपीय परिवार की भाषाओं में घुलमिल गए हैं। वे तत्सम के रूप में आज भी प्रयुक्त हो रहे हैं। पहले साहित्यिक मंचों पर हम अधिकांशतः इन्हीं शब्दों का प्रयोग करते थे। यही शब्द थोड़े बदलकर तद्भव बन जाते हैं, जिनका प्रयोग साहित्य और आमजीवन में होता है। अंतरराष्ट्रीय भाषा अंग्रेज़ी के महत्त्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसकी शब्दावली विश्व की लगभग सभी भाषाओं में प्रयुक्त होती है। हिंदी के सामने तो संकट पैदा हो गया है, क्योंकि वह हिंग्लिश का रूप धारण करती जा रही है। क्रोएशियन भाषा में भी atmosfera, auto, banka,direktor, engleska, Europa, Festival, filmu, hotel, ideja, institucija, kilometar, kultura posta, poljski, republika, student,turist आदि अंग्रेज़ी से मिलते–जुलते शब्द भरे पड़े हैं। यूरोप की अधिकांश भाषाओं के मूल में लैटिन होने के कारण बहुत सारे शब्दों का प्रयोग सामान्य रूप से सभी में होता है। मीडिया एवं टेक्नोलॉजी की शब्दावली टी. वी., कम्प्यूटर, माऊस, हार्डडिस्क, वेबसाइट, इंटरनेट, सिम, रिचार्ज, हॅलो, स्मार्ट फ़ोन, रीचार्ज आदि शब्दों का प्रयोग विश्व की लगभग सभी भाषाओं में प्रयुक्त हो रहा है। रचनाकार साहित्य की उर्वरता के लिए देशज शब्दों का प्रयोग करता है। जोकि हमारी सांस्कृतिक धरोहर हैं। जिनसे साहित्य और संस्कृति को ऊर्जा मिलती है। जैसे कि आज मनुष्य आधुनिकता से ऊबकर परंपरा की ओर

मुड़ रहा है।

जहाँ तक हिंदी और क्रोएशियन भाषा का सवाल है तो ये दोनों एक ही भारोपीय भाषा परिवार से जुड़ी हैं। परिवार शब्द की भावात्मक संवेदना से हिंदी, क्रोएशियन भाषा, साहित्य और संस्कृति का जुड़ाव स्वयं सिद्ध हो जाता है। मैं दोनों की निकटता को कतिपय उदाहरणों के माध्यम से व्यक्त करना समीचीन समझता हूँ। संस्कृत–भ्राता, क्रोएशियन–ब्रात, हिंदी–भाई, संस्कृत–तात, क्रोएशियन–ताता, हिंदी–पिता, गृह्णाति–ग्रबीती, कासते–कॉलजति, गिरति–जदेरति, जानति–जनाति, ललति–ललिजति, मातृ–माती, द्वय–द्वा, तृतीय–त्रि, षष्टम–सेस्त, सप्तम–दम, दशम–देसेद, दा–दाती, अथ–अको, अस्ति–जेस्त, तव–ट्वॉज, प्रजा–पोरोद, माँ–मामा, पीना–पीती, लाश–लेस, दादा–देदा, तू–ति, बरामदा–वेरांडा, कमीज़–कोसुलज, पीना–पीति, तमस–तामा, पूर्व–परवी, पूर्ण–पूण, गिरि–गोरा, मगर–मकर, मृत–मृतव, साबुन–सपुन आदि। यहाँ कतिपय क्रोएशियन और हिंदी के मिलते–जुलते वाक्य द्रष्टव्य हैं। मोजा मामाजे मलादा (Moja Mamaje Mlada) = मेरी माँ युवती है। देदा जे ना वेरांदी (Deda je na verandi) = दादा जी बरामदे में हैं। आरमार जे पाओ (Ormar je pao) = आलमारी गिर पड़ी। मोज परिजटलज स्पाव (Moj prijatolj spava = मेरा प्रिय सोना है। इमस ग्रानजे (Imas Gnanje) तुम्हारा ज्ञान है।

अब मैं भाषाई स्तर की कतिपय समानताओं के पश्चात् दोनों भाषाओं की कालगत साहित्यिक प्रवृत्तियों की चर्चा करना उचित समझता हूँ। साहित्य की उत्पत्ति जीवन और जगत से होती है। जहाँ जीवन होगा, वहाँ साहित्य होगा। ये दोनों एक–दूसरे को प्रभावित करते और होते हैं। मनुष्य जीवन की परिस्थितियाँ और समय उसके कारक तत्व होते हैं। विश्व पटल पर इनमें विभिन्नता हो सकती है, लेकिन संवेदना, चेतना, संस्कृति, ऐतिहासिक अनुभव आदि मानवीय पक्ष को विशेष भू–भाग तक सीमित नहीं किया जा सकता। हिंदी के स्वनामधन्य समालोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है "जिस प्रकार दूसरी जाति या मतवाले के ह्रदय हैं, उसी प्रकार हमारे भी, जिस प्रकार दूसरे के ह्रदय में प्रेम की तरंगें उठती हैं, उसी प्रकार हमारे ह्रदय में भी, प्रिय का वियोग जैसे दूसरों को व्याकुल करता है, वैसे हमें भी, माता का जो ह्रदय दूसरे के यहाँ है, वही हमारे यहाँ भी, जिन बातों से दूसरों को सुख–दुःख होता है, उन्हीं बातों से हमें भी।"[4]

साहित्य में बोली–भाषा में कविता की मौखिक परंपरा हिंदी और ह्वाती दोनों भाषाओं में मिलती हैं। 11–12 वीं सदी के आस–पास जहाँ मूल ह्वाती "चाकावी" बोली में लिखी गई रचनाओं में धार्मिक दृष्टिकोण के अलावा जन–चेतना एवं तथ्यपरकता की अनुभूति और अभिव्यक्ति की प्रखरता, कोमलता और संगीतात्मकता मिलती है, वहाँ हिंदी साहित्य में अपभ्रंश भाषा में लिखे गए काव्यों में अतिशयोक्ति एवं गेयता के गुण अधिक मिलते हैं। जहाँ हिंदी का मध्यकालीन साहित्य धर्मोन्मुख एवं श्रृंगारिकोन्मुख था, वहीं क्रोएशियन धर्मयथार्थोन्मुख। हनीबल लूत्सीच (1485–1553) 'सर्वप्रथम जब देखा तुमको' शीर्षक कविता में नारी के बाह्य, बौद्धिक एवं उसमें अंतर्निहित नैसर्गिक सौंदर्य का वर्णन करते हैं। "सर्वप्रथम जब देखे स्वर्णिम केश तुम्हारे / और प्रियतमा! नयन तुम्हारे वे मनमोहक / शोभा अमित तुम्हारे उस मुखड़े की, जिसमें / प्रकृति दृष्टिगोचर है सुंदरतम रूपों में।"[5] इसी प्रकार ईवान बूनिच वुचिच (1591–1658) अपनी 'लावण्यमयी एलेना' कविता में प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से एलेना के सौंदर्य को चित्रित करते हैं। विश्व के सभी भाषा साहित्य में प्रकृति, प्रेम, नारी, धर्म, ईश्वर, मूल्य, राष्ट्र, मानव आदि विषयों पर रचनाएँ मिलती हैं।

15–16वीं शताब्दी का भक्ति आंदोलन मानवता, उदारता, नैतिकता, सहबंधुत्व आदि विचारों और भावों से सराबोर था। "कबीर कूता राम का मूतिया मेरा नाँव, गले राम की जेवड़ी जित खींचौ तित जाँव चरन कमल बंदौ हरि राई", "रामहि केवल प्रेम पियारा, जानि लेहिं जो जाननि

हारा", मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई", "मानुष हौं तो वही रसखानि, बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वालन।" आदि पंक्तियाँ साक्षी हैं। मध्ययुगीन ह्रवाती काव्य में भक्तिभाव की प्रखरता हिंदी की भांति नहीं थी। यहाँ भक्ति आंदोलन के रूप में नहीं था। जबकि परिवेशगत परिस्थितियाँ लगभग समान थीं। क्रोएशियन काव्य में वस्तु की विविधता, भाषा की सरलता एवं सहजता, रूपकों की मौलिकता, जातिवर्ग का प्रदर्शन आदि भक्ति की मुख्य विशेषताएँ थीं। सिल्विए स्त्राहीमीर क्रांचेविच "एलो! एलो! लमा अजावतनि" शीर्षक कविता कतिपय पंक्तियाँ इस प्रकार हैं –

गोलगथ पर बूढ़ा वृक्ष टूट गया, चुराई गईं उसकी कीलें–पहले तो यही घटा!

मानवजाति, भाईचारे और स्वतंत्रता के नाम पर, निरीश्वरता से आरंभ किया नृत्य रक्तमय... मंडली चीख रही थी मदिरा के वीभत्स उन्माद में हत्या करते हैं हम, ईश्वर, सब तेरे लिए–बचा ले!

कवि सिल्विए की "उपसंहार" कविता की "श्रीमंत सभी सोने से सजे, पदक धारण किए /नन्हें शिशु को मोड़ पर घृणा से देखते निकल जाते/ उच्च महिलाएँ कोमल, नन्हें नथुनों को दबा लेती / सुगंधित रूमाल से जो कहीं उस शिशु को देख लेतीं /दुर्गंध उन्हें आती शिशु से तेल, कोलतार, रंग की लकड़ी की" [7] इन पंक्तियों से प्रगतिशील त्रयी के श्रेष्ठ कवि नागार्जुन की "दूध–सा धुला सादा लिबास है तुम्हारा / निकले हो शायद चौरंगी की हवा खाने / बैठना था पंखे के नीचे, अगले डब्बे में / ये तो बस इसी तरह/लगाएँगे ठहाके, सुरती फाँकेंगे/ भरे मुँह बात करेंगे अपने देस–कोस की / सच–सच बतलाओ / अखरती तो नहीं इनकी सोहबत? / जी तो नहीं कुढ़ता है? / घिन तो नहीं आती है?[8] पंक्तियाँ जीवंत हो उठती हैं।

इसी दौर में ह्रवाती साहित्य ईश्वर से मानव की ओर पलायन कर रहा था। जबकि हिंदी साहित्य को यहाँ तक पहुंचते–पहुँचते चार सौ वर्ष लग गए। 1850 के बाद हिंदी साहित्य परलोक से लोक की तरफ़ उन्मुख हुआ। इस दौर में हिंदी की भांति क्रोएशियन भाषा में भी कालिदास कृत "शकुंतला" "वेतालपंचविंशतिका" रामायण और महाभारत की कुछ कहानियों के अनुवाद संस्कृत से क्रोएशियन भाषा में हुए। कालांतर में पंचतंत्र की कहानियों, गीतांजलि, कबीर, महादेवी वर्मा, महात्मा गांधी, प्रेमचन्द, जैनेन्द्र कुमार, अज्ञेय आदि की कतिपय रचनाओं के अनुवाद हुए और आज भी यह क्रम जारी है। क्रोएशियन एवं हिंदी साहित्य को परस्पर एक–दूसरी भाषाओं में अनुवाद का महत्त्वपूर्ण कार्य श्यौराजसिंह जैन ने किया।

हिंदी साहित्य की छायावादी काव्य–प्रवृत्तियों से मिलती–जुलती रचनाएँ क्रोएशियन कविताओं में भी मिलती हैं।

"रँग गई पग–पग धन्य धरा / हुई जग जगमग मनोहरा / वर्ण गन्ध धर, मधु मरन्द भर / तरु–उर की अरुणिमा तरुणतर / खुली रूप–कलियों में पर भर/ स्तर स्तर सुपरिसरा /गूंज उठा उठा पिक–पावन पंचम / खग–कुल–कलरव मृदुल मनोरम /सुख के भय काँपती / प्रणय–क्लम, वन श्री चारुतरा।"[9] सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की प्रस्तुत पंक्तियों की भावभूमि की भांति कवि आंतुन गुस्ताव मातोष की "संबंध" कविता की काव्य पंक्तियां भी हैं। "मंद वसंत का यह ओसमयी पुत्र/सभी पुष्पों में हमें प्रियतम है / वर्ण, हिमगंध स्वच्छ, दुग्ध भी है / अबोध, शुभ्र निर्मल शिशुवत अश्रु और कुमुद / तेरे प्राण का सौरभ/ मेरे प्रणय, मनाता नन्हा कुमुदिन, प्रसून रूपमय।"[10]

व्लादीमीर नाजोर ने तो विश्वमित्र, ब्रह्मा, बुद्ध, निर्वाण, माया आदि का अपनी कविताओं में सार्थक प्रयोग किया है। आपने "बुद्ध" शीर्षक कविता में उनके विचारों को इंगित किया है। "और बुद्ध की आत्मा–स्त्री के हाथों में / माया के पुनः आवरण में / च्युत हुई, वासना फेंकी / नव पीड़ा के दारुण / तम में उठी और उत्थत्त हुई।"[11]

पश्चिम अपनी वस्तुवादी एवं यथार्थ परक सोच के लिए जाना जाता है। पश्चिम से पूर्व में वैज्ञानिक सोच,

यथार्थवाद, अस्तित्ववाद, मनोविश्लेषणवाद आदि देर से आयातित हुआ। यूरोप के एक लेखक ने लिखा है "यूरोप नियम है, एशिया मन की तरंग है। यूरोप कर्तव्य है, एशिया मनोदशा है। यूरोप तथ्यात्मक और वस्तुपरक है, एशिया वैयक्तिक और आत्मनिष्ठ है। यूरोप आदमी है, एशिया बच्चा और बूढ़ा आदमी है।" लेखक के विचार को कुछ हद तक सही माना जा सकता है। वस्तुतः किसी भी भू–भाग की जातियाँ जिस प्रकार के विचारों में विश्वास करती हैं, उसी प्रकार उनके कर्म भी होने लगते हैं। फलस्वरूप कलाओं का जन्म भी उसी के अनुरूप होता है। इस दृष्टि से वैदिक युग प्रवृत्तिवादी था। आर्य दुनिया को त्याग की नहीं अपितु भोग की वस्तु मानते थे। प्रसादजी ने कामायनी में लिखा है "कर्म का भोग, भोग का कर्म, यही जड़ चेतन का आनंद।" कालांतर में बौद्ध साहित्य में पलायन और भक्ति साहित्य विशेष परिस्थितिवश ईश्वरोन्मुख हुआ।

ह्वाती पुनर्जागरण काव्य का सबसे महत्त्वपूर्ण केंद्र दुब्रोनिक था। जहाँ 15वीं से 17वीं सदी के बीच शीषको मैय्चेतिच, जौरेदृझिच, इवान गुंदूलीच आदि जैसे महत्त्वपूर्ण कवियों ने रचनाएँ लिखी। मार्को मारुलिच ने गलगोली काव्य परंपरा को मानवतावादी तथा पुनर्जागरण की आत्मा से मिलाया। क्रोएशिया में दुब्रोनिक, स्प्लित एवं ज़दर भी पुनर्जागरण का केंद्र था।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने जहाँ हिंदी कविता को छंदों के आवरण से मुक्त किया, वहीं क्रोएशियन कवि ल्यूबा बीजनेर ने क्रांचेविच और मातोष के बाद आधुनिक कविता को आगे बढ़ाते हुए छंदबद्धता का विरोध किया। "श्वास भरो कि कूद जाएँ, एक–दूसरे में सिमट जाएँ हम; उनींदा है रक्त हमारा–जागरण में मुक्ति है"[12] जैसी पंक्तियों से यांको पोलिच–कामोव ने प्रेमकाव्य में जिस झूठी नागरिक नैतिकता, सामाजिक रूढ़ियों का विरोध 18–20वीं सदी के संधिकाल में किया। उसकी पहल मुक्त रूप से हिंदी कविता में स्वतंत्रता के बाद हुई। क्रोएशियन कवि तिन उयेविच (1891–1955) ने तो संस्कृत सीखी, रवींद्रनाथ ठाकुर, सरोजिनी नायडु के गीतों का अनुवाद और कबीर पर लेख लिखा। अपने पत्रों में "ऊँ" और "गणेश की कृपा" जैसे मंगल शब्दों का प्रयोग किया। हिंदी साहित्य में आधुनिकता और पूंजीवाद से उपजी नगरीय जीवन में जिस थकान, एकाकीपन, क्षोभ, निराशा, संत्रास, घुटन की अनुभूति 20वीं सदी के उत्तरार्ध में की गई, उसकी अनुभूति ईवो कोजारचानिन ने 20वीं सदी के चौथे दशक में की। "स्त्री की गोद में डाल देता हूँ मज़ाकिया सिर बिखरे बालों का / अपने पोरों तक खींच लेता हूँ उसकी हथेलियों की प्रियता/ लगता है मुझे ओसभरी घास में आज कामनाएँ शांत हैं।" [13] हिंदी कविता में प्रगतिवाद के दौरान मार्क्सवादी विचारधारा ने आंदोलन का रूप लिया था, जिसका प्रभाव वामपंथियों में आज भी देखा जा सकता है। क्रोएशिया में भी इस विचारधारा का ज़बरदस्त प्रभाव है। यूरे काष्तेलान लिखते हैं "सुनता हूँ शब्द / ज्वर में / – कामरेड... /–कामरेड... / हाथ में ठंडा हाथ थामता हूँ / चलता जाता हूँ / मूक / सैन्य – टुकड़ी में।" [14]

हिंदी साहित्य में सामाजिक एवं राजनीतिक विसंगतियों के चित्रण में यथार्थवाद एवं अतियथार्थवाद का प्रयोग हुआ है। 20–21वीं सदी के संधिकाल के दौर में चन्द्रकांत देवताले, कुमार अम्बुज, बोधिसत्व, एकांत श्रीवास्तव, निलय उपाध्याय, नीलेश रघुवंशी आदि ने पारिवारिक संवेदनाओं पर कविताएँ लिखीं। इसके साथ ही हिंदी कथा–साहित्य में इसे व्यापक रूप से देखा जा सकता है। क्रोएशियन कविता में हम इसे क्रमशः– जवोनीमीर गोलोब और योसिप पूपाचिच की कविताओं में देख सकते हैं। "घर तो महज नींव है – खाका तेरी मृत्यु का, मेरे भाई! / चला गया घर। चला गया घर। चला गया घर तेरा।"[15] क्रोएशियन साहित्य की भांति हिंदी में भी भूमंडलीकरण, मीडिया विस्फोट, तकनीकी विकास, पूंजीवाद आदि से उपजी मानवीय संवेदना और सामाजिक–सांस्कृतिक संरचना के स्वरूप को देखा जा सकता है।

संस्कृति आदमी के सामाजिक जीवन का प्राण तत्व

है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति की कहानी बहुत पुरानी है। जंगली जीवन से सामाजिक जीवन की ओर बढ़ना सभ्यता है। संस्कृति का संबंध विचारों की दुनिया से है। धर्म, दर्शन, पूजापाठ, राष्ट्र, सामाजिक संगठन आदि उसकी मंज़िलें हैं। संस्कृति स्थान, परिवेश और परिस्थिति पर भी निर्भर होती है। भारत और क्रोएशिया में रीति–रिवाज़, पूजा –पाठ, खान–पान, वेश–भूषा, रहन–सहन आदि की दृष्टि से भिन्नता हो सकती है, लेकिन प्रेम, करुणा, दया, माया, ममता, उदारता, सहयोग, सहबंधुत्व, सहकारिता, राष्ट्रीयता आदि के धरातल पर हम अभिन्न हैं। यहीं पर संस्कृति आध्यात्मिकता और मानवीय मूल्यों के निकटस्थ दिखती है।

विगत कई महीनों से मैं क्रोएशियन संस्कृति को जानने और समझने का प्रयास कर रहा हूँ। भारतीय समाज के कतिपय रीति–रिवाज़ और वैचारिक सोच यहाँ के जीवन में भी व्याप्त थी। कतिपय मायनों में आज भी है। मैंने दींको शिमूनोविच (1873 –1933) की 'इंद्रधनुष' कहानी पढ़ी। प्रस्तुत कहानी में चार्दक कस्बे के सरदार और उसकी पत्नी की बेटी स्रीना के प्रति भेदभाव की मानसिकता इन शब्दों में व्यक्त होती है, "सरदार व सरदारनी सोचते थे कि कोई भी गीत मधुरता से गाना उनकी बेटी को शोभा नहीं देता, क्योंकि वह एक स्त्री है, पुरुष नहीं। इसीलिए उसे प्यानो खरीदकर भी नहीं दिया "[16] इसके आगे वे कहते हैं" लड़के जितना चाहें, खा सकते हैं, क्योंकि उन्हें बड़ा और शक्तिमान होने की ज़रूरत है। लेकिन, तुझे तो पतला और छरहरा बनना है। चेहरे को भी नीचा रख सकती है।"[17] फिर स्रीना ने एक विधवा से सुना "बड़े दुःख की बात है कि आपको कोई बेटा नहीं है।"[18] मार्को की अपनी पत्नी के प्रति अवसरवादिता और उसका यह कथन कि "बच्ची क्या खाक सुन्दर है। अरे, लड़कियों से तो ईश्वर भी खुश नहीं रहता।" [19] इसके अलावा स्रीना ने कहानी की पात्रा विधवा से सुना कि छोटी उम्र की लड़की इंद्रधनुष के नीचे दौड़ने से लड़का बन सकती हैं। अंततः लड़की होने की हीन भावना से छुटकारा पाने के लिए लड़का बनने की उम्मीद में वह इंद्रधनुष के नीचे दौड़ते हुए अपना प्राण दे देती है। भारत में बेटी के संदर्भ में आज भी कुछ अमानवीय सोच के लोग हैं। जिनके कारण 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' का नारा बुलंद करना पड़ा।

जैसा कि मैंने पहले 'जंतुओं की भाषा' और 'मेढकी' लोक कहानी का उल्लेख किया है। इसके साथ ही मैंने मारियाना के साथ 'अमेरिकी ड्रीम' कहानी का भी हिंदी में अनुवाद किया। प्राकृतिक उपादानों की भिन्नता के साथ कथ्य और शिल्प की दृष्टि से हिंदी और क्रोएशियन साहित्य में बहुत–सी समानताएँ मिलती हैं। क्रोएशियाई लोक कहानियों की भांति भारतीय लोक कथाएँ तोता–मैना, खरगोश, चूहा, सियार आदि जीव–जंतुओं की कहानियों से भरी पड़ी हैं। 'अमेरिकी ड्रीम' कहानी में क्रोएशिया के जॉन का अमेरिका में बसने का जो सपना है, वह आज भी भारतीय जनमानस में दिवा स्वप्न की भांति मौजूद है।

मैंने क्रोएशियन साहित्य के अतिरिक्त दो मकदूनी कहानियों का भी साम्यता की दृष्टि से अवलोकन किया है। 1950 के पूर्व जौर्जी अबाजिएब की कहानी 'तमाखू की डिबिया' में इस्तांबुल के अंतर्गत जिस साम्प्रदायिक दंगे में खैरदीन बेग की हत्या की जाती है; उसकी आग इक्कीसवीं शताब्दी में भी नहीं बुझी है। खैरदीन बेग का बेटा सुलेमान बेग आधुनिक एवं उसका मित्र गोतसे रूढ़िवादी सोच का है। बचपन में बिछुड़ने के बाद दोनों की मुलाकात यात्रा करते समय गाड़ी में होती है। जहाँ एक दूसरे के संवाद से दोनों के विचारों का पता चलता है। "आपको लगता है जो बात पेरिस में है, वह इस्तांबूल में नहीं। कमबख्त यूरोप कैसे जवान दिमागों को खराब कर रहा है।"

ब्लादो मालेस्की की दो कहानियों में पहली कहानी 1954 में लिखी "पहली रात" में कामरेड सान्द्रे और स्तोयांका जर्मनी के आतंक के बीच बिना किसी तड़क–भड़क और गाजे– बाजे के बीच शादी करते हैं। इस बात पर अफ़सोस व्यक्त करते हुए सान्द्रे शादी की पहली रात में कहता है–

"कोई बात नहीं, स्तोयांका, उदास मत हो.... हमारा भी वक्त आएगा।" दोनों एक–दूसरे का प्रेम मनुहार करते हैं। सान्द्रे उसके सौंदर्य पर मुग्ध होता है कि इसी बीच क्रूमे की घबराई हुई आवाज़ आती है – "जर्मन आ रहे हैं, सान्द्रे, छिप जाओ कहीं!" [22] सान्द्रे अपनी पत्नी को छोड़कर भागता है। कुछ दूर जाने के बाद उसे पता चलता है कि वे उसके ही आदमी हैं। फिर वह उन्हें घर ले आता है, क्योंकि वे बहुत भूखे हैं। स्तोयांका कामरेडों को खाना खिलाती है और साथ ही विदा करते समय उन्हें अपने हाथ से बुने हुए मोजे उपहार स्वरूप भेंट करती है। सान्द्रे उन्हें रात में ग्रीस के रास्ते बाहर निकलने के लिए रास्ता दिखाने के लिए स्तोयांका से पुनः जल्दी वापस आने का वादा करके चला जाता है।

1954 में लिखी दूसरी कहानी "खिला हुआ दिन" सान्द्रे के जीवन का दूसरा भाग है। जहाँ वह मेसेडोनिया की राजधानी स्कोप्ये में शादी के बाद दूसरी पहली रात आर्टिस्ट नादा के साथ बिताता है। सान्द्रे यहाँ आने के बाद स्तोयांका के साथ बीते समय एवं घटनाओं को नकार देता है। सान्द्रे कहता है – "सीखना ज़रूरी है : लोग कहते हैं कि अगर नहीं सीखेंगे, तो समय कुचल देगा हमको। समय लोगों को पहले ही कुचल चुका है.... तुम रो रही हो? रो लो! और मैं.... मैं, मैं नहीं रो सकता। तब भी नहीं रोया था जब पाब्ले ने बताया था कि तर्पे मशीनगन गले में लगाए बर्फ़ पर गिर गया था। तब भी नहीं रोया था, जब चटाई पर तुम्हारे साथ नहीं सो पाया था। तुम तब भी रोई थीं. ...।" यह सब ख्यालों में बड़बड़ाता हुआ सान्द्रे – "देखो, स्तोयांको.... एक बात कहूँ। इन सब बातों को छोड़ो। खास बात ये है कि तुम तो तुम ही रहीं, पर मैं, मैं नहीं रहा।" [24] सामान्यतः अन्याय, अत्याचार और जुल्मों का शिकार नारी ही रही है। इसे हम किसी एक देश की सीमा में बांधकर नहीं देख सकते।

हिंदी साहित्य में ऐसी कई कहानियाँ हैं। जिसमें स्वतंत्रता सेनानी सुहाग रात को छोड़कर देश की रक्षा के लिए निकल पड़ता है। इसके अतिरिक्त अन्य कहानियों में नशे में धुत्त पुरुष पत्नी को छोड़कर प्रेमिका या वेश्या के पास चला जाता है। पत्नी धीरे–धीरे अपने त्याग और समर्पण से उसे सही राह पर लाती है।

संस्कृति का संबंध मूलतः मानवजीवन के सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश, परंपरा और नैतिक मूल्यों से अधिक है। यह विभिन्न भूभागों से जुड़े हुए मानव समुदायों की भाषा, आचार–विचार, आहार–व्यवहार, धार्मिक संस्कार, नैतिक मूल्यों, कला आदि के माध्यम से व्यक्त होती है। भारतीय संस्कृति विश्व की सबसे प्राचीन लगभग 5000 हजार वर्ष पुरानी है। इसकी खास बात यह है कि इसमें कई संस्कृतियाँ आईं और घुलमिल के एक हो गईं। मैंने भारतीय संस्कृति की झलक क्रोएशिया की लोक परंपराओं, रूढ़ियों और संयुक्त परिवार की परंपराओं में देखी। मुझे जाग्रेब के सिटी सेंटर में 20 से 24 जुलाई 2016 को यहाँ की सरकार द्वारा आयोजित 50वें अंतरराष्ट्रीय लोकनृत्य को देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ, जिसमें यूरोप के विभिन्न देशों के साथ मुख्य रूप से क्रोएशिया के विभिन्न भूभागों से कई लोकनृत्य मंडल आए थे। स्त्रियों ने लहंगा और पुरुषों ने मिरजई जैसी वेशभूषा पहन रखी थी। स्त्री–पुरुषों के सिर ढके हुए और छोटी–छोटी लड़कियों ने उत्तर भारत की लड़कियों की तरह फीते के फूलों के साथ चोटी बांध रखी थी। लोकगीतों की भाषा उनकी अपनी–अपनी थी। जब मैंने लोकगीतों के विषय में जानकारी ली, तब पता चला कि ये गीत जन्म, विवाह और खेत– खलिहानों के हैं। इनके अंदर बीच–बीच में मनोरंजन भी किया जा रहा था। विवाह गीत में मैंने दूल्हे और दुल्हन को अलग वेश–भूषा में कुछ रस्में निभाते एवं कतिपय मिट्टी एवं अन्य धातुओं के बर्तनों तथा शहनाई, बांसुरी, ड्रम वाद्य–यंत्रों को देखकर उत्तर भारत की शादी की याद तरोताज़ा हो उठी।

भारतीय जनमानस में व्याप्त लोक परंपराएँ और रुढ़ियाँ क्रोएशिया के समाज में भी व्याप्त हैं। जब मैंने धीरे–धीरे यहाँ की जीवन–शैली और सामाजिक

संस्कृति को जानने–समझने का प्रयास किया तब देखा कि कई स्तरों पर कुछ समानताएँ देखने को मिलीं। यहाँ के समाज में सामान्य रूप से छींक आने पर निजड्रावलजे (niazdravlje) बोलकर लोग स्वस्थ होने की मंगल कामना करते हैं। काली बिल्ली का रास्ता काटने पर तीन बार थू.... करके दोष निवारण किया जाता है। दैनिक जीवन में किसी शुभ या अन्य कार्य को करने या जाने के पहले लकड़ी से बनी किसी वस्तु को तीन बार ठोंकते हैं, ताकि कार्य में कोई विघ्न न पैदा हो। शादी के दिन के पहले दूल्हा–दुल्हन को विवाह की पोशाक में नहीं देखते। इसे अशुभ माना जाता है। किसी शुभ कार्य में कांच का टूटना अशुभ माना जाता है। ऐसी अन्य कई रूढ़ियाँ हैं, जो क्रोएशियाई समाज में शताब्दियों पूर्व से चली आ रही हैं। भारत में भी ऐसी रूढ़ियों–परंपराओं का पालन लोक एवं बुद्धिजीवी वर्ग में भी हो रहा है।

भारत भाषा, धर्म, जाति, सम्प्रदाय, रीति–रिवाज़, आचार–विचार, खान–पान, रहन–सहन, वेश–भूषा, कलाओं आदि से युक्त विविधताओं का देश है। क्रोएशिया में इतनी विविधताएँ नहीं हैं। फिर भी यह राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक एकात्मकता एवं मानवीय मूल्यों का धनी देश है। यहाँ की ज़िंदगी सुबह दोबरदान से शुरू होकर शाम को दोविजेन्या से खत्म होती है। सहयोग की भावना भी प्रबल है। संयुक्त परिवार एवं सामाजिकता की परंपरा अन्य यूरोपीय देशों की तुलना में ठोस है। संसाधनों की सुविधा होने के कारण मानव शक्ति की जगह मशीनी शक्ति का प्रयोग अधिक होता है। यहाँ गुणवत्ता पर विशेष ध्यान दिया जाता है। खान–पान की विविधता यहाँ कम है। भौगोलिक एवं अन्य कारणों से जिन चीजों का भारत में निषेध है, वह यहाँ की संस्कृति का अभिन्न अंग है। परिवार और शैक्षणिक संस्थाओं में आपसी रिश्तों का तानाबाना भारत से कुछ भिन्न है। अब विश्वग्राम की संकल्पना में संस्कृतियों का आयात–निर्यात तेज़ी से हो रहा है। भारत की विभिन्नता में एकता का सूत्र अब वैश्विक स्तर पर लाने का प्रयास किया जा रहा है। इक्कीसवीं सदी में विश्वग्राम की संकल्पना से विभिन्न देशों की भाषा, साहित्य और संस्कृति को करीब आने का सुअवसर प्राप्त होगा।

संदर्भ–सूची :

1. प्रेमचंद, प्रतिनिधि कहानियाँ–संकलन संपादन, भीष्म साहनी–भूमिका से
2. समकालीन यूगोस्लाव कविता–1, संचयन एवं अनुवाद–श्यौराजसिंह जैन–भूमिका
3. क्रोएशियन साहित्य, सम्पादिका–नाताषा नेदेल्यकोविच पृष्ठ –25
4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–जायसी ग्रन्थावली पृष्ठ –137
5. क्रोएशियन साहित्य, सम्पादिका–नाताषा नेदेल्यकोविच पृष्ठ–28
6. समकालीन यूगोस्लाव कविता–1, संचयन एवं अनुवाद –श्यौराजसिंह जैन
7. वही–पृष्ठ–03
8. नागार्जुन, प्रतिनिधि कविताएँ–संपादक–नामवर सिंह, पृष्ठ –36–37
9. अंतरजाल से
10. समकालीन यूगोस्लाव कविता–1, संचयन एवं अनुवाद–श्यौराजसिंह जैन पृष्ठ 10–11

= 11,12,13, 14,15, वही– पृष्ठ – 20, 29, 92, 112, 133

16 क्रोएशियन साहित्य, सम्पादिका–नाताषा नेदेल्यकोविच, पृष्ठ–53

= 17,18 ,19 वही–पृष्ठ–54,59, 63

20– समकालीन यूगोस्लाव कहानी–01(मकदूनी कहानियाँ) पृष्ठ–05

= 21,22 वही–पृष्ठ–17,18

ज़ाग्रेब विश्वविद्यालय, क्रोएशिया

rnmishra@unigoa.ac.in

लोक–साहित्य हिंदी की नींव

– श्री धनराज शम्भु

जन्म : 14–11–1956

शिक्षा : साहित्य रत्न, कोविद, जी.सी.ई. ए.लेवल, टीचर्ज सर्टिफ़िकेट, डिप्लोमा इन मानेजमेंट

प्रकाशन :

- 'अभिलाषा' (कहानी–संग्रह, 2006), 'और चेतना जाग उठी (एकांकी–संग्रह, 2002), 'प्रतीक्षा एक नयी सुबह की' (एकांकी–संग्रह, 1998), 'एहसास' (कविता–संग्रह, 1996), 'तरंगिनी' (कविताएँ, 1976)
- आपकी कविताएँ और गज़लें अन्य पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं तथा 'वसंत', 'आक्रोश', 'पंकज', 'रिमझिम', 'प्रभात' आदि पत्रिकाओं में आपकी रचनाएँ छपती रहती हैं

पुरस्कार : आपको श्रेष्ठ नाटककार, वर्धा सरस्वती, काव्यश्री, माननीय नागरिकता, श्रेष्ठ लेखक आदि सम्मान प्राप्त हैं।

संप्रति : आप सरकारी प्राथमिक पाठशाला, मॉरीशस में हिंदी शिक्षक हैं। साथ ही आप हिंदी प्रचारिणी सभा के मंत्री, सरकारी हिंदी शिक्षक संघ के सचिव तथा हिंदी स्पीकिंग यूनियन के काउन्सिल के सदस्य भी हैं।

लोक–साहित्य उद्भव व विकास

'लोक' शब्द 'लो च दर्शने' धातु से निर्मित हुआ, जिसका शब्दार्थ इस प्रकार है– 'लोक' वह है जो एकदम साधारण, सरल एवं निश्छल होता है। उनमें बनावटीपन या कृत्रिमता का अभाव होता है। 'साहित्य' का अर्थ विद्वानों द्वारा 'हितेन सहितम्' बताया गया है। अर्थात् वह रचना जिसके माध्यम से सभी लोगों का हित हो, जीवन का रस, सौम्य एवं विचार की प्राप्ति हो। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लिखा भी है कि "लोक–साहित्य का विस्तार अत्यंत व्यापक है। आम जनता जिन शब्दों में गाती, हँसती, बोलती और खेलती है, सब 'लोक साहित्य' के अंतर्गत आता है।" अनेक परिभाषाओं में से एक परिभाषा यह भी मानने योग्य है – 'जो परिष्कृत तथा शिष्ट–मर्यादा से प्रभावित होकर अपनी पुरातन स्थिति में रहकर अपनी परम्पराओं तथा रुढ़ियों पर विश्वास रखता है, चाहे वह ग्राम हो या नगर – उसके द्वारा रचित साहित्य की कोई भी विधा लोक–साहित्य कहलाती है।" गीत, कथा, गाथा, रूपक, नाट्य, सूक्तियाँ, ललना, पहेलियाँ, मुहावरे आदि इसके अंतर्गत आ जाते हैं।

डॉ. सत्यव्रत सिन्हा के अनुसार "वास्तव में हमारा लोक–साहित्य संस्कृति की उच्चतम भावनाओं को अपनी अपरिष्कृत भाषा में संजोकर रखता है। हमारा लोक–साहित्य पाश्चात्य देशों का 'फ़ोक' नहीं है, अपितु हमारे देश का धार्मिक, सांस्कृतिक और सभ्यता का समष्टि रूप है।"

लोक–साहित्य के लिए शास्त्रीय ग्रंथों में गहराई से विचार करने की आवश्यकता नहीं होती। साधारण लोगों द्वारा साधारण लोगों के लिए साधारण भाषा में रचित साहित्य होता है। इसमें शिक्षा, कल्प, निरुक्त व्याकरण, ज्योतिष छन्द आदि वेदांगों का अभाव होता है। इसका उद्देश्य तो धार्मिक भावना को अभिव्यक्त करना होता है। कामचलाऊ शिक्षा का ज्ञान प्रदान करना और मुख्य रूप से लोगों का मनोरंजन करना होता है। विशेषताओं की ओर यदि ध्यान दिया जाए, तो कहा जा सकता है कि यह साहित्य मौखिक रूप से प्रवाहित होता है, कोई विशेष नामवाले लेखक या रचनाकार नहीं के बराबर हैं, कलापक्ष की ओर ध्यान केंद्रित नहीं किया जाता है। धर्म एवं संस्कृति की ओर अधिक झुकाव होता है। चारित्रिक विकास की ओर

ध्यान देना और मानव मूल्य का पालन कर और सही अनुशासन आदि पर ध्यान देना लोक–साहित्य की परम विशेषताओं में से हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि जनसाधारण के मुख से उच्चरित और हस्तलिखित शब्द व वाक्य लोक–साहित्य बनकर अमूल्य निधि बन जाते हैं।

मॉरीशस का लोक–साहित्य और हिंदी

हिंद महासागर में ज्वालामुखी के विस्फोट से बना हुआ सात सौ बीस वर्ग मील का मॉरीशस एक छोटा–सा द्वीप है, जिसकी आबादी लगभग 1.2 मिलियन है। यहाँ पर विश्व के चार धर्मों को मानने वाले लगभग दस भाषाएँ बोलते–पढ़ते और लिखते हैं। सौभाग्य की बात यह है कि यहाँ के लोग कई अंतरराष्ट्रीय भाषाएँ बोल, लिख और समझ लेते हैं, जिनमें अंग्रेज़ी, फ्रेंच, अरबी, चीनी आदि हैं। यहाँ से हिंदी भाषा को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने के लिए सरकार और हिंदी प्रेमी कार्यरत हैं। बहुभाषी और बहुसांस्कृतिक होने के साथ–साथ यहाँ के हिंदी साहित्यकार साहित्य की लगभग सभी विधाओं में अपनी कलम चला लेते हैं। उनकी रचनाएँ विश्व स्तर की होने के साथ–साथ कई विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में भी शामिल की गई हैं। उन विधाओं में से यहाँ का लोक–साहित्य भी एक ऐसी विधा है, जिसके माध्यम से हिंदी भाषा की प्रगति में अद्भुत रूप से कार्य किए गए हैं, लेकिन उसका उल्लेख बहुत कम किया गया है।

मॉरीशसीय लोक–साहित्य यहाँ पर भारतीय मज़दूरों के आने से पहले ही से था। पुनः शर्तबन्द मज़दूरों के आने से इतिहास में एक नया पन्ना ही खुल गया। वे अपने साथ धार्मिक ग्रंथ के रूप में 'रामायण' तो लाए, बाद में उनका 'सत्यार्थ प्रकाश' और अन्य ग्रंथों से परिचय हुआ। मार्के की बात यह है कि उन्होंने अपने साथ धर्म–संस्कृति से सने व सराबोर लोक–संस्कृति, लोकगीत, लोक–नृत्य भी लाकर लोक–साहित्य की नींव तो डाली ही; साथ में उसे अपनी धमनियों में बसाकर जीने भी लगे। मानव जीवन में अन्य साहित्य से कहीं ज़्यादा लोक–साहित्य का प्रभाव पड़ता है। इस साहित्य का निर्माण जन्म से पहले शुरू होकर मृत्यु के बाद तक जारी रहता है। यह एक ऐसी विधा है, जिसके द्वारा मनोरंजन तो होता ही है, साथ में शिक्षाप्रद होने के साथ यह हृदय की गहराई से नाता जोड़ लेता है।

'लोक साहित्य' के बारे में कई महान व्यक्तियों ने अपने–अपने विचार दिए हैं, जिसके आलोक में हमें उसके महत्त्व की जानकारी अवश्य प्राप्त होगी। वास्तव में, लोक–साहित्य, जनश्रुति एवं किवदंतियों पर अधिक आधारित है। लोक ज़्यादातर अनपढ़, कमपढ़ या जो परिष्कृत वर्ग के नहीं होते हैं, ऐसे लोगों से प्रचलित होता है। ऐसा वर्ग पुरातन परिस्थितियों में जीकर, परम्पराओं, आशाओं, आकांक्षाओं, विश्वासों और मान्यताओं का पूरा एवं सच्चा प्रतिनिधित्व करता है। मनुष्य क्या सोचता है? उसकी कल्पना कैसे आगे बढ़ती है? वह क्या कुछ पाता या खोता है, उसकी आशाएँ कैसे पूरी या अधूरी रह जाती हैं – लोककथाएँ इन तमाम बातों का 'एलबम' है। दूसरे विद्वान का कहना है कि "यदि किसी देश के पुराने जीवन और पुरानी संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करना हो, तो उस देश के लोक–साहित्य को अवश्य पढ़ना चाहिए।" अन्य विद्वानों के अनुसार लोक–साहित्य परम्परागत वसीयत के रूप में एक अमूल्य निधि है। इसके माध्यम से मानव प्रवृत्ति और परिवर्तन तथा रूढ़ियों एवं शैलियों में ढलती संस्कृति की पहचान होती है। भारतीय जातक कथाएँ, पंचतंत्र और हितोपदेश में पशु–पक्षी, पेड़ों आदि द्वारा बोलवाकर लोक–साहित्य का विकास किया गया। ये इतने रोचक रहे कि अन्य कई देशों के विद्वान भी प्रभावित हुए, जैसे फ्रांस के 'लाफ़ोंतेन' की

1868 में प्रकाशित 'फ़ाब दे लाफ़ोंतेन' अत्यंत प्रसिद्ध हो गई। इसका अनुवाद कई भाषाओं में हुआ। 1978 में श्री मूनेश्वर सोनू ने फ़ोंतेन की चौबीस कथाओं को हिंदी में प्रकाशित करवाया, जो लोक–साहित्य से सम्बन्धित थीं। इन्हें मॉरीशसीय संदर्भ में ही रचा गया था। श्री केशवदत्त चिंतामणि ने भी 15 लोक कथाओं का प्रकाशन करवाया। इस तरह स्वर्गीय डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि, डॉ. इन्द्रदेव भोला, श्रीमती सीता रामयाद, श्री धनराज शम्भु, श्री रामदेव धुरंधर, श्री जनार्दन कालीचरण, विष्णु मधु, सत्यवती जगमोहन आदि भी लोक–साहित्य पर अपनी कलम चला चुके या अभी भी लोक–साहित्य में इनकी पहचान बनी हुई हैं।

मॉरीशस में लोक–साहित्य के माध्यम से हिंदी का प्रचार–प्रसार काफ़ी हद तक माना जा सकता है। लोक–साहित्य का आगमन बड़े ही ऐतिहासिक ढंग से हुआ है। 1834 में जब शर्तबन्द मज़दूर यहाँ आने लगे तब अपने साथ दिमाग में और लिखित रूप में भी रामायण आदि की कुछ पंक्तियाँ लेते आए। दिन भर की थकान को भूलने के लिए जब चोरी–चुपके पेड़ के नीचे बैठते थे, तब अनायास ही उनके मुख से रामायण के पद, दोहे, चौपाइयाँ, सोरठे, भजन स्तुति आदि निकलने लगते थे। इसी तरह वे अपनी धमनियों में सभी पर्व–त्योहारों को संजो लाए थे, तभी हरेक उत्सव में वे उन गीतों को मौखिक रूप से गाते थे। हर उत्सव की विधियों के अंतर्गत गीत गाते थे और ऐसी स्थिति में कभी अपनी ओर से गीत लिख भी देते थे। यही गीत आगे चलकर साहित्य बन गए। इसी तरह अपने बच्चों को सुलाने के लिए या सुलाते समय कहानी सुनाने का प्रयत्न करते थे, कभी स्वरचित कहानियाँ भी सुनाई जाती थीं। ये कहानियाँ ही साहित्य की गद्य विधा बनीं और जब उन कहानियों में अपनी ओर से कुछ कल्पनाएँ जोड़कर सुनाते थे, तब लोककथा बन जाती थी, जो बाद में लोक–साहित्य बनकर सामने उभर आई।

मॉरीशस के प्रारंभिक दौर का लोक–साहित्य भोजपुरी, कैथी और अवधी तथा बिहार की अन्य भाषाओं से प्रभावित था। उस समय उनकी रचनाओं को साहित्य की संज्ञा भी नहीं दी जाती थी। हालाँकि वे अपनी अनुभूति को दुख–दर्द के साथ अभिव्यक्त करते थे फिर भी लेखन–प्रक्रिया की ओर अग्रसर नहीं हो पाते थे। इतने सालों तक सारा साहित्य या तो मौखिक रूप में पाया जाता था या टूटी–फूटी हिंदी में। सही तौर पर श्री गणेशी द्वारा रचित कविता 'होली' 1913 से मॉरीशसीय हिंदी लेखन प्रकाश में आया। कहा जा सकता है कि इसका श्रीगणेश धार्मिक–सांस्कृतिक तत्वों पर आधारित था, जैसे धार्मिक अनुष्ठान के समय संस्कार के गीत, मौसमानुसार ऋतुगान, समय–समय पर पर्वों व त्योहारों के सम्बन्ध में कथा–वार्ता एवं गान, श्रमिकों के मनोरंजन हेतु एवं थकान की स्थिति में रामायण–पाठ व गीत तथा रीति–रिवाज़ के दौरान मिश्रित गाने आदि द्वारा लोक–साहित्य में जान आ गई। तबसे लेकर आज तक यह परंपरा चली आ रही है। प्राचीनता की नींव पर ही यह साहित्य ज़ोर पकड़ रहा है। यहाँ लोक–साहित्य का जन्म ही शोषण, ज़ुल्म, बर्बरता, नृशंसता, सामाजिक अन्याय, विषमता आदि से संघर्ष और नई दिशा की तलाश में हुआ है। यहाँ की ग्रामीण–जनता दिवस भर के परिश्रम से शांति पाने के लिए चौपालों में एकत्र होकर लोक–साहित्य के माध्यम से अपना मनोरंजन करती थी, लोक–साहित्य की नींव यही से बनने लगी।

मॉरीशस का साहित्य अंतरराष्ट्रीय प्रसिद्धि प्राप्त है। फ्रेंच और हिंदी साहित्य ही यहाँ का समृद्ध साहित्य है। अंग्रेज़ी भी इसमें जुड़ जाती है, लेकिन स्वतंत्रता के पश्चात् 1968 से अब तक हिंदी साहित्यकारों ने सर्वाधिक पुस्तकों का प्रकाशन करवाया है। प्रमुख

लेखकों में प्रो. बासुदेव विष्णुदयाल, अभिमन्यु अनत, ब्रजेंद्र कुमार भगत, सोमदत्त बखोरी, डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि, सूर्यदेव सिबोरत, डॉ. बीरसेन जगासिंह, प्रह्लाद रामशरण, रामदेव धुरंधर, स्व. भानुमति नागदान, पूजानन्द नेमा, डॉ. उदय नारायण गंगू, राज हीरामन, डॉ. हेमराज सुंदर, धनराज शम्भु, इंद्रदेव भोला, महेश रामजीयावन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

मॉरीशस के लोक–साहित्य में दो बोलियों का प्रमुख योगदान है। भोजपुरी और क्रियोल। भोजपुरी इसलिए कि हमारे पूर्वजों का संघर्ष इसी से प्रारम्भ हुआ था। अपने सारे सत्संग, पूजा–पाठ, दुख–सुख, परम्परा, रीति–रिवाज़, कथा–कहानी, लोरी, बिरह गीत आदि इसी भोजपुरी के माध्यम से अभिव्यक्त करते थे। इसी प्रकार अफ्रीका महाद्वीप से आए हुए क्रियोली समुदाय के लोग फ्रेंच के बिगड़े हुए रूप क्रियोली भाषा में अपनी अभिव्यक्ति 'सेगा' के माध्यम से करते थे, जो 'सागा' याने बिरह गीत का ही दूसरा शब्द है। आज ये दोनों ही गीत 'सेगा' और 'गीत गवाय' संयुक्त राष्ट्र संघ की सूची में विश्व–विरासत रूप में समा गए हैं। पहले यहाँ पर अन्य भारतीय भाषाओं जैसे मराठी, तमिल, तेलुगु आदि का भी अस्तित्व था, पर आज ये कम पड़ गए हैं। बहुत सारे भोजपुरी और क्रियोल के लोक साहित्य को अंतरराष्ट्रीय भाषा अंग्रेज़ी और फ्रेंच में भी अनुवाद कर दिया गया है। लोक–साहित्य के अंतर्गत हम भोजपुरी तथा अन्य भाषाओं के लोकगीत, कहानियाँ, मुहावरे आदि पा सकेंगे, परंतु आज भी इनके रचनाकार अज्ञात ही हैं। कारण यही है कि उस ज़माने में ये सारी रचनाएँ मौखिक रूप में ही प्रयुक्त होती थीं। इन गीतों में डॉ. ब्रजेंद्र भगत का नाम प्रथम स्थान पर आता है और उनकी पुस्तक 'मधुकलश' इस गीत संग्रह का प्रथम प्रकाशन माना जाता है। इसी प्रकार आगे चलकर उन्हीं की 'मधु बहार', 'मधुलिका' आदि पुस्तकें उल्लेखनीय हैं। अन्य साहित्यकारों में गद्यात्मक रचनाओं के लिए डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि, श्री प्रह्लाद रामशरण, श्री दिमलाला मोहित, डॉ. सरिता बुधु आदि के नाम आदर से लिए जाते हैं। पद्य रचनाओं में गीत, भजन, शादी गीत, स्तुति, बिरहा, झुमर, राजनीति, पर्वोत्सव आदि पर आधारित रचनाएँ होती थीं और गद्य रचनाओं में कहानियाँ, नाटक, पहेलियाँ, लोकोक्तियाँ–मुहावरे आदि होते थे।

लोक–साहित्य रचना में श्री प्रह्लाद रामशरण का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने दर्जनों रचनाओं के साथ 'मॉरीशस की लोककथाएँ' प्रथम और द्वितीय भाग प्रकाशित कर लोक–साहित्य की नींव को मज़बूत कर दिया। इन रचनाओं का अनुवाद अंग्रेज़ी में भी 'फ़ोक टेल्स ऑफ़ मॉरीशस' (Folk tales of Mauritius) से हुआ। श्री दिमलाला मोहित ने गीतों, मुहावरों, पहेलियों तथा धार्मिक एवं परम्परागत गीतों पर अधिक बल दिया। इस तरह केशवदत्त चिंतामणि, पूजानन्द नेमा, डॉ. उदय नारायण गंगू, प्रो. रामप्रकाश, सुचिता रामदीन आदि लोक–साहित्य की खान में मोती भरते रहे हैं। लोक–साहित्य को समृद्ध एवं विस्तृत करने के लिए महात्मा गांधी संस्थान का बड़ा योगदान है। यह कहा जा सकता है कि मॉरीशस के लोक–साहित्य की पहचान माँ की गोद में लोरी–कहानी सुनने से लेकर पूर्व प्राथमिक, प्राथमिक, माध्यमिक यहाँ तक कि तृतीयक स्तर पर इस साहित्य के अध्ययन से प्राप्त की जाती है। पाठ्यक्रमों में 'मुड़िया पहाड़', 'सिंह पर्वत', 'अंगूठा पहाड़', 'शामारेल' तथा अन्य अनेक रचनाओं को शामिल किया गया है। इस साहित्य पर शोध–प्रबंध लिखकर एवं शोध–कार्य करके डॉ. ओरी ने पी.एच.डी. की डिग्री प्राप्त की थी।

डॉ. कुबेर मिश्र ने भी अपनी डिग्री इसी विषय पर प्राप्त की है। इसी प्रकार क्रियोल के माध्यम से शाले

बेसाक, चीफ़्रेर, मॉसेल काबों, देव विरासामी आदि ने लोक–साहित्य में चार चाँद लगाए हैं।

तत्कालीन समय में भी लोकसाहित्य पर काफ़ी कार्य किया जा रहा है। आजकल विश्वविद्यालयी स्तर पर इस विधा पर खोज–कार्य हो रहे हैं और शोध–प्रबंध तैयार किए जा रहे हैं। सांस्कृतिक आदान–प्रदान कार्यक्रम के माध्यम से लोक–साहित्य पर विश्व में विचारों, रचनाओं व लेखन, शिक्षण, पठन और प्रवचन पर ध्यान दिया जा रहा है। कई देशों में कई शिक्षार्थी अपने बी.ए., एम. ए. या पी.एच.डी. की डिग्री के लिए शोध–कार्य कर रहे हैं। हमारे स्थानीय पाठ्यक्रम तथा रेडियो, टी.वी. पर भी कार्यक्रम प्रस्तुत किए जा रहे हैं, ताकि अधिक से अधिक लोग लोक–साहित्य से परिचित हो सकें। इस विधा की रक्षा के लिए सरकार या अन्य निजी संस्थाओं द्वारा गोष्ठियों, परिचर्चाओं, वाद–विवादों का अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आयोजन किया जाता है। कार्टून और फ़िल्में भी बन रही हैं। निष्कर्षतः यह कहना समीचीन ही होगा कि लोक–साहित्य की नींव पर हिन्दू संस्कृति धर्म और भाषा सुदृढ़ हुई है और सुदृढ़तर बनती जा रही है। भले ही हमारे पूर्वजों को लोक–साहित्य की जानकारी नहीं थी, फिर भी अपनी पीड़ा भरी गाथाओं को मौखिक रूप में व्यक्त किया था, जो आज प्रभावशाली विषय बनकर उभर चुका है। लोकगीत, लोककथा, लोकवार्ता, पहेली, पारिवारिक नाते और रिश्तों के शिष्टाचार व मूल्य लोक–साहित्य में आज धरोहर व अमूल्य निधि बन गए हैं। यह साहित्य महत्त्वपूर्ण है। यह कहा जा सकता है कि मॉरीशस की संस्कृति, यहाँ की धर्मस्थापना, साहित्यिक प्रसिद्धि शांति और स्थिर राजनीति एवं विकास का श्रेय इसी लोक–साहित्य को जाता है।

उदाहरणार्थ एक दो पक्तियाँ देखी जा सकती हैं :

'सबकी भलाई में आपकी भलाई है। जो कछु बिचार सु पंडित लोई। जाके रूप न रेखा वरण नहिं कोई। पहले हरदिया बिप्र चंढ़ावेलन, पाछे सजन सब लोग। नाटकबा सिनेमा बा केकर संगे जयबो। हमजैबों सोफ़रवा के साथ। तोहर मुँह में करिखा लगी। बॉट–चुटके खयबऽ तड बड़ा घरे जयबऽ। अकेले खयबऽ त डोम घरे जयबऽ। लालच बर पर लोक न्याय' आदि–आदि....

संदर्भ ग्रंथ :

1. मॉरीशस का भोजपुरी लोक–साहित्य एवं भारतीय संस्कृति
2. मॉरीशस लोकगीतों का विवेचनात्मक अध्ययन
3. संस्कार मंजरी
4. भोजपुरी लोकगाथा
5. मधुकलश
6. मॉरीशस का इतिहास
7. मॉरीशस की भोजपुरी में प्रचलित लोकोक्तियाँ, मुहावरे व पहेलियाँ
8. मॉरीशस में भोजपुरी गीतों का विवेचनात्मक अध्ययन
9. मॉरीशस लोक–साहित्य और संस्कृति
10. इन्द्रजाल
11. मॉरीशस की भोजपुरी परंपराएँ

काँ तोरेल, मॉरीशस

dhunrazsembhoo@gmail.com

मॉरीशस में हिंदी बाल–साहित्य तथा उसका भविष्य

–श्री सोमदत्त काशीनाथ

बाल–साहित्य का अभिप्राय

जहाँ ऐसा माना जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण है, वहीं बाल–साहित्य की परिधि उक्त परिभाषा से कहीं अधिक सीमित है। बाल–साहित्य समाज के बाह्य–परिवेश से अधिक बालकों के आन्तरिक–परिवेश से जुड़ा हुआ होता है। अतः बाल–साहित्य का प्रभाव बालक के मन–मस्तिष्क पर पड़ता है, जिसके परिणामस्वरूप वह लोक–कथाओं, बाल–कहानियों, कविताओं एवं नाटकों से प्राप्त मूल्यों, गुणों, संवेदनाओं आदि को अपने व्यक्तित्व–निर्माण की प्रक्रिया में उपयोगी बनाता है।

सरल शब्दों में कहा जाए तो, बाल–साहित्य साहित्य का वह सरलीकृत रूप होता है, जिसकी रचना बालकों की आयु तथा उनकी मानसिक अवस्था को ध्यान में रखकर की गई होती है। वास्तव में, बाल–साहित्य में बाल–मनोविज्ञानानुरूप होने की विशेषता तो होती ही है, परंतु साथ में वह व्यक्ति में साहित्य के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करने वाला तथा प्रौढ़ साहित्य की दुनिया में यात्रा कराने का प्रथम पड़ाव भी होता है। अर्थात् जिन बच्चों के मन में बचपन से ही, बाल–साहित्य के माध्यम से, साहित्य के प्रति आकर्षण होता है, वे आजीवन साहित्य के साथ जुड़ जाते हैं तथा उनके मध्य से ही भावी साहित्यकार निकलते हैं।

इस संदर्भ में **भोला, इंद्रदेव** ने (2003) लिखा है कि 'पाठ्य–पुस्तकों के अतिरिक्त बच्चों को पूरक पुस्तकें भी पढ़नी चाहिए। यदि उनके अनुकूल मनोरंजक, शिक्षाप्रद एवं आकर्षक पुस्तकें पढ़ने को दी जाए, तो उन पुस्तकों को वे चाव से पढ़ेंगे ही और प्रभावित भी होंगे। हमारी हिंदी का भविष्य उन बच्चों के हिंदी–अध्ययन पर निर्भर करेगा। वे ही बड़े होकर हिंदी के सेनानी एवं लेखक, कवि बनेंगे।' (2003, पृष्ठ 180)

जन्म : 02–06–1975

शिक्षा :

- पी.एच.डी., (जी. एस. युनिवर्सिटी, भारत)
- एम.ए. (कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय)
- बी. ए. (दिल्ली विश्वविद्यालय)

व्यवसाय :

- हिंदी अध्यापक, प्राथमिक स्कूल, 2002
- उप–प्रधान, वाक्वा सांस्कृतिक सभा हिंदी पाठशाला

प्रकाशन :

- कविताएँ एवं लेख, जीजिविषा पत्रिकाओं में प्रकाशित।
- निबंध, विश्व हिंदी पत्रिका 2017 में प्रकाशित।
- विविध विषयों पर लेख, आक्रोश पत्रिका में प्रकाशित।

पुरस्कार :

- भारतीय उच्चायोग द्वारा विविध विषयों पर निबंध–लेखन के लिए पुरस्कृत।
- विश्व हिंदी सचिवालय द्वारा निबंध–लेखन के लिए प्रथम पुरस्कार से सम्मानित।
- विश्व हिंदी सचिवालय द्वारा भाषण–प्रतियोगिता में द्वितीय पुरस्कार से सम्मानित।
- महात्मा गांधी संस्थान के तमिल विभाग द्वारा निबंध प्रतियोगिता में द्वितीय पुरस्कार से सम्मानित।

सदस्य : सदस्य, सरकारी हिंदी अध्यापक संघ

बाल–साहित्य के उद्देश्य तथा उसके गुण

बाल–साहित्य बच्चों का मार्ग–दर्शन करने वाला, उनकी भावनाओं को ढालने वाला, उचित परिस्थितियों में उनकी अभिव्यक्ति कराने वाला एवं बालकों से नैतिक मूल्यों का अनुपालन कराने वाला प्रथम आधार होता है।

दूसरी ओर, बाल–साहित्य को बच्चों के मानसिक तथा बौद्धिक विकास के लिए बहुमूल्य संसाधन माना जा सकता है। इस संबंध में, **चिंतामणि, मुनीश्वरलाल** (2001, पृष्ठ 187) की निम्न उक्ति उल्लेखनीय है कि उत्तम साहित्य का उद्देश्य न केवल बालकों का मनोरंजन तथा ज्ञान–वर्धन करना होता है, बल्कि वह बच्चों के नैतिक, मानसिक तथा भावात्मक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अतः बाल–साहित्य में, बालकों के व्यक्तित्व के निर्माण तथा विकास के लिए दिशाएँ प्रदान करने के गुण होने चाहिए।

सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि बाल–साहित्य पर चिंतन करने वाले अधिकांश विद्वान इस मान्यता का प्रतिपादन करते हैं कि बाल–साहित्य का लक्ष्य केवल नन्हे बालकों तथा किशोर पाठकों का मनोरंजन करने तक ही सीमित नहीं रहता है, अपितु उससे यह अपेक्षा भी की जाती है कि वह कोमल मस्तिष्क वाले पाठकों के चरित्र–निर्माण में कारगर सिद्ध हो। अतः व्यक्तित्व–निर्माण की प्रक्रिया में, विकास के विभिन्न स्तरों पर बालकों, किशोरों एवं युवकों को कब कौन से जीवन–मूल्यों से परिचित कराना चाहिए और कितनी मात्रा में औषधि के रूप में उन्हें वह ज्ञान देना चाहिए, इस बात का ध्यान रखने वाला सधा हुआ बाल–साहित्यकार एक अनुभवी चिकित्सक की भाँति सिद्ध होता है। निश्चय ही बाल–मनोविज्ञान वह आधार है, जो किसी बाल–साहित्यकार को अपने लक्ष्य की प्राप्ति में निपुण बनाता है।

भोला, इंद्रदेव ने (2003) इस विचार पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि "जिस लेखक को बाल–मनोविज्ञान का ज्ञान होता है, वही लेखक बाल–साहित्य का सृजन करने में अधिक सफ़ल होता है।.... एक लेखक को बाल–स्तर पर उतरकर बहुत सोचकर ही मापे शब्दों में बाल–साहित्य का सृजन करना पड़ता है।" ***(2003, पृष्ठ 178–179)***

मॉरीशसीय लोक–साहित्य और बाल–साहित्य का संबंध

किसी भी देश के इतिहास के साथ–साथ उसकी अपनी लोक–कथाएँ एवं कहानियाँ होती हैं, जो उसके महत्वपूर्ण स्थानों एवं विचित्र प्राकृतिक दृश्यों के साथ इस प्रकार जुड़ी हुई दिखाई पड़ती है, जैसे वे कथाएँ अस्वाभाविक होते हुए भी स्वाभाविक बन जाती हैं। **भोला, इंद्रदेव** ने (2006) लोक–कथा की परिभाषा देते हुए कहा है कि "जिस कहानी को लोग सुन–सुनकर तथा सुना–सुनाकर जन–जन में प्रचलित कर दी जाती है, वह लोक–कथा है। लोक–कथा धार्मिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक, सामाजिक, लौकिक, मनोवैज्ञानिक आदि धरातल पर आश्रित है।"

इसमें कोई संदेह नहीं कि लोक–कथाओं की यह विशेषता होती है कि वे बड़ों के साथ–साथ बच्चों को भी मनोरंजित करने में सक्षम होती हैं। इसीलिए किसी भी देश, समाज अथवा किसी विशेष भाषा में व्यवहार कर रहे संप्रदाय–विशेष में, प्रचलित बाल–कथाओं पर, दृष्टि डालने से यह पता चलता है कि कहीं–न–कहीं वर्तमान बाल–साहित्य की कड़ियाँ वहाँ की लोक–कहानियों के साथ जुड़ी हुई हैं। मॉरीशस का हिंदी बाल–साहित्य भी यहाँ की प्रचलित–अप्रचलित लोक–कथाओं से सुसंबद्ध है। किन्हीं देशों में ये लोक–कथाएँ किसी भाषा की प्रथम संपादित बाल–पुस्तकों का रूप ग्रहण करके आती हैं, तो कहीं विपुल सृजनात्मक बाल–कथाओं के आने के बाद ये मुख्य धारा की बाल–रचनाओं से आकर जुड़ जाती हैं। सभी स्थितियों में भाषा–विशेष के लोक–साहित्य का बाल–साहित्य में समाविष्ट होने से उसका बाल–साहित्य सुदृढ़ एवं संपुष्ट तो होता ही है, साथ ही बालकों का उस भाषा तथा उसके साहित्य के प्रति अभिरुचि भी बढ़ती है।

"**पीयर्सन** ने इस बात का पूर्णतया समर्थन करते हुए कहा है कि पाश्चात्य देशों में चौदहवीं शताब्दी के अंतिम चरण से, टंकण एवं मुद्रण की सुविधा के आने से लेकर 1865 में 'ऐलिस ऐडवेंचर्स इन वॉन्डरलैंड' (Alice Adventures in Wonderland) के प्रकाशन तक, बच्चे लोक–साहित्य का रसास्वादन करने के साथ अपना मनोरंजन करते थे–

"What did children read before the publication of Alice\ Children have always listened to and enjoyed folklore, and after the development of the printing press in the late 1400's, they were able to read folk literature" (**2017, Page 5**)

मॉरीशस के संदर्भ में देखा जाए तो यह स्पष्ट होता है कि, यहाँ बाल–साहित्य सृजन और लोक–साहित्य संकलन की प्रक्रियाएँ साथ–साथ चलीं। इस दिशा में **महात्मा गांधी संस्थान** और **हिंदी लेखक संघ** के साथ–साथ मॉरीशस के कुछ वरिष्ठ लेखक, जैसे कि **प्रह्लाद रामशरण, डॉ. बीरसेन जगासिंह** आदि ने लोक–साहित्य तथा बाल–साहित्य की खाई को पाटने का प्रयास किया। जहाँ **महात्मा गांधी संस्थान** ने बालोपयोगी पत्रिका 'रिमझिम' का प्रकाशन आरंभ किया वहीं **हिंदी लेखक संघ** ने 'बाल–सखा' की शृंखला आरंभ की। बीच में, **हिंदी संगठन** की 'सुमन' बाल–पत्रिका भी इस यात्रा में जुड़ गई। इन बाल–पत्रिकाओं में बाल–कथाओं, बाल–कविताओं, चुटकुलों–बुझावलों के साथ–साथ लोक–कथाओं को भी स्थान दिया गया। **भोला, इंद्रदेव** ने प्रह्लाद रामशरण के बाल – साहित्य के अन्तर्गत दो पुस्तकें गिनाई हैं–

(1) 'मॉरिशस की लोक–कथाएँ', जिसका प्रकाशन 1988 में हुआ, तथा

(2) 'बौने का वरदान', जो 1995 में छपकर आई। ***(2003, पृष्ठ 179)***

इसमें कोई संदेह नहीं कि स्थानीय लोक–साहित्य–संकलन एवं बाल–साहित्य–सृजन में एक अनूठा तालमेल रहा है, जिसके चलते, कछुए की चाल में सही, किंतु स्थानीय बाल–साहित्य लेखन के प्रति नए लेखकों को अग्रसर होते हुए देखा जा रहा है।

मॉरीशस के हिंदी बाल–साहित्य की रूप–रेखा

मॉरीशस में बाल–मनोविज्ञानानुकूल बाल–साहित्य की रचना करने का प्रयास हुआ है और किसी छोटे देश में, सीमित संसाधनों को देखते हुए, पिछले दशकों में किए गए प्रयासों को सराहनीय ही मानना चाहिए। अंग्रेज़ी, फ्रेंच और क्रियोल भाषाओं में बालोपयोगी सचित्र पुस्तकों को बढ़ावा देने के लिए कई सरकारी एवं गैर–सरकारी संगठन सामने आए। हिंदी में बाल–साहित्य के सृजन तथा प्रकाशन में अपना हाथ बँटाने के लिए **महात्मा गांधी संस्थान** के साथ–साथ **हिंदी लेखक संघ, हिंदी संगठन तथा हिंदी प्रचारिणी सभा** जैसी स्वयंसेवी संस्थाएँ भी सामने आईं।

पाश्चात्य भाषाओं की भाँति, हिंदी में भी बालोपयोगी पुस्तकों एवं पत्रिकाओं के प्रकाशन के प्रयास हुए, किंतु कहीं–न–कहीं उन कृतियों में कमियाँ दिखाई देती हैं। प्रस्तुतीकरण में शुष्कता एवं आकर्षण की कमी के कारण बहुत से बच्चे उनकी ओर बढ़ते ही नहीं। क्या इसमें बाल–साहित्य लेखकों का दोष है या प्रकाशकों का? वास्तव में, दोष संसाधनों की कमी का है। बिना किसी सरकारी अनुदान के, अर्थात् आर्थिक सहायता की कमी में, छप रही इन पुस्तकों एवं पत्रिकाओं में चित्रों, रंगों आदि को सीमित रखना पड़ता है, क्योंकि इन्हें कम दामों में बेचना पड़ता है या फिर मुफ़्त में वितरित करना पड़ता है।

इन्हीं कारणों से प्रकाशक के पास आर्थिक लाभ की संभावना नहीं होती। इसीलिए प्रकाशकों के सामने एक ही विकल्प बचता है, कम निवेश और कम हानि का विकल्प। संभवत: इसीलिए मॉरीशस के हिंदी लेखकों के बीच बाल–साहित्य की रचना को लेकर वह उमंग अथवा जोश नहीं दिखाई दिया है, जो कि बड़ों के लिए लक्षित साहित्य की रचना को लेकर आरंभ से रहा है।

मॉरीशस में हिंदी में बाल–पुस्तक–लेखन का विकास

चिन्तामणि, मुनीश्वरलाल का मानना है कि वर्ष 1980 से वर्ष 2000 तक के अंतराल में स्थानीय लेखकों का ध्यान विशेष रूप से बाल–साहित्य सृजन की ओर आकर्षित हुआ। किंतु दुख की बात यह है कि इन लेखकों के अनवरत प्रयासों के उपरान्त भी आज भी हमारे देश में बालोपयोगी साहित्य की कमी है।

1956 में, **प्रो. वासुदेव विष्णुदयाल** ने एक बाल–कथा–संग्रह 'व्यवहार प्रकाश' प्रकाशित किया। इस पुस्तक की भाषा बालकों के स्तर की है। सरल, सुबोध तथा प्रभावशाली भाषा में मॉरीशस का प्रथम सुगठित–सुनियोजित बाल–साहित्य की पुस्तक है।

1974 में, **प्रह्लाद रामशरण** ने 'मॉरीशस की लोक–कथाएँ' में 15 लोक–कथाओं का संग्रह किया है। इनमें से 10 कहानियाँ मॉरीशसीय लोक–कथाओं पर आधारित हैं। बाकी की 5 कहानियाँ भारतीय लोक–कथाएँ हैं, जिन्हें मॉरीशसीय संदर्भ में ढाला गया है। अतः इस पुस्तक में मॉरीशस की संस्कृति की झलक मिलती है। **प्रह्लाद रामशरण** ने 1988 में मॉरीशसीय लोक–कथाओं की श्रृंखला में एक अन्य कड़ी जोड़ी, 'बौने का वरदान', जिसे उन्होंने नाम दिया।

1978 में, **भुवनेश्वर सोनू** ने फ्रेंच बाल–कहानी लेखक **ज़ाँ दे ला फ़ोंतेंन** की पशु–पक्षियों पर आधारित लोक–कथाओं को आधार बनाकर, छोटी–छोटी सारगर्भित एवं शिक्षाप्रद कहानियाँ लिखीं। इस रचना को उन्होंने 'ला फ़ोंतेंन की परी कथाएँ' नाम दिया।

1981 में, **डॉ. कामता कमलेश** ने दस बालोपयोगी कहानियों का संकलन 'मॉरीशस की बाल हिंदी कहानियाँ' नाम से किया। इन दस कहानियों की रचना मॉरीशस के दस प्रतिष्ठित साहित्यकारों ने की है। इनमें **अभिमन्यु अनत, प्रह्लाद रामशरण, चम्पावती बम्मा, हीरालाल लीलाधर, दीपचन्द बिहारी** आदि की बाल–कहानियाँ हैं।

2008 में प्रकाशित **डॉ. लालदेव अंचराज** की 'अंचराज–साहित्य संचयन' नामक पुस्तक में बाल–साहित्य भी है। 2009 में **भोला, इन्द्रदेव इन्द्रनाथ** की 'मॉरीशस की 25 बाल हिंदी कहानियाँ' पुस्तक में 'सुमानती का सुमन', 'माँ पालना झुलावे', 'मोटेराम और भूखी लड़की', तथा 'बैसाखी' जैसी मौलिक तथा मार्मिक कहानियाँ संकलित हैं। इन कहानियों में यथासंभव सरल एवं सुबोध भाषा का प्रयोग किया गया।

2010 में **भोला, इन्द्रदेव इन्द्रनाथ** द्वारा संपादित, **हिंदी लेखक संघ** ने 'मॉरीशस का बाल नाटक–संग्रह' का प्रकाशन किया तथा 2011 में **भोला, इन्द्रदेव इन्द्रनाथ** ने 'बच्चे मन के सच्चे – 102 बाल–कविताएँ, बाल–गीत, लोरियों और प्रार्थनाओं' का संकलन किया। इन पुस्तकों की भाषा तथा शैली को हमारे कोमल हृदय वाले पाठकों को ध्यान में रखकर गठित किया गया है।

2015 में, **धनराज शम्भु** ने 'मेरे अपने' शीर्षक से तीन पृथक साहित्यिक विधाओं का तीन संकलन प्रकाशित किया, इनमें एक बाल–कहानी–संग्रह है, एक बाल–एकांकी–संग्रह तथा एक बाल–कविता–संग्रह है। इन तीनों कृतियों में, **धनराज शम्भु** की स्वरचित कहानियाँ, एकांकी तथा कविताएँ हैं। इनकी विषयवस्तु को बालकों के स्तर तथा उनकी समझ को ध्यान में रखकर ढालने का यथासंभव प्रयास हुआ है। इनके विषय को जहाँ बाल–मनोविज्ञानानुकूल बनाने की कोशिश की गई है, वहीं बालकों एवं किशोरों के लिए बोध ागम्य बनाने के लिए इन पुस्तकों की भाषा को सरल और सुबोध बनाए रखने की चेष्टा की गई है तथा शैली को जटिल बनने से बचाया गया है।

इनके अतिरिक्त, 'रिमझिम' के भूतपूर्व संपादक, **डॉ. बीरसेन जगासिंह** ने 'मॉरीशस की पाँच बाल–कथाएँ' बाल–कहानी–संग्रह का संपादन किया है। इस पुस्तक में बच्चों की आयु तथा उनकी मानसिक अवस्था को ध्यान में रखते हुए, रची गई पाँच रोचक कहानियों का संकलन किया गया है। **महात्मा गांधी संस्थान** तथा **हिंदी लेखक संघ** द्वारा स्थानीय पत्रिकाओं में प्रकाशित बालोपयोगी सामग्रियों को संकलित करके उन्हें पुस्तकाकार देने का जो निरन्तर प्रयास हो रहा है, वह नितान्त सराहनीय है। इससे एक ओर जहाँ बाल–साहित्य की ओर अग्रसर होने वाले लेखकों को प्रोत्साहन मिलता है, वहीं दूसरी ओर मॉरीशस का बाल–साहित्य भी समृद्ध होता है।

मॉरीशस में हिंदी की बाल–पत्रिकाएँ

मॉरीशस में, हिंदी में प्रकाशित बाल–कहानियों, बाल–नाटकों,

बाल–कविताओं एवं बाल–गीतों को हमारे कम–उम्र के अबोध पाठकों तक पहुँचाने में, बाल–पत्रिकाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि पिछले दशकों में, भारत में प्रकाशित होने वाली 'बाल भारती', 'पराग' तथा 'चंदा मामा' आदि प्रचलित एवं स्तरीय बाल–पत्रिकाएँ आसानी से प्राप्त हो जाती थीं, किंतु आज या तो ये पत्रिकाएँ अनुपलब्ध हैं या फिर ऐसी पत्रिकाएँ महँगी होती हैं। इस बात में भी कोई संदेह नहीं कि हमारे यहाँ विविध पाठ्यक्रमों में निर्धारित पुस्तकों से परे आयात की हुई पुस्तकों और पत्रिकाओं की संख्या कम ही होती है। अतः आयात करने वाले बहुत कम संख्या में बाल–पत्रिकाएँ मँगाते हैं।

आज के युग में, केवल परीक्षाओं को ध्यान में रखकर पढ़ने वाले पाठक मिलते हैं। बड़ों में, मनोरंजन के लिए अथवा ज्ञानवर्धन के लिए हिंदी की पुस्तकों एवं पत्रिकाएँ पढ़ने वालों में जहाँ कुछ वृद्ध एवं मुट्ठी–भर वयस्क पाठक मिल जाते हैं, वहीं बालोपयोगी पत्रिकाओं में रुचि रखने वाले बच्चों की संख्या कितनी कम होगी इस बात का अनुमान कोई भी प्रबुद्ध विचारक आसानी से लगा सकता है। संभवतः इसीलिए आयातक भी ऐसी ही पुस्तकों एवं पत्रिकाओं में निवेश करने में बुद्धिमानी समझते हैं, जो किसी कोर्स के पाठ्यक्रम में सम्मिलित हों। ऐसी पुस्तकें जल्दी खप जाती हैं और उनके विक्रय से आयातकों को अपेक्षाकृत लाभ होता भी है।

जहाँ तक स्थानीय बाल–साहित्य को प्रश्रय देने वाली पत्रिकाओं का प्रश्न है, यह संकेत कर देना उचित होगा कि मॉरीशस में हिंदी से जुड़ी कोई भी ऐसी पत्रिका नहीं मिलेगी, जिसे अपने–आपको स्थापित करने के लिए एवं जीवित रखने के लिए संघर्ष न करना पड़ा हो। आरम्भ में, 'आर्योदय', 'वसन्त', 'बाल सखा', 'मुक्ता' आदि पत्रिकाओं ने जो भार उठाया था आगे चलकर इस भार को 'सुमन', 'रिमझिम' तथा 'पंकज' ने भी सफलतापूर्वक वहन किया।

1986 से 1996 तक छपने वाली 'स्वदेश' नामक साप्ताहिक पत्रिका में 'बच्चों का कोना' था, जिसमें बच्चों के लिए रोचक कहानियाँ, कविताएँ आदि का प्रकाशन होता था। आज मॉरीशस में, बालकों के लिए **हिंदी लेखक संघ** की ओर से 'बाल सखा' तथा **महात्मा गांधी संस्थान** द्वारा 'रिमझिम' का प्रकाशन हो रहा है। इन पत्रिकाओं में बच्चों के लिए कहानियाँ, कविताएँ, पहेलियाँ एवं चुटकुले आदि का प्रकाशन हो रहा है।

मॉरीशस में हिंदी के बाल–साहित्यकार

आज के वरिष्ठ स्थानीय बाल–साहित्य लेखकों में **भोला इन्द्रदेव, कालीचरण जनार्दन, रामफल आशा, जीबोध मुकेश, चिंतामणि मुनीश्वरलाल, रामनाथ शीला, प्रीतम सत्यदेव, नेमा पूजानन्द, पांडेय ठाकुरदत्त, श्रीमती जगमोहन, सीता हरिनारायण, अनत अभिमन्यु , नेमधारी सोनालाल, जगासिंह बीरसेन, डॉ. हेमराज सुन्दर तथा शम्भु धनराज** आदि कितने ही नाम मिल जाएँगे किंतु बाल–साहित्य के बीजारोपण तथा उसके पल्लवन का श्रेय **प्रो. वासुदेव विष्णुदयाल, रामशरण प्रह्लाद तथा भगत ब्रजेन्द्र कुमार** आदि प्रणेताओं को दिया जाना चाहिए।

इन दिग्गज साहित्यकारों के अतिरिक्त और भी नए नाम जुड़ रहे हैं। ऐसे नए लेखकों से यही आग्रह किया जा सकता है कि वे लिखते रहें, जिससे कि हिंदी बाल–साहित्य के इतिहास में उनका भी नाम अविस्मरणीय हो जाएगा। निरंतर चलने वाला प्रवाह ही नदी बनता है और नदी को न केवल नाम मिल जाता है, बल्कि वह अविस्मरणीय भी बन जाती है। जो धारा कुछ दूरी तय करके रुक जाती है, वह आसानी से विस्मृत हो जाती है।

अतः कोई भी लेखक बड़ा या छोटा नहीं होता। लेखक सक्रिय या निष्क्रिय होता है। सक्रियता की अविरल धारा ही उसे सफल बनाती है। यदि हमारे बाल–साहित्यकार यह समझ लेंगे, तो हमारे बाल–साहित्य को समृद्ध होने से कोई नहीं रोक सकेगा।

बाल–साहित्य–लेखन के नवीन सोपान

पीयर्सन ने (2017) बाल–साहित्य की आवश्यकताओं पर

विचार करते हुए कहा है कि 1865 में चार्ल्स डॉजडॉन द्वारा 'ऐलिस ऐडवेंचर्स इन वॉन्डरलैंड' (Alice Adventures in Wonderland) के प्रकाशन से पूर्व बालोपयोगी पुस्तकें नैतिक–मूल्यों के प्रचार–प्रसार तथा उनके प्रतिपादन की ओर ही लक्षित होती थी। अत: 1865 में, चार्ल्स डॉजडॉन ने जब से **लेविस कैरोल** के उपनाम से 'ऐलिस ऐडवेंचर्स इन वॉन्डरलैंड' का प्रकाशन किया, तब से बाल–साहित्य को देखने के दृष्टिकोण में ऐसा परिवर्तन आया है कि बाल–साहित्य की काया ही पलट गयी।

जिस प्रकार **लेविस कैरोल** ने बालकों के मनोरंजन को अपना ध्येय बनाकर पाश्चात्य बाल–साहित्य के लिए नए प्रतिमान स्थापित किए, उसी प्रकार आज हमारे लेखकों को बाल–हृदय–ग्राही साहित्य की रचना को अपना लक्ष्य बनाना चाहिए। बच्चों के साहित्य में यदि बचपना तथा भोलेपन का चित्रण न हो, तो वह कहाँ तक बाल–मनोविज्ञानानुकूल माना जाएगा – यह प्रश्न विचारने योग्य है।

स्थानीय बाल–साहित्य–लेखन में नवीनीकरण की आवश्यकता

आज हमारे बाल–साहित्य लेखकों को अपनी लेखन–शैली में नवीनता लाने की आवश्यकता है। यह एक सच्ची बात है कि हम अपने बच्चों को प्रौढ़ साहित्य पढ़ने के लिए नहीं दे सकते हैं। दूसरी ओर उसी प्रौढ़ साहित्य को सरलीकृत करके एक नवीन आवरण में बच्चों के समक्ष प्रस्तुत करना भी पर्याप्त नहीं। बाल–साहित्य में बालकों की कल्पना–शक्ति को आंदोलित करने की पूर्ण क्षमता होनी चाहिए।

जिस प्रकार 'ऐलिस ऐडवेंचर्स इन वॉन्डरलैंड' के लेखक **लेविस कैरोल** ने शुद्ध मनोरंजनार्थ बाल–साहित्य की आवश्यकता को समझा था, उसी प्रकार हमारे नवीन लेखकों को उपदेशार्थ बाल–साहित्य से हटकर शुद्ध मनोरंजनार्थ बालोपयोगी साहित्य की ओर अग्रसर होना चाहिए।

समय की माँग को समझते हुए, **पियर्सन** ने (2017) लिखा है कि पूर्व में बाल–साहित्य लेखकों का यह मानना था कि बालकों को शुद्ध मूल्यों की शिक्षा देने की आवश्यकता है, किंतु धीरे–धीरे इस अवधारणा में परिवर्तन आया और वे मूल्य–शिक्षा के साथ–साथ मनोरंजन पर भी ध्यान देने लगे। किंतु ऐसी पुस्तकें भी आज के बालकों का मनोरंजन करने में अक्षम हैं।

डॉ. नागेश पांडेय द्वारा रचित बाल–साहित्य के प्रतिमान पर अपने विचार देते हुए **राजपूत, कल्पना (2010)** ने यह माना है कि आज के युग के बाल–साहित्यकार के सामने अनेक प्रकार की चुनौतियाँ हैं और **डॉ. नागेश पांडेय** ने अपनी पुस्तक में उन चुनौतियों को सकारात्मक दृष्टि से देखने के लिए नए बाल–साहित्यकारों को आमंत्रित किया है।

अत: आधुनिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो यह स्पष्ट होता है कि जब सरकार, समाज तथा माता–पिता के समक्ष, अपने बच्चों को सुसंस्कृत करने तथा मानव–मूल्यों से युक्त चरित्र का विकास करवाने की असफलताएँ आती हैं तब जटिल प्रश्न उठने लगते हैं। आज हमारे प्रचलित बाल–साहित्य कहाँ पर च्युत हो रहे हैं, उन बिंदुओं पर विचार करते हुए **डॉ. नागेश पांडेय** ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि आज की भौतिकवादी संस्कृति में जी रहे बच्चों, माता–पिताओं, अध्यापकों तथा संपादकों के सामने मानव–मूल्यों का ह्रास, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का कुप्रभाव एवं भारी–भारी पाठ्यक्रमों का बोझ आदि महत्त्वपूर्ण चुनौतियाँ खड़ी कर रहे हैं।

वस्तुत: बाल–साहित्य बालक की विकास–प्रक्रिया में उसी प्रकार महत्वपूर्ण सिद्ध होता है, जिस प्रकार किसी नवांकुरित बीज को एक बड़ा वृक्ष बनाने में उपलब्ध पोषक तत्व सहायक सिद्ध होते हैं। वस्तुस्थिति यह है कि बाल–साहित्य की अनुपस्थिति में बालक अपनी अभिरुचियों का श्रृंखलाबद्ध विकास करने में असमर्थ रहता है।

मॉरीशस के हिंदी बाल–साहित्य का भविष्य

यह उल्लेखनीय बात है कि **हिंदी लेखक संघ** ने बाल–साहित्य की ओर नए रचनाकारों को प्रोत्साहित करने के लिए, कुछ सालों के अंतराल में, कार्यशालाएँ चलाने का

कार्यभार अपने ऊपर लिया है। कुछ वर्ष पहले, **डॉ. बीरसेन जगासिंह** ने नवोदित लेखकों के लिए एक कार्यशाला का संचालन किया। **हिंदी लेखक संघ** ने यह निश्चय किया है कि निकट भविष्य में, नई पीढ़ी के लिए, किसी अन्य प्रतिष्ठित साहित्यकार की सहायता से एक और कार्यशाला का आयोजन किया जाए।

वस्तुस्थिति यह है कि पिछले दो–तीन दशकों में, मॉरीशस में, हिंदी के बाल–साहित्य को समृद्ध करने में **हिंदी लेखक संघ, महात्मा गांधी संस्थान** तथा **हिंदी प्रचारिणी सभा** ने सतत प्रयास किया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि इन संस्थाओं ने बाल–साहित्य–सृजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, किंतु इस दिशा में आज इन संस्थाओं के साथ–साथ हिंदी भाषा के प्रचार–प्रसार से जुड़ी हुई अन्य संस्थाओं एवं संगठनों को भी जुड़ने की आवश्यकता है। इतना ही नहीं आज हमें नए बाल–साहित्य लेखकों के लिए अपनी रचनाओं को छापने के लिए सुविधाएँ प्रदान करने के अतिरिक्त आर्थिक सहायता प्रदान करने की योजनाएँ स्थापित करने की भी आवश्यकता है। शायद तभी मॉरीशस का हिंदी बाल–साहित्य पुष्पित एवं पल्लवित होगा।

सहायक–ग्रंथ अनुक्रमणिका :

1. अंचराज, लालदेव (2004)– अंचराज–साहित्य संचयन– सी–3/59, नागार्जुन नगर, सादतपुर विस्तार, दिल्ली 94, शब्दलोक।
2. आनन्दकुमार (1951)– मनोरंजक कथाएँ, राजपाल एंड सन्स, दिल्ली।
3. चिन्तामणि, मुनीश्वरलाल (2001)– मॉरीशसीय हिंदी साहित्य (एक परिचय), 4/5–बी, आसफ अली रोड, नई दिल्ली–110002, हिंदी बुक सेंटर।
4. भारती, जयप्रकाश (1998)– बाल–साहित्य इक्कीसवीं सदी में, शाहदरा, दिल्ली–110032, अभिरुचि प्रकाशन।
5. भोला, इन्द्रदेव 'इन्द्रनाथ' (2003)– भारत से बाहर विदेशों में हिंदी तथा मॉरीशस हिंदी–साहित्य की पृष्ठभूमि में हिंदी लेखक संघ की भूमिका (1834 से 2002 तक), 4/5बी, आसफ अली रोड, नई दिल्ली 110002, हिंदी बुक सेन्टर।
6. भोला, इन्द्रदेव 'इन्द्रनाथ' (2009)– मॉरीशस की 25 हिंदी बाल–कहानियाँ, 4/5–बी, आसफ अली रोड, नई दिल्ली–110002, स्टार बुक पब्लिकेशंस प्रा. लि।
7. भोला, इन्द्रदेव 'इन्द्रनाथ' (2010)– मॉरीशस का बाल–नाटक संग्रह, 4/5–बी, आसफ अली रोड, नई दिल्ली–110002, स्टार पब्लिकेशन प्रा. लि।
8. भोला, इन्द्रदेव 'इन्द्रनाथ' (2011)– बच्चे कितने अच्छे, 4/5–बी, आसफ अली रोड, नई दिल्ली–110002, स्टार पब्लिकेशंस प्रा– लि।

इंटरनेट स्रोत :

1. Pearson, 2017
www.pearsonhighered.com/assets/hip/us/hip_us_pearsonhighered/samplechapter/0132685833.pdf

Accessed on 13/04/2017

2. Rajput, Kalpana, 2010
http://kalpnareviews.blogspot.com/2010/12/bal-sahitya-ke-pratiman-by-dr-sanjay.html

Accessed on 15/04/2017

फ़्लाक, मॉरीशस

mskashinath@gmail.com

अंग्रेज़ी पद्य-रचना में देवनागरी का प्रयोग

– श्री भूपेन्द्र कुमार दवे

पद्य–रचना की आवश्यकताएँ

काव्य–रचना विश्व की सभी भाषाओं में होती रही है और इसे मानव मस्तिष्क से उपजी सर्वोच्च कला माना गया है। कृति में निखार लाने और उसे आकर्षक बनाने की चेष्टा, जो मनन व लगन से कार्य में निपुणता पाने की चाह उत्पन्न कराती है, वह कला कहलाने लगती है। कला का मुख्य आधार मनुष्य की सोच है, जो मस्तिष्क व हृदय से संचालित होती है और जब हम मस्तिष्क व हृदय की बात करते हैं, तब उसमें उन सब बातों का समावेश हो जाता है, जो हमारी जिज्ञासा, बुद्धि, भावना, ज्ञान, अनुभव आदि कल्पना के क्षेत्र में विचरण करते हुए हमारी आत्मा, जीवन, संसार आदि को ब्रह्मज्ञान की अनुभूति कराने लगती है। अतः हम कह सकते हैं कि कविता आत्मा की कलम से अंतर्मन की दवात में भरी प्रेरणा की स्याही से और जीवन के कागज़ पर अनुभवों की भाषा से भावपूर्ण सभ्य शब्दों के गहन अर्थ को उद्वेलित करती हुई, श्रद्धा को उकेरती हुई, मानवता को सम्मानित करती हुई, सात्विक विचारों का मंथन करती हुई, पाठकों का मन हर्षित कर उनसे संवाद करने की एक कला है।

कविता में छलकते आँसुओं की लयबद्धता, चिरस्मरणीय मुस्कानों की कोमलता, करुणा का रसास्वादन कराती सहजता, प्रेम की छलकती मदिरा की–सी मादकता, शौर्य की दमकती तलवारों की–सी चपलता, रौद्र में शिव की–सी सरलता, प्रकृति के सौंदर्य में ओस कणों की दमकते क्षणों की सुन्दरता, शिशु की खिलखिलाहट की मौलिकता, ममता के दिव्य प्रकाश की उपासना, चपल चंचल मन की सार्वभौमिकता, हृदय को द्रवित करती सोच की व्यापकता, जीवन के प्रत्येक पल की अनुभूति कराती वास्तविकता, पीड़ा से व्याकुल अंतः की सहनशीलता, पग–पग गिरकर उठने की अभिलाषा, आस–निराश के द्वंद्व में दृढ़ता से विजयी बन, आगे बढ़ने की अद्भुत क्षमता तथा चौंकाने वाली घटनाओं की वीभत्सता से काँपती साँसों की क्षणभंगुरता का सजीव चित्रण होता है।

पर क्या कलम यह सब करने की क्षमता रखती है? कला क्या अपनी खूबियाँ हर समय व्यक्त करने की प्रेरणा दे सकती है?

जन्म : 21–7–1941

शिक्षा : बी. ए. (ऑनर्स)– एफ. आई. ई., कोविद

व्यवसाय : भूतपूर्व कार्यपालन निदेशक, मध्यप्रदेश विद्युत मंडल

प्रकाशन :

- बंद दरवाज़े और अन्य कहानियाँ (कहानी–संग्रह)
- बूंद–बूंद आंसू (खंड–काव्य)
- Seven wonders of Hindu Philosophy
- Implanting love in life
- The Grandeur of Inner self, ('गर्भनाल' पत्रिका के फरवरी 2013 से अगस्त 2015 के 31 अंकों में 'मंथन' के अंतर्गत 'अंतरात्मा की भव्यता' शीर्षक से प्रकाशित)
- 'विद्युत मंडल' की गृह पत्रिकाएँ 'विद्युत सेवा' व 'प्रयास' में रचनाएँ प्रकाशित।
- अनेक पत्र–पत्रिकाओं तथा इ–पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित जैसे दैनिक भास्कर, देशबंधु, आमंत्रण, नवीन दुनिया, अभिव्यक्ति', 'अनुभूति', 'गर्भनाल', 'हिन्दी कुंज' आदि।
- अन्य कृतियाँ bhupendradave.blogspot.com /bhupendradave wordpress.com पर उपलब्ध हैं।

पुरस्कार :

- 'मध्यप्रदेश विद्युत मंडल' द्वारा अपनी कहानियों व लघुकथाओं के लिए पुरस्कृत।
- 'मध्यप्रदेश लघुकथाकार परिषद्' द्वारा अपनी लघुकथा के लिए पुरस्कृत।
- 'मध्यप्रदेश विद्युत मंडल' द्वारा कथा–सम्मान।
- 'त्रिवेणी परिषद्' द्वारा उषा देवी मित्रा अलंकरण प्राप्त।

सदस्य : मध्यप्रदेश विद्युत मंडल की पत्रिका विद्युत सेवा के संपादक मंडल से संबद्ध रहे।

शायद नहीं! पर, संभावनाओं की तलाश रुकती कहाँ है? मन कभी हताश होना नहीं चाहता। वह चंचल तो है ही, पर इसके साथ वह सतत चलायमान रहता है – वह रुकना नहीं जानता। कलम उसका साथ देने को लालायित रहती है और लिखती जाती है – शायद अनवरत, क्योंकि

सोच का क्षेत्र विस्तृत है और कल्पनाओं का विस्तार अनंत है।

कविता रुकती है, तो साँसें थम–सी जाती हैं – जीवन की क्षणभंगुरता को परिभाषित करने, वरना यह छोटा–सा जीवन क्या कुछ करना नहीं चाहता। कीट्स ने अपने जीवन में यही सोचा होगा जैसा निम्न पंक्तियों में मिलता है :

"हमने रुकती मिटती साँसों का अंत देखा है
हमने शून्य में विलीन होता अनंत देखा है।"

कीट्स की बात याद आते ही अंग्रेज़ी कविता के सौंदर्य की ओर ध्यान आकर्षित होता है। हर भाषा में की गई काव्य–रचना के मूल में भावों को व्यक्त करते समय सृष्टि–रचना के अनुरूप अपने को समरस प्रवाह व लयबद्धता से जोड़े रखना है। अन्य भाषाओं की तरह अंग्रेज़ी ने भी इसी को आधार माना है, किन्तु जब हम हिंदी भाषी अंग्रेज़ी में स्वयं काव्य रचने की सोचते हैं तब अनेक समस्याएँ सामने आने लगती हैं।

चित्रकारिता में सात रंगों का प्रयोग होता है। काव्य में सात स्वरों का तथा उन सात विधाओं का भी प्रयोग होता है, जिनका प्रयोग हम गद्य में करते हैं। ये विधाएँ हैं: अक्षर, शब्द, रस, अलंकार, चिह्न, व्याकरण और कल्पना। चित्रकारिता में ये विधाएँ क्रमशः रंग, बिंदु, रेखा, तीक्ष्णता (**sharpness**), दृढ़ता (**boldness**), आच्छादन (**shades**) और कल्पना हैं। चित्रकारिता में इनसे यथार्थता आती है, तो गद्य में अर्थ आती है। परन्तु पद्य–रचना में संगीत को भी जोड़ना होता है और इस कारण पद्य में स्वर–साधना का महत्व बढ़ जाता है। दो कलाओं का संगम कठिन होता है। काव्य में संगीत के आवरण के नीचे पद्य का विस्तृत पटल होता है और भाषा ही पद्य–रचना में सुगमता प्रदान करने की विशेषता रखती है।

देवनागरी की विशेषताएँ

हिंदी की देवनागरी लिपि को वैज्ञानिक लिपि कहा गया है। इस लिपि में सारे स्वर एवं व्यंजन के लिए अलग–अलग विशिष्ट चिन्ह हैं। व्यंजनों का उच्चारण स्वर के संयोग के बिना संभव नहीं, अतः देवनागरी में स्वरों का योग व्यंजनों से करने के लिए भी विशिष्ट चिन्ह बनाए गए हैं। ये चिह्न व्यंजनों से जुड़ जाते हैं और प्रथम दृष्टि में ही स्वरों के उद्देश्य को प्रकट कर जाते हैं और उसका उच्चारण भी परिभाषित कर जाते हैं। इस तरह देवनागरी सहज व सरल तरीके से विश्व में उत्पन्न होनेवाली सारी आवाज़ों को हू–ब–हू लिख सकती है तथा इस लिपि में लिखा गया शब्द किसी भी व्यक्ति द्वारा एक जैसा ही पढ़ा जाता है। देवनागरी में लिखे प्रत्येक शब्द का उच्चारण हरेक के मुख से एक–सा निकलता है और शब्दों को अपमानित नहीं होना पड़ता है। शब्दों के गलत उच्चारण न होने से, किसी अन्य अर्थ का बोध भी नहीं होता।

ध्यान रहे कि वैज्ञानिक आधार पर बनी देवनागरी का उद्‌गम इस सिद्धांत पर हुआ कि शब्दों की आत्मा उनका अर्थ है, जो लिपिरूपी शरीर में अपना अस्तित्व बनाए रखता है। स्वर शरीर की ज्ञानेंद्रियों की तरह हैं और व्यंजन कर्मेंद्रियों की तरह। ज्ञानेंद्रियाँ ही कर्मेंद्रियों को अर्थ प्रदान करती हैं। स्वर की अनुपस्थिति में व्यंजन उच्चारित नहीं होते और स्वर निरर्थक आकर उच्चारणों को भ्रमित नहीं करते। अतः लिपि को स्वर एवं व्यंजन के प्रयोग से स्पष्ट चित्रण प्रस्तुत करना चाहिए, न कि एक अमूर्त कला (**abstract art**) की तरह, जैसा कि रोमन लिपि करती है। लोग जब अपने–अपने हिसाब से शब्दों को पढ़ने लगते हैं, तब थोड़े से उच्चारण के हेरफेर से शब्द बदल जाते हैं और अर्थ कुछ का कुछ हो जाता है।

संस्कृत व हिंदी भाषा में जहाँ शब्द की संरचना अलंकारिक होने के साथ गूढ़ अर्थ लिए होती है। भाषा व लिपि का घनिष्ठ संबंध होता है, इसलिए उसे आत्मा व शरीर मानने की बात होती है।

यह इसलिए दृढ़ता से कहा जा सकता है कि देवनागरी लिपि में वे विशेषताएँ हैं, जो उसे आदर्श लिपि बनाती हैं। इसमें एक ध्वनि को व्यक्त करने के लिए केवल एक ही चिन्ह है। एक चिन्ह एक ही ध्वनि का बोध कराता है। मात्रा व वर्ण के चिन्ह एक–दूसरे से इतने भिन्न हैं कि दो चिन्हों में कोई संशय उपस्थित नहीं होता। इस लिपि की शिरोरेखा व्यवस्था व सौंदर्य का आधार बनी हुई है। रोमन लिपि की तरह छोटे (**lower case**) व बड़े (**upper case/capital**) अक्षरों की अनावश्यक जटिलता से यह लिपि मुक्त है।

आदर्श लिपि की प्रमुख विशेषता यह होनी चाहिए कि उस लिपि का ज्ञाता चाहे जो भी हो, एक–सा एवं सही उच्चारण करे, अर्थात् लिपि व ध्वनि में घनिष्ठता हो। इसके साथ वह प्रकृति की हर ध्वनि को व्यक्त करने का सामर्थ्य रखती हो। देवनागरी में यही सब कुछ है, जिसके कारण वह दूसरी सभी भाषाओं में प्रयुक्त अक्षरों को एकदम सटीक उच्चारण के साथ लिख सकती है। इस लिपि में लिखने व बोलने का अद्‌भुत समन्वय है। जो बोला जाता है, वह अक्षरशः वैसा ही लिखा जाता है। जो भी उस लिखे को पढ़ता है, वह बिना किसी जटिल प्रशिक्षण के सही उच्चारण के साथ पढ़ सकता है। वाणी की पवित्रता को सत्य बनाए रखने में ध्वनि का विशेष महत्त्व है। अतः यदि एक शब्द के उच्चारण में

दो लोगों में विभिन्नता आ जाती है, तो सत्य का स्वरूप ही बदल जाता है और सत्य का नाश हो जाता है।

देवनागरी प्रकृति की हर ध्वनि को स्वरूप दे सकती है – स्वर व व्यंजन के योग से। यह स्वर–व्यंजन का मिश्रण नहीं है – योग है! विभिन्न रंगों की तरंगों का योग, जो सूर्य के प्रकाश को परिभाषित करने लगता है। देवनागरी हर ध्वनि का हू–ब–हू चित्रण कर सकती है। जिस तरह चित्रकार चित्र बनाते समय रंगों के उतार–चढ़ाव (**shades**) पर विशेष ध्यान देता है, उसी तरह देवनागरी लिपि में स्वरों एवं व्यंजनों का सही जगह तथा सही मात्रा में प्रयोग होता है। यदि लिपि में मूक स्वर व व्यंजन आते हैं, तो पाठक की स्थिति वही हो जाती है, जो चित्र देखते समय रंग–अंधे (**color blind**) की होती है।

देवनागरी की इतनी सारी खूबियों के बाद भी यदि कोई इसे भूल जाने की सिफ़ारिश करता है, तो वह विज्ञान की उस खोज को नेस्तनाबूत करना चाहता है, जिसने इस लिपि का आविष्कार किया।

देवनागरी व रोमन लिपि का तुलनात्मक विश्लेषण

देवनागरी न तो चीनी लिपि की तरह कठिन है और न ही अंग्रेज़ी की तरह विचित्र। अंग्रेज़ी लिपि में मात्र **'a'**, **'e'**, **'i'**, **'o'**, **'u'** स्वर हैं और अन्य स्वरों को लिखने के लिए इन्हीं सीमित स्वरों का संयोग करना पड़ता है। अंग्रेज़ी में शुद्ध स्वरों व उनसे बने अन्य स्वरों का हर वक्त उच्चारण भी बदल जाता है। अंग्रेज़ी में उच्चारण की खामी सिद्ध करते हुए, निम्न उदाहरण द्रष्टव्य हैं: **'but'** – बट और **'put'** – पुट। भले ही लेखन में वे समान हैं, पर उच्चारण में एक दम ही अलग। इन दोनों की तरह ऐसे असंख्य हास्यास्पद उदाहरण देखने को मिल सकते हैं। फलतः पाठक सही उच्चारण करने में तकलीफ़ महसूस करता है। अंग्रेज़ी में शिक्षित होने के लिए सही उच्चारणों का अभ्यास करना पड़ता है, जो ज़िंदगी का एक बड़ा हिस्सा ले लेता है। जबकि देवनागरी में 'अ', 'आ', 'इ', 'ई', 'उ', 'ऊ', 'ए', 'ऐ', 'ओ', 'औ', 'अं', 'अः' स्वर हैं, जो संपूर्ण स्वर–संसार को व्यक्त करते हैं। व्यंजन की तुलना करें, तो वे भी अंग्रेज़ी भाषा में निश्चित नहीं हैं। अंग्रेज़ी में मूक स्वर व व्यंजन दोनों ही हैं। इस लिपि में लिखी गई अंग्रेज़ी शब्दों में भ्रामक उच्चारण की भरमार पाई जाती है। उदाहरणतः

- **'suit'** और **'soot'** के लिए 'सूट' का ही उच्चारण होता है।
- **'commission'** और **'creation'** के अंत में **'ssion'** और **'tion'** को भले ही समान रूप से लिखा नहीं गया हो, पर उच्चारण करते समय दोनों में 'शन' की ही ध्वनि है।
- **'schedule'**, **'Rajesh'** और **'should'** के आरंभ में **'sch'** और **'sh'** का प्रायः **"श"** ध्वनि ही सुनने में आता है।
- **'concern'** और **'certificate'** में पहले **'C'** का उच्चारण **'क'** है, तो दूसरे **'C'** का **'स'**।

अधिकांश अंग्रेज़ी शब्द संयुक्ताक्षर तथा अपने विचित्र हिज्जे–प्रणाली (**spelling system**) के कारण बेहद कठिन हैं। अंग्रेज़ी भाषा का सबसे बड़ा दोष उसकी लिपि का है। यही कारण है कि जब अन्य मातृभाषी अंग्रेज़ी का इस्तेमाल करते हैं, तो गलत उच्चारण के कारण, वे हँसी के पात्र बन जाते हैं और अंग्रेज़ी बोलने में झेंप जाते हैं। फलतः हीन भावना पैदा हो जाती है।

अंग्रेज़ी शब्दकोश में यदि देवनागरी में उच्चारण या अंग्रेज़ी के उच्चारण के नोटेशन न दिए गए होते, तो शायद ही विश्व में कोई ऐसा व्यक्ति (अंग्रेज़ भी) मिलता, जो पहली नज़र में सभी शब्दों का उच्चारण ठीक से बता सकता, उसका अर्थ व उपयोग बताना तो दूर की बात होती। हिंदी शब्दकोश में उच्चारण की व्याख्या देने की ज़रूरत भी नहीं होती।

पद्य–रचना में देवनागरी का महत्व

हिंदी भाषा में पद्य–रचना की कोई समस्या नहीं होती, क्योंकि उसकी लिपि ही उसकी सबसे बड़ी ताकत है। देवनागरी स्पष्ट कर देती है कि किस मात्रा से शब्द का उच्चारण लघु अथवा दीर्घ हो जाता है। फलतः प्रत्येक पंक्ति की एक निश्चित लम्बाई रखने के लिए मात्राओं की गिनती से काम बन जाता है। पद्य में लयबद्धता लाने के लिए मात्रा के आधार पर आठ 'गण' परिभाषित किए गए हैं, जो सहजता से समझे व प्रयुक्त किए जा सकते हैं।

मगण में लगातार तीन दीर्घ यानी 6 मात्राएँ होती हैं और उसे SSS चिन्ह से बताया जाता है। रगण में S।S से 5 मात्रा, भगण में S।। से 4 मात्रा, नगण में ।।। से 3 मात्रा, सगण में ।।S से 4 मात्रा, जगण से ।S। से 4 मात्रा, यगण में ।SS से 5 मात्रा तथा तगण में SS। से 5 मात्रा बनती हैं। लयबद्धता लाने के लिए योग्य मात्रा के शब्दों को चुनकर प्रयुक्त किया जा सकता है। प्रयास यह होता है कि पद्य की दो अथवा अधिक पंक्तियों में एकरूपता बनी रहे, ताकि वे गेय बनी रहें। हिंदी भाषा में

पर्यायवाची शब्दों की भरमार है और वह इसलिए है, ताकि आवश्यक मात्रा के अनुरूप शब्द चुने जा सकें। हिंदी भाषा में एक अर्थ के लिए कई शब्द मिलते हैं, जिनकी मात्राएँ अलग–अलग होती हैं। इससे काव्य–रचना में मदद मिलती है। उदाहरण के लिए 'आकाश' के पर्यायवाची शब्दों को लें। यथा :

शब्द	मात्रा
ख	।
नभ	।।
गगन	।।।
अंबर	ऽ।।
आकाश	ऽऽ।
आसमान	ऽ।ऽ।

काव्य–रचना में ऐसे समानार्थी शब्द, शब्दालंकार निर्मित करने में भी बहुत सहायक होते हैं। हिंदी भाषा में कई शब्दों के एक से अधिक अर्थ होते हैं। इससे 'यमक' अलंकार निर्मित होते ही हैं ।

हिंदी भाषा में अलंकार, रस आदि का सूक्ष्म उल्लेख किया गया है, परन्तु इन सबके लिए भाषा के पास अनुपम शब्दावली का होना आवश्यक है। हिंदी अकादमी, हैदराबाद की साहित्यिक त्रैमासिक पत्रिका 'संकल्य' के अक्तूबर–सितंबर, 1997 अंक में मेरा लेख 'हिंदी भाषा की विशेषताएँ' प्रकाशित हैं, जिसमें मैंने लिखा है कि भाषा का सौंदर्य उसकी अनुपम शब्दावली पर निर्भर रहता है। गद्य–पद्य में शब्दालंकार का होना भाषा को अति आकर्षक बना देता है। इसी उद्देश्य से हिंदी भाषा में प्रायः एक साथ उपयोग में लाए जाने वाले शब्दों की रचना में शब्दालंकार का ध्यान रखा गया है। तन–मन–धन, सुख–दुख, जल–थल, धर्म–कर्म, तर्क–अर्थ, आकाश–पाताल, अवनि–अंबर आदि ऐसे अनेक शब्द हैं, जो अपने अर्थ में विरुद्धार्थी होने के बावजूद बहुधा एक साथ प्रयोग में आते हैं। यहाँ यह भी गौरतलब है कि इन शब्दों में मात्रा समान है, जिससे ये काव्य–रचना में सहज उपयोगी साबित हो जाते हैं। इसी प्रकार अपने अर्थ में विविधता लिए शब्द, जो प्रायः एक साथ उपयोग में लाए जाते हैं, उनमें भी शब्दालंकार देखने को मिलता है, जैसे नाम–काम–धाम, खान–पान, पालन–पोषण, जीव–जन्तु, पेड़–पौधे, फल–फूल, साग–सब्ज़ी, पशु–पक्षी आदि। हिंदी भाषा में 'जन्म' व 'मरण' शब्द को देखें, तो इन समान मात्रा वाले शब्दों में एक 'म' से खत्म होता है, तो दूसरा 'म' से ही शुरू होता है। इससे जन्म–मरण के एक सूत्र में बँधे रहने का तथा पुनर्जन्म की प्रक्रिया का आभास होता है।

हम जानते हैं कि शब्दों में भाषा का स्पंदन निहित होता है और यह स्पंदन ही जीवन की प्रतिष्ठा है, अभिव्यक्ति का माध्यम है और अस्तित्व की हुंकार। शब्द, अनुभूतियों के विभिन्न रंगों, कल्पना की प्रत्येक उड़ान तथा भावनाओं के अथाह सागर के आंदोलन को चित्रित करने में सक्षम होते हैं। इन्हीं शब्दों को कविता में रूपांतरित कर प्रस्तुत करने में उसका प्रभाव द्विगुणित हो जाता है। श्रव्य माध्यमों में काव्य ही सर्वाधिक प्रभावशाली है, क्योंकि इसकी रचना के लिए शब्दों का चयन अति सूक्ष्मता से किया जाता है। काव्य में सात स्वर तथा सात विधा यथा – अक्षर, शब्द, रस, अलंकार, चिन्ह, व्याकरण और कल्पना समाहित हैं। सप्त स्वर तो शाश्वत हैं, पर सात विधा तो भाषा ही प्रदान करती है।

खैर, सभी भाषाएँ तो अपने–अपने तरीके से पूर्णता को प्राप्त हैं। इसलिए हम पुनः लिपि की ओर ध्यान ले चलते हैं।

अंग्रेज़ी पद्य–रचना और देवनागरी

यदि अंग्रेज़ी देवनागरी में लिखी जाए, तो अंग्रेज़ी में निहित उच्चारण की जटिलता मिटाई जा सकती है। जहाँ सारा विश्व अंग्रेज़ी को महत्व देने के लिए उतावला है, वहाँ देवनागरी उसे वह गुण अर्पित कर सकती है, जिससे सभी के अंग्रेज़ी के उच्चारण एक समान हो जाएँ और कोई भी अंग्रेज़ी बोलने वाला उपहास का शिकार न बने।

अंग्रेज़ी देवनागरी में लिखी जाए, तो उसे एक और फ़ायदा हो सकता है। मैंने देखा है कि हिंदी भाषा को पद्य–रचना में मदद मिलती है, उसकी लिपि से, क्योंकि इससे मात्रा गिनना बहुत सरल हो जाता है। अंग्रेज़ी भाषा में पद्य–रचना के लिए शक्ति (force), लंबाई (length), गति (pitch), वज़न (weight), शब्दाभाव (silence) – इन पाँच बातों पर ध्यान रखने के लिए स्वर, व्यंजन, शब्द के उच्चारण का समय और शब्दों के ज़ोर व वज़न आदि बातों पर ध्यान देना पड़ता है। परन्तु हम यदि अंग्रेज़ी पद्य को देवनागरी लिपि में लिखें और मात्रा की सिर्फ़ गिनती करें, तो यह काम सरल हो जाता है। मैंने 'ट्विंकल ट्विंकल लिटिल स्टार' तथा 'साम ऑव लाइफ़' सहित अन्य कई अंग्रेज़ी कविताओं को देवनागरी में लिखकर देखा है और पाया कि सभी अंग्रेज़ी कवियों की रचना हिंदी के गण यथा 'य मा ता रा ज भा न स ल गा' के पालन में खरी उतरती हैं। इस तरह देख सकते हैं कि देवनागरी की मदद से अंग्रेज़ी कविता

सहजता से लिखी जा सकती है। मैंने इसका प्रयोग भी करके देखा है। तुक (rhyme) और ताल (rhythm) का संबंध तो संगीत से है और वे हिंदी व अंग्रेज़ी में एक–से महत्वपूर्ण है। देवनागरी की यह विशेषता अपनाई जाए, तो अन्य भाषाओं में कविता–लेखन और आसान हो जाएगा। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

ट्विंकल ट्विंकल लिटिल स्टार
(Twinkle Twinkle Little Star)
211 211 111 21
हाउ आइ वंडर व्हाट यू आर
(How I wonder what you are)
21 21 211 21 2 21
अप आबव द वर्ल्ड सो हाइ
(Up above the world so high)
11 21 1 21 2 21
लाइक ए डाइमंड इन द स्काइ
(Like a diamond in the sky)
221 2 2121 11 1 21

(Twinkle Twinkle Little Star, Jane Taylor)

टेल मी नॉट इन मॉन्फुल नंबर्स
(Tell me not, in mournful numbers)
21 2 21 11 2111 212
लाइफ़ इज़ बट एंड एम्पटी ड्रीम
(Life is but an empty dream)
211 11 11 21 212 21
एंड दी सोल इज़ डेड दैट स्लम्बर्स
(For the soul is dead that slumbers)
21 2 21 11 21 21 212
एंड थिंग्स आर नॉट व्हाट दे सीम
(And things are not what they seem)
21 21 21 21 21 2 21

(A Psalm of life, Henry Wadsworth Longfellow)

उपरोक्त विधि से मैंने अंग्रेज़ी पद्य–रचना करने का प्रयास किया और एक कविता लिखी, जिसे 2016 में वर्डवीवर्ज़ (Wordweaver`s) की प्रतियोगिता में भेजी थी और इस रचना को 'Long List' (wordweavers.in/2016–poetry–longlist–bhupendra–kumar–dave.html) में स्थान भी मिला। इस सीमित सफलता ने सिद्ध कर दिया कि देवनागरी में अंग्रेज़ी लिखकर पद्य–रचना सुगमता से की जा सकती है। यह कविता आपके समक्ष प्रस्तुत है :

My prayer
I lived as God wished me to be
So whatever I am, let me be

Change not my simple name
Steal not my well earned fame
I fought, made no excuses lame
And won many a strenuous game

Remodel not my fate, let it be
As noble as my deeds
Carve no new faith for me
For mine is of golden seeds
My prayer is simple, dear to me
Not in vain it ever pleads
So whatever I am, let me be
Tarnish not my virtuous deeds

Let my song serve my heart
With pious rhymes of every heart
Let all play their well set part
Breathing a prayer with all their heart

Let all live as God wished them to be
And whatever they are, let them be.

जबलपुर, मध्य प्रदेश, भारत
b_k_dave@rediffmail.com

हिंदी शिक्षण एवं शोध

- **बोलचाल की हिंदी सीखना-सिखाना** - डॉ. हीरालाल बाछोतिया
- हिंदी प्रचारिणी सभा द्वारा हिंदी भाषा का पठन-पाठन एवं परीक्षाएँ - श्री यंतुदेव बुधु
- **हिंदी : पूर्व प्रस्थानों का संधान** - डॉ. रणजीत साहा
- फ़िजी में हिंदी शिक्षण - श्रीमती मनीषा रामरक्खा
- मध्य और पूर्वी यूरोप में हिंदी शिक्षण और शोध - डॉ. इमरै बंघा
- **अमेरिका में हिंदी शिक्षण व प्रशिक्षण** -डॉ. विजय गम्भीर

बोलचाल की हिंदी सीखना-सिखाना

--डॉ. हीरालाल बाछोतिया

भाषा को प्रायः मातृभाषा के संदर्भ में ही देखा जाता है। मातृभाषा प्रायः प्रथम भाषा भी होती है। मातृभाषा वह है, जिसे बच्चा अपनी माँ से सीखता है। मातृभाषा के बाद जो भाषा सीखी जाती है, वह द्वितीय भाषा कहलाती है। मातृभाषा और द्वितीय भाषा का परिवेश अनेक स्थितियों में समान होता है। उदाहरण के लिए हिंदी यदि किसी की मातृभाषा है, तो अन्य भारतीय भाषाएँ जैसे पंजाबी, तेलुगू, मराठी, गुजराती उसके लिए द्वितीय भाषा होगी। यह इसलिए कि इनका परस्पर संबंध और संपर्क है और सामाजिक–सांस्कृतिक दृष्टि से इनमें दूरी भी नहीं है।

अंग्रेज़ी लंबे समय से भारतीय भाषाओं के बीच रही है। इस कारण भारतीय भाषाओं के संदर्भ में अंग्रेज़ी को भी द्वितीय भाषा मान लिया गया है। अंग्रेज़ी भाषा सामाजिक–सांस्कृतिक दृष्टि से भारतीय भाषाओं से एकदम भिन्न है, लेकिन परस्पर संपर्क के कारण भारतीय अंग्रेज़ी का ऐसा स्वरूप उभरा है, जिससे वह द्वितीय भाषा के रूप में स्थापित हो गई है। इसी प्रकार हिंदी भी अपनी मातृभाषा बोलनेवाले भारतीय भाषा–भाषियों के सामाजिक व्यवहार का एक विकल्प है। भारत की दो भिन्न भाषाएँ बोलनेवाले परस्पर संपर्क के लिए हिंदी का प्रयोग करते हैं। इसलिए बोलचाल की हिंदी सीखना एक व्यावहारिक विकल्प है।

भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार लिखित भाषा अपूर्ण भाषा है और मौखिक भाषा ही पूर्ण भाषा है। लिखित भाषा में अनुतान, लय, बलाघात, विराम आदि की समुचित अभिव्यक्ति नहीं हो पाती। अतः पूर्ण भाषा अर्थात् सुनना और बोलना पहले सिखाया जाए तथा वाचन और लेखन बाद में। यदि हमारा उद्देश्य मात्र वाचन सिखाना ही है, तो भी इस सिद्धांत को नकारा नहीं जा सकता। भाषा की आधारभूत वाक्य–संरचनाओं पर मौखिक रूप से अधिकार कर लेने के बाद ही छात्र वाचन की योग्यता का विकास अच्छी तरह कर सकता है। इस तरह जो छात्र भाषा को मौखिक रूप से सीखता है, वह अपने आप या थोड़ी–सी सहायता से बड़ी जल्दी और लगन से वाचन करना या पढ़ना सीख लेता है। पर वह भाषा के मौखिक रूप को स्वतः नहीं सीखता, उसे शिक्षक की सहायता की आवश्यकता होती है।

व्यवसाय :
- एन. सी. इ. आर. टी में एसोसिएट प्रोफ़ेसर तथा हिंदी प्रकोष्ठ के अध्यक्ष।
- (संप्रति) अवकाश प्राप्त।

प्रकाशन :
- कविता की 3 पुस्तकें
- 5 औपन्यासिक कृतियाँ
- यात्राध्यायावरी की 3 पुस्तकें
- 'भाषा' पर 3 पुस्तकें
- 'शिक्षा' पर 2 पुस्तकें
- शोध व समीक्षा की 2 पुस्तकें
- संपादन की 3 पुस्तकें
- अन्य पुस्तकों, दर्शिकाओं, अभ्यास–पुस्तिकाओं का निर्माण

पुरस्कार : हिंदी अकादमी के साहित्यकार सम्मान सहित अनेक सम्मान व पुरस्कार

भाषा–शिक्षक सीधा भाषा–विज्ञान नहीं पढ़ाता, वह एक ऐसी भाषा पढ़ाता है, जो आगे चलकर भाषा–विज्ञान के अध्ययन का आधार बनता है और जिसका विवेचन भाषा वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा ही संभव हो पाता है। इस आलेख का उद्देश्य बोलचाल की भाषा सीखने–सिखाने की प्रक्रिया को स्पष्ट करना है। वास्तव में, बोलचाल की भाषा सीखना–सिखाना एक ऐसा व्यावहारिक कार्य है, जो बिना भाषा–विज्ञान की सहायता से घटित नहीं हो सकता।

व्यक्ति अपने विचारों अथवा भावों को अभिव्यक्त करने के लिए ध्वनियों का सहारा लेता है। ये सार्थक ध्वनियाँ होती हैं। फिर अपने विचारों अथवा भावों की समाज–सापेक्ष स्पष्ट अभिव्यक्ति के लिए हमें शब्दों का सहारा लेना होता है। इसमें भी आवश्यक है कि शब्द सार्थक हों। शब्दों का सही उच्चारण स्पष्ट अभिव्यंजना के लिए आवश्यक है। शब्द ऐसे होने

चाहिए, जिनके अर्थ हमारे विचारों को ठीक से व्यक्त कर सकें।

भाषा एक संप्रेषण–व्यवस्था है और गहराई में जाएँ तो भाषा ध्वनि प्रतीकों की व्यवस्था है और ये प्रतीक यादृच्छिक होते हैं। भाषा–अधिगम वास्तव में "भाषा–प्रयोग" का ही अधिगम है। ***(भाषा का संसार, दिलीप सिंह)*** अतः भाषा के प्रयोग को सीखना–सिखाना ही भाषा–अधिगम है। द्वितीय भाषा सीखने के अंतर्गत हम इन प्रयोगों के मुख्य अभ्यासों द्वारा आसानी से भाषा को ग्रहण कर सकते हैं। इस दृष्टि से ध्वनि–व्यवस्था से पूर्ण परिचय प्राप्त करने से पहले सीधे शब्द–प्रयोग करना और बहुप्रयुक्त वाक्य–रचना का मौखिक प्रयोग करना और उनका अभ्यास करना ज़रूरी होता है। कक्षा में हिंदी के अध्यापन की स्थिति में भाषा को समूह रूप में सीखना–सिखाना भी उपयोगी हो सकता है। इस दृष्टि से कतिपय "साँचा– अभ्यास" (Pattern Practice) और उनके प्रकारों की चर्चा समीचीन होगी।

अभ्यास के लिए पहले मौखिक अभिव्यक्ति का विकास किया जाए, फिर लिखित अभिव्यक्ति का। जैसे, "यह... है" आधार–वाक्य से प्रारंभ कर व्याकरण संबंधी नियमों के व्यावहारिक अभ्यासों की ओर अग्रसर होते हुए अन्य अभ्यास कराना उपादेय हो सकेगा। जैसे–

अध्यापक : यह किताब है ।

छात्र : यह किताब है ।

अध्यापक : दीवार ***(दीवार की ओर इशारा करते हुए।)***

छात्र : यह दीवार है ।

अध्यापक : ऊँची ।

छात्र : यह ऊँची दीवार है ।

इसी प्रकार "यह" आदरसूचक "ये" में बदलता है । जैसे–

अध्यापक ***(नेहरू जी का चित्र दिखाकर)*** : ये नेहरू जी हैं ।

छात्र : ये नेहरू जी हैं ।

अध्यापक ***(गांधी जी की तस्वीर दिखाकर)*** : ये कौन हैं ?

छात्र : ये गांधीजी हैं ।

इस प्रकार प्रदर्शनात्मक अभ्यासों के माध्यम से अभिव्यक्ति के विकास के साथ–साथ व्याकरण संबंधी नियमों को भी आत्मसात करने में सहायता मिल सकेगी। इसी प्रक्रिया को जारी रखते हुए स्थानापत्ति–अभ्यास के द्वारा क्रिया रूप को बदलकर वाक्य–निर्माण का अभ्यास तथा बोलने का अभ्यास करवाया जा सकता है। भाषा–अधिगम प्रक्रिया में जिन त्रुटियों की संभावना होती है, उन त्रुटिपूर्ण संरचनाओं की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए छात्रों से अधिकाधिक प्रयोग करवाने से त्रुटियों का निदान और उपचार संभव हो सकेगा।

इन अभ्यासों से दो उद्देश्यों की पूर्ति होती है :

1. प्रत्यक्ष अभ्यास कराना।
2. संरचनात्मक व्यवस्था की समझ पैदा करना।

अभ्यास शिक्षार्थी में संरचना करने की आदत उत्पन्न करती है। विद्यार्थी यह भी समझ जाता है कि वह क्या सीख रहा है। दो तरह के अभ्यास होते हैं :

1. पुनरावृत्ति अभ्यास
2. संदर्भ परक अभ्यास

संदर्भ परक अभ्यास को प्रदर्शनात्मक अभ्यास भी कहा जाता है। पुनरावृत्ति अभ्यास में यांत्रिक रीति से संरचना का अभ्यास कराया जाता है। लेकिन इसमें कमी यह है कि छात्र यह नहीं जान पाता कि वह यह क्यों कर रहा है। हाँ, अध्यापक पुनरावृत्ति अभ्यास के माध्यम से त्रुटियों का निदान अवश्य करता चलता है। संदर्भपरक अभ्यास में क्रिया को बदलकर बोलने तथा वाक्य–निर्माण के अभ्यास के साथ कर्त्ता के लिंग, वचन व पुरुष के अनुसार क्रिया में परिवर्तन करने के अभ्यास कराए जा सकते हैं। कतिपय नमूने –

अध्यापक ***(फ़्लैश कार्ड दिखाकर/श्यामपट्ट पर लिखकर)***

क्रिया का पुलिंग रूप	**क्रिया का स्त्रीलिंग रूप**
रमेश खाना खा रहा है –	राधा खाना खा रही है।
चावला जी अखबार पढ़ते हैं –	श्रीमती चावला अखबार पढ़ती हैं।

इसी क्रम में एक प्रकार की संरचना को दूसरे क्रम की संरचना में बदलने के मौखिक अभ्यास कराए जा सकते हैं। यह रूपांतरण अभ्यास का एक रूप कहा जा सकता है। इस प्रकार के अभ्यास में काल, पक्ष या वाच्य का रूपांतरण किया जा सकता है। इससे एक ओर शिक्षार्थी लक्ष्य भाषा की संरचना की व्यवस्था को आत्मसात कर लेता है और दूसरी ओर अधिगम प्रक्रिया का दृढ़ीकरण होता है । नमूना–

अध्यापक ***(श्यामपट्ट पर लिखता है और बोलता है।)***

मैं चल नहीं सकता।

मुझसे चला नहीं जाता।

(एक छात्र की ओर इशारा करके)

अध्यापक : मैं पढ़ नहीं सकता।

छात्र : मुझसे पढ़ा नहीं जाता।

विभिन्न प्रकार की वाक्य–संरचनाओं की अभिव्यक्ति पर अधिकार प्राप्त करने के लिए रूपांतरण–अभ्यास कराना महत्वपूर्ण होता है। कुछ उपयोगी नमूने इस प्रकार हैं:–

(अध्यापक श्यामपट्ट पर वाक्य लिखकर छात्रों से उसके रूपांतरण का अभ्यास कराएगा।)

अध्यापक : बंगाल में लोग चावल खाते हैं।

छात्र : बंगाल में चावल खाया जाता है।

अध्यापक : लोग धूमधाम से दिवाली मनाते हैं।

छात्र : धूमधाम से दिवाली मनाई जाती है।

अध्यापक : लोग घरों की सफ़ाई करते हैं।

छात्र : घरों की सफ़ाई की जाती है।

मौखिक अभ्यासों के द्वारा अनुकरण–अभ्यासों के वाक्य–साँचों से प्रश्नोत्तर–अभ्यास, वाक्य–विस्तार–अभ्यास आदि की ओर अग्रसर किया जा सकता है।

प्रश्नोत्तर अभ्यास

प्रश्नोत्तर अभ्यासों के माध्यम से विद्यार्थियों से प्रश्न पूछने और उनके उत्तर देने की क्षमता विकसित की जा सकती है। ये प्रश्न दो प्रकार के हो सकते हैं – नियंत्रित और अनियंत्रित।

(अध्यापक छात्रों से प्रश्न पूछता है और एक छात्र से उत्तर देने के लिए इशारा करता है। अपेक्षित उत्तर के लिए अध्यापक ही नमूना भी प्रस्तुत करता है)

अध्यापक : सलीम कहाँ रहता है।

छात्र : सलीम गांधीनगर में रहता है।

अध्यापक : कुतुब मीनार कहाँ है?

छात्र : कुतुब मीनार दिल्ली में है।

इसी प्रकार क्या, क्यों आदि का प्रयोग करते हुए प्रश्नोत्तर–अभ्यास करवाए जा सकते हैं। इसके लिए जहाँ ज़रूरी हो संकेत (Clue) भी दिए जाते हैं:–

अध्यापक : यह किताब किसकी है?

छात्र : यह शीला की किताब है।

अध्यापक : गोपाल को क्या चाहिए?

छात्र : गोपाल को आज का अखबार चाहिए।

वाक्य–विस्तार–अभ्यास

वाक्य में शब्द–क्रम का सही प्रयोग सिखाने के लिए विस्तार–अभ्यास का बड़ा महत्व है। ऐसे अभ्यासों के लिए संकेत (Clue) देना आवश्यक है, ताकि सही उत्तर प्राप्त हो सके। मूल उद्देश्य बोलचाल के माध्यम से सही शब्द–क्रम बिठाने का अभ्यास कराना और आत्मविश्वास के साथ सही उत्तर देने का अभ्यास कराना है।

(अध्यापक वाक्य बोलता है और श्यामपट्ट पर लिखता है। इसी प्रकार उत्तर के लिए संकेत देता है।)

अध्यापक : मैं सुबह उठता हूँ।

(संकेत) छः बजे

छात्र : मैं सुबह छः बजे उठता हूँ।

अध्यापक (संकेत) रोज़

छात्र : मैं रोज़ सुबह छः बजे उठता हूँ।

अध्यापक : गोपाल सुबह स्कूल जाता है।

(संकेत) दस बजे

छात्र : गोपाल सुबह दस बजे स्कूल जाता है।

अध्यापक (संकेत) कभी–कभी

छात्र : गोपाल कभी–कभी सुबह दस बजे स्कूल जाता है।

यद्यपि यह कहना मुश्किल है कि भाषा–उत्पादन और भाषा–बोध कैसे संभव होता है, तथापि यह ज़रूर कहा जा सकता है कि संप्रेषण की ज़रूरतें वार्तालाप या बातचीत से जुड़ी होती हैं। इसके लिए मौखिक अभिव्यक्ति या बोलचाल की क्षमता को विकसित करना अपेक्षित है। स्वाभाविक है कि इसे सोद्देश्य और रोचक बनाने के लिए कतिपय भाषिक गतिविधियाँ उपयोगी हो सकती हैं और अभ्यास के द्वारा इनपर अधिकार भी प्राप्त किया जा सकता है। आज तो जनसंचार माध्यमों, टेप–रिकॉर्डर, मोबाइल, वीडियो आदि की सहायता से दुनिया के किसी भी समूह की भाषा सीखना या बोलना सहज हो गया है तब हिंदी जैसी बहुप्रचलित आम भाषा को सीखना–बोलना और इनमें महारत हासिल करना सहजतर है।

नई दिल्ली, भारत

ckipmd@gmail.com

हिंदी प्रचारिणी सभा द्वारा हिंदी भाषा का पठन-पाठन एवं परीक्षाएँ

– श्री यंतुदेव बुधु

मॉरीशस में हिंदी भाषा के अध्ययन–अध्यापन को लेकर हिंदी प्रचारिणी सभा का बहुत बड़ा योगदान रहा है। हिंदी प्रचारिणी सभा की स्थापना 1926 में तिलक विद्यालय नाम से हुई थी। पर 1935 में एक राष्ट्रीय नाम लेकर (हिंदी प्रचारिणी सभा) पंजीकृत हुई। तब से लेकर आज तक यह संस्था हिंदी भाषा के प्रचार–प्रसार हेतु कार्यरत है। सभा का आदर्श वाक्य है : 'भाषा गई तो संस्कृति गई'। इसी उद्देश्य को लेकर सभा भाषा के उन्नयन के लिए कार्य करती आ रही है। कई कार्यकारिणी समितियाँ आईं और गईं पर सभा का एक ही उद्देश्य रहा और वह है हिंदी भाषा का प्रचार–प्रसार। 2004 में मॉरीशस के विधान सभा में पारित एक विधेयक अनुसार हिंदी प्रचारिणी सभा अब एक औपचारिक संस्था है। मॉरीशस सरकार सभा द्वारा आयोजित परीक्षाओं को मान्यता देती है और उत्तमा–साहित्य रत्न परीक्षा को डिप्लोमा इन हिंदी का दर्जा प्राप्त है।

हिंदी प्रचारिणी सभा एक स्वैच्छिक एवं शैक्षणिक संस्था है, जो आज तक अपने पैरों पर खड़ी है। यह इसलिए सम्भव हो पा रहा है, क्योंकि मॉरीशस में ऐसे दाता हुए हैं, जिन्होंने हिंदी भाषा के प्रचार के लिए अपने पैसे, अपनी ज़मीन तथा अपने गन्ने के खेत भी सभा के नाम कर दिए। उनमें से मैं एक महान आत्मा का नाम लेना चाहूँगा, जिन्होंने हिंदी भाषा की सेवा के लिए अपना सर्वस्व सभा को दान में देकर खुद तीर्थ यात्रा के लिए भारत चले गए और कभी लौटे नहीं। वे हैं स्वर्गीय श्री रामदास रामलखन जिन्हें लोग गिरधारी भगत नाम से जानते थे। उनकी प्रतिमा सभा–भवन के सामने स्थित है। आज मॉरीशस में हिंदी भाषा फल–फूल रही है, यह जानकर उनकी आत्मा को ज़रूर शान्ति मिल रही होगी और हमें आशीश दे रहे होंगे।

शिक्षा :
- एस. सी
- जी.सी.ई 'ए'
- उत्तमा
- टी.टी.सी सर्टिफ़िकेट (T.T.C. Certificate)
- एडवांस सर्टिफ़िकेट इन एड्युकेशन (Advanced Certificate in Education)
- टीचर्स डिप्लोमा (Teachers Diploma)
- डिप्लोमा इन एड्युकेशन मानेजमेंट (Diploma in Education Management)
- IC3 (Computer Course)

प्रकाशन :
- 1999 – 'बस चली गई' (बाल कहानी–संग्रह)
- 2015 – 'मेरी घड़ी' (बाल कहानी–संग्रह)
- संपादक – 'हिंदी भवन संदेश', हिंदी प्रचारिणी सभा का सूचना पत्र
- 'पंकज' पत्रिका के संपादक मंडल के सदस्य – प्रकाशक हिंदी प्रचारिणी सभा
- अनेकानेक राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय पत्र–पत्रिकाओं में लेख व कहानियाँ प्रकाशित

उल्लेखनीय गतिविधियाँ / प्रतिभागिता :
- 1988 से हिंदी भवन में (सप्ताहांत में) शिक्षक
- 1989 से हिंदी प्रचारिणी सभा के सदस्य
- 1998 से 2000 तक हिंदी प्रचारिणी सभा के उप–प्रधान
- 2013 से अब तक हिंदी प्रचारिणी सभा–मॉरीशस के प्रधान
- अनेकानेक सम्मेलनों व कार्यशालाओं में सक्रिय रूप से भाग लिया है (विश्व हिंदी सचिवालय द्वारा आयोजित अंतरराष्ट्रीय क्षेत्रीय हिंदी सम्मेलन 2014 में सक्रिय प्रतिभागिता)
- 10वें विश्व हिंदी सम्मेलन 2015 (भोपाल) में सम्मिलित
- 2016 में भारतीय उच्चायोग मॉरीशस द्वारा आयोजित हिंदी दिवस के अवसर पर "मॉरीशस में हिंदी भाषा की दशा एवं दिशा" शीर्षक पर आलेख प्रस्तुत ।

उपलब्धियाँ:
- 1976 से सरकारी स्कूल में शिक्षक
- 2013 में नियुक्त उप–मुख्य अध्यापक
- 2015 से पाठ्य पुस्तक लेखन–मंडल में शामिल (महात्मा गांधी संस्थान)

हिंदी प्रचारिणी सभा प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर की कक्षाओं के लिए पढ़ाई–लिखाई के साथ–साथ परीक्षा भी करवाती है। भाषा प्रचार के लिए अनेक स्तरों के लिए प्रतियोगिताओं का भी आयोजन होता है। आज सभा से लगभग 190 सायंकालीन तथा सप्ताहांत पाठशालाएँ पंजीकृत हैं। प्राथमिक स्तर के लिए (कक्षा एक से कक्षा 6 तक) सभा अपने खर्चे पर निरीक्षण, परीक्षण, प्रमाणपत्र एवं पुरस्कार वितरण करती है। इन संस्थाओं में पठन–पाठन हेतु हिंदी प्रचारिणी सभा की ओर से कक्षा एक से कक्षा 6 तक के लिए पाठ्य पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। 6ठी कक्षा की परीक्षा राष्ट्रीय स्तर पर की जाती है और प्रथम दस में स्थान प्राप्त करनेवालों को पुरस्कृत भी किया जाता है।

60 साल से अधिक हो चुके हैं जब से हिंदी प्रचारिणी सभा माध्यमिक स्तर पर परिचय से उत्तमा–साहित्य रत्न तक की परीक्षाएँ भारत के इलाहाबाद शहर के हिंदी साहित्य सम्मेलन से करवाती आ रही है। हिंदी प्रचारिणी सभा द्वारा परिचय परीक्षा के आयोजन से वर्ष 1946 में शुरू हुई। कालान्तर में यह देखा गया कि 6ठी और परिचय कक्षा के बीच एक खाई है, जिसकी पूर्ति के लिए हिंदी प्रचारिणी सभा ने प्रवेशिका परीक्षा का आयोजन वर्ष 1964 से किया। आज इस कक्षा की पढ़ाई के लिए स्थानीय साहित्यकारों की पुस्तकों को पाठ्यक्रम में रखा गया है। इसके पीछे हमारा उद्देश्य है – एक तो छात्र स्थानीय साहित्यकारों से परिचित होंगे दूसरा यह कि स्थानीय साहित्यकारों को साहित्य सृजन में बढ़ावा मिले। प्रवेशिका परीक्षा में लगभग 900 से 1000 छात्र आजकल भाग लेते हैं।

स्वर्गीय श्री जयनारायण रॉय के सहयोग से हिंदी साहित्य सम्मेलन–इलाहाबाद से पहली बार के लिए 1946 में परिचय परीक्षा का आयोजन हुआ। 1956 में प्रथमा, 1963 में प्रथमा और 1965 में उत्तमा–साहित्य रत्न परीक्षाओं का आयोजन हुआ। सभा द्वारा आज भी ये परीक्षाएँ आयोजित होती हैं और लगभग 2000 छात्र हर वर्ष इन परीक्षाओं में भाग लेते हैं। छात्रों के प्रोत्साहन के लिए सभा की ओर से प्रथम दस में स्थान प्राप्त करनेवालों को पुरस्कृत किया जाता है तथा प्रथम स्थान पर आनेवाले को नकद राशि भी दी जाती है। वर्ष 2017 से उत्तमा–साहित्य रत्न में प्रथम स्थान प्राप्त छात्र को स्नातकीय स्तर की पढ़ाई के लिए छात्रवृत्ति दी जा रही है। पढ़ाई का पूरा खर्च सभा वहन कर रही है।

आज पूरी दुनिया में मानव मूल्य की शिक्षा स्कूल के पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने का विचार किया जा रहा है। हमारी संस्था द्वारा संचालित सभी कक्षाओं के पाठ्यक्रम में मानव मूल्य की शिक्षा सन्निहित है। सूर, तुलसी, कबीर, प्रेमचन्द, गुप्त, प्रसाद, महादेवी जैसे साहित्यकारों की रचनाएँ पाठ्यक्रम में सम्मिलित की गई हैं। इनकी रचनाओं में मानव मूल्य की शिक्षा भरी पड़ी है जिन्हें पढ़कर छात्र आदर्श व्यक्ति व अच्छा नागरिक बन सकते हैं। सूर के बाल–वर्णन से माता यशोदा की ममता के प्रेम की गहराई का पता चलता है। बालकृष्ण भट्ट द्वारा लिखित निबन्ध 'ज़बान' से छात्रों को यह सीख मिल सकती है कि गलत भाषा बोलने का नतीजा क्या हो सकता है।

हिंदी भाषा की ओर रुचि बढ़ाने के लिए छात्रों को प्रतियोगिताओं में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। वर्षभर में हर स्तर के लिए प्रतियोगिताओं का आयोजन होता है। प्राथमिक स्तर के छात्रों के लिए श्रुतिलेखन प्रतियोगिता, माध्यमिक के लिए कविता–वाचन तथा सबके लिए निबंध–लेखन प्रतियोगिता का वार्षिक आयोजन होता है। इन प्रतियोगिताओं में पूरे मॉरीशस के छात्र भाग लेते हैं। श्रुतिलेख प्रतियोगिता और कविता–वाचन प्रतियोगिता क्षेत्रीय स्तर पर आयोजित होता है ताकि ज़्यादा से ज़्यादा छात्रों को भाग लेने का अवसर मिले।

हिंदी प्रचारिणी सभा उत्तम–साहित्य रत्न के छात्रों के लिए हर वर्ष कार्यशाला का आयोजन करती है, जिसमें छात्रों को पाठ्यक्रम, प्रश्नपत्र तथा परीक्षा से संबंधित विषय पर प्रकाश डाला जाता है। ऐसी कार्यशाला आयोजित करने के पीछे सभा का उद्देश्य है छात्रों को परीक्षा की तैयारी में सहयोग देना तथा उन्हें भविष्य के लिए तैयार करना। 6–7 वर्षों तक सभा द्वारा आयोजित परीक्षाओं में भाग लेने के बाद यह उनसे हमारा अंतिम साक्षात्कार होता है, जहाँ विचारों का आदान–प्रदान होता है तथा छात्रों से हिंदी विषय को लेकर भविष्य में क्या कर सकते हैं? इसपर भी विचार–विनिमय होता है।

आज कंप्यूटर का युग है और इससे अनभिज्ञ रहना अपने

आप को अनपढ़ बनाना है। कहा जाता है कि हमें समय की माँग को देखना चाहिए और समय के साथ चलना चाहिए। हिंदी प्रचारिणी सभा की 2013 से अपनी एक वेबसाइट है। इससे छात्र संपर्क में रहते हैं तथा वेबसाइट पर उपलब्ध जानकारियों से अवगत होते हैं। पढ़ाई से संबंधित जानकारियाँ –पाठ्यक्रम, सभी परीक्षाओं के पुराने प्रश्नपत्र, सभा से संबंधित सूचनाएँ आदि वेबसाइट पर उपलब्ध हैं। इस से छात्र ज़रूर लाभांवित होते हैं। 2013 से ही सभा में एक कंप्यूटर कक्ष का निर्माण किया गया है, जहाँ पर छात्र हिंदी–टंकण सीखते हैं। हम चाहते हैं कि छात्र जब यहाँ से अपनी पढ़ाई पूरी करके निकलें, तो उन्हें हिंदी–टंकण की भी जानकारी हो तथा वे हिंदी भाषा में टंकण कर सकें।

हिंदी भाषा को बढ़ावा देने के लिए साहित्य–सृजन की एक अहम भूमिका रही। सभा द्वारा 'पंकज' नाम की एक त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित होती है, जिसमें कई नए और पुराने साहित्यकारों की रचनाएँ छपती हैं। पत्रिका में हर विधा की रचनाएँ होती हैं। एक तरह से नए लेखकों को प्रोत्साहित करते हैं। इससे छात्रों को विविध प्रकार की रचनाओं को पढ़ने का अवसर प्राप्त होता है। सभा हर वर्ष कवि–सम्मेलन का भी आयोजन करती है। इस आयोजन से नए कवियों को उभरने का अवसर प्राप्त होता है तथा साहित्य–सृजन की ओर बढ़ने के लिए प्रेरणा मिलती है।

हर वर्ष हिंदी प्रचारिणी सभा अपना स्थापना–दिवस मनाती है। उस अवसर पर छात्रों का एक कार्यक्रम होता है, जिसमें हिंदी भवन–विद्यालय में पढ़नेवाले छात्र किसी विशेष साहित्यकार पर तैयारी करते हैं। उस अवसर पर आमंत्रित मुख्य वक्ता के सामने वे अपनी तैयारी बारी–बारी से प्रस्तुत करते हैं। इस तरह उन्हें मौखिक रूप से उभरने का मौका दिया जाता है। इससे छात्र बहुत सीखते हैं और लाभांवित भी होते हैं।

हिंदी प्रचारिणी सभा छात्रों के अलावा, शिक्षकों के लिए भी कार्यशाला का आयोजन करती है। हमारा मानना है कि छात्रों को सिखाने से पहले सीखना ज़रूरी होता है। इसलिए कार्यशाला के दौरान शिक्षकों को प्रशिक्षित करना भी शिक्षण को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण होता है। इस तरह की कार्यशाला में शिक्षण की विधि, पाठ्यक्रम, पाठ्य–पुस्तक तथा प्रश्नपत्र पर भी विचार–विमार्श होता है।

अपनी भाषा को समृद्ध बनाने के लिए पाठ्य–पुस्तक के अतिरिक्त अन्य पुस्तकें पढ़ना आवश्यक होता है। हिंदी प्रचारिणी सभा–भवन में हिंदी–सेवक श्री नेम नारायण गुप्त के नाम से एक भव्य पुस्तकालय भी है, जहाँ लाखों–सैकड़ों पुस्तकें हैं। यहाँ के विद्यालय में पढ़नेवाले छात्र तथा आसपास के हिंदी प्रेमी पुस्तकें उधार लेकर पढ़ते हैं। यहाँ कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, निबंध आदि पुस्तकों के साथ–साथ पत्रिकाएँ तथा आलोचनात्मक पुस्तकें भी पाई जाती हैं। इससे इलाके के लोग भी लाभांवित होते हैं।

आज मॉरीशस में इतने हिंदी के विद्वान, विश्व–विख्यात साहित्यकार तथा हिंदी–शिक्षक हुए। इन सबका किसी–न–किसी रूप से हिंदी प्रचारिणी सभा से संबंध रहा है। हिंदी प्रचारिणी सभा ने अब तक जाने कितने विद्वान तथा साहित्यकार पैदा किए। मॉरीशस के हिंदी प्रचारिणी सभा का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जाएगा।

हिंदी प्रचारिणी सभा, मॉरीशस
ashvin2409@hotmail.com

हिंदी : पूर्व प्रस्थानों का संधान

–डॉ. रणजीत साहा

पिछले कुछ वर्षों से हिंदी भाषा संबंधी अध्ययन के पाठ्यक्रमों में परंपरागत विधियों और प्रयुक्तियों के साथ 'नवाचार' को विशेष प्राथमिकता दी जा रही है। इस उद्देश्य के साथ कि अब भाषिक संरचना के औज़ार और वैयाकरणिक अभ्यास उतने उपादेय नहीं रहे, जितने कि पहले थे। इसीलिए हमारे वार्तालाप में आज त्वरा तो आई है, लेकिन वह हिंदी की चिर–परिचित शब्दावली और मुहावरे से दूर होती जा रही है। यह सही है कि आज स्कूल या कॉलिजों में हिंदी पाठ्यक्रमों को अधिकाधिक व्यावहारिक या व्यावसायिक बनाए जाने की दौड़ या होड़–सी मची है। लेकिन यह सब केवल हिंदी ही नहीं, बल्कि भारतीय भाषाओं के मानक एवं स्वीकृत कसौटियों के विपरीत है। यह ठीक है कि हर दौर में समाज अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप स्वयं को गढ़ना और आगे बढ़ना चाहता है, लेकिन हमें किसी भी नए प्रस्थान का निर्माण करने के पहले यह देखना चाहिए कि हमारे परिचित घाट–बाट या हाट क्या अब इतने भी उपयोगी नहीं रह गए कि हम उनकी ठीक–ठाक मरम्मत कर उन्हें उपयोग में ला सकें ! भारत–जैसे देश में तो यह बहुत आवश्यक है, जहाँ ग्रामीण, शहरी और महानगरी जीवन–शैली की विविधता परिवर्तन की आँधी के बावजूद अपनी भाषायी पकड़ और पहचान के साथ अपनी जड़ों और ज़मीन से जुड़ी है।

हिंदी की विश्वव्याप्ति के परिप्रेक्ष्य में पिछली दो शताब्दियों में की गई उसकी यात्रा के आकलन के लिए जब तक कोई नई योजना बनती है; दो–चार महीने बाद वह कुछ आगे बढ़ने के बजाए पीछे हट जाती है। हालाँकि उसके व्यापक प्रचार–प्रसार को आँकड़ों में आँकनेवाले की और उनपर दंभ भरनेवालों की कोई कमी नहीं। इसमें हिंदी सेवी संस्थाएँ भी कम नहीं। छत्तीस करोड़ देवताओं को 'कोटि कोटि प्रणाम' करनेवाली परंपरागत भारतीय मानसिकता इन हवाई

जन्म : 21 जुलाई, 1946

शिक्षा :
- ❖ पी.एच.डी. (शांतिनिकेतन से)
- ❖ उपाधियाँ (तुल्नात्मक साहित्य एवं ललित कला अधिकाय में)
- ❖ एम.ए. (प्रथम श्रेणी)

व्यवसाय :
- ❖ अध्यापक, शांतिनिकेतन एवं दिल्ली विश्वविद्यालय
- ❖ उपसचिव, साहित्य अकादेमी
- ❖ कई भारतीय भाषाओं तथा कार्यक्रमों का नियमन और संचालन
- ❖ विज़िटिंग फ़ेलौशिप, रोमन कल्चरल इंस्टीट्यूट
- ❖ अतिथि संपादक, भारतीय साहित्य पत्रिका, साहित्य अकादेमी

प्रकाशन :
- ❖ 3 दर्जन पुस्तकें प्रकाशित (शोध एवं अनुवाद)
- ❖ 2 खंडों में प्रकाशित समालोचना : सहज सिद्ध – साधन विमर्श एवं चर्यागीति विमर्श
- ❖ गीतांजलि (हिंदी अनुवाद) का प्रकाशन।
- ❖ बंग्ला, अंग्रेज़ी एवं गुजराती से कई कृतियों का अनुवाद प्रकाशित।
- ❖ समकालीन रोमानिया कविता का विशिष्ट संकलन, साहित्य अकादेमी द्वारा प्रकाशित।

पुरस्कार :
- ❖ सेतुबन्ध पुरस्कार
- ❖ अंतरराष्ट्रीय इण्डो–रशियन लिटरेरी सम्मान
- ❖ दिनकर पुरस्कार
- ❖ हिंदी–उर्दू लिटरेरी आवर्ड
- ❖ काकासाहेब कालेलकर सम्मान

आँकड़ों से अभिभूत हो जाती है। जिस देश में प्रतिवर्ष करोड़ों लोगों की आबादी जुड़ जाती हो, वहाँ हिंदी ही क्यों, अन्य भाषा–भाषियों की तादाद भी बढ़ जाती है। इस लिहाज़ और हिसाब से हिंदी

बोलने–समझनेवालों की अकूत संख्या भी अनायास ही जुड़ जाएगी।

लेकिन यहाँ तनिक ठहर कर यह देखना ज़रूरी है कि हिंदी बोलनेवालों के अनुपात में क्या सचमुच गुणात्मक वृद्धि हुई है? आज़ादी के बाद, पिछले साठ–सत्तर वर्षों में हिंदी ने अपना विस्तार जिन रूपों और जिन अवतारों में किया है; वह सचमुच हर्ष और गर्व का विषय है। अब भारत के किसी भी कोने में बैठा आदमी अपनी थोड़ी–सी कोशिश और सदिच्छा से इस भाषा को सीख सकता है और उसके इस निजी प्रयत्न को अनदेखी नहीं, बल्कि उसका सम्मान किया जाना चाहिए। क्योंकि किसी संस्था, व्यक्ति विशेष और एजेन्सी ने प्रयासपूर्वक उसे हिंदी सिखाने का उपक्रम नहीं किया। ऐसे लोग उपलब्ध स्रोतों– हाट–बाज़ार, फ़िल्म, फ़िल्मी गाने, टी.वी. या अन्यत्र कहीं से प्राप्त किसी पुस्तक या पत्रिका से अपने आप हिंदी सीख रहे हैं। दक्षिण भारत या नॉर्थ–ईस्ट की यात्रा करते हुए ऐसे कई व्यक्तियों से मिला जा सकता है, जो अपने प्रयास या अभ्यास से कामचलाऊ हिंदी ही सही, सीख लेते हैं। किसी अन्य भाषा के मुकाबले, हिंदी उनके पास, किसी–न–किसी रूप में उक्त माध्यमों द्वारा पहुँच रही है, यह सचमुच संतोष का विषय है। उन्हें हिंदी भाषा का कोई जानकार या शिक्षक उपलब्ध हो जाए तो क्या कहना ! लेकिन चिन्ता का विषय यह है कि कई अहिंदी भाषा–भाषी क्षेत्रों में या अनाम, अनजान और अगम्य क्षेत्रों में भी ऐसे कई लोग हैं, जो हिंदी की कामचलाऊ जानकारी से आगे नहीं बढ़ पाते। जनसंपर्क या अन्य असुविधा के कारण या किसी साधन या अवसर के अभाव में जिनकी भाषा–यात्रा अवरुद्ध हो गई है उन्हें मुख्यधारा में अवश्य ही सम्मिलित किया जाना चाहिए, क्योंकि उनकी भाषा–क्षमता को बढ़ाने के लिए वहाँ कोई रचनात्मक योजना उपलब्ध नहीं है।

यहाँ हिंदी को किसी प्रयोजनमूलक या अनुप्रयुक्त (Applied) भाषा कार्यक्रम या जीविका से जोड़ने की बात नहीं की जा रही है। यह तो संस्थाओं और स्वयंसेवी योजनाओं का काम है। यहाँ ज़ोर हिंदी भाषा का अर्जन करने में और अर्जित भाषा की गुणवत्ता में निरंतर सुधार करने पर दिया जा रहा है।

यह ठीक है कि भाषा–शिक्षण के विभिन्न आरंभिक पाठ्यक्रमों में इस बात पर बल दिया जाने लगा है कि अहिंदी क्षेत्र का सुदूर बैठा कोई भाषा–भाषी व्यक्ति हिंदी सीखना चाहता है, तो वह दो–ढाई हज़ार शब्द सीखकर वांछित पुस्तकें पढ़ सकता है और अपना काम चला सकता है। इन पदों या शब्दों में अधिकांशतः संज्ञा, सर्वनाम, लिंग–निर्णय, विशेषण और क्रियापदीय शब्दों के उपयुक्त प्रयोग पर ज़ोर देना होता है। पाठ्य–वस्तु में भाषा–अभ्यास के ऐसे ही पाठों को सम्मिलित किया जाता है। भाषा व्यवहार के स्तर पर सरल किन्तु उपयोगी वाक्यों की संरचना पर ही यहाँ विशेष ज़ोर रहता है। आवश्यकतानुसार लिपि, वर्तनी, संज्ञा, सर्वनाम एवं क्रियापदों के चार्ट भी छात्रों या प्रशिक्षणार्थियों को उपलब्ध कराए जाते हैं। रात्रि पाठशालाओं, नवसाक्षरों के लिए खोले गए विद्यालयों के लिए निर्धारित ऐसे कार्यक्रमों की सफलता में कोई संदेह भी नहीं है। विदेशों में, अपनी यात्राओं के दौरान मैंने न केवल देखा, बल्कि इस बात की सराहना की कि रूस, रोमानिया, जापान, बल्गारिया, अमेरीका आदि देशों के विश्वविद्यालयों में पिछले कई वर्षों से भाषा के पाठ्यक्रमों में भारतीय फ़िल्मों के गाने, कैसेट और सीडी के माध्यम से हिंदी सिखाने का कार्यक्रम सफलतापूर्वक चलाया जा रहा है। रोमानिया में मैंने ऐसे प्रयोगों में सहभागिता करते हुए हिंदी के भूत, भविष्य एवं वर्तमान कालों को इस फ़िल्मी गीत से समझाया था – ***"सौ साल पहले मुझे तुमसे प्यार था, आज भी है और कल भी रहेगा।'*** कहना न होगा, विदेशों में भी आरंभिक योग्यता प्राप्त कर लेने के बाद अध्येताओं के पाठ–सत्र में कभी–कभी जो लम्बा अंतराल या ठहराव आ जाता है; वह अन्यान्य कार्यक्रमों द्वारा नहीं पाटा जा रहा है। इस तरह एक सीखी हुई भाषा भी, अभ्यास की कमी, पुस्तकों और कार्यक्रमों के अभाव के चलते छात्र या पाठक लगातार भूलता चला जाता है। नए–नए शब्दों के व्यवहार तो दूर की बात है।

भारत में पाठकों से निरंतर जुड़ाव के लिए आंचलिक स्तर पर शुरू किए गए स्थानीय रेडियो केन्द्र या ग्राम पंचायत के अधीन कार्यरत स्वयंसेवकों के अलावा टी.वी. या रेडियो पर प्रसारित क्षेत्रीय भाषा के साथ हिंदी में प्रसारित रोचक कार्यक्रमों की बहुत बड़ी भूमिका हो सकती है। मातृभाषा, क्षेत्रीय बोली या भाषा और हिंदी में नियमित रूप से प्रचारित–प्रसारित कार्यक्रमों से भाषा–ज्ञान को सीधे जोड़े जाने की ज़रूरत को ध्यान में रखकर, देश–विदेश में रेडियो–प्रसारण द्वारा वे

संबंधित भाषा–शिक्षण संबंधी कार्यक्रम आज भी सफलतापूर्वक चलाए जा रहे हैं। क्षेत्रीय एवं विदेशी भाषा की फ़िल्मों तथा अन्य राष्ट्रीय तथा महत्वपूर्ण सांस्कृतिक आयोजनों को अनिवार्य रूप से हिंदी में 'डब' कर या भाषांतरित पट्टिका के साथ दिखाए जाने की व्यवस्था होनी चाहिए। 'चित्रहार' जैसे लोकप्रिय फ़िल्मी कार्यक्रम में, जब साक्षर भारत कार्यक्रम के अंतर्गत गीत के बोलों के साथ हिंदी पट्टी भी चलती है तब 'श्रव्य–दृश्य' माध्यम से हिंदी भाषा, लिपि और इसकी वर्तनी से दर्शकों का सीधा परिचय होता है। ऐसे ही अनौपचारिक कार्यक्रमों से दर्शक एक परिचित किन्तु अर्जित भाषा से अपना रिश्ता जोड़े रख सकता है। सरकारी और स्वयंसेवी संस्थाओं की यहाँ बहुत बड़ी भूमिका है। उनका उत्तरदायित्व बनता है कि वे रोचक और हल्के–फुल्के ऐसे कार्यक्रमों को औपचारिक पाठ्यक्रमों में बदल दें और इनसे सम्बद्ध (प्रौढ़ तथा युवा स्त्री–पुरुष, बालक, श्रमिक, किसान और अन्यान्य जीविका से जुड़े) लोगों के लिए अलग–अलग समय पर, विभिन्न आयुवर्ग के अनुरूप कार्यक्रम तैयार करें। ऐसे रोचक, सामूहिक तथा स्थानीय कार्यक्रमों की रूपरेखा उपलब्ध साधनों के आधार पर तैयार की जा सकती है। साथ ही, प्रोत्साहन राशि, पुरस्कार, फ़ोटो, पुस्तकें आदि भी ऐसे प्रतिभागियों में बाँटनी चाहिए। उदाहरण के लिए–

1. लोक–कथा का मंचन– क्षेत्रीय भाषा के साथ कुछ अंश या प्रसंग हिंदी में भी।
2. कहानी–वाचन– मुद्रित पाठ तथा मौखिक पाठ। स्मृति के आधार पर प्रतिभागी छात्र या श्रोता से भी कोई अंश सुनाने का आग्रह।
3. सम्मिलित गायन– किसी सरल कविता या गीत (हिंदी में भी) की धुन तैयार कर लोकगीतों के गायकों द्वारा गायन।
4. अन्त्याक्षरी– हिंदी गीतों और लोकप्रिय फ़िल्मी गीतों के आधार पर छात्रों एवं जिज्ञासुओं में इस कार्यक्रम को बढ़ावा।
5. संकेत अभिनय– सीधी सरल मुद्रा के अनुरूप स्थानीय भाषा में अनुवर्ती पाठ, संदेशों को समझाने का प्रयास।
6. वाक्य/पाठ की पूर्ति– जिसमें एकल और सामूहिक तौर पर सहभागिता की जा सकती है।
7. जीविका संबंधी जानकारी– विभिन्न जीविकाओं से संबंधित लोग अपनी क्षेत्रीय भाषा, बोली और फिर हिंदी में अपने अनुभवों को बताने की कोशिश करें ताकि उनमें प्रयुक्त शब्दों को समझने और उनकी सटीक उपयोग करने की क्षमता बढ़े। इससे वे स्वयं भी जानकारी जुटाने का प्रयत्न करेंगे।
8. विभिन्न पर्व, उत्सव और अनुष्ठान – समय–समय पर आयोजित होनेवाले महत्वपूर्ण अवसरों और आयोजनों पर संबंधित जानकारियों का परस्पर आदान–प्रदान, ताकि किसी समाज या समुदाय विशेष के खान–पान, वेश–भूषा, धार्मिक विश्वास से संबंधित जानकारी साझा की जा सके। कहना न होगा, भारत–जैसे कई अन्य देशों में रहनेवाले विभिन्न धार्मिक मतावलंबियों के बीच परस्पर सौहार्द और विचार–विमर्श के लिए यह और भी आवश्यक है।
9. क्षेत्रीय आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं के अनुरूप कार्यक्रम – स्थानीय कलाकारों तथा विशेषज्ञों की सेवाएँ प्राप्त कर उपयुक्त कार्यक्रम की दिशा तय की जा सकती है। ऐसे प्रस्तावित कार्यक्रमों में स्थानीय बोली, भाषा के साथ हिंदी को भी सम्मिलित कर भाषा क्षमता बढ़ाने की इस कवायद को कोई भी हिंदी जाननेवाला आसानी से चला सकता है। इन कार्यक्रमों में सभी को समान अवसर मिलना चाहिए ताकि न केवल अपनी भाषा में उसकी हिचक दूर हो सके, बल्कि परस्पर वार्तालाप में उसकी क्षमता में वृद्धि हो। इसके लिए पर्याप्त अवसर जुटाए बगैर सहभागी के आत्मविश्वास को गति नहीं मिल सकती।

खेती, मज़दूरी या अन्य जीविका से जुड़े, जो भी सामान या उपकरण (हल, बैल, रस्सी, बथान, फल, बीज, खाद, खेत–खमार–खलिहान, फ़सल, बखार, मचान और मौसम) आदि के नाम, स्थान विशेष के लोगों में परंपरागत ढंग से प्रचलित हैं उनके उपयोग के साथ उन्हें हिंदी पर्याय बताए जाएँ। उनसे कहा जाए कि वे अपनी भाषा के ही मूल शब्द, मुहावरे और लोकोक्ति आदि का उपयोग करें तथा यथासंभव उसकी सूची तैयार करें। भारत में ऐसी कई बोलियाँ हैं, जो उन्हें बोलनेवाले लोगों के द्वारा बिसारी जा चुकी

हैं और वे धीरे–धीरे विलुप्त होती जा रही हैं। इनके समाप्त होने से संबंधित भाषा–समाज तो विपन्न हो ही रहा है, आंशिक रूप से हिंदी की भी क्षति हो रही है। क्योंकि संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश के अकूत शब्द–भंडार के अलावा अरबी, फ़ारसी, तुर्की और अंग्रेज़ी भाषाओं से शब्द ग्रहण कर और अंततः स्थानीय बोलियों और क्षेत्रीय उपभाषाओं से प्राप्त शब्दों और मुहावरों का बल पाकर ही हिंदी इतनी समर्थ हुई है और तेज़ी से आगे बढ़ सकी है। ऐसे स्थानीय और जुबान पर सहज ही चढ़ जानेवाले शब्दों के सटीक प्रयोग एवं प्रचलन से जहाँ प्रयोक्ता की जानकारी में शब्दों की संख्या बढ़ेगी; वहाँ अंग्रेज़ी शब्दों या मिलते–जुलते कामचलाऊ पर्यायों से लोग परहेज़ करना भी सीखेंगे।

हमारे आसपास ऐसे हज़ारों पढ़े–लिखे लोग और अब तो नई पीढ़ी के छात्र भी मिल जाएँगे, जो सामने खड़े पेड़ों और टोकरी में पड़ी साग–सब्ज़ियों, फलों–फूलों और फ़सलों के नाम तक नहीं जानते। विष्णु के सहस्रनाम, आम की सैकड़ों किस्में, मछलियों के हज़ारों नाम, पोशाकों, व्यंजनों, मिठाइयों के इतने नाम हैं कि कोरे पन्ने के पन्ने भरते चलते जाएँ। महाभारत, रामायण एवं लोक में प्रचलित आख्यानों के असंख्य पात्र एवं प्रसंग, अपने ही गाँव–जवार और इलाके के लोगों के नाम, जीविका, उनसे जुड़े किस्से, रात में देखे गए हवाई सपने, किसी परिचित या अपरिचित की अनसुनी कहानी की प्रस्तुति आदि कई अनौपचारिक कार्यक्रम हो सकते हैं, जो भाषा–अर्जन का हिस्सा बन सकते हैं। आवश्यकता है उपयुक्त अवसर की और इसे धैर्य के साथ सुनकर सराहनेवाले सहृदय लोगों एवं भाषा सेवियों की।

भारतीय विश्वविद्यालयों और ऊँची कक्षाओं में भाषा–विज्ञान पढ़ानेवाले विद्वान और विशेषज्ञ भी यह मानते हैं कि भाषा–शिक्षण का कोई भी पाठ्यक्रम सभी के लिए समान रूप से उपयोगी या रुचिकर नहीं हो सकता। चूँकि अनौपचारिक कार्यक्रमों में किसी कक्षा वाली प्रतिद्वंद्विता या अधिकतम अंक पाने की होड़ नहीं होती, इसलिए इसके संचालक या आयोजक को यह छूट दी जानी चाहिए कि इनमें उन सभी विषयों को अवश्य शामिल करें, जो संबंधित लोगों के जीवन और जीविका से सीधे जुड़े हैं, यानी उनकी कहानियाँ, गीत, भजन, गान, चुटकुले, लोककथाएँ, प्रहसन, मुहावरे और लोकोक्तियाँ। यहाँ अनर्गल, अश्लील और परस्पर छींटाकशी से बचते हुए अपनी धार्मिक आस्था को सम्मान देने के साथ दूसरे के धार्मिक विश्वास का भी आदर करना अनिवार्य होगा।

ऐसा भी देखा गया है कि बहुत–से हिंदीतर लोगों को हिंदी बोलने का अच्छा अभ्यास है, लेकिन नागरी लिपि की पहचान नहीं होने के चलते वे हिंदी लिख नहीं पाते। ऐसे लोगों के लिपि–ज्ञान के लिए अलग से समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। इसी तरह बहुत–से लोग उर्दू जानते हैं, उनके लिए भी उर्दू की फ़ारसी लिपि के साथ, नागरी लिपि का प्रयोग उपयोगी होगा। ऐसा इसलिए कि उर्दू का अधिकांश साहित्य अब नागरी लिपि में उपलब्ध है। इसी तरह बंग्ला, असमिया, ओड़िया, सिंधी, मणिपुरी और बोडो आदि की प्रतिनिधि और लोकप्रिय रचनाओं का एक अंश नागरी में लिप्यंतरित कर प्रस्तुत किया जा सकता है। साहित्य अकादेमी ने रवीन्द्र जन्मशती वर्ष में उनकी कुछ महत्त्वपूर्ण कृतियों को नागरी लिपि में रूपांतरित करवाया था। यह संभव है कि भाषा विशेष के बोलनेवालों या प्रयोक्ताओं को कुछ शब्दों को बोलने या ध्वनियों को अपेक्षित स्तर तक पहुँचने में असुविधा हो। लेकिन ऐसी असुविधाओं से गुज़र कर ही, वे अपनी भाषागत क्षमता तुलनात्मक ढंग से आगे बढ़ा सकते हैं। क्षेत्रीय स्वरों और साहित्यिक रुझानों को सम्मान देने और ऐसे हर पाठक के प्रति सहिष्णु रहकर ही हम हिंदी की प्रगति की दिशा में नए और समर्पित पाठक तैयार कर सकते हैं। पिछले कई वर्षों से मोबाइल, कंप्यूटर आदि आम हो गए हैं और इनमें नागरी लिपि के बदले किसी भी भाषा के लिए रोमन लिपि का धड़ल्ले से उपयोग किया जा रहा है। इस रोमनी लिपि को सॉफ़्टवेयर की सहायता से, या 'की' दबाकर हिंदी या अन्य भाषा में बदला जा सकता है। इस स्थिति ने नागरी लिपि के भविष्य पर जहाँ प्रश्नचिह्न लगा दिया है, वहाँ इसकी भाषा शुचिता और मानक वर्तनी पर भी सवाल खड़ा कर दिया है।

यहाँ उस निराशाजनक स्थिति का भी उल्लेख करना आवश्यक है, जो स्वयं हिंदी भाषा–भाषियों की ओर से खड़ी की गई है। या फिर ऐसे हिंदी भाषा–भाषी द्वारा भी, जिन्हें हिंदी का पर्याप्त ज्ञान है। इनमें से अधिकांश की मातृभाषा हिंदी होती है, जो स्कूलों में अनिवार्य तौर पर हिंदी पढ़ते रहे हैं। इनमें से अधिकांश उच्च

कक्षाओं में जाकर, हिंदी से किनारा कर लेते हैं और बाद में, हिंदी में या हिंदी माध्यम से जितना कुछ पढ़ा–लिखा सीखा गया था, उसे भी भुला देते हैं। केवल 'श्रुति' के भरोसे ही जितनी हिंदी ('हिंगलिश' या 'हिंग्रेज़ी' के बतौर) उन्हें उपलब्ध हो पाती है, उतने से ही वे आश्वस्त या संतुष्ट हो जाते हैं। क्योंकि उनकी प्राथमिकता होती है, अंग्रेज़ी में अपनी योग्यता बढ़ाने या दक्षता प्रदर्शित करने की। हिंदी का ज्ञान उनके लिए अब ऐच्छिक या निचले दर्जे का मामला हो जाता है या एक ऐसा अनचाहा विकल्प, जो पिछले दरवाज़े से बुलाए जानेवाले अवांछित मेहमान–जैसा होता है। ऐसे में 'तथाकथित हिंदीवालों' की भाषा के हास्यास्पद उदाहरणों से उत्पन्न थोड़ी पीड़ा तो झेलनी पड़ेगी,

लेकिन उन्हें उद्धृत करना आवश्यक है–

''यार, दिल्ली की लाइफ़ मोस्ट डिफ़िकल्ट होती जा रही है। कोई वे आउट नहीं है।

बेहद हॉरिबल है, नो वन कैन सरवाइव... एक्सेप्ट दीज़ पॉलिटिशियन........''

''इधर ट्रैफ़िक का प्रेशर........ उधर वर्क का प्रेशर...''

''आज की ईविनिंग का क्या सीन है? कल तो मेरे एरिया में होल नाइट लाइट ही नहीं थी। नेटवर्क स्टॉप था... थैंक गॉड, मैंने वाइफ़ को उसकी सिस्टर के यहाँ रुक जाने को कहा।''

''अपन तो यार इस स्ट्रगल के आदी हो चुके हैं, वाइफ़ कहती है, मदर–इन लॉ के आने के पहले नया फ्रिज और इंवर्टर ले आओ... हायर परचेज़ पर... ऑफ़िस से लोन क्यों नहीं ले लेते?''

वग़ैरह... वग़ैरह...। हालाँकि फ्रिज, इर्न्वटर, ट्रेफ़िक और संचार संबंधी उपकरणों में प्रयुक्त शब्दावली– सेल्फ़ी, वाट्सएप्प–जैसे अंग्रेज़ी शब्द तो आमफ़हम हो चले हैं, लेकिन ऊपर के संवाद में आए अन्य अंग्रेज़ी शब्दों ने तो हिंदी ही नहीं, सभी भारतीय भाषा–भाषियों की बखिया उधेड़ कर रख दी है। डॉक्टर, वकील, इंजीनियर, लेक्चरर, प्रिंसिपल, कोर्ट, स्टेशन, पार्क–जैसे शब्द अब अपनी स्थायी जगह बना चुके हैं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि हिंदी अपनी वाक्य–संरचना में अंग्रेज़ी के शब्दों को इतनी उदारता से खपाने को तैयार हो जाए कि धीरे–धीरे उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जाए। वस्तुतः यह हमारी भाषागत दुर्बलता, सुविधापरस्ती और परनिर्भरता का परिचायक है। हम आधुनिक होने के चक्कर में विजातीय भाषा–संस्कृति के प्रति अधिक उदार हो गए हैं।

हिंदी के साथ, हिंदी जाननेवालों का यह रवैया सचमुच दुर्भाग्यपूर्ण है। विश्व की दो बड़ी भाषाओं, यानी सायास अर्जित अंग्रेज़ी से अकारण मोह और अनायास अर्जित हिंदी के प्रति दुर्भाव या बलपूर्वक दूरी बनाए रखना अफ़सोसनाक ही कहा जाएगा। ऐसी पीढ़ी के लोगों के लिए 'कार्यतः निरक्षर' (फ़ंक्शनली इल्लिटरेट)–जैसी टिप्पणी सटीक बैठती है और ऐसे लोगों की संख्या करोड़ों में हो सकती है। ये लोग हिंदी में वांछित ज्ञान रखते हैं और बेहतर ढंग से काम करने की दक्षता भी इनके पास है। लेकिन यह बड़ा और प्रभावी तबका हिंदी लिखने–पढ़ने और इसमें काम करने से जब जी चुराता है तब उसके साथ काम करनेवालों और अधीनस्थों का भी मनोबल गिरता है। इतना ही नहीं, इनके घर–परिवार में रहनेवाली संतति भी अपनी भाषा एवं संस्कृति से दूर होती चली गई है। इसका हिंदी समाज पर बड़ा नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है क्योंकि जान–बूझकर हम अपनी भाषा, संस्कृति और जातीय पहचान से अलग और दूर हो रहे हैं और व्यर्थ ही अंग्रेज़ी के मत्थे दोष मढ़ रहे हैं। वस्तुतः यह दोष माता–पिता, अभिभावक और हमारी शैक्षणिक संस्थाओं का भी है। एक भारतीय अपनी मातृभाषा को और एक हिंदी भाषा–भाषी हिंदी को भूलता चला जाए, यह विडंबना नहीं तो और क्या है?

भाषा के सम्मान को किसी औपचारिक तिथि, प्रतिवर्ष 14 सितंबर या संबंधित सप्ताह अथवा पखवाड़े से जोड़े जाने से निश्चय ही हम हिंदी की वर्तमान स्थिति, कार्य दिशा और प्रगति की चर्चा से जुड़ पाते हैं। लेकिन इससे भी अधिक उपयुक्त और उपादेय यह लगता है कि हम तनिक और प्रयास का संकल्प लेकर जितना जानते हैं, उससे अधिक जानने की चेष्टा करें एवं अपनी भाषा से जुड़े रहें। वैसे राजभाषा दिवस या भारतीय भाषा पर्व का अपना ऐतिहासिक महत्व या भाषिक संदर्भ है। परंतु कभी–कभी प्रतिवर्ष राजभाषा हिंदी का यशोगान करने के बावजूद हम अपेक्षित लक्ष्य प्राप्त करने में असमर्थ रहे हैं। तभी कई लेखकों, रचनाकारों और भाषा चिंतकों को 14 सितंबर की अपेक्षा 21 फ़रवरी का दिन अधिक अर्थवान और सार्थक जान पड़ता है। वस्तुतः बांग्लादेश में अपनी मातृभाषा बंग्ला के गौरव और सम्मान की रक्षा करते हुए

तत्कालीन पाकिस्तानी शासकों द्वारा उर्दू थोपे जाने के विरुद्ध अपने प्राण निछावर करनेवाले शहीदों की स्मृति में इसी दिन बंग्ला भाषा पर्व मनाया जाता है। मातृभाषा की शहादत देनेवाले उन शहीदों में, जिनमें अधिकतर मुसलमान थे, उर्दू का लगातार विरोध किया और बंग्ला भाषा और संस्कृति की रक्षा के लिए गोलियों का सामना करते हुए अपनी जान दे दी। यूनेस्को ने औपचारिक रूप से इसे भावांजलि देते हुए प्रतिवर्ष 21 फ़रवरी को अंतरराष्ट्रीय मातृभाषा दिवस के रूप में मनाए जाने के प्रस्ताव को सर्वसम्मति से पारित किया। तभी वर्ष 1989 से इसे विश्वभर में नियमित रूप से मनाया जा रहा है। यह एक अनुकरणीय और स्तुत्य प्रयास है और अपनी भाषा (मातृभाषा) के प्रति किए गए बलिदान को कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करने का पुण्य दिवस। आल इण्डिया रेडियो के समाचार सेवा विभाग के पूर्व महानिदेशक (समाचार) डॉ. पी. के. बंद्योपाध्याय के प्रयास से पहली बार 2007 को अंतरराष्ट्रीय मातृभाषा दिवस समारोहपूर्वक मनाया गया था। आकाशवाणी सभागार में उनकी शहादत को नमन करते हुए न केवल बंग्लादेश के उन्हीं गानों की सस्वर आवृत्ति की गई बल्कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के गानों (रवीन्द्र संगीत) के साथ अन्य भारतीय भाषाओं के कवियों ने भी कविताएँ प्रस्तुत की थीं। उस अवसर पर मुख्य अतिथि के नाते उपस्थित होने का मुझे गौरव प्राप्त हुआ था। वस्तुतः मातृभाषा किसी देश का इतिहास, भूगोल और उसकी नियति बदल सकती है, यह हम अपने पड़ोस स्थित बंग्लादेश से बतौर उदाहरण समझ सकते हैं।

मातृभाषा के प्रति समुचित आदर ही नहीं, उसका अपने जीवन में अधिकाधिक प्रयोग किसी भी अन्य भाषा का अनादर नहीं है। दूसरी भाषा भी किसी की मातृभाषा हो सकती है। याद रखना चाहिए कि अंग्रेज़ी भाषा के निरंतर एवं अधिकाधिक प्रयोग से ही, विश्व में उसकी स्वीकार्यता बढ़ी है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बुद्धिजीवी समुदाय और संचार–तंत्र में उसकी गुणात्मक पैठ का कारण उस भाषा की क्षमता और स्वयं को आवश्यकतानुसार अद्यतन बनाए रखने की तैयारी और हर क्षेत्र में उसकी उपलब्धता से ही संभव हो सका है। अगर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कठिनाइयों और सीमाओं के बावजूद, आज वह इतनी आगे बढ़ सकी है, तो हिंदी को मातृभाषा और राष्ट्रभाषा माननेवाले करोड़ों हिंदी भाषा–भाषी हिंदी के प्रचार–प्रसार और उसके अधिकाधिक प्रयोग या व्यवहार से क्यों कतराते हैं? हिंदी का निजी जीवन या सामाजिक–सांस्कृतिक क्षेत्रों में और कार्यालय में प्रयोग क्यों नहीं हो सकता? इसका प्रयोग अंग्रेज़ी से पीछा छुड़ाया जाना नहीं है, बल्कि हिंदी में भी समरूप दक्षता बनाए रखना है, जिससे हम और अधिक एवं बेहतर ढंग से अपनी कार्यक्षमता बढ़ा सकते हैं। इस बात को स्वीकारने में कोई आपत्ति नहीं है कि हिंदी के बहुत–से विद्वान एवं अध्यापक बहुत अच्छी अंग्रेज़ी जानते हैं, जबकि अंग्रेज़ी के जानकार विद्वान एवं अध्यापक अच्छी हिंदी नहीं जानते; मातृभाषा हिंदी होने के बावजूद। तमिल, बंग्ला, कन्नड, पंजाबी, मलयालम या मराठी के कई लेखक एवं विद्वान समान गति से अंग्रेज़ी में बोलते हैं, लेकिन उनकी अभिव्यक्ति की भाषा उनकी मातृभाषा है। तो फिर क्या कारण है कि हिंदी भाषा–भाषी लेखक, पाठक या विद्वान यह क्षमता अर्जित नहीं कर सकते! इसलिए अपनी भाषा के प्रति व्यक्तिगत या सामूहिक तौर पर ऐसे ढुलमुल रवैये को छोड़ना होगा। अख़बार उलट–पलटकर, टी.वी. देखकर या रेडियो सुनकर हम भाषा की समझ बढ़ा सकते हैं या बरकरार रख सकते हैं। लेकिन इस सीमित समझ में अपेक्षित एवं गुणात्मक परिवर्तन के लिए भाषा को निरंतर माँजते रहने, उसमें निरंतर प्रयोग करते रहने और संबंधित समाज या संबोध्य समुदाय को साथ लेकर चलने की आवश्यकता है। अगर दस करोड़ हिंदी भाषा–भाषी लोग सक्रिय हो जाएँ और समर्पित ढंग से काम करें, तो सचमुच एक नई भाषा–क्रांति हो जाए। हिंदी भाषा के शब्द–भंडार में वृद्धि के साथ इसके प्रयोग, हिंदी पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनात्मक सामग्री, समाचार–पत्रों और विभिन्न विधाओं में नवीनतम विषयों और अनुशासनों के साथ जो दौर आ सकता है, वह सहज ही रोमांचित करनेवाला सचमुच एक नया प्रस्थान होगा... एक ऐतिहासिक प्रस्थान, जिसकी प्रतीक्षा ही नहीं, जिसके लिए प्रार्थना भी की जा रही है...

नई दिल्ली, भारत
sbseditor@gmail.com

फ़िजी में हिंदी-शिक्षण

–श्रीमती मनीषा रामरक्खा

'मातृभाषा से सदा होता मनुज कल्याण है।
सांस्कृतिक सभ्यता का होता सदा उत्थान है।'

फ़िजी प्रशान्त महासागर के नीले प्रांगण में स्थित द्वीप समूहों का सुन्दर देश है, जहाँ सूर्य की पहली किरण नया सवेरा लेकर नए दिन की शुरूआत करती है। फ़िजी का मौसम सदाबहार है। फ़िजी बहुभाषीय और बहुसांस्कृतिक देश है। यहाँ कई भाषाएँ बोली जाती हैं और वर्तमान में मातृभाषाओं के महत्व को समझते हुए फ़िजी सरकार और शिक्षा मंत्रालय द्वारा पाठशालाओं के पाठ्यक्रम में मातृभाषाओं के अध्ययन की सुविधा का पूर्ण एवं व्यवस्थित प्रावधान किया गया है। इसके साथ ही फ़िजी के प्रारम्भिक, माध्यमिक और उच्चतर विद्यालयों में वार्तालापीय स्तर पर हिंदी एवं यहाँ के मूल निवासियों की ई–तौकैयी भाषा के पठन–पाठन की पूर्ण व्यवस्था है। फ़िजी में हिंदी–शिक्षण की व्यवस्था पर विस्तार से विचार–विमर्श करने से पूर्व फ़िजी की सामाजिक व्यवस्था और मातृभाषा के महत्व को समझना अति आवश्यक है।

फ़िजी एक ऐसा उन्नत देश है, जहाँ के संविधान में तीन भाषाओं को समान अधिकार प्राप्त है। फ़िजी के मूल निवासियों की भाषा 'ई–तौकैयी', 'हिंदी' और अंग्रेज़ी, इन तीनों भाषाओं को सरकारी स्तर पर और शिक्षा मंत्रालय द्वारा समान अधिकार एवं मान्यता प्राप्त है। यहाँ की मूल जन आबादी फ़िजीयन यानी काईवीती लोगों की है। ये काईवीती लोग 'श्रीमद्भगवत् गीता' के मूल संदेश के आधार पर अपने जीवन–यापन में विश्वास रखनेवाले हैं। अर्थात इनके विषय में जो दिलचस्प बात है, वह है कि ये जीवन से प्यार करते हैं, उसे बोझा नहीं समझते बल्कि हर घड़ी खुशहाल जीवन व्यतीत करते हैं। ये अपने जीवन में एक–एक पल का आनन्द लेते हैं। इन्हें न भविष्य की चिन्ता है और न बीते दिनों का गम। ये लोग वर्तमान को ही जीवन समझते हैं, इसीलिए इनके जीवन में उल्लास है, हँसी–खुशी है और रंगीलापन है। खेल–कूद

शिक्षा :

- 1977 – मास्टर ऑफ़ आर्ट्स–एकोनोमिक्स
- 1975 – बी.ए. एजुकेशन
- 1969–1971 – बी.ए. और एम.ए. (हिंदी)

व्यवसाय :

- सम्प्रति – प्रधान, हिंदी टीचर्स एसोसिएशन, फ़िजी
- वरिष्ठ शिक्षा अधिकारी, शिक्षा मंत्रालय (सेवानिवृत्त)
- सदस्य, आर्य प्रतिनिधि सभा, फ़िजी
- हिंदी शिक्षक, माध्यमिक पाठशाला
- लौटोका टीचर्स ट्रेनिंग कॉलिज, फ़िजी हायर एजुकेशन कमिशन, फ़िजी इंस्टीट्यूट ऑफ़ टेक्नोलॉजी, युनिवर्सिटी ऑफ़ साउथ पेसिफ़िक तथा फ़िजी नेशनल विश्वविद्यालय में कार्य

प्रकाशन :

- 'संस्कृति और नैतिक शिक्षा'
- 'संस्कृति और मानव धर्म'
- 8वीं कक्षा के लिए 'शाश्वत ज्ञान–8'
- 2014 – विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस द्वारा आयोजित अंतरराष्ट्रीय (क्षेत्रीय) हिंदी सम्मेलन की स्मारिका में शोध–पत्र प्रकाशित

सम्मान :

- 'हिंदी सेवी सम्मान', भारतीय संस्कृति संवर्धन परिषद्, भारत
- 'फ़िजी समिति सम्मान', फ़िजी हिंदी साहित्य समिति
- सम्मान व प्रशंसा प्रमाणपत्र, शिक्षा मंत्रालय, फ़िजी

और गायन इनके जीवन के अभिन्न अंग हैं।

दूसरा मुख्य जनसमुदाय प्रवासी भारतीयों का है। फ़िजी में हिंदी भाषा, संस्कृति और सभ्यता की कहानी 14 मई, सन् 1879 से, गिरमिट प्रथा के अंतर्गत, प्रथम जहाज़ लिओनीदास द्वारा लाए गए 463 भारतीयों द्वारा शुरू हुई। यह क्रम चलता रहा और

भारतीय मज़दूर फ़िजी लाए जाते रहे। इस तरह 11 नवंबर, सन् 1916 तक गिरमिट प्रथा के अंतर्गत भारतीय मज़दूर फ़िजी लाए जाते रहे। इन 37 वर्षों में लगभग 87 जहाज़ फ़िजी आए और भारत के विभिन्न प्रांतों के भारतीय मज़दूर को फ़िजी के समुद्री तटों पर उतारते रहे।

आज फ़िजी में हिंदी भाषा, संस्कृति और सभ्यता का, 137 वर्षों का इतिहास यह दर्शाता है कि मेहनत और लगन से सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। यह हमारे गिरमिटिया पूर्वजों की लगन और मेहनत का फल है कि आज फ़िजी में हिंदी भाषा ने भी वही स्थान प्राप्त किया है, जो यहाँ के मूल निवासियों की ई–तौकैयी भाषा को प्राप्त है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहते हुए हर व्यक्ति स्वस्थ, सुखी एवं सम्पन्न रहना चाहता है। वास्तव में स्वस्थ, सुखी और सम्पन्न रहने के लिए मनुष्य के जीवन में जितना महत्व ज्ञान–विज्ञान और आधुनिक तकनीकी के ज्ञान का है, उससे कहीं अधिक मातृभाषा के ज्ञान का महत्व है। ज्ञान–विज्ञान और आधुनिक तकनीकी–योग्यता हमें धन कमाने का रास्ता सिखलाती है, तो वहीं हमारी मातृभाषा हमें अपनी संस्कृति, सभ्यता और हमारे धर्म–ग्रंथों के गूढ़ रहस्यों से अवगत कराती है, साथ ही हमें मानवता का पाठ पढ़ाती है, जिसके माध्यम से हम स्वस्थ जीवन व्यतीत कर सकते हैं और एक स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकते हैं।

एक देश की प्रतिष्ठा उस देश के प्राकृतिक सौन्दर्य एवं जातीय संगठन पर निर्भर है और जातीय संगठन उस देश में बोली जानेवाली मातृभाषाओं के आपसी संगठन और समझ पर निर्भर रहता है। इस विचार से हमारे लिए यह परम आवश्यक है कि अपनी मातृभाषा को बढ़ावा दें और साथ ही अन्य जातियों की मातृभाषा का सम्मान करें। इसी आचरण से जातीय संस्कृति, धर्म और नैतिक आचरण की उन्नति हो सकती है। वास्तव में जातीय उन्नति ही एक राष्ट्र के उत्थान की आधारशिला है।

किसी भी सभ्यता और संस्कृति का उसकी मातृभाषा से अटूट सम्बन्ध होता है। सभ्यता और संस्कृति के बिना मनुष्य अधूरा समझा जाता है, क्योंकि सभ्यता शरीर है और संस्कृति आत्मा, सभ्यता बाह्य है और संस्कृति आन्तरिक सकून। सभ्यता भौतिक विकास का नाम है और संस्कृति आध्यात्मिक विकास का नाम है। मनुष्य की विचारधारा उसकी संस्कृति पर निर्भर होती है। संस्कृति के द्वारा सच्चाई, ईमानदारी, संतोष और संयम आदि गुणों का संचार होता है। मातृभाषा ही एक ऐसा माध्यम है, जिसके अध्ययन से हम इन गुणों को स्वतः ही ग्रहण करते हुए अपने आप को एक श्रेष्ठ एवं सुसंस्कृत नागरिक बना सकते हैं। हमारी संस्कृति हमें आशावादी बनाती है। मातृभाषा का ज्ञान हमें उस ओर अग्रसर करता है, जिस पर चलकर हम आत्म विश्वासी और आत्मनिर्भर बन सकते हैं।

फ़िजी में हिंदी की नींव डाली हमारे गिरमिटिया पूर्वजों ने, जो कि भारत के विभिन्न प्रान्तों से अपनी विभिन्न बोलियाँ लेकर आए थे। नई जगह पर अपने भावों के आदान–प्रदान के लिए, सभी बोलियों के मेल से एक नई बोली को जन्म दिया गया। फ़िजी में हिंदी भाषा की वर्तमान स्थिति, प्रतिष्ठा और मान–सम्मान का श्रेय 'आर्य प्रतिनिधि सभा फ़िजी' और 'श्री सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा' को जाता है।

जैसे एक माँ अपने परिवार को एकता के सूत्र में बाँधती है, उसी तरह मातृभाषा एक जाति को एकता में बाँधे रखती है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ज्ञानी, अनुभवी और दूरदर्शी महात्मा थे। उन्होंने धर्म और संस्कृति की अखण्डता के विचार से राष्ट्र भाषा के रूप में हिंदी को स्वीकार किया और इसको आर्य भाषा कहा। इसी परंपरा को कायम रखते हुए फ़िजी में सन् 1904 में 25 दिसंबर को आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना हुई। स्वामी जी के सिद्धांतों का पालन करते हुए आर्य प्रतिनिधि द्वारा संचालित सभी स्कूलों में हिंदी भाषा और वैदिक संस्कृति के पठन–पाठन को अनिवार्य किया गया और इस पर विशेष ध्यान दिया जाता रहा।

सन् 1980 में फ़िजी में मुझे 'आर्य प्रतिनिधि सभा' द्वारा संचालित एक ऐसे स्कूल में अध्यापन करने का प्रथम अवसर प्राप्त हुआ जहाँ मातृभाषा हिंदी फ़ॉर्म फ़ोर तक अनिवार्य थी तथा हिंदी को अन्य सभी विषयों के बराबर महत्वपूर्ण समझा जाता था। धन्य हैं वे दूरदर्शी, हमारे पूर्वज आर्यजन जिन्होंने अपनी जन्म भूमि भारत से सात समुद्र पार आकर भी अपनी मातृभाषा के महत्व को समझा। साथ–ही–साथ अपनी संस्कृति और सभ्यता को कायम रखने वाली हिंदी भाषा को कायम रखा। परिणामस्वरूप फ़िजी के गिरमिटिया वंशजों की बोलचाल की मूल भाषा हिंदी है। साथ ही, बोलचाल के स्तर पर वहाँ के आदिवासी भाई–बहन भी अधिकांशतः हिंदी भाषा का प्रयोग करते हैं।

बच्चों के चरित्र निर्माण में मातृभाषा महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। इस विचार को ध्यान में रखते हुए एजुकेशन समिट 2000 की रिपोर्ट के सुझावों के तहत मातृभाषा के पठन–पाठन पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा और हिंदी भाषा को पाठ्यक्रम में अनिवार्य करने के लिए कदम उठाया गया। यह भी आवश्यक समझा गया कि सभी बच्चों को स्कूली व्यवस्था के अन्तर्गत तीन भाषाओं में विचारों के आदान–प्रदान की योग्यता प्राप्त होनी चाहिए। पहली उनकी अपनी मातृभाषा, दूसरी वार्तालापीय भाषा (Conversational Hindi & Fijian) और तीसरी अंग्रेज़ी भाषा।

फ़िजी में हिंदी भाषा के दो स्वरूप देखने को मिलते हैं – **वार्तालापीय भाषा** (Conversational Hindi & Fijian)'**फ़िजी हिंदी**' फ़िजी सरकार और शिक्षा मंत्रालय द्वारा फ़िजी के सभी प्राइमेरी और सेकण्डरी स्कूलों के गैर भारतीय बच्चों के लिए यह अनिवार्य है और इसके शिक्षण का माध्यम रोमन लिपि है। फ़िजी में सामाजिक और धार्मिक सन्तुलन बनाए रखने के लिए फ़िजी सरकार ने यह उत्तम कदम सन् 2000 में उठाया और आज भी स्कूलों में अनिवार्यतः एवं नियमित रूप से इसे कार्यान्वित किया जा रहा है।

दूसरा है, **मानक हिंदी पाठ्यक्रम,** यह सभी प्राइमेरी एवं सेकण्डरी स्कूलों में भारतीय बच्चों के लिए शिक्षा मंत्रालय द्वारा निर्धारित हिंदी पाठ्यक्रम है। इसका लिखित रूप पूर्णतः देवनागरी लिपि है। यह पाठ्यक्रम कक्षा एक से लेकर कक्षा आठ तक प्राइमेरी स्कूलों के लिए और वर्ष 9 से लेकर वर्ष 13 तक सेकण्डरी स्कूलों के लिए पूर्णतः मानक हिंदी पर आधारित है। मानक हिंदी फ़िजी में औपचारिक तौर पर काम में लाई जाने वाली सक्षम भाषा है।

फ़िजी में तीन विश्व विद्यालय हैं, जहाँ पर हिंदी में सर्टिफ़िकेट, डिप्लोमा, डिग्री एवं मास्टर्स डिग्री उपलब्ध है। बी.एड. प्राइमेरी करने वाले सभी बच्चों को हिंदी शिक्षण अनिवार्य है। यह पाठ्यक्रम शिक्षण मानक हिंदी, देवनागरी लिपि के माध्यम से कराया जाता है। फ़िजी सरकार के पूर्ण सहयोग के साथ–साथ अनेक गैर–सरकारी संस्थाएँ और धार्मिक संस्थाएँ भी हिंदी शिक्षण एवं हिंदी के प्रचार–प्रसार में तन–मन–धन से कार्यरत हैं।

'युनिवर्सिटी ऑफ़ फ़िजी' एक नव निर्मित एवं आर्य प्रतिनिधि सभा ऑफ़ फ़िजी द्वारा संचालित विश्वविद्यालय है, जहाँ पर हिंदी के पठन–पाठन को उतना ही महत्व दिया जाता है, जितना कि अन्य विषयों को। फ़िजी का यह पहला विश्वविद्यालय है, जहाँ पर हिंदी में मास्टर्स डिग्री उपलब्ध है। निकट भविष्य में आशा है कि शीघ्र अति शीघ्र हिंदी में पी.एच.डी. की शिक्षण व्यवस्था भी हो जाएगी। इस विश्वविद्यालय की नींव दिसंबर सन् 2004 में आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा सवेनी, लौतोका में डाली गई। यहाँ पर संस्कृति को मान–सम्मान देने और वैदिक संस्कृति को कायम रखने का श्रेय आर्य प्रतिनिधि सभा के उन दूरदर्शी एवं विद्वान महापुरुषों को जाता है, जिन्होंने अपने सुखों से परे अपने समाज, भाषा और वैदिक संस्कृति के विषय में सोचा और तन–मन–धन से उसकी सेवा की।

आज इस अवसर पर मैं उन सभी अपने गिरमिटिया पूर्वजों के प्रति इस कविता के माध्यम से आभार प्रगट करती हूँ –

"हैं धन्य हमारे पूर्वज, जो पूजनीय महान थे।
हिंदी की जड़ें जमा गए, फ़िजी के कोने–कोने में।।
हैं धन्य......
विपरीत अवस्था में पड़कर, जो सोचा, वो पा न सके।
हारे न हताश हुए पल–भर, नव जीवन ज्योति जगा गए।।
हैं धन्य......
मेहनत लगन व निष्ठा ही, यह उनकी जीवन शैली थी।
कुछ आगे बढ़कर सफल हुए, कुछ जीवन अपना गवाँ गए।।
हैं धन्य......
आभार है, उनका हम पर, जिसको, हमें चुकाना है।
भावी संन्तति को उनका, जीवन दर्शन बतलाना है।।
हैं धन्य......
थी आस्था अपनी संस्कृति में, भाषा का साथ नहीं छोड़ा।
तुलसी की रामायण लेकर, फ़िजी में भारत बसा गए।।
हैं धन्य......
वेदों की धुन कहीं गूँज रही, कहीं हवन–यज्ञ का ज्ञान मिले।
गुरुद्वारे में गुरुवाणी कहीं, कहीं मस्जिद में अजान चले।।
हैं धन्य......
यह फल है उनके परिश्रम का, जो आज यहाँ हम देख रहे।
है श्रद्धा नमन उन पूर्वजों को, जीवन को सफल बना गए।।
हैं धन्य......"

फ़िजी
manishar@unifiji.ac.fj

मध्य और पूर्वी यूरोप में हिंदी-शिक्षण और शोध

–डॉ. इमरै बंघा

हिंदी अध्ययन के लिहाज़ से मध्य और पूर्वी यूरोप अपेक्षाकृत कम मशहूर मगर रोचक क्षेत्र है। पहले कभी सोवियत यूनियन का या साम्यवादी गुट का हिस्सा रहे लगभग 20 देश अब इस क्षेत्र में आते हैं। इनमें से आधे या तो यूरोपीय यूनियन में पहले से ही शामिल हो चुके हैं या फिर इसके लिए रज़ामन्द हैं। मौजूदा या भविष्य के यूरोपीय यूनियन का पूर्वी हिस्सा है। (उम्मीद कर सकते हैं कि क्रोएशिया भी एक दिन इसका हिस्सा होगा) दुनिया भर का सबसे विविधतापूर्ण हिस्सा है। मुश्किल से मध्य प्रदेश जितने बड़े इस इलाके में दस छोटे–छोटे स्वतंत्र राष्ट्र हैं। इनमें से ज़्यादातर मुल्कों में हिंदी और ओरियंटल (प्राच्य) अध्ययनों की एक विविधतापूर्ण समृद्ध परम्परा है। बड़े पश्चिमी यूरोपीय राज्यों के मुकाबले आर्थिक दृष्टि से काफ़ी ग़रीब होने के बावजूद इनमें से कई मुल्कों में प्राच्य संस्कृतियों में असाधारण रुचि की लम्बी अकादमिक परम्पराएँ नज़र आती हैं। ये ऐसे मुल्क हैं, जिन्होंने दूसरे महादेशों को अपना उपनिवेश नहीं बनाया, बल्कि वे खुद अपने इतिहास की लम्बी अवधियों में विदेशी शासन के अधीन रहे। शायद इस वजह से ही भूतपूर्व उपनिवेशों के प्रति इनमें कहीं ज़्यादा सहानुभूति है। साम्यवादी शासन के दौरान 'तीसरी दुनिया' के भूतपूर्व उपनिवेशों के साथ औपचारिक साम्राज्यवाद विरोधी एकजुटता के चलते भी इस सहानुभूति में कुछ इज़ाफ़ा हुआ। इस तरह ख़ासतौर से, 20 वीं के दूसरे अर्धांश से ही मध्य और पूर्वी यूरोप के इन राष्ट्रों ने भारत के साथ बेहतरीन सांस्कृतिक सम्पर्क बनाए रखा।

भारत के साथ इनके इस सांस्कृतिक सम्पर्क का एक महत्वपूर्ण परिणाम इस क्षेत्र की लगभग सभी राजधानियों में हिंदी अध्ययन केंद्रों की स्थापना के रूप में नज़र आता है। 1950 के दशक में भारतीय भाषाशास्त्र और शास्त्रीय भारत के अध्ययन और विशेषज्ञता में पहले से ही लगे विभागों और संस्थाओं में हिंदी भी शामिल हो गई। जैसे प्राग, वारसा और बुदापैश्त में, जहाँ पहले से ही संस्कृत या दूसरी भारतीय भाषाएँ पढ़ाई जाती थीं। बाद में हिंदी अध्यापन के लिए कुछ नए केन्द्र भी खोले गए, जैसे बुख़ारेस्ट और सोफ़िया में। हिंदी अध्यापन का काम साम्यवाद के पतन के बाद बन्द नहीं हुआ। बल्कि कई जगहों मसलन, ज़ाग्रेब, विलनियस या मियेरक्यूरीया चुक में तो हिंदी अध्ययन बाक़ायदा राजनैतिक बदलावों के बाद ही प्रारम्भ हुआ। इससे कहीं न कहीं यह ज़ाहिर होता है कि भारतीय संस्कृति में रुचि सिर्फ़ राजनीति प्रेरित नहीं थी।

शिक्षा :
- पी.एच.डी. (हिंदी)
- बंगला में डिप्लोमा
- ब्रजभाषा में स्वतंत्र शोध

व्यवसाय :
- हिंदी के सहायक प्राध्यापक
- हिंदी के एसोसिएट प्रोफ़ेसर, ओरिएंटल इंस्टिट्यूट, वुल्फ़सन कॉलिज

प्रकाशन :
- 'अति सुधो स्नेह को मार्ग है', 2008
- 'आग, पानी और प्रेम', 2008

पुरस्कार : भोपाल में संपन्न '10वें विश्व हिंदी सम्मेलन' में भारत सरकार द्वारा 'विश्व हिंदी सम्मान'

मध्य और पूर्वी यूरोप में चल रहे हिंदी कार्यक्रमों की अपनी कुछ ख़ास विशिष्टताएँ हैं। सबसे ख़ास बात तो छात्रों का ख़ासा उत्साह और भारतीय संस्कृति को लेकर नौजवानों में तीव्र रुचि रही है। इन देशों में प्रवासी भारतीयों की कोई बहुत बड़ी जमात नहीं है। ऐतिहासिक रूप से भिन्न उत्प्रवासन क्रम के चलते ब्रिटेन

और अमेरिका की तरह यहाँ हिंदी छात्रों में दूसरी या तीसरी पीढ़ी के भारतीय भी नहीं हैं। पश्चिमी यूरोप और अमेरिका के विपरीत यहाँ ज़्यादातर छात्र अपनी निजी रुचि के चलते हिंदी या इंडोलॉजी (भारत–शास्त्र) पढ़ते हैं, न कि कैरियर बनाने के मकसद से। अध्यापन भी पश्चिम के मुकाबले यहाँ कहीं, ज़्यादा भाषा शास्त्रोन्मुख हैं। हिंदी पढ़ने जा रहे छात्र आमतौर पर पहले ही दो या तीन भाषाओं और भाषाई पदों से परिचित होते हैं। हिंदी पढ़ाने का काम यहाँ अंग्रेज़ी माध्यम की किताबों से नहीं होता, इतना ही नहीं अंग्रेज़ी माध्यम की किताबों का इस्तेमाल भी कम ही होता है। अभी कुछ साल पहले तक तो यहाँ ऐसे भी छात्र थे, जिन्होंने अंग्रेज़ी सीखे बिना हिंदी पढ़ी। इसकी एक वजह यह भी थी कि अंग्रेज़ी माध्यम की किताबें इतनी महंगी हुआ करती हैं कि पूर्वी यूरोप के सबसे बेहतरीन पुस्तकालयों के लिए भी इन्हें खरीद पाना सम्भव न था। आज भले ही सुनने में यह अटपटा लग सकता है, मगर यह एक तथ्य है कि स्थानीय भाषाओं और रूसी में कहीं बेहतर संसाधन उपलब्ध थे, जैसे हिंदी–रूसी शब्दकोश चेक/अंग्रेज़ी में 'पोरिज़का' की या रूसी में 'दिमशित्स' की पाठ्य पुस्तकें चेक/अंग्रेज़ी। हाल के वर्षों के बुलगारिया, पोलैण्ड और हंगरी आदि में इन्हें राष्ट्रीय भाषाओं में तैयार की गई किताबों के चलते बदल दिया गया।

इस क्षेत्र से ताल्लुक रखनेवाले हिंदी अध्यापकों की परम्पराएँ और मुश्किलें दोनों साझी हैं। दो आम चुनौतियाँ जिससे इस क्षेत्र के हिंदी अध्यापक आज रू–ब–रू हैं, वे हैं यूरोपीय यूनियन में दाखिले के कारण आए बदलाव और भौतिक संसाधनों की कमी। यूरोपीय यूनियन में दाखिले के बाद भी मध्य और पूर्व यूरोपीय देश अपने पश्चिमी पड़ोसियों के मुकाबले में काफ़ी ग़रीब ठहराते हैं और इन्हें आज भी महंगे अंतरराष्ट्रीय संसाधनों के बजाय अपने राष्ट्रीय संसाधनों पर ही ज़्यादा ऐतबार करना पड़ता है। भारत द्वारा लगातार प्रायोजित वजीफ़ों, हिंदी प्राध्यापकों, इमदादी किताबों और मदद के दूसरे रूपों से भी इस क्षेत्र में हिंदी अध्यापन नियमित चल पाता है। आज यूरोपीय यूनियन में शामिल होने से शिक्षा–व्यवस्था में एक क्रांतिकारी बदलाव की भी ज़रूरत है। यहाँ एकमुश्त 4 या 5 वर्षीय एम.ए. डिग्री के बजाय बी.ए., एम.ए., पी.एच.डी. व्यवस्था का मानकीकरण किए जाने और प्रतियोगिता आधारित आर्थिक मदद के बजाय स्थायी राष्ट्रीय अनुदान की व्यवस्था लागू करने की आवश्यकता है। आमतौर पर इस पूरे क्षेत्र में हिंदी अध्यापन का स्तर काफ़ी ऊँचा है। हालाँकि, मौजूदा सांस्थानिक प्रबंध हिंदी के वैसे जानकार अकादमिकों (जो उतनी ही अच्छी हिंदी जानते हैं, जितना कि एक देशज वक्ता) को हिंदी पढ़ाने में शायद उतने प्रभावी साबित न भी हों, मगर ये छात्रों को पाठों के अनुवाद और उनकी स्थानीय संदर्भों के अनुरूप व्याख्या में प्रशिक्षित करने में सहायता अवश्य करते हैं। यह निश्चय ही मध्य और पूर्वी यूरोपीय देशों में भारतीय संस्कृति के वृहत्तर प्रसार और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी शोध में योगदान देता है।

इस क्षेत्र में हिंदी अध्यापन और शोध की स्थिति से सम्बन्धित कुल 13 लेख मेरी पुस्तक **'मध्य और पूर्वी यूरोप में हिंदी'** में शामिल हैं, जिन्हें मिरेरक्यूरीया चुक (रोमानिया) में ट्रांसिलवेनिया के हंगेरियन विश्वविद्यालय में संपन्न हुए हिंदी विद्वानों के दूसरे सम्मेलन के अवसर पर प्रस्तुत किया गया था। यह संकलन 3 हिस्सों में बँटा हुआ है। पहला हिस्सा तमाम पूर्वी और मध्य यूरोपीय देशों में हिंदी शिक्षण के अतीत और वर्तमान से सम्बन्ध रखता है। इसका दूसरा हिस्सा हिंदी शिक्षण की प्रणालियों की परीक्षा करता है। तीसरा हिस्सा हिंदी भाषाई शोध में लगे इस क्षेत्र के कुछ नेतृत्वकारी विश्वविद्यालयों की नवीन उपलब्धियों को सामने लाता है।

अतीत और वर्तमान के इस तज़कीरे की शुरुआत संकलन के सबसे वयोवृद्ध सहभागी डॉ. डागमार मारकोवा (चार्ल्स विश्वविद्यालय, प्राग, चेक गणराज्य) के एक लेख से होती है। डॉ. डागमार मारकोवा चार्ल्स विश्वविद्यालय में हिंदी भाषा और साहित्य अध्ययन का ब्यौरा देते हुए बताते हैं कि, छात्रों की रुचियों के विस्तार को इनके द्वारा बी.ए. और एम.ए. शोध प्रबन्धों के लिए विषयों के चुनावों के ज़रिए बखूबी समझा जा सकता है। वैसे तो चेक गणराज्य में ज़्यादातर विद्यार्थी हिंदी की आधुनिक प्रवृत्तियों में दिलचस्पी दिखाते हैं, लेकिन कुछेक मध्यकालीन साहित्य की तरफ़ भी रुझान रखते हैं। लेखक हिंदी साहित्य के अध्ययन को अंतः सांस्कृतिक समझ बढ़ाने के एक माध्यम के बतौर देखता है

और इस तथ्य पर भी बराबर ज़ोर देता है कि, हिंदी साहित्य के रसास्वादन की एक महत्वपूर्ण प्राथमिक शर्त इसकी सामाजिक पृष्ठभूमि से परिचित होना है।

श्रीमती वान्या गानचेवा (सोफ़िया विश्वविद्यालय, सेण्ट क्लीमेण्ट ओहरीद्स्की, बुलगारिया) ने बुलगारिया में उच्चस्तरीय हिंदी भाषा शिक्षण पर बात की। इस विभाग में छात्रों की अपेक्षाकृत एक बड़ी संख्या है। स्नातक स्तर तक की पढ़ाई के बाद इनमें से ज़्यादातर छात्र हिंदी अध्ययन के क्षेत्र से बाहर निकल जाया करते हैं, जबकि अन्य यूरोप और अमेरिका के प्रमुख विश्वविद्यालयों में बतौर शिक्षक काम करते हैं। अपने 4 साल हिंदी अध्ययन के दौरान इन छात्रों को उच्चस्तरीय अध्ययन सामग्री की भी दरकार होती है। लेखिका अपने विश्वविद्यालय के हिंदी पाठ्यक्रम और बुलगारी माध्यम की उन स्तरीय हिंदी अभ्यास पुस्तिकाओं का वर्णन करती हैं, जो सोफ़िया केन्द्रित ईस्ट वेस्ट फ़ाउण्डेशन के सहयोग से छपी हैं। इन अभ्यास पुस्तिकाओं में भारतीय संस्कृति से सम्बन्धित पाठ, अभ्यास और खेल शामिल हैं। व्याकरण के स्तरीय विषयों को पढ़ाने के साथ इन किताबों का ज़ोर मुहावरेदार प्रयोगों पर भी होता है। हिंदी में दिए गए निर्देशों और हिंदी–बुलगारी–अंग्रेज़ी शब्द तालिकाओं के चलते यह किताब बुलगारिया से बाहर भी इस्तेमाल में लाई जा सकती है।

डॉ. इमरै बंघा (सपिएंत्सिया–हंगेरियन विश्वविद्यालय, ट्रांसिल्वेनिया, मियेरक्यूरिया चुक, रोमानिया) का पत्र यूरोप के सबसे कम–उम्र हिंदी केन्द्र का वर्णन करता है। एक नए विश्वविद्यालय में हिंदी और भारतीय अध्ययन की शुरुआत कैसे की जाए, जैसे प्रश्नों की पड़ताल इस पर्चे में की गई है। ट्रांसिल्वेनिया का हंगेरियन विश्वविद्यालय 2001 में स्थापित हुआ और अक्टूबर 2003 से ही यहाँ भारतीय अंग्रेज़ी साहित्य और सार्वजनिक हिंदी पाठ्यक्रमों की कक्षाएँ चल रही हैं। केन्द्र का लक्ष्य महज़ विश्वविद्यालय द्वारा पढ़ाए जानेवाले विषयों की गिनती में इजाफ़ा करना न होकर एक बड़े समूह तक पहुँचना और स्थानीय व अंतरराष्ट्रीय रुचि के विषयों पर शोध उपलब्ध कराना है। स्थानीय रुचि की ऐसी ही एक शोध परियोजना ट्रांसिल्वेनिया के हंगेरियन प्राच्यवादियों की परम्परा का अध्ययन है और तुलसीदास के छोटे ग्रंथों जैसे मध्यकालीन हिंदी पाठों का अनुवाद और संपादन अंतरराष्ट्रीय आकर्षण का केन्द्र है।

पोलैण्ड में हिंदी शिक्षण और शोध (के अतीत और वर्तमान) पर अपने पत्र में प्रो. दानुता स्ताशिक (दक्षिण एशिया विभाग, वारसा विश्वविद्यालय, पोलैण्ड) संस्कृत, प्राचीन भारत और दर्शन पर यहाँ रहे शुरुआती ज़ोर के साथ, भारत से संबंध विद्वत्–इतिहास का खाका पेश करती हैं। पोलैण्ड में हिंदी का एक लम्बा विद्वत् इतिहास है और यहाँ वारसा, क्राकोव और पोजनान तीनों विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जा रही है। प्रो. स्ताशिक इन तीनों केन्द्रों की अकादमिक उपलब्धियों और शोध का वर्णन करने के साथ ही हिंदी के महत्वपूर्ण पोलिश अनुवादों का भी ज़िक्र करती हैं। स्ताशिक हिंदी–शिक्षण से संबंधित आधारभूत विवरण जैसे अलग–अलग स्तरों पर छात्रों की संख्या और हिंदी के साथ इनके जुड़ाव का वर्णन भी करती हैं।

डॉ. साबिना पोपलार्न, बुख़ारेस्ट विश्वविद्यालय से हिंदी विभाग के 35 वर्षीय इतिहास का एक लेखा पेश करती हैं। इस विभाग की स्थापना में प्रो. लौरेंत्स्यु तेबान, जो इस संकलन में एक सहभागी भी हैं, का बड़ा योगदान रहा है। इस विभाग का ज़ोर भाषाई शोध ख़ासतौर से प्रकारात्मक तुलना पर रहा है।

मारिया नेज्यैशी का पत्र यह बताता है कि हिंदी अध्यापन 1950 के दशक में हंगरी में सदियों पुरानी इंडोलॉजी (भारत–शास्त्र) परम्परा से कैसे जुड़ गया है। व्याख्या करने के साथ ही कम्प्यूटर पूर्व दौर में हिंदी शिक्षण ही प्रमुख चुनौतियों का भी वर्णन करता है। यह पत्र हंगरी के छात्रों के लिए बड़े पैमाने पर मौजूद हिंदी शिक्षण संसाधनों का भी वर्णन करता है, जिसमें सबसे अहम नौसिखियों के लिए हंगेरियन माध्यम में उपलब्ध पाठ्य सामग्री है। इस पत्र का दूसरा हिस्सा अध्ययन सामग्री तैयार करने के दौरान पेश आनेवाली दिक्कतों, जैसे हिंदी व्याकरण पढ़ाने के लिए उपयुक्त हंगेरी भाषाई पदों का निर्धारण, मौजूँ अभ्यासों की रचना और शब्द भण्डार का चुनाव आदि पर रोशनी डालता है। ये कुछ ऐसी आम समस्याएँ हैं, जिनका सामना पाठ्यक्रम तैयार करनेवाले हर लेखक को करना पड़ता है। विशेष तौर से तब, जब कि वो किसी मुल्क और भाषा की अपनी ख़ास विविधताओं से साक्षात्कार कर रहा होता है।

हिंदी शिक्षण की प्रणालियों से सम्बद्ध खण्ड में शामिल 3 पत्र हिंदी प्रोत्साहन के 3 अलग–अलग पहलुओं से बावस्ता हैं। प्रो. दानुता स्ताशिक उनके अपने विश्वविद्यालय में हिंदी शिक्षण–प्रशिक्षण के गतिविज्ञान पर रोशनी डालती हैं। वारसा पाठ्यक्रम में हिंदी या तो मुख्य भाषा होती है या फिर दूसरी और तीसरी भाषा। व्यावहारिक हिंदी के अलावा सभी कक्षाएँ पोलिश में होती हैं। आरम्भिक वर्षों में दूसरी भाषाओं की पाठ्यपुस्तकें (पोरिज़्का चेक/अंग्रेज़ी में या रूसी भाषा में दिमशित्स) इस्तेमाल की जाती थी, मगर पोलिश भाषा में अब एक नई किताब आनेवाली है। प्रो. स्ताशिक ने दूसरी सबसे अहम चुनौती का भी ज़िक्र किया जिसका सामना ऐसे तमाम मुल्कों को करना पड़ रहा है, जिन्होंने यूरोपीय संगठन में दाखिला पा लिया है या जो कुछ ही वर्षों के दौरान इसमें दाखिला पा लेंगे, यह चुनौती है 5 साल कोर्स से बी. ए.–एम.ए. ढाँचे में बदलाव की। तब बी.ए. पाठ्यक्रम व्यापक तौर पर सुलभ होगा जबकि एम.ए. स्तर पर यह महज़ विशिष्ट प्रतिभा प्रदर्शित करनेवाले छात्रों के लिए ही उपलब्ध होगा।

हरजेन्दर सिंह चौधरी (विज़िटिंग प्रोफ़ेसर हिंदी, वारसा विश्वविद्यालय) मध्य और पूर्वी यूरोपीय भाषाओं में हिंदी शिक्षण के नफ़े–नुक़सान का वर्णन करते हैं। प्रो. चौधरी मानते हैं कि ऐसे भारतीय शिक्षकों की गैर–मौजूदगी के चलते जिन्हें ये भाषाएँ भी आती हों, इस क्षेत्र में आनेवाले विज़िटिंग प्रोफ़ेसर को अंग्रेज़ी का सहारा लेना पड़ता है, क्योंकि हिंदी का हरेक पहलू सीधी प्रणाली (डायरेक्ट मेथड) से नहीं पढ़ाया जा सकता।

सुश्री हयनल्का कोवाच (ओतवोरा लोरांत विश्वविद्यालय, बुडापेस्ट हंगेरी) हंगेरी में प्रारम्भ हुई नई हिंदी राज्य भाषा परीक्षा का वर्णन करती हैं। यह परीक्षा उन छात्रों के हिंदी ज्ञान को राष्ट्रीय स्तर पर प्रमाणित करने की एक व्यवस्था है, जिन्होंने हिंदी भाषा की पढ़ाई विश्वविद्यालयों में नहीं की है और जिनके पास हिंदी की कोई डिग्री नहीं है। यह परीक्षा ऐसे लोगों के लिए है जिन्होंने भारत में कुछ समय बिताया और हिंदी सीखी या फिर वैसे छात्रों के हिंदी ज्ञान को प्रामाणिकता देती है, जो किसी वजह से अपना डिग्री कोर्स पूरा नहीं कर सके। प्रश्नपत्रों का एक समान मापदण्ड रखने के लिए इस परीक्षा में नौसिखियों, मध्यवर्ती और उच्चस्तरीय स्तरों के हिंदी प्रतिभागी से भाषा में वैसी ही दक्षता अपेक्षित होती है, जो समान स्तर के रूसी, फ्रेंच या किसी दूसरी भाषा के प्रतिभागी से की जाती है। इस परीक्षा की एक दूसरी विशिष्टता यह है कि इसमें प्रतिभागियों को शब्दकोश के प्रयोग की इजाज़त नहीं होती और भाषा में सीधे अनुवाद को एक ऐसे अभ्यास से स्थानापन्न कर दिया गया है, जिसमें एक पाठ का सार दूसरी भाषा में लिखा जाता है, दूसरे शब्दों में प्रश्नपत्र में दिए गए वाक्यों को व्याकरण सम्मत मानकों में निर्देशानुरूप तब्दील किया जाना चाहिए। राज्य की इस मानक परीक्षा के ज़रिए आशा है कि बड़ा दायरा हिंदी भाषा कौशल अर्जित करेगा।

इस किताब का तीसरा हिस्सा कुछेक विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषाई शोध की झलक देता है। डॉ. सुनील कुमार का पत्र (ज़ाग्रेब विश्वविद्यालय, क्रोएशिया) मध्य यूरोप में हिंदी अध्यापन के काफ़ी महत्वपूर्ण मुद्दे हिंदी कालों के संज्ञाशास्त्र को लेकर है, क्योंकि ये भाषा ग्राह्यता के मार्ग में एक बड़ी चुनौती पेश करते हैं। डॉ. सुनील कुमार ने कामता प्रसाद से प्रारम्भ कर अंग्रेज़ी और जर्मन के होते हुए स्लेवोनिक भाषाओं में उपलब्ध हिंदी व्याकरण और पाठ्यपुस्तकों तक हिंदी कालों और कृदन्तों (पार्टिसिपल) का एक पारिभाषिक और वर्गीकृत सर्वेक्षण किया। कामता प्रसाद द्वारा सुझाए गए संज्ञाशास्त्र की कमियों का इशारा करते हुए डॉ. कुमार कहते हैं कि कृदन्तों का वर्गीकरण करते वक्त यह संज्ञाशास्त्र अंग्रेज़ी से बेहद प्रभावित है। जबकि कुछ पूर्वी यूरोपीय व्याकरण जो स्लेवोनिक भाषाओं के 'क्रियाकालों' से अपनी अवधारणा और परिभाषा गढ़ रहे हैं, कहीं ज़्यादा सटीक हैं। डॉ. कुमार हिंदी कालों का एक समग्र वर्गीकरण भी प्रस्तावित करते हैं।

बुखारेस्ट विश्वविद्यालय में हिंदी भाषाई शोध संबंधी अपने पहले पत्र में प्रो. लौरेंत्स्यु थेबान नए सार्वभौम व्याकरण के विकास में हिंदी के योगदान की परीक्षा करते हैं। सामान्य भाषा शास्त्र से संबंधित प्रश्न अक्सर पूरे तौर से अंग्रेज़ी पर आधारित निरीक्षण होते हैं। थेबान 'सार्वभौम व्याकरण' के मुखौटे में छिपे असली चेहरे यानी अंग्रेज़ी व्याकरण को बेनकाब करने के बाद इसके लिए हिंदी का प्रस्ताव करते हैं और तत्पश्चात् वो इस हिंदी आधारित सार्वभौम व्याकरण की परीक्षा इसके छः संभव सैद्धांतिक

क्रमानुवर्ती संरचनाओं के साथ करते हैं। अपने दूसरे पत्र में, प्रो. थेबान हिंदी के शब्दक्रम, कारक और अनुरूपता (एग्रीमेंट) संरचना की तुलना संयुक्त राष्ट्र संघ की औपचारिक भाषाओं और फ़िजी, मॉरीशस तथा सूरीनाम की क्षेत्रीय बोलियों के साथ करते हैं। इन भाषाओं की संज्ञाशास्त्रीय तुलना में लेखक हिंदी की केन्द्रीयता को इसके रूपों और वाक्य–विन्यासीय निर्मितियों की समृद्धि के ज़रिए रेखांकित करता है।

डॉ. साबिना पोपर्लान का पत्र बुखारेस्ट विश्वविद्यालय में शोध के आधुनिक अभिगमों का वर्णन करता है। हिंदी कालों की विशिष्टता पर अपनी एक अंतर्दृष्टि प्रस्तुत करने के लिए वो हिंदी को अंग्रेज़ी के बजाय दो यूरोपीय भाषाओं फ्रेंच और रोमानी के बरअक्स रखती हैं। लेखिका यह दिखाने का प्रयास करती है कि हिंदी कालों की समृद्धि क्यों और कैसे निश्चितता या अनिश्चितता या कि नियमितता जैसे पहलुओं को बयान करने में है, वहीं दूसरी तरफ़ फ्रेंच और रोमानी भाषाएँ या तो इन पहलुओं पर मूक हैं या उन्हें व्यक्त करने के लिए इन भाषाओं में अतिरिक्त पदों की आवश्यकता पड़ती है। भाषाओं के कालों और मौखिक रूपों का उनका यह तुलनात्मक अध्ययन हिंदी मौखिक–तंत्र पर शोध के महत्व की ओर ध्यान आकर्षित करता है।

यह कहना ग़ैर–ज़रूरी होगा की पूर्वी और मध्य यूरोप में हिंदी शिक्षण उससे कहीं ज़्यादा समृद्ध है, जितना इस किताब से ज़ाहिर होता है। यह किताब वैसे मुल्कों में हिंदी की स्थिति का तो कुछ जायज़ा ही नहीं देती, जिन्होंने यूरोपीय संघ में दाखिल होने के लिए अभी मोल–तोल भी शुरू नहीं किया है, जैसे–युक्रेन, बेलारूस या फिर सर्विया। एस्तोनिया, लातविया, स्लोवाकिया और स्लोवेनिया जैसे देशों में हिंदी की स्थिति का भी इसमें कोई ज़िक्र नहीं है। हालाँकि ये मुल्क यूरोपीय संघ में शामिल हो चुके हैं। जिन देशों का ज़िक्र यहाँ है भी, वहाँ भी एक छोटे पर्चे की चौहद्दी सविस्तार वर्णन के रास्ते में दूसरे किस्म की रुकावटें पैदा करती है। जैसा पहले ही बताया जा चुका है, यह किताब रोमानिया के ट्रांसिल्वेनिया में हंगेरियन विश्वविद्यालय के नये 'अलेक्ज़ादर सोमा दे कोरोश सेंटर फ़ॉर ओरियंटल स्टडीज़' (**Alexander Csoma de Koros Centre for Oriental Studies**) में आयोजित एक हिंदी सम्मेलन में प्रस्तुत पत्रों पर आधारित है। इस किताब में हंगेरी के बुदापेस्ट में सन् 2002 में संपन्न हुए मध्य और पूर्वी यूरोप के हिंदी विद्वानों के पहले अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में पढ़े गए दो पत्र भी शामिल हैं। कई एक वजहों से दूसरे सम्मेलन में पढ़े गए पत्रों को इस संकलन में जगह नहीं मिल पाई है। संस्थानिक अवस्थितियों में हिंदी के चरित्र और तेवर का एक ज़्यादा समग्र चित्र उपलब्ध कराने के मकसद से अगला पैराग्राफ़ उन्हीं पर्चों के कुछेक निष्कर्षों को सामने रखता है।

श्रीमती वालेन्टिला मारीनोवा (सोफ़िया विश्वविद्यालय, 'सेण्ट क्लिमेण्ट ओहरीदस्की' बुलगारिया) ने बुलगारिया में नौसिखियों की हिंदी शिक्षा पर बात की। 1976 में सोफ़िया विश्वविद्यालय 'सेण्ट क्लिमेण्ट ओहरीदस्की' में स्थापित इंडोलॉजी का विभाग इस भाषा पर काम कर रहे इसके 11 स्थायी सदस्यों के साथ पूरे यूरोप में हिंदी शिक्षण का एक महत्वपूर्ण केन्द्र है। 14–16 साप्ताहिक संपर्क घण्टों वाले एक पाठ्यक्रम में दाखिले से पहले छात्रों को अंग्रेज़ी में एक प्रवेश परीक्षा देनी पड़ती है। कुछ पूर्वी यूरोपीय देशों में यह एक आम परिघटना मालूम पड़ती है कि छात्र कक्षा में घण्टों के अलावा अपनी हिंदी की पढ़ाई बाहर नहीं कर सकते। इस क्षेत्र के कठिन आर्थिक हालात के चलते विश्वविद्यालय घण्टों के बाद छात्रों को पैसे कमाने के लिए काम भी करना पड़ता है। इस विभाग में शिक्षण का एक क़ाबिले–ग़ौर पहलू क्रमशः सीधी प्रणाली से साक्षात्कार है।

श्री सुनील कुमार श्रीवास्तव (नई दिल्ली के विदेश मंत्रालय में हिंदी के उप–सचिव) ने कम्प्यूटर सहाय्य हिंदी–शिक्षण पर चर्चा करते हुए भाषा सीखने के वास्ते हिंदी शिक्षक नामक एक इलेक्ट्रॉनिक सहाय्य का ज़िक्र किया। यह इलेक्ट्रॉनिक प्रोग्राम बुनियादी अक्षर ज्ञान से शुरू होकर हिंदी भाषा और साहित्य से जुड़ी सूचनाओं का गोदाम है। इसमें व्याकरण संबंधी वर्णन से लेकर, प्रमुख लेखकों, छन्दशास्त्र, समानार्थक और विलोम आदि तक का ज़खीरा है। हिंदी शिक्षक के अतिरिक्त दूसरा इलेक्ट्रॉनिक संसाधन हिंदी गुरु है। हिंदी गुरु वैसे तो रोमन लिप्यन्तरण के माध्यम से हिंदी सिखाता है मगर अपनी विचित्र प्रस्तुतियों और खेलों के ज़रिए भाषा सिखाने की यह प्रक्रिया कहीं ज़्यादा जीवन्त

बन जाती है।

लिथुआनिया में हुए भारतीय अध्ययन और हिंदी पर एक दूसरे पैनल के सहभागियों ने मध्य और पूर्वी यूरोप में हिंदी शिक्षण के इस क्षेत्र का आकार–प्रकार समझने–समझाने का प्रयास किया। डॉ. आउद्रियस बेनोरियस (विल्नियस विश्वविद्यालय के प्राच्य अध्ययन केन्द्र प्रमुख) ने लिथुआनिया में भारतीय अध्ययन का एक ख़ाका पेश किया। कोनोग्सबर्ग विश्वविद्यालय में संस्कृत शोध एक रोमांटिक राष्ट्रीय भाव–हिन्दो–यूरोपीय बन्धुत्व के साथ 19वीं सदी में प्रारम्भ हुई, जिसका आधार यह अवधारणा थी कि लिथुआनी भाषा और संस्कृत में काफ़ी क़रीबी सगोत्रता है। सोवियत काल के दौरान, हालाँकि, लिथुआनिया में संस्कृत और हिंदी–यूरोपीय अध्ययन को शंका की नज़र से देखा गया और जिनकी भी रुचि इस अध्ययन क्षेत्र में थी, उन्हें इसके लिए मास्को, लेनिनग्राद या ताशकन्द के विश्वविद्यालयों में जाना पड़ता। 1993 से ही 'सेण्टर ऑफ़ ओरियण्टल स्टडीज़' में भारतीय, चीनी, अरबी, इस्लाम और जापानी अध्ययन के स्नातक स्तर तक की पढ़ाई होती है। यह कार्यक्रम नृशास्त्र अध्ययन का हिस्सा है और भाषाई अव्यव इस पूरे पाठ्यक्रम का लगभग एक तिहाई हिस्सा घेरता है। हालाँकि केन्द्र का ज़ोर भाषा शास्त्र पर आधारित एक शास्त्रीय अभिगम पर है, लेकिन यहाँ उत्तर–औपनिवेशिक, निम्न वर्गीय और लैंगिक अध्ययनों की पढ़ाई भी होती है।

सुश्री रस रंजन ने, जो विल्नियस विश्वविद्यालय के इसी केन्द्र में हिंदी पढ़ाती हैं, लिथुआनिया में हिंदी–शिक्षण की विशिष्टताओं के संदर्भ में बात रखी। यहाँ हिंदी–शिक्षण 1995 से प्रारम्भ हुआ। इस शिक्षण केन्द्र का सीमा पुलिस, रेडक्रॉस, राज्य सुरक्षा सेवा और लिथुआनिया के नृ–अल्पसंख्यक विभाग के साथ सामाजिक साझे का एक करार है। जहाँ इसके स्नातकों को रोज़गार मिलता रहता है। हालिया शोध की एक झलक देते हुए, सुश्री रंजन ने लिथुआनी भाषा और हिंदी में नातेदारी पर एक अध्ययन प्रस्तुत किया। इस अध्ययन को पेश करने का मक्सद यह दिखाना था कि वैसे तो भारतीय और लिथुआनी समाज एक दूसरे से काफ़ी अलग हैं, मगर लिथुआनी भाषा में नातेदारी का जहाँ तक सवाल है, तो इस भाषा ने संयुक्त परिवार की पदावली को सुरक्षित रखा है।

बुख़ारेस्ट विश्वविद्यालय के श्री लिव्यू बोरदास ने एक नई रोमानी पत्रिका की प्रस्तुति की। इस पत्रिका का भारत पर ख़ासा ज़ोर है। पत्रिका इस उप–महाद्वीप के एक या दूसरे पहलू और विद्वानों पर केन्द्रित विशेषांक निकालती रहती है। श्री महेश सचदेव (नई दिल्ली के विदेश विभाग मंत्रालय में सह–सचिव) ने क्षेत्र में हिंदी–शिक्षण के महत्व पर बात करते हुए सीधी प्रणाली पर ज़ोर दिया। सचदेव ने भारतीय सांस्कृतिक जीवन में हिंदी के बढ़ते महत्व पर भी प्रकाश डाला। हिंदी के बढ़ते महत्व को स्पष्ट करते हुए उन्होंने बताया कि कैसे महज़ 3 भारतीय अंग्रेज़ी चैनलों के मुकाबले हिंदी के लगभग 30 चैनल मौजूद हैं।

प्रो. यैनो ज्योरफ़ी (संकाय प्रमुख, एम. क्यू. परिसर, सपिएंत्सिया विश्वविद्यालय) ने विश्वविद्यालय में भारतीय अध्ययन के महत्व पर प्रकाश डाला। ज्योरफ़ी ट्रांसिल्वेनिया में प्राच्य अध्ययन की गहरी परम्परा से इसके जुड़ाव का हवाला देते हैं।

हालाँकि, यह संकलन किसी लिहाज़ से पूर्ण नहीं कहा जा सकता। फिर भी मैं उम्मीद करता हूँ कि मध्य और पूर्व यूरोप में हिंदी अध्ययन की समृद्धि की कुछ झलक इससे अवश्य मिलेगी और ज़्यादा से ज़्यादा लोगों में कमोबेश अल्पज्ञात रहे इस क्षेत्र में हिंदी पढ़ने–पढ़ाने का उत्साह पैदा होगा।

साभारः 'मध्य और पूर्वी यूरोप में हिंदी',
सं. इमरै बंघा
प्रथम संस्करण : 2007, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

अमेरिका में हिंदी-शिक्षण व प्रशिक्षण

–डॉ. विजय गम्भीर

अमेरिका के कुछ चुनींदा विश्वविद्यालयों में हिंदी का शिक्षण भारत की आज़ादी के तुरंत पश्चात् ही शुरू हो गया था, क्योंकि अमेरिका के लिए नये भारत की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक स्थिति को समझने के लिए देश की सबसे बड़ी जनभाषा हिंदी व भारत की कुछ अन्य महत्वपूर्ण भाषाओं को जानना आवश्यक था। सन् 1947 से पहले तो अमेरिकी यूनिवर्सिटियों में केवल संस्कृत भाषा का ही शिक्षण होता था, क्योंकि उस समय पश्चिमी जगत् में केवल भारत की प्राचीन संस्कृति और साहित्य को जानने में ही रुचि थी। तब से लेकर अब तक अमेरिकी सरकार व छात्रों की हिंदी में दिलचस्पी निरन्तर बढ़ती आई है। आज की तारीख़ में हिंदी का शिक्षण लगभग सभी बड़े विश्वविद्यालयों और कॉलिजों में हो रहा है। इसके अलावा, अब चंद सरकारी स्कूलों में भी हिंदी–शिक्षण उपलब्ध है। अमेरिका के लगभग हर महानगर में हिंदी सिखाने के लिए कम्युनिटी स्कूल चल रहे हैं और वहाँ बड़ी संख्या में बच्चे हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति सीखते हैं। इसके अलावा पिछले 10 सालों से सरकारी अनुदान से चलाये जानेवाले कई स्टारटॉक ग्रीष्मकालीन कार्यक्रम भी चल रहे हैं, जहाँ छोटे बच्चों से लेकर कॉलिज तक के विद्यार्थियों के लिए अलग–अलग भाषा–स्तर पर हिंदी –शिक्षण का काम चल रहा है।

सन् 50 और 60 के दशक में हिंदी सीखने वाले केवल अमेरिकी–मूल के ग्रैजुएट छात्र ही होते थे परन्तु आज हिंदी की कक्षाओं में भारतीय–मूल के छात्र भी होते हैं। सच तो यह है कि यदि हम अमेरिका की हिंदी की कक्षाओं में झाकें, तो पाएंगे कि भारतीय–मूल के छात्रों की गिनती अमेरिकी–मूल के छात्रों की तुलना में कहीं अधिक है। कम्युनिटी स्कूलों में तो लगभग सभी देसी छात्र ही

शिक्षा :
- ❖ एम.ए. (भाषाविज्ञान), दिल्ली यूनिवर्सिटी
- ❖ पी.एच.डी. यूनिवर्सिटी ऑफ़ पेन्सिलवेनिया

व्यवसाय :
- ❖ संप्रति – यूनिवर्सिटी ऑफ़ पेन्सिल्वेनिया में तीन दशक से भी अधिक प्राध्यापक रहने के बाद सेवानिवृत्त
- ❖ भाषा–शिक्षण व प्रशिक्षण के शोध कार्य में निरन्तर रत और आजकल हिंदी–उर्दू स्टारटॉक छात्र और शिक्षक–प्रशिक्षण कार्यक्रमों में सलाहकार, और भारतीय साहित्य से संबंधित कोर्स का अध्यापन।
- ❖ भारत में केंद्रीय हिंदी संस्थान और अमेरिका में कोर्नेल यूनिवर्सिटी में अतिथि प्राध्यापक
- ❖ यूनिवर्सिटी ऑफ़ पेन्सिल्वेनिया के पैन लैंग्वेज सेंटर में पेडागोजी स्पैशलिस्ट
- ❖ भारत और अमेरिका में भाषा शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण–कार्यशालाओं का आयोजन
- ❖ भाषा संबंधी सम्मेलनों में भाग और शोध–पत्र प्रस्तुति
- ❖ अनेक स्थानीय और राष्ट्रीय समितियों की सदस्य और सलाहकार जैसे अमेरिकन कांउसिल ऑन द टीचिंग ऑफ़ फ़ॉरेन लेंग्वेजर्स , नेशनल फ़ॉरेन लेंग्वेज सेंटर, डिफ़ेंस लैंगवेज इंस्टीट्यूट, कैपिटल नेशनल फ़ॉरन लैंगवेज रिसोर्स सेंटर, नेशनल कौंसिल ऑफ़ लेस कॉमनली टॉट लेंग्वेजर्स, नेशनल हैरिटेज लैंग्वेज रिसोर्स सेंटर, हिंदी उर्दू फ़्लेगशिप प्रोग्राम और कीन विश्वविद्यालय का हिंदी व उर्दू पेडागोजी कार्यक्रम

प्रकाशन :
- ❖ 'Teaching and Acquisition of South Asian Languages', यूनिवर्सिटी ऑफ़ पेनसिल्वेनिया प्रेस द्वारा प्रकाशित पुस्तक की संपादिका
- ❖ राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मान्यता–प्राप्त पत्रिकाओं और शोध–ग्रन्थों में अनेक प्रकाशित लेख
- ❖ 'नई दिशाएँ नए लोग' (New Directions New People), नामक हिंदी शिक्षण की लोकप्रिय विडियो सामग्री के दो खंड और उसके वेब संस्करण की सह–सृजनकर्ता

सम्मान :
- ❖ अमेरिका के शिक्षा विभाग से, अमेरिकन इंस्टीटयूट ऑफ़ इंडीयन स्ट्डीज से, स्टारटॉक से व भाषा–शिक्षण के नेशनल लैंग्वेज कन्सोर्टियम से शोध निमित्त अनुदान

होते हैं। यहाँ एक बात गौर करने लायक है कि देसी छात्र सभी भारतीय भाषाओं के बोलनेवाले परिवारों से आते हैं, जैसे गुजराती, मराठी, पंजाबी, तमिल, तेलुगू वगैरा। इसकी वजह यह है कि अमेरिका में बसे भारतीय मूल के लोग हिंदी को पूरे भारत में उपयोग में आने वाली भाषा के रूप में देखते हैं। हिंदी भारत की केंद्रीय सरकार की आधिकारिक भाषा होने के साथ–साथ देश की संपर्क–भाषा भी है। भले ही अमेरिका में बसे अहिंदी–भाषी भारतीय अपने घरों में हिंदी नहीं बोलते, पर उनमें अधिकांश लोग हिंदी की फ़िल्में अवश्य देखते हैं। देसी मूल के अमेरिकन लोग यह भी भली–भांति जानते हैं कि अगर वे भारत घूमने, पढ़ने या काम के सिलसिले में जाएँगें, तो उनको अंग्रेज़ी के साथ–साथ हिंदी की भी ज़रूरत पड़ेगी।

पिछले दशक से अमेरिका में हिंदी भाषा का महत्व विशेष रूप से बढ़ा है, क्योंकि सन् 2006 में अमेरिकी सरकार ने यह घोषित किया कि हिंदी अमेरिका के लिए एक 'क्रिटिकल' भाषा है, क्योंकि यह भारत के साथ अंतरराष्ट्रीय व्यापार के विकास और सांस्कृतिक संबंधों को मज़बूत बनाने की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण भाषा है। अमेरिकी सरकार का उद्देश्य है कि अधिक से अधिक अमेरिकी छात्र हिंदी सीखें और उसमें उच्च प्रवीणता हासिल करें, ताकि वे औपचारिक व अनौपचारिक दोनों परिस्थितियों में हिंदी का कुशलतापूर्वक प्रयोग कर सकें। हिंदी सीखने के लिए अमेरिकी सरकार ने स्कूल व कॉलिज के छात्रों के लिए कुछ नई छात्रवृत्तियाँ भी शुरू की हैं, जैसे 'क्रिटिकल लैंगवेज स्कालरशिप' (CLS) और 'नैशनल सिक्योरिटी लैंग्वेज इनीशिएटिव फार यूथ' (NSLI-Y)। हिंदी शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए भी अमेरिकी सरकार द्वारा विशेष कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं, जहाँ शिक्षक भाषा अधिग्रहण के अनुसंधान पर आधारित शिक्षण–पद्धति के बारे में सीखते हैं।

पहले हम संक्षेप में अमेरिका में प्रयोग होने वाली कुछ हिंदी शिक्षण पद्धतियों के बारे में जानेंगे, फिर हिंदी शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए हो रही गतिविधियों के बारे में।

हिंदी शिक्षण पद्धतियाँ

अमेरिका में हिंदी शिक्षण की पद्धतियों में समय–समय पर छात्रों की आवश्यकताओं और भाषाविदों की भाषा के बारे में बदलती धारणाओं के अनुसार परिवर्तन आता रहा है। नीचे कुछ मुख्य शिक्षण पद्धतियों का संक्षेप में उल्लेख किया गया है, जिनका हिंदी सिखाने के लिए अमेरिका में प्रयोग हुआ या हो रहा है।

व्याकरण–अनुवाद पद्धति (Grammar Translation Approach):

जब हिंदी सीखने का उद्देश्य केवल हिंदी का साहित्य पढ़ना व उसका अनुवाद करना होता था तब हिंदी का शिक्षण मुख्यतः व्याकरण–अनुवाद पद्धति से ही हुआ करता था। कक्षा में शिक्षक पहले व्याकरण के नियम बताता और फिर उन नियमों का वाक्यों में प्रयोग करके दिखाता। तदुपरान्त, अभ्यास के लिए छात्र अंग्रेज़ी के कुछ वाक्यों का हिंदी में और हिंदी के वाक्यों का अंग्रेज़ी में अनुवाद करते। इस व्याकरण–अनुवाद पद्धति के पीछे भाषाशास्त्रियों की यह मान्यता थी कि किसी भी भाषा को जानने का अर्थ है केवल उस भाषा के व्याकरण के नियमों का और शब्दावली का ज्ञान होना। इसी मान्यता के आधार पर पहले साल के विद्यार्थियों को केवल हिंदी का व्याकरण और आधारभूत शब्दावली ही सिखाई जाती। फिर दूसरे वर्ष में सीधे कुछ हिंदी साहित्य पढ़ाया जाता, जैसे प्रेमचंद की कहानियाँ। विद्यार्थी कहानी का हर वाक्य पढ़ते और उसका शब्द–सूची या शब्दकोश की मदद से अंग्रेज़ी में अनुवाद करते। व्याकरण–अनुवाद पद्धति से छात्रों को आधारभूत हिंदी के व्याकरण का तो अच्छा ज्ञान हो जाता था, परन्तु वे हिंदी में बातचीत करना न सीख पाते। यह पद्धति संस्कृत और लैटिन जैसी भाषाओं के लिए तो ठीक थी जो मुख्यतः लिखित भाषाएँ हैं, परन्तु हिंदी जैसी जीवन्त बोलचाल की भाषा के लिए इसका प्रयोग अत्यंत सीमित था।

स्थितिपरक–वार्तालाप पद्धति (Situational-Dialog Approach):

जब 60 के दशक में हिंदी की कक्षाओं में मानवशास्त्र, समाजशास्त्र और संगीतशास्त्र वगैरा के छात्र आने लगे, जो अपने फील्डवर्क के लिए भारत जाकर लोगों से हिंदी में

बातचीत करना चाहते थे, तब छात्रों की बोलचाल की क्षमता बढ़ाने के लिए स्थितिपरक वार्तालाप पद्धति का उदय हुआ। इस पद्धति में व्याकरण को छात्रों की आवश्यकता के अनुसार अलग–अलग जीवंत वार्तालाप की स्थितियों (सिचुएशेनस) में गूँथा गया, जैसे मोची से जूते मरम्मत कराना, खानसामा से बात करना, बस का टिकट खरीदना और होटल का रास्ता पूछना। कक्षा में विद्यार्थी हिंदी के वार्तालाप पढ़ते और उनमें इस्तेमाल हुए व्याकरण के नियमों के बारे में शिक्षक उनको बताता। विद्यार्थी लैंग्वेज लैब भी जाते ताकि वे बार–बार हिंदी–मातृभाषियों की आवाज़ में रिकार्ड किए गए वार्तालापों को सुन सकें और उनको बोलने का अभ्यास भी कर सकें। वार्तालाप पद्धति खूब प्रचलित हुई और इसके आधार पर कई पाठ्यक्रम की पुस्तकें भी तैयार हुई। इस पद्धति का एक ओर तो लाभ हुआ कि हिंदी–शिक्षण में बोलचाल की अनौपचारिक भाषा की प्रधानता बढ़ गई। लेकिन दूसरी ओर हानि भी हुई क्योंकि औपचारिक भाषा, विशेषकर साहित्यिक हिंदी, की अवहेलना हुई।

भाषा–प्रवीणता पद्धति (Proficiency Approach)

80 के दशक में हिंदी–शिक्षण पद्धति में एक बार फिर एक नया मोड़ आया। ACTFL (अमेरिकन कांउसिल ऑन द टीचिंग ऑफ़ फॉरन लैंगवेजिस) के भाषा–प्रवीणता के मापदंडों पर आधारित शिक्षण–पद्धति का अनुकरण करते हुए हिंदी शिक्षण में अब चारों भाषा–कौशलों (सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखना) पर ध्यान दिया जाने लगा। औपचारिक और अनौपचारिक दोनों भाषा शैलियों को भी ACTFL द्वारा निर्धारित 5 प्रवीणता स्तरों के आधार पर विकसित किया जाने लगा। ये 5 स्तर हैं – नोविस, इंटरमीडिएट, एडवांस्ड, सुपीरियर और डिस्टिंगविश्ड (Novice, Intermediate, Advanced, Superior and Distinguished)। हर स्तर पर भाषा–प्रवीणता के मुख्य घटकों का विस्तृत विवरण इस URL पर देखा जा सकता है: https://www.actfl.org/publications/guidelines-and-manuals/actfl-proficiency-guidelines-2012

हिंदी भाषा के लिए भी भाषा–प्रवीणता मानक सन् 1990 में इस लेख की लेखिका के नेतृत्व में गठित हिंदी के प्रचार्यों की एक राष्ट्रीय समिति द्वारा चारों भाषा–कौशलों के लिए तैयार किए गए, जो इस लिंक पर उपलब्ध हैं: <http://salrc.uchicago.edu/resources/Gambhir_Hindi_Proficiency_Guidelines.pdfAयह मानक हिंदी के छात्रों की बोलने, सुनने, पढ़ने और लिखने की प्रवीणता को सुव्यवस्थित ढंग से आगे बढ़ाने के लिए 'रोडमैप' का काम करते हैं। शिक्षक अलग–अलग स्तरों के छात्रों के लिए भाषा–प्रवीणता के मानकों के आधार पर अपना पाठ्यक्रम तैयार करने लगे। हर स्तर पर भाषा–प्रवीणता के अपेक्षित घटकों – प्रकार्यात्मक क्षमता (functional ability), विषय–ज्ञान (content), भाषा–संदर्भ (context), भाषा परिशुद्धता (accuracy) और भाषा संरचना (text-type)– के आधार पर सामग्री का चयन किया जाता और फिर अभ्यास के लिए गतिविधियाँ तैयार की जातीं।

भाषा–प्रवीणता पद्धति से हिंदी–शिक्षण में एक बड़ा परिवर्तन यह भी आया कि भाषा–शिक्षण में प्रकार्यात्मक क्षमता (functional ability) को अहमियत मिलने लगी और उसकी तुलना में व्याकरण के सक्रिय–ज्ञान का स्थान गौण हो गया। प्रकार्यात्मक क्षमता का तात्पर्य भाषाई–प्रकार्यों (linguistic functions) और वास्तविक जीवन के कार्यों (real-life tasks) से है। भाषाई–प्रकार्यों के उदाहरण हैं, प्रश्न पूछना, उत्तर देना, वर्णन करना, कहानी सुनाना, विचार प्रकट करना इत्यादि। वास्तविक जीवन के प्रकार्य हैं, जैसे अपने परिवार का परिचय करवाना, अपनी पसंद और नापसंद व्यक्त करना और छुट्टी की योजना बनाना। इस पद्धति के अनुसार हिंदी शिक्षण के लिए अब कृत्रिम भाषा की अपेक्षा प्रामाणिक भाषा के प्रयोग पर बल दिया जाने लगा। पहले समेस्टर से ही छात्रों को प्रामाणिक लिखित और मौखिक दृष्टातों से अवगत कराया जाने लगा, जैसे सड़क–चिह्न, उपभोक्ता वस्तुओं के विज्ञापन, रेलवे स्टेशन पर की जाने वाली घोषणाएं और टीवी पर मौसम का हाल।

स्टैंडर्डज़–आधारित पद्धति (Standards-Based Approach)

हालाँकि भाषा–प्रवीणता पद्धति के द्वारा छात्रों की चारों भाषा–कौशलों की क्षमता को विकसित किया जाने लगा था परन्तु जल्द ही इस पद्धति में भी कुछ कमज़ोरियाँ दिखाई देने लगीं। इसकी सबसे बड़ी कमज़ोरी तो यह है कि इस में भाषा में गुँथी संस्कृति के ज्ञान की, जोकि भाषा का एक महत्वपूर्ण अंग होता है, पूरी तरह से उपेक्षा हुई है। एक अन्य कमी है कि इसमें 4 अलग–अलग भाषा–कौशलों की चर्चा तो है, पर पारस्परिक–संप्रेषण (interpersonal communication) का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। जब दो व्यक्ति आपस में किसी बात पर चर्चा करते हैं, तो उसमें केवल बोलना और सुनना ही नहीं होता लेकिन श्रोता को वक्ता के शब्दों के चुनाव पर भी ध्यान देना होता है, जिससे वक्ता का पूरा भाव समझा जा सके। कुशल पारस्परिक–संप्रेषण में कुछ और भी संवाद–कलाओं का ज्ञान आवश्यक होता है, जैसे अर्थ के स्पष्टीकरण के लिए अनुरोध करना, अपनी बात को दूसरे शब्दों में दोहराना, अपनी किसी बात पर बल देना, किसी की बात समझ कर उस पर सांस्कृतिक दृष्टि से सटीक प्रतिक्रिया देना।

भाषा–प्रवीणता पद्धति की कमियों को देखते हुए और 21वीं शताब्दी के वैश्विक जगत् में सफलता पाने के लिए अमेरिकी विद्यार्थीयों को भाषा कैसे सिखाई जाए, इसके लिए भाषाविदों ने भाषा अधिग्रहण के अनुसंधान (Second Language Accquisition Research) से प्रेरणा प्राप्त कर 1996 में दूसरी या विदेशी भाषा सीखने के लिए अलग–अलग भाषा–प्रवीणता के स्तरों के लिए स्टैंडर्डज़ तैयार किए। यह स्टैंडर्डज़ "World-readiness Standards for Learning Langauges" के नाम से जाने जाते हैं। यह 5 स्तंभों पर आधारित हैं, जिन्हें 5Cs भी कहा जाता है: (1) संप्रेषण (Communication), (2) संस्कृति (Cultures), (3) विषयों से संबंध, (Connections), (4) तुलनात्मक अध्ययन (Comparisons) और (5) भाषा–समूह (Communities)। स्टैंडर्डज़ पर आधारित पद्धति में संप्रेषण और उससे जुड़ी संस्कृतियों के ज्ञान को अहम स्थान दिया गया है, पर इसके साथ लक्षित भाषा में शैक्षिक विषयों, जैसे इतिहास और राजनीति, के ज्ञान अर्जन पर भी बल दिया गया है। लक्षित भाषा और मातृभाषा की संरचना और संस्कृतियों के तुलनात्मक अध्ययन को भी महत्वपूर्ण माना है क्योंकि इससे विद्यार्थियों की विचारशीलता और विश्लेषण की शक्ति बढ़ती है। इसके अलावा, इस बिन्दु पर भी जोर दिया है कि विद्यार्थियों को भाषा–प्रयोग के अधिक से अधिक अवसर प्रदान करने चाहिए। इसके लिए छात्रों को ऐसी परियोजनाओं के साथ जोड़ना चाहिए जिससे उनको अलग–अलग भाषा–समूह के लोगों के साथ (परिवार से, मित्रों से व डिजिटल पड़ोसियों से) लक्षित भाषा में आमने–सामने, फ़ेसटाइम, चैट, ब्लॉग वगैरा के माध्यम से बातचीत करने का मौका मिले।

आजकल हिंदी शिक्षण के लिए अमेरिका के स्कूलों, कॉलिजों व विश्वविद्यालयों में स्टैंडर्डज़–आधारित पद्धति का खूब प्रयोग हो रहा है। संप्रेषण और संस्कृति दोनों भाषा–आयामों पर हिंदी के पाठ्यक्रम में विशेष ध्यान दिया जाता है। संप्रेषण के तीनों मुख्य प्रकारों – इंटरपर्सनल, इन्टरप्रेटिव और प्रीजेंटेशनल – में भाषा–प्रयोग के विभिन्न अवसर प्रदान किए जाते हैं। इंटरपर्सनल संप्रेषण के लिए विद्यार्थी आपस में बातचीत या किसी विषय पर चर्चा करते हैं। इन्टरप्रेटिव संप्रेषण के लिए वे कुछ सुनकर या पढ़कर उसका अर्थ या भाव समझते हैं और प्रीजेंटेशनल संप्रेषण के लिए छात्र बोलकर या लिखकर एक साथ कई श्रोताओं या पाठकों तक अपने विचार पहुंचाते हैं।

स्टैंडर्डज़–आधारित पद्धति का अनुसरण करते हुए हिंदी के विद्यार्थियों को भारतीय संस्कृति का ज्ञान 3 प्रकारों से कराया जाता है – (1) भारतीय संस्कृति से संबंध रखने वाली चीज़ों व चिह्नों से (artifacts), (2) भारतीय रीति–रिवाज़ों की जानकारी के माध्यम से और (3) भारतीयों के विश्वास, उनकी सोच व मान्यताओं के ज्ञान के द्वारा। छोटे बच्चों को जब हिंदी सिखाते हैं तो उन्हें मुख्यतः भारतीय संस्कृति से जुड़ी चीज़ों व चिह्नों के बारे में ही बताया जाता है। उदाहरणतया, अगर दीवाली के बारे में सिखा रहे हैं तो दिया, पटाखे और मिठाई के बारे में बताया जाता है। यदि मिडिल स्कूल के छात्र हैं तो उन्हें दीवाली से जुड़े

रीति–रिवाज़ों के बारे में भी बताया जाता है। हाईस्कूल व कॉलिज के विद्यार्थियों को, जिन्हें आधारभूत हिंदी का ज्ञान है, उनके साथ दीवाली से जुड़े प्रदूषण की राजनीति को लेकर भी चर्चा की जाती है। तो संस्कृति के प्रकार का निर्णय छात्रों की आयु, बौद्धिक योग्यता और हिंदी प्रवीणता के स्तर के आधार पर किया जाता है।

हिंदी भाषा के स्टैंडर्डज़ "Standards for Learning Hindi" भी 2014 में इस लेख की लेखिका के नेतृत्व में ही विभिन्न विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकों की एक राष्ट्रीय समिति द्वारा तैयार किए गए थे। यह मानक ACTFL से उपलब्ध हैं और इसका URL है: <https://www.actfl.org/publications/all/world-readiness-standards-learning-languages>A इन स्टैंडर्डज़ से हिंदी के शिक्षकों को 5Cs के आधार पर प्रभावी पाठ्यक्रम तैयार करने और छात्रों की हिंदी भाषा में प्रवीणता को सीढ़ी–दर–सीढ़ी ऊपर ले जाने के लिए स्पष्ट मार्गदर्शन मिलता है। यहाँ यह जान लेना महत्वपूर्ण है कि स्टैंडर्डज़ पद्धति में ACTFL द्वारा निर्धारित भाषा–प्रवीणता स्तर (नोविस, इंटरमीडिएट, वगैरा) मान्य हैं और पांचों Cs में हर स्तर का विस्तृत विवरण हिंदी के स्टैंडर्डज़ में उपलब्ध है।

स्टैंडर्डज़ आधारित पद्धति पिछले दो दशकों से बराबर चल रही है और खूब फैल भी रही है। महत्वपूर्ण बात यह कि अभी तक इसकी कोई भी कमज़ोरी सामने नहीं आई!

हिंदी शिक्षक–प्रशिक्षण

अमेरिकी शिक्षा संस्थानों में शिक्षक–प्रशिक्षण पर बहुत बल दिया जाता है। नई शिक्षण पद्धतियों को व्यवहार में लाने के लिए शिक्षकों को उस पद्धति के सिद्धांतों से अवगत कराया जाता है और उनके अनुरूप पाठ्यक्रम, पाठ योजनाएँ और शिक्षण की गतिविधियाँ बनाने के लिए ट्रेनिंग दी जाती है। स्कूल व कॉलिज के जूनियर भाषा–शिक्षकों का तो लगातार प्रशिक्षण चलता ही रहता है और समय–समय पर उनकी योग्यता का मूल्यांकन करके उन्हें दोस्ताना तौर से बताया भी जाता है कि क्या अच्छा चल रहा है और कहाँ उन्हें सुधार की आवश्यकता है। कभी–कभी नए शिक्षक अनुभवी शिक्षकों की कक्षाओं में भी जाते हैं और देखते हैं कि वे कैसे विधिवत ढंग से पाठ–योजना को कार्यान्वित करते हैं और विद्यार्थियों को भाषा सीखने की प्रक्रिया में सक्रिय रखते हैं।

स्कूल, कॉलिज व यूनिवर्सिटियों के हिंदी शिक्षक अपने संस्थानों में प्रशिक्षण पाने के साथ–साथ नैशनल भाषा–शिक्षण संबंधी कार्यशालाओं में भी भाग लेते हैं। शिक्षकों के आने–जाने का खर्च या तो उनका संस्थान उठाता है या उन्हें किसी अन्य स्रोत से आर्थिक सहायता मिल जाती है। अमेरिकी शिक्षा विभाग द्वारा खोले गए 16 भाषा संसाधन केन्द्रों (Language Resource Centres) में प्रायः ग्रीष्मकाल में किसी न किसी भाषा–शिक्षण संबंधी विषय पर शिक्षकों के लिए कार्यशालाएँ चलायी जाती हैं। इन संसाधन केन्द्रों का मुख्य उद्देश्य भाषा–शिक्षण पर बल देना और अमेरिका में कम पढ़ाई जाने वाली भाषाओं को प्रोत्साहित करना है। हर केन्द्र किसी न किसी विशेष भाषा–पक्ष पर शोधकार्य भी करता रहता है, जैसे शिक्षण–सामग्री, डिजिटल टूल्ज़, भाषा–मूल्यांकन के ढंग और हैरिटेज–भाषा शिक्षण। इन केन्द्रों की सूची तथा उनके बारे में अधिक जानकारी इस URL पर पाई जा सकती है: <http://nflrc.org/pdfs/lrc_broc_full.pdf>A प्रत्येक वर्ष हिंदी के अनेक शिक्षक इन भाषा संसाधन केन्द्रों द्वारा चलाई गई कार्यशालाओं में भाग लेते हैं। इन कार्यशालाओं में हिंदी शिक्षक भाषा–शिक्षण के बारे में तो सीखते ही हैं, परन्तु उनको वहाँ अन्य भाषाओं के शिक्षकों के साथ मिलने का मौका भी मिलता है, जिससे वे एक बृहत भाषा–शिक्षण समाज का हिस्सा बनते हैं। हिंदी के शिक्षकों द्वारा बनाई कुछ शिक्षण–सामग्री के उदाहरण CARLA (Center for Advanced Research on Language Acquisition), CLEAR (Center for Language Education and Research), NHLRC (National Heritage Language Resource Center) इत्यादि केन्द्रों की वेबसाइट पर देखे जा सकते हैं।

हिंदी प्रशिक्षण को सुदृढ़ करने का एक बड़ा श्रेय अमेरिकी नैशनल इंटेलिजेंस द्वारा शुरू किए गए स्टारटॉक (STARTALK) कार्यक्रम को भी जाता है, जिसके अंतर्गत सन् 2008 में पहली हिंदी शिक्षक–प्रशिक्षण कार्यशाला हुई

थी। इस कार्यक्रम का उद्देश्य है हिंदी व अमेरिका की अन्य 'क्रिटिकल' भाषाओं के विद्यार्थियों व प्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या को बढ़ाना और इन भाषाओं के लिए प्रभावी पाठ्यक्रम तथा शिक्षण–सामग्री उपलब्ध कराना। गर्मियों में हिंदी के स्कूल व कॉलिज के शिक्षकों के लिए 3 या 4 सप्ताह की "स्टारटॉक टीचर ट्रेनिंग" कार्यशालाएँ अलग–अलग प्रदेशों में चलती है। इनमें प्रायरू आनलाइन और आनसाइट दोनों प्रारूपों में ट्रेनिंग होती है। शिक्षकों की फ़ीस और उनके रहने–खाने का सब खर्च स्टारटॉक ही उठाता है। सन् 2008 से लेकर सन् 2017 तक हिंदी–उर्दू के शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए 71 स्टारटॉक प्रोग्राम हो चुके हैं। अधिकतर कार्यशालाएँ तो मिलीजुली भाषाओं के शिक्षकों के लिए ही होती हैं, परन्तु न्यूयार्क विश्वविद्यालय में हर साल केवल हिंदी और उर्दू के शिक्षकों के लिए कार्यशाला चलाई जाती है।

स्टारटॉक की शिक्षक–प्रशिक्षण कार्यशालाओं का मुख्य लक्ष्य है शिक्षकों को स्टैंडर्डज़ पर आधारित शिक्षण–प्रणाली के बुनियादी सिद्धातों से अवगत कराना तथा उनके अनुरूप पाठ्यक्रम, पाठ–योजना और गतिविधियाँ बनाना सिखाना। इन कार्यशालाओं में शिक्षक यह भी सीखते हैं कि विद्यार्थियों के भाषा–स्तर के अनुरूप संस्कृति–समृद्ध प्रामाणिक शिक्षण–सामग्री का चुनाव कैसे किया जाता है और उसका कुशलतापूर्वक इस्तेमाल कैसे करना चाहिए। प्रामाणिक सामग्री से अभिप्राय ऐसी पठन सामग्री से है, जो भाषा–शिक्षकों द्वारा भाषा–शिक्षण के लिए तैयार न की गई हो, परन्तु मूल रूप से हिंदी–भाषियों की जानकारी या मनोरंजन के लिए हो। भाषा सीखने के लिए उपयोगी टेक–टूलस (tech-tools) का उपयोग करना भी सिखाया जाता है। इसके अलावा, शिक्षकों को हिंदी भाषा के प्रवीणता–स्तरों से भी परिचित कराया जाता है और वे छात्रों की मौखिक प्रवीणता का ACTFL Oral Proficiency Interview तकनीक द्वारा आकलन करना भी सीखते हैं। स्टारटॉक द्वारा हिंदी के शिक्षक–प्रशिक्षण कार्यक्रमों के बारे में और जानकारी के लिए देखें:

<https://startalk.umd.edu/public/search/STARTALK/Hindi-20teacher:20training\f[0]=im_field_st_language:3A43>A

यहाँ यह जानना ज़रूरी है कि हिंदी व उर्दू के प्रशिक्षित शिक्षक तैयार करने के लिए दो वर्ष पहले अमेरिका के न्यू जर्सी प्रदेश में स्थित कीन विश्वविद्यालय (Kean University) ने एक बड़ी पहल की। यहाँ हिंदी व उर्दू शिक्षण–शास्त्र में एम.ए. का एक विशिष्ट डिग्री कोर्स शुरू किया गया। इस दो साल के ऑनलाइन व ऑनसाइट कार्यक्रम में हिंदी व उर्दू के भावी शिक्षक भाषा शिक्षण से जुड़े भिन्न–भिन्न पहलुओं के बारे में सीखते हैं और उनसे जुड़े सिद्धातों का मनन करते हैं। वे मुख्य शिक्षण–पद्धतियों की ताकतों और कमज़ोरियों के बारे में सीखते हैं तथा हिंदी के मानकों पर आधारित शिक्षण प्रणाली का कैसे कार्यन्वयन करना है उसका अध्ययन और अभ्यास भी करते हैं। इस कोर्स में विद्यार्थियों द्वारा भाषा–अधिग्रहण (language acquisition) के पक्ष पर भी बल दिया जाता है। छात्र इस विषय से जुड़े महत्वपूर्ण शोध–पत्र पढ़ते हैं और फिर हिंदी या उर्दू शिक्षण से जुड़े किसी प्रश्न को लेकर स्वयं भी शोध–पत्र लिखते हैं। हिंदी भाषा के व्याकरण, संस्कृति और समाज का भी उनको अच्छा ज्ञान करवाया जाता है। इतना ही नहीं, इस कोर्स में छात्र हिंदी साहित्य के बारे में भी पढ़ते हैं। संक्षेप में, इस कोर्स से हिंदी के ऐसे श्रेष्ठ शिक्षक तैयार हो रहे हैं, जो हिंदी भाषा–शिक्षण और शोध के स्तर को अगली सीढ़ी तक ले जाने में सहायक होंगे। इस "लैंग्वेज पैडागोजी" कोर्स के बारे में अधिक जानकारी के लिए देखें: <http://grad.kean.edu/masters-programs/hindi.and.urdu.language.pedagogy>A

हालांकि पिछले दशक से अमेरिका में हिंदी के शिक्षकों के प्रशिक्षण की स्थिति पहले से काफ़ी उत्साहवर्धक है, परन्तु प्रशिक्षित अध्यापकों की अभी भी कमी है। यदि हिंदी प्रशिक्षण के कार्यक्रम इसी गति से कुछ समय और चलते रहे, तो आशा है कि भविष्य में हिंदी के प्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या बढ़ेगी और हिंदी–शिक्षण की, विशेषकर कम्युनिटी स्कूलों में, गुणवत्ता भी बढ़ेगी।

फ़िलाडेल्फ़िया, अमेरिका
vijay@gambhir.net

हिंदी : सूचना-संचार, प्रौद्योगिकी एवं अनुवाद

- हिंदी पत्रकारिता की भाषा पर वैश्वीकरण का प्रभाव - डॉ. माला मिश्र
- इक्कीसवीं शती में सूचना प्रौद्योगिकी और प्रयोजनमूलक हिंदी - डॉ. रमा नवले
- डिजिटल मीडिया और हिंदी - श्रीमती सुनीता पाहूजा
- सूचना व संचार प्रौद्योगिकी और हिंदी अनुसंधान - श्री रोहित कुमार 'हैप्पी'
- भूमंडलीकरण के दौर में मीडिया की भाषाई चुनौतियाँ - श्री राकेश कुमार दुबे

हिंदी पत्रकारिता की भाषा पर वैश्वीकरण का प्रभाव

– डॉ. माला मिश्र

जन्म : 1972, नई दिल्ली

शिक्षा :

- पी.एच.डी.
- एम.फिल.
- एम.ए. (हिंदी)
- एम.ए. (पत्रकारिता एवं जनसंचार)
- एम.ए. (अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान)
- पोस्ट एम.ए. डिप्लोमा, अनुवाद, भाषाविज्ञान, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान (पत्रकारिता एवं जनसंचार)

व्यवसाय :

- प्राध्यापन
- वरिष्ठ एसोसिएट प्रोफ़ेसर – हिंदी एवं पत्रकारिता विभाग

प्रकाशन: 15–20 पुस्तक, लगभग 1000 लेख, शोधालेख, समीक्षाएँ, पुस्तक समीक्षाएँ, फ़िल्म समीक्षाएँ, कविताएँ, कहानियाँ, विचार, टिप्पणियाँ प्रकाशित

पुरस्कार :

- हरियाणा सरकार द्वारा श्रेष्ठ शिक्षिका सम्मान
- 'नारी गौरव सम्मान'
- युवा राजपूताना संगठन द्वारा 'क्षेत्रीय कुल गौरव सम्मान'
- भारतीय पत्रकारिता संघ द्वारा 'आदर्श पत्रकारिता शिक्षक सम्मान'
- दि. वि. के अंतर्ध्वनि 2015 में सांत्वना पुरस्कार

इक्कीसवीं सदी में राजनीतिक यथार्थ बदला है। सामाजिक संरचना में थोड़े–बहुत परिवर्तन हुए हैं और तकनीकी प्रगति ने सोचने–समझने के नज़रिये को प्रभावित किया है। आपाधापी और भागदौड़ से भरी आधुनिक जीवन–शैली में विश्व की भौगोलिक दूरियाँ ही नहीं सिमटीं बल्कि लोगों के पास उपलब्ध फुर्सत के क्षणों का भी संकुचन हुआ है। 'ग्लोबल विलेज' की अवधारणा ने मन के मानचित्र पर जो हलचल मचायी है, उसे देखकर कहा जा सकता है कि मार्शल मैक्लूहान ने कम से कम इतनी हलचलों की कल्पना शायद ही की होगी। पल–पल बदलता समाचारों का मौसम, खबरों को आगे बढ़कर पकड़ लेने की पत्रकारीय होड़, होड़ की हड़बड़ी में चलताऊ किस्म की छोटी–मोटी गड़बड़ी और सूचना छवियों का मनचाहा या हितानुकूल प्रक्षेपण आज की मीडिया के ये कुछ प्रमुख बिन्दु हैं। मुख्यधारा की मीडिया पर बड़ी समुद्रपारी पूंजियों और अंतरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के दबाव किस तरह काम करते हैं? इनसे मीडिया के सामाजिक सरोकारों या पत्रकारीय नैतिकता पर क्या–क्या प्रभाव पड़ते हैं? मुद्रित और श्रव्य–दृश्य माध्यम तात्कालिकता के दबावों का सामना कैसे करते हैं? अन्तर्वस्तु–निर्धारण, खबरों के चयन के लिए बनायी गयी सम्पादकीय नीति, समाचारों के प्रस्तुतीकरण के असरदार तरीके, प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के पत्रकारों की कुछ जुदा किस्म की प्राथमिकताएँ और सनसनीखेज मसाला खबरों की खूबसूरत पैकेजिंग, ये ऐसे विषय हैं, जिनपर सोचने–समझने की ज़रूरत बढ़ी है। खासकर तब, जब सवाल यह हो कि कामयाबी की कालीन पर चहलकदमी करते जनसंचार माध्यमों का रुख आगे कैसे होने जा रहा है?

मीडिया अगर इसी रफ़्तार और दक्षता से वक्त की पगडंडियों पर चलता रहा तो आनेवाले समय में कैसा होगा मीडिया? और कैसी होगी उसकी वह भाषा, जो सम्प्रेषणीय तो है, पर अर्थभ्रम भी फैलाती है। जो गढ़ी तो बहुत जल्दी जाती है, लेकिन असर छोड़ती है लम्बे समय के लिए। जो कम शब्दों में कहना तो बहुत कुछ चाहती है, लेकिन भाषा–व्याकरण या शब्दावलियों को हड़बड़ी की ताक पर रख दिया करती है। मीडिया की कार्य–शैली पर या उसके आचरण–व्यवहार पर जिसने कुछ पल को ही सही निगाह दौड़ाई होगी, उसे मीडिया से जुड़े कुछ गहरे सवालों के घने जंगल ज़रूर मिले होंगे। जनसंचार माध्यमों के प्रसार का प्रश्न हो या न्यूज़ रूम के व्याकरण का, माध्यमों में विस्तार के अनुपात में विविधता न बढ़ पाने की कसक हो या तुरत–फुरत में खबरें सम्पादित करके उन्हें ऑनलाइन डिसप्ले करने का मुद्दा–ये अनेक सवाल सन्देहों के जंगल में उलझे मीडिया की बहुत संवेदनशील शाखाएँ हैं। इन शाखाओं पर विचार–विमर्श करना किसी के लिए भी रुचि का विषय हो सकता है। अगर दायित्वबोध की चेतना को भी इसमें शामिल कर लें तो कहना चाहिए कि इन शाखाओं–प्रशाखाओं पर चिन्तन–मनन आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी हो गया है।

लॉर्ड्स (सामन्त), टेम्पोरल (पादरी) एवं कॉमंस (जनता) के बाद फ़ोर्थ एस्टेट यानी चौथे स्तम्भ के रूप में प्रतिष्ठित होनेवाली पत्रकारिता अख़बारों की वजह से चाहे न भी सही, लेकिन द्रुत कहे जानेवाले 'ट्वेन्टी फ़ोर इन्टू सेवेन' के परदों यानी टेलीविजन चैनलों की वजह से ज़रूर विमर्श की माँग करती है। 24 घण्टे और सातों दिन समाचार दिखाने की अपनी मजबूरियाँ हैं। टेलीविजन रिपोर्टर भी क्या करें? कैमरामैन के साथ फील्ड में कितनी खाक छानें? कई बार समाचार न मिल पाने पर एक ही खबर को बार–बार दिखाया जाता है। हर बार थोड़े–बहुत बदलावों के साथ। फिर हर चैनल को टी.आर.पी. (टेलीविजन रेटिंग पोइंट्स) की गलाकाट होड़ में सबसे आगे, सबसे तेज़ भी बने रहना है। अपनी व्यूअरशिप का रिकॉर्ड भी बनाए रखना है। किसी खबर की पृष्ठभूमि में निर्धारित सेकेण्डों के भीतर जाकर बैक ग्राउण्डर बनाने के दबाव हैं। 'इफ़ेक्टिव विज़ुअल्स' की व्यवस्था करने का ज़िम्मा है और अगर खबर को सनसनीखेज बनाया जा सकता है तो उसको जारी रखना है–एपिसोडिक जर्नलिज़्म के जिज्ञासापूर्ण अध्यायों पर ये सारे दबाव मिलकर एक ऐसी हालत पैदा कर देते हैं, जहाँ मीडिया एक साइकिल दुर्घटना और एक सभ्यता के ध्वंस में अन्तर नहीं कर पाता। गणेश जी दूध पी रहे हैं, यह भी एक खबर है। भुतही हवेली में रात को नाग–नागिन नाचते हैं, यह भी एक खबर है और इराक के राष्ट्राध्यक्ष को जिस गरिमाहीन ढंग से फाँसी दी गयी, यह भी एक खबर है। जिस तरीके से चैनल इसे दिखाते हैं, क्या कोई भी सामान्य दर्शक अन्तर कर पाएगा कि बड़ी खबर कौन–सी है। किसका समाचार–मूल्य ज़्यादा है, किसमें तात्कालिकता या प्रभाव की रेखाएँ अधिक गहरी हैं? शायद इसीलिए मैक्लूहान ने 'मीडियम' को ही 'मैसेज' कहा है क्योंकि सारे मेसेजज़ (संदेश) एक समान हो गये हैं। इसलिए गौण, द्वितीयक और महत्वहीन हो गये हैं। सरल शब्दों में कहा जाए तो आज लोग समाचार नहीं देखते, 'टी. वी.' देखते हैं। गीत–गज़ल न सुनकर 'रेडियो' सुनते हैं। यह सोर्स, मीडियम, चैनल और रिसीवर के बीच मीडियम की प्रमुखता है। मैसेज की एनकोडिंग या डिकोडिंग तो बहुत द्वितीयक बातें हैं।

प्रिंट मीडिया की भाषा में बदलाव

मीडिया के विस्तार ने एक नयी भाषा को जन्म दिया है। भाषा का सवाल इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि भाषा किसी समाज की परम्पराओं, उसकी संस्कृति और उसकी भावनाओं की वाहक होती है। मीडिया के समकालीन भाषायी खेल पर कई दृष्टिकोण से विचार किया जा सकता है। पहला तो 'हम' और 'तुम' वाले लिहाज़ से देखने पर सामने आता है। जब बजट आता है या आर्थिक खबरें प्रसारित होती हैं तो कैसे शब्द प्रयुक्त होते हैं? 'हमारी अर्थव्यवस्था', 'हमारा परमाणु कार्यक्रम' या फिर 'हमारा सेंसेक्स', इस 'हम' में क्या वह ग्रामीण या उपेक्षित आबादी शामिल है, जिसका अस्सी फीसदी मामलों में कहीं उल्लेख नहीं होता? न खबरों में, न रेडियो में और न ही टेलीविजन न्यूज़ चैनलों पर। हाँ, अगर साम्प्रदायिक दंगे, नरसंहार या चर्चित रहे नंदीग्राम जैसे प्रकरण सामने आ जाएँ तो बात अलग है। 'आतंकवादी', 'भटके हुए नौजवान' और 'असन्तुष्ट' जैसे शब्दों का भी घालमेल देखने को मिल जाता है। 'साम्प्रदायिक हिंसा', 'जनसंहार', 'हिंसा' और 'आगजनी की कारवाई', 'दो गुटों में झगड़ा' या 'अचानक भड़की हिंसा' जैसे पदबन्धों से सभी परिचित हैं। इन सब घालमेलों और शाब्दिक घपलों पर इससे ज़्यादा क्या कहा जाए कि सम्पादन और प्रूफ़ रीडिंग के दरवाज़ों से गुज़रने के बाद भी एंकर टीवी पर कहते नज़र आ ही जाते हैं – 'फलां राजनेता ने बोलते हुए कहा'। क्या चुप रहकर भी कोई राजनीतिक बयान दिया जा सकता है? बाढ़ आने पर किसी शहर का 'पानी–पानी' होना आम है। 'कंजरवेटिव', 'फंडामेंटलिस्ट' और 'रेडिकल' जैसे शब्दों के अर्थ–संदेहों से शायद सभी वाकिफ हैं।

एक दूसरे दृष्टिकोण से अपडेशन और स्पीड से लैस वर्तमान मीडिया की भाषा पर गौर करते हैं। कुछ अख़बारों में हिंदी की बजाय अंग्रेज़ी में 'पेट्रोल', 'डीजल' या 'सेंसेक्स' लिखा रहता है। कई बार ऐसे हिंदी अख़बारों ने पूरी की पूरी हेडिंग और लीड ही अंग्रेज़ी में लगायी है। यह भूमण्डलीकृत वर्णसंकर भाषा है। यह वर्णसंकर भाषा उस 'ग्लोबल' सोच का परिणाम है, जिसके तहत प्रतीकों या स्टेटस सिम्बल को 'राष्ट्रीय' की बजाय 'सार्वभौम' बताया जाता है, 'अंतरराष्ट्रीय' की बजाय 'यूनिवर्सल' बताया जाता है। सभी देशों और महाद्वीपों के थोड़े–थोड़े तत्वों को लेकर वर्चस्व को वैधता प्रदान करने की कोशिश की जाती है। एंतोनियो ग्रम्शी के शब्दों में कहें तो यह वैधतास्थापक संरचनाओं की एक कड़ी है। तभी तो आज भाषा बहुत गहराई तक अपना तीखा असर छोड़ रही है। कुछ हिंदी विज्ञापनों या दैनिक जीवन के उदाहरणों पर गौर कीजिए – "मैं तो खुश हूँ, आपने ट्राई किया?", 'मूड नहीं है यार', 'ठंडा–ठंडा कूल–कूल' या फिर आजकल तो 'दिल में मेरे है दर्द–ए–डिस्को'! भाषा का यह सवाल अगर इतना ही मामूली होता तो लगातार अपनी सैद्धान्तिकी में इसे सर्वोच्च स्थान न देते। भाषा की कलाबाज़ियाँ यथार्थ के विवरण से जुड़ी हैं और यथार्थ वह है जो मीडिया में प्रायः पूरे तौर पर या

तो दिखाया–सुनाया नहीं जाता या फिर जिसे दिखाने–सुनने–अभिव्यक्त करने का टाइम–स्पेस मैनेजमेण्ट मीडिया के पास नहीं है। इसलिए हड़बड़ी में चैनलों पर 'तीन सी. आर. पी. एफ.' के जवान शहीद हो जाते हैं और 'चार पुलिस के जवानों को चोटें आ जाती हैं'। चैनलों पर ऐसी गलतियों की तो पूरी शृंखला ही मौजूद है। बहरहाल अधिक प्रामाणिक कहे जानेवाले अख़बारों में भी गलतियाँ देखने को मिल जाती हैं। मुद्रण की गलतियों को छोड़ भी दें तो वाक्य विन्यास में संज्ञा–सर्वनाम की क्रियाओं के प्रति संगति अक्सर बेमेल–सी देखने को मिल जाती हैं। कुछ हिंदी समाचार–पत्र भाषा, वर्तनी या व्याकरण के नियमों का ध्यान कम ही रखते हैं। कहीं व्यंजन का काम स्वरों से लेकर वाक्य गढ़ दिया जाता है (जैसे–दिए, लिए, खाए, पिए, नई, पाई, खोई वगैरह) तो कहीं स्वर का काम व्यंजनों से लेकर (मसलन–हुयी, बढ़ायी, कोयी वगैरह)। अलग–अलग अख़बारों के अलग–अलग तरीके भी हैं। कोई प्रत्ययों/परवर्ती शब्दों को मिलाकर लिखता है (जैसे–रिक्शेवाला, बगलवाली आदि), कोई अलग करके प्रस्तुत करता है (रिक्शे वाला, बगल वाली आदि)।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की भाषा में बदलाव

अख़बारों के अलावा चैनलों की भीड़ में भाषा का जो हश्र हुआ है, वह भी कम दुर्भाग्यपूर्ण नहीं है। लिखने में चाहे नुक्ते की गलती चल भी जाए, लेकिन उच्चारण में यह कहीं दूर तक भाषिक संस्कार को धक्का पहुँचाती है। प्रिंट मीडिया पर कम से कम उच्चारण की त्रुटियों का आरोप नहीं लगाया जा सकता, लेकिन रेडियो और टेलीविजन इस कसौटी पर ज़रूर कसे जाते हैं और फिर मीडिया के काम को सही ढंग से संचालित करने के लिए उच्चारण का शुद्ध होना आवश्यक है, पर्याप्त नहीं। समाचारों की समझ, वाक्य में किस शब्द पर कितना ज़ोर (एम्फ़ेसिस) देना है, प्रस्तुति के समय पर चेहरे के हाव–भाव, शारीरिक भाषा, हाथों या आँखों का मूवमेंट कब और कितना हो, ऐसी अनेक बातें भी समाचार या कार्यक्रम के एंकर के लिए काफ़ी मायने रखती हैं। कैसा होगा मीडिया अगर आज तक की यात्रा देखकर कुछ वैज्ञानिक निष्कर्ष निकालने का प्रयास करें? पत्रकारिता मिशन से व्यवसाय तक आ गयी है तो क्या अब यह व्यवसाय से चलकर धन्धाकरण तक जाएगी? धन्धा भी किसका? बात का? सनसनीखेज सुर्खियों का? उन बातों का धन्धा जो सूचनाओं की धुआँधार बमबारी कर रही हैं? जिसमें सूचनाएँ ही सूचनाएँ हैं ज्ञान नदारद है? या फिर खबर रूपी ऐसे उत्पादों की बिक्री का धन्धा, जिसमें अप्रासंगिक को प्रासंगिक बनाया जा रहा है, जिसमें पुनरावृत्ति और शोर प्रधान हैं, असली समाचार गायब है? और कैसी होगी भाषा, जिसके बल पर समाचार को हड़बड़ी यानी शीघ्रता में लिखा गया साहित्य कह दिया जाता है?

मीडिया और उसके भविष्य से जुड़े ये सारे सवाल आपस में गुंथे–बिंथे हैं। एक का जवाब अगले सवाल के अर्थ को बदल सकता है, लेकिन आज जब पूरी दुनिया का एक खास रंग, एक खास संस्कृति और एक ही खास भाषा में रंगने का विशाल प्रयास अनेक रूपों और स्तरों पर चल रहा हो, तब भाषायी अस्मिता के ये सवाल (या संकट) और भी ज़्यादा प्रासंगिक हो जाते हैं। भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है, लेकिन मीडिया की दुनिया में भाषा के इस पहलू से सरोकार थोड़ा कम ही है। यहाँ भाषा के सम्प्रेषणीयता वाले पक्ष से ज़्यादा रिश्ता है। आज जब ज़माना आगे बढ़कर ऑनलाइन जर्नलिज़म, वेब राइटिंग और ब्लॉगर्स डिस्कशन तक आ पहुँचा है तब तो सम्प्रेषणीयता का यह पक्ष और भी ज़्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है। चुनौती विभिन्न टी.वी. चैनलों में ही नहीं है, विभिन्न रेडियो चैनलों में ही नहीं है, चुनौती विभिन्न माध्यमों के बीच भी है। क्या यह इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से अख़बारों की प्रतिस्पर्धा का परिणाम नहीं है कि आज तकरीबन सभी अख़बारों के लिए तस्वीरों का महत्व पहले से कई गुना अधिक बढ़ गया है? लिखित शब्दों की बजाय विजुअल्स यानी फ़ोटोग्राफ़्स के ज़रिये न्यूज़ स्टोरी को बयाँ करते अख़बार अगर इस होड़ के प्रतीक नहीं, तो किस चीज़ के प्रतीक हैं? और सूनी–चाँदनी रात में रेडियो के 'हेलो फरमाइश', 'छायागीत' या 'गज़लों' के दूसरे कार्यक्रम, जो खुशनुमा माहौल और खूबसूरत समाँ बाँधते हैं, अख़बारों की सॉफ़्ट स्टोरीज़ या सप्लीमेंट्स के नरम–मुलायम फीचर उनसे भला किस मामले में कमतर हैं? निश्चित तौर पर अख़बार आज भी ज़्यादा विश्वसनीय और प्रामाणिक हैं। नयी–नयी उभरी डिजिटल पत्रकारिता भले ही यूजर्स को अनेक अधिकार देती हो, उसके पास वैविध्यपूर्ण मीडिया पाठ मौजूद हो, वह ऑडियो, वीडियो, फोटोग्राफ़ और डायग्राम्स से लैस हो; विश्वसनीयता या वर्चस्व के लिहाज़ से वह अन्य माध्यमों से फिलहाल पीछे ही है और ऐसा सिर्फ़ अपने यहाँ ही नहीं है, जहाँ की एक तिहाई आबादी के लिए काला अक्षर भैंस बराबर है। अमेरिका में भी साधारण लोगों की खबरों का मुख्य स्रोत दूसरे माध्यम ही हैं, इंटरनेट नहीं, जबकि अमेरिकी समाज में इंटरनेट ही सबसे मज़बूत तन्त्र है। भारी तादाद में इंटरनेट यूज़र भी हैं।

इंटरनेट, अन्य संचार माध्यमों में भाषायी परिवर्तन पर एक नज़र

सम्प्रेषणीयता की अति–प्रधानता भाषिक संस्कारों की शुद्धता को खतरे की ओर ले जाती है। इसीलिए जल्दबाज़ी में हिंदी के साथ अंग्रेज़ी के शब्दों का घालमेल आम बात है। अनेक एंकर मिल जाएँगे, जो 'ष–स', 'ज–ज़' या 'र–ड़' के शुद्ध–अशुद्ध उच्चारणों के बीच झूलते रहते हैं। कह देना बड़ा आसान है कि हिंदी का ज्ञान पर्याप्त रूप से है, पर इसे साबित करना मुश्किल है–लेखन के स्तर पर भी (इंटरनेट समेत सभी माध्यमों के स्क्रिप्ट लेखन को यहाँ जोड़ें) और उच्चारण के स्तर पर भी (रेडियो और टेलीविजन)। इसीलिए आपको अनेक पत्रकार/रिपोर्टर मिल जाएँगे जो 'लड़खड़ा' रहे होंगे। यह वास्तव में हथेली पर सरसों के पौधे उगाने की द्रुत जीवन–शैली से सहज उपजी लड़खड़ाहट है, टेलीविजन में भाषा के लिहाज़ से अनेक प्रयोग हो रहे हैं, 'राइटिंग टू पिक्चर्स' की तकनीकी धारणा को ध्यान में रखते हुए। रेडियो में भाषा का महत्व सबसे अधिक है, क्योंकि भाषा यानी आवाज़ की उसकी एकल पूंजी है। यहाँ भाषा कई बार जीवन्त बिम्बों को खड़ा करने में या आँखों देखा हाल सिर्फ़ शब्दों के ज़रिये चित्रात्मक तरीके से सम्प्रेषित कर पाने में समर्थ दिखती है। समाचार लेखन की जहाँ तक बात है तकरीबन सभी हिंदी और अंग्रेज़ी अख़बारों के समाचार लेखन में उल्टा पिरामिड शैली (इन्वर्टेड पिरामिड स्टाइल) का भी इस्तेमाल दिख सकता है। उल्टा पिरामिड शैली में जो सबसे महत्वपूर्ण और मूल खबर है, वह सबसे पहले बताई जाती है, फिर उससे कम महत्व की, फिर सबसे कम महत्व की। अमेरिकी गृह युद्ध के दौरान विकसित इस शैली में टेलीग्राफ़ संदेशों की सेवाओं की अनियमितता, दुर्लभता और महंगाई को देखते हुए समाचार का निचला और न्यूनतम महत्व वाला हिस्सा काटा जा सकता है, इसके अतिरिक्त अचानक कोई बड़ी खबर आने पर उसे इसमें आसानी से समायोजित भी किया जा सकता है। भारत में अनेक निजी चैनलों के उदय, अपराध खबरों के प्रति श्रोताओं–दर्शकों की बढ़ती रुचि और बदलावों की लहर के आलोक में समाचार की परिभाषा ही महत्वपूर्ण नहीं हुई बल्कि समाचार लेखन का मुद्दा भी ध्यान देने लायक होता गया है। तटस्थ, वस्तुनिष्ठ, निष्पक्ष और संतुलित समाचार लेखन ही किसी माध्यम की साख बढ़ा सकता है। भ्रमोत्पादक शीर्षक, पक्षतापूर्ण समाचार लेखन और निरर्थक तथ्यों पर ज़रूरत से ज़्यादा ज़ोर देकर समाचार के साथ मनचाहा खिलवाड़ करना, एक ज़िम्मेदार पत्रकारिता के लक्षण नहीं कहे जा सकते। आधे–अधूरे, अप्रामाणिक तथ्यों और अधकचरी भेंटवार्ताओं के चलते पत्रकारिता पर धब्बा लगता है। विज्ञापनों के दबावों के चलते आज शीर्ष सम्पादक संस्था की गरिमा निश्चित तौर पर पहले जैसी नहीं रही है। थोड़ा हल्के ढंग से कहा जाए तो पहले समाचारों के छपने के बाद अख़बार में जो जगह बचती थी, उसमें विज्ञापन छापे जाते थे, आज विज्ञापनों के छपने के बाद जो जगह बचती है, उसमें खबरें छपती हैं। मीडिया और उसकी भाषा की समय के साथ–साथ आगे जो भी तस्वीर बनने जा रही है, उसमें विज्ञापन, पश्चिमी मूल्य और कॉरपोरेट संस्कृति का दखल और भी बढ़ा हुआ ही मिलेगा। अख़बारों या टेलीविजन चैनलों की प्रसार संख्या या दर्शक संख्या अधिकाधिक बढ़ाकर मुनाफ़ा कमाने की होड़ के चलते स्टिंग ऑपरेशन या सनसनीखेज खोजी पत्रकारिता जैसे कुछ नये औज़ार भी विकसित हुए हैं। पर्दाफ़ाश या भण्डाफोड़ पत्रकारिता के चलते अख़बार या चौनल को आसानी से नाम मिल जाता है, प्रसार संख्या या दर्शकों की तादाद बढ़ जाती है और यह बढ़ी हुई तादाद विज्ञापनों के ज़रिये धन को आकृष्ट करती है। बुडवर्ड और बर्नस्टन के प्रयासों से अमेरिकी वाटरगेट मामले का खुलासा, भारत में तहलका कांड की कहानियाँ कई सांसदों द्वारा रिश्वत लिए जाने को सीडी में कैद कर लेना, कुछ हाई प्रोफाइल लोगों की सेक्स सीडी के मुद्दे का तूल पकड़ना, ऐसी अनेक घटनाएँ हैं, जो खोजी पत्रकारिता की किताबों में दर्ज हैं। फिर भी यह कहना ज़रूरी है कि सारी घटनाओं को एक ही श्रेणी में नहीं रखा जा सकता, लेकिन इतना तो तय है कि आज की मीडिया पर गौर करते समय स्टिंग ऑपरेशनों या पेज–थ्री जर्नलिज़म को छोड़ा नहीं जा सकता। जाने–माने अमेरिकी खोजी पत्रकार बॉब ग्रीन ने इस सन्दर्भ में भले मर्यादाओं के अतिक्रमण की बात न लिखी हो, लेकिन आज की खोजी (भण्डाफोड़) पत्रकारिता चोरी करवाकर गुप्त दस्तावेज़ हासिल करने को और उसे छापने को अनैतिक नहीं समझती है। अमेरिका में इसे चैक जर्नलिज़म भी कहते हैं। इसके अलावा आजकल तो यौन–सुखों और रुपयों का लालच देकर मन की पाश्विक भावनाएँ तक उकसाई और भड़काई जाती हैं ताकि 'स्टिंग' कामयाब हो सके। पेन से लेकर कोट में लगे कैमरे, उन्नत तकनीक से युक्त शानदार रिकॉर्डिंग और नाम के लिए जोखिम की किसी भी हद तक जाने का साहस (दुस्साहस) स्टिंग को मसालेदार, रोचक, जनप्रिय और बिकने

योग्य बनाते हैं। हालाँकि यहाँ यह जानना भी ज़रूरी है कि एक वर्ग ऐसा भी है जो स्टिंग ऑपरेशन को पत्रकारिता का अंग नहीं मानता।

आज की मीडिया की सच्चाई भी किसी से छिपी नहीं है। वह सरकारें बना या बिगाड़ सकती है। प्रिंस को देश का महानायक बना सकती है, जेसिका लाल या प्रियदर्शिनी भट्ट के मामलों में देर से ही सही, न्याय दिला सकती है, हमले को वैध ठहरा सकती है, किसी नायक–नायिका के चुम्बन को राष्ट्रीय महत्व साबित कर सकती है, कुछ भी सम्भव है! मीडिया की सामाजिक जवाबदेही पर इससे ज़्यादा क्या कहा जाए कि कुछ दिनों पहले सी.एन.एन. – आई.बी.एन. के प्रधान सम्पादक ने चिन्ता व्यक्त की थी, "मुझे तो यह चिन्ता है कि चैनल स्टूडियो में हत्या करवाकर उसका लाइव न दिखाने लगें।" इससे पता चलता है कि मीडिया किस ओर जा रहा है और क्या होगा उसका आगे चलकर? मीडिया की शायद इसी असीमित शक्ति सम्पन्नता को देखते हुए सरकारी स्तर पर एक बिल को दस्तावेज़ बनाने का काम ज़ोर–शोर से चल रहा है, जिसके ज़रिए समाचार चैनलों की विषयवस्तु, प्रस्तुतीकरण, अन्तर्वस्तु और सामग्री इत्यादि पर कुछ निगरानी रखी जा सके। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अगर यह नियमन सरकारी होने की बजाय आत्म–नियमन होता तो कहीं बेहतर होता! सोचना चाहिए कि आइ.जी. पांडा की कहानी, मीका–राखी चुम्बन की बातें, ढोंगी तान्त्रिका की पोल, रैम्प पर सेलिब्रिटिज़ के सरकते दुपट्टे और मटुकनाथ का प्रसंग – ये और ऐसी ही अनेक घटनाएँ क्या उतने समाचारीय महत्व की हकदार थीं, जितना महत्व इन्हें दिया गया है। एक प्रिंस का जीवन 'बचाकर' या एक–दो जेसिका लाल को न्याय दिलाकर अगर मीडिया अपने दायित्व या कर्तव्य की इतिश्री समझ ले तो क्या इसे उचित कहा जाएगा? कम महत्वपूर्ण खबरों को ज़रूरत से ज़्यादा महत्व देने पर खबरों का एक ऐसा धुंधलका पैदा होता है, जिसमें जनसरोकार की वज़नी खबरें हाशिये पर चले जाने को अभिशप्त हो जाती हैं। इन्हीं सब कारणों से मीडिया रेग्युलेटरी बॉडी या सरकारी नियमन का सवाल पैदा होता है, पर क्या ऐसा कोई नियमन पत्रकारिता को जनपक्षधर बनाने की दिशा में ले जा सकेगा? क्या समाचारों के चयन या उनकी प्रस्तुति को अपेक्षाकृत अधिक जनकल्याणकारी या सहभागितामूलक बनाया जा सकेगा? आज 'समाचार' शब्द का अर्थ क्या है? कुछ चैनलों की मानें तो क्या ऐसी सामग्री को 'समाचार' कह दिया जाए, जिसे देखने में दर्शक 'रुचि' लेता है? या फिर 'समाचार' वह है, जिसे मीडिया मालिक समाचार मानते हैं?

मीडिया (चाहे वह ग्लोबल हो या लोकल या रोलांद रॉबर्टसन के शब्दों में कहें तो ग्लोबल) के सन्दर्भ में आज के सवाल ही उसकी कल की भाषा तय करेंगे और मीडिया (या उसकी भाषा) के समकालीन सवाल बाज़ार–केन्द्रित और बाज़ार द्वारा? संचालित अर्थव्यवस्था से जुड़े हैं। ढेरों सवाल हैं जो मीडिया की चौखट पर खड़े दरवाज़ा पीट रहे हैं और पत्रकारिता के सरोकारों पर प्रश्नचिन्ह लगा रहे हैं। तो क्या मान लिया जाए कि बाज़ार संचालित पत्रकारिता एक व्यवसाय या व्यापार है? खबरें उत्पाद हैं और पाठक दर्शक–श्रोता उपभोक्ता हैं, ग्राहक हैं और मुनाफ़ा कमाते चले जाना ही मीडिया का लक्ष्य है? क्या सम्पादकीय स्वायत्तता और समाचार–मूल्यों में गिरावट नहीं आयी है? क्या सम्पादक की भूमिका समाचार संगठन के वैचारिक नेतृत्वकर्ता की बजाय एक प्रबन्धक की होती जा रही है? सम्पादन के बदलते मानदण्डों के मद्देनज़र क्या समाचारों को मनोरंजक बनाकर पेज–थ्री पत्रकारिता को बढ़ावा दिया जा रहा है? समकालीन मीडिया की अपनी शास्त्रीय आलोचना 'द मीडिया मोनोपॉली' में बेन बैगडिकियन ने अमेरिकी मीडिया पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि समाचारों के स्तर में गिरावट का एक पहलू यह उभरा है कि समाचार संगठन के अपने अन्य व्यावसायिक लक्ष्य समाचारों के चयन को निर्धारित करने लगे हैं। ये लक्ष्य यह भी तय कर देते हैं कि समाचार का पाठक/दर्शक क्या पढ़े, क्या न पढ़े क्या देखे और क्या न देखे! ज़ाहिर है कि ऐसी बातें समाचार या पत्रकारिता की आत्मा के प्रतिकूल हैं। अगर एडवर्ड एस हर्मन और नॉम चॉम्स्की के 'प्रोपेगैंडा मॉडल' का सहारा लें तो इन्होंने अपनी पुस्तक 'मैन्युफ़ेक्चरिंग कंसेंट–द पॉलिटिकल इकोनॉमी ऑफ़ मास मीडिया' में शक्ति और धन की असमानता और मास मीडिया पर इसके (नकारात्मक) प्रभावों का ज़िक्र करते हुए व्याख्या की है कि किस प्रकार शक्ति और धन मिलकर समाचारों के विकल्पों को फिल्टर करते हैं। आज नये–ताज़े और उत्साही मीडिया को ध्यान में रखना होगा कि उसके एजेंडे और जनता की ज़रूरतों और प्राथमिकताओं के बीच दूरी बढ़ने की बजाय घटे, लोकतन्त्र पर मीडियातन्त्र हावी न हो जाए। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया भी क्राइम, क्रिकेट, सिनेमा और सेलिब्रिटीज़ के भँवर से निकले और प्राइस, प्लेस, प्रोडक्ट, प्रमोशन या प्रेज़ेंटेशन के ज़रा परे जाकर भी देखे। सूचना क्रान्ति के चलते युवा पीढ़ी में मीडिया से जुड़ने की नयी चाहत तो पैदा हो गयी है, लेकिन बेहद मँझा हुआ प्रशिक्षण करीब–करीब नदारद है। इन सारी बातों पर ध्यान देकर ही मीडिया अपने भविष्य को कुछ सुनहरा बना सकता है, अपनी भाषा को सच्चाई की जुबान में तब्दील कर सकता है

और समतामूलक समाज के स्वप्न को साकार करने में कुछ उल्लेखनीय योगदान दे सकता है। नये मीडिया का नया भविष्य भी शायद यहीं से शुरू हो। अख़बारों ने समय और समाज के हिसाब से चलते हुए सफलता की नई परिभाषा गढ़ी है। जहाँ एक ओर अन्तर्वस्तु के स्तर पर तमाम बदलाव आए हैं, वहीं दूसरी ओर ग्राफ़िक–डिज़ाइन और रंग–संयोजन के मसले पर भी अख़बार खरे उतर रहे हैं। नव–स्वाधीन राष्ट्रों का महाद्वीप एशिया–अफ़्रीका हो या विकसित देशों का इलाका यूरोप–हर देश और हर समाज में अख़बार बड़े चाव से पढ़े जाते हैं। आज पूरी दुनिया में ढाई करोड़ से ज़्यादा समाचार–पत्र प्रकाशित किए जा रहे हैं, जो सूचना देने के अलावा शिक्षण और मनोरंजन का काम भी बखूबी अंजाम दे रहे हैं। आज हम सब प्रायः देखते हैं कि अमुक अख़बार की प्रसार संख्या सर्वाधिक है, अमुक अख़बार अपने पाठकों तक अपनी पहुँच बढ़ाने के लिए तमाम कोशिशें कर रहा है। वास्तव में प्रत्येक अख़बार चाहता है कि वह सर्वाधिक पाठकों तक पहुँचे। परंतु अगर गिनीज़ बुक को देखें तो प्रसार का रिकॉर्ड एक सोवियत समाचार–पत्र 'टुडे' के नाम दर्ज है। वर्ष 1990 में इस अख़बार की प्रसार संख्या दो करोड़ पन्द्रह लाख रोज़ाना थी। वास्तव में नब्बे का दशक पूरे साम्यवादी जगत के लिए काफ़ी उथल–पुथल का दशक था और हर आम आदमी को यह जानने की ज़बरदस्त उत्सुकता रहती थी कि आज नया क्या हुआ है। इस उत्सुकता की प्रतिध्वनि सोवियत संघ के ही एक साप्ताहिक पत्र की प्रसार संख्या में सुनाई देती है जो वर्ष 1991 में साढ़े तीन करोड़ के आसपास थी।

अख़बारों को आज बासी होने के बाद पॉलीथीन की जगह इस्तेमाल किया जाने लगा है। वैश्विक तपन और पर्यावरणीय चिन्ताओं के वर्तमान दौर में अगर अख़बार पर्यावरण के अनुकूल हैं तो यह एक बड़ी बात है। पुराने अपशिष्टों को पुनः चक्रित करके बनाए जाने वाले उत्पादों में प्रमुख नाम अख़बारों का भी आता है। अमेरिकी समाचार–पत्र संघ (एन.ए.ए.) की एक हालिया रिपोर्ट के मुताबिक एक औसत समाचार–पत्र का तीस फ़ीसदी हिस्सा पुनर्चक्रित करके ही बनाया गया होता है। अमेरिका जैसे देश के लिए यह बात और भी ज़्यादा महत्वपूर्ण और प्रासंगिक हो जाती है क्योंकि वहाँ संसाधनों का प्रति व्यक्ति अपव्यय सर्वाधिक है। इसके अतिरिक्त 'वॉल स्ट्रीट जर्नल' जैसे अख़बारों का उल्लेख करना भी ज़रूरी है, जिनकी दैनिक प्रसार संख्या ही बीस लाख से भी अधिक है।

आई.एन.ए. सर्वे 2010–11 की रिपोर्ट 'गार्डियन' के 20 सितम्बर 2009 के संपादकीय से सरकार से अपनी उपयोगिता बढ़ाने के लिए आज जिन तरीकों का इस्तेमाल अनेक अख़बार कर रहे हैं, उनमें समाचार–पत्रों का स्थानीयकरण प्रमुख है। भारतीय भाषाओं के तमाम अख़बार एक ही राज्य में अनेक संस्करण निकाल रहे हैं ताकि समाचारों का पूर्ण स्थानीयकरण किया जा सके। 'मलयाला मनोरमा' जैसे प्रमुख अख़बार भी आज केरल जैसे छोटे–से राज्य में ही दस संस्करण निकाल रहे हैं। इसके अतिरिक्त केरल से बाहर यह अख़बार छह संस्करण निकालता है। विज्ञापनदाता भी वर्तमान दौर में ऐसे अख़बारों का चयन करते हैं जो अपने पाठकों की स्थानीयता के प्रति जागरूक हों। ऐसा चयन करने के अनेक आधार हैं। उदाहरण के लिए, ऐसा करने पर विज्ञापनदाताओं को पाठकों का मूड पता चल जाता है, प्रश्नावलियाँ नहीं बनानी पड़तीं और ऑडियंस–रिसर्च की ज़्यादा समस्या नहीं झेलनी पड़ती।

ऐसा नहीं है कि भारतीय अख़बारों की उपयोगिता भारत तक ही सीमित है। वैश्वीकरण के समय में जब आज सम्पूर्ण विश्व को एक ग्राम के रूप में देखा जा रहा है तब भला भारतीय अख़बार अपने हाथ–पाँव फैलाने में पीछे कैसे रह सकते हैं। इसका बेहतरीन उदाहरण केरल से प्रकाशित होने वाला अख़बार 'माहयमम् डेली' है, जो दुबई, दोहा, बेहरीन और कुवैत से अपने अंतरराष्ट्रीय संस्करण भी प्रकाशित करता है। केरल के अनेक लोग खाड़ी के इन देशों में उद्यम और नौकरी के लिए रहते हैं, जिसके कारण यह अख़बार पश्चिमी एशिया में खूब पढ़ा जाता है। इसी प्रकार भारत के अनेक समाचार पत्र 'गार्डियन' और 'वाशिंगटन टाइम्स' से जुड़े हुए हैं। उपयोगिता बढ़ाने के ये प्रयास 'बंगाल गजट' और 'अल–हिलाल' से लेकर आज तक जारी हैं।

कहा भी जाता है कि यदि मनुष्य चलने के लिए भोजन ग्रहण करता है, तो वह दुनिया के साथ चलने के लिए दिमाग में समाचार–पत्रों से मिली समाचार नामक खुराक डालता है। अख़बार अपने पाठकों के ज्ञान को नवीनतम बनाए रखते हैं और विचारों में ताज़गी लाते हैं। ये अपने पाठकों के चिन्तन के दायरे को विस्तृत करते हैं और उनके दृष्टिकोणों को परिपक्व तथा तार्किक बनाते हैं। महान अख़बारों ने प्रायः समाज–सुधार का कार्य भी खूब किया है। प्रशासकों, न्याय–प्रणाली और कानून–व्यवस्था पर आलोचनात्मक और निष्पक्ष दृष्टि रखने के कारण अख़बार व्यवस्था को चुस्त–दुरुस्त बनाने का काम करते रहते हैं। नौकरी खोजनेवाला युवा वर्ग अख़बारों में रिक्तियों के विज्ञापनों को बड़े गौर से देखता है। अंग्रेज़ी सीखनेवाले लोगों को

अक्सर सलाह दी जाती है कि वे अंग्रेज़ी समाचार–पत्र पढ़ें, समझ में न आनेवाले शब्दों को लिखें और शब्दकोश से उनके अर्थ को समझें। इससे पाठकों का भाषा–ज्ञान बढ़ता है और उनकी अभिव्यक्ति–सामर्थ्य दक्ष होती है। आज जब अनेक अख़बारों में भाषा, व्याकरण और वर्तनी की त्रुटियाँ प्रायः देखने को मिल जाती हों, तब अख़बारों की उपयोगिता पर चिन्तन–मनन करना कहीं अधिक आवश्यक हो जाता है। शायद इसीलिए अख़बारों के भविष्य, विज्ञापनों पर उनकी निर्भरता और प्रसार संख्या जैसे तमाम मुद्दे आज केंद्रीय स्थान ग्रहण कर चुके हैं।

अख़बारों की उपयोगिता का कोई भी विमर्श इस एक बुनियादी मूल्य के बिना अपूर्ण ही कहा जाएगा कि अख़बारों का लक्ष्य आम आदमी के हित में काम करना ही होना चाहिए। पत्रकारों से ऐसी ही उम्मीद की जाती है कि वे वही लिखें जो उनकी जगह पर बैठकर कोई आम आदमी लिखता। इसीलिए पत्रकारों में संवेदना की आशा की जाती है और पत्रकारिता को संवेदनशीलता से जोड़ा जाता रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः

1. 'मीडिया समग्रः जनमाध्यम और मास कल्चर', जगदीश्वर चतुर्वेदी, स्वराज प्रकाशन, 2013, दिल्ली
2. 'संचार माध्यमों की भाषा और नई हिंदी', सतीश शर्मा
3. 'भाषा, बहुमासिकता और हिंदी', प्रणव कुमार बंधोपाध्याय
4. 'भाषा' (त्रैमासिक), शशि भारद्वाज
5. 'भारत में जनसंचार', केवल जे. कुमार
6. 'पत्रकारिता के परिप्रेक्ष्य', जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, साहित्य संगम, इलाहाबाद
7. 'हिंदी के प्रमुख समाचार पत्र और पत्रिकाएँ', अच्युतानंद मिश्र, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
8. 'हिंदी पत्रकारिता की शब्दावली, नये प्रयोग, नई संरचनाएँ : एक विश्लेषण', ममता रानी, हैदराबाद विश्वविद्यालय
9. 'हिंदी पत्रकारिता : आधुनिक संदर्भ', देवप्रकाश मिश्र
10. 'हिंदी पत्रकारिता : स्वरूप एवं संदर्भ', विनोद गोदरे
11. 'जनसंचार माध्यमों का राजनीतिक चरित्र', जवरीमल्ल पारख
12. 'न्यू मीडिया एंड द लेंग्वेज मीडिया वॉच', आनंदिता पैल, 23'28, वॉल्यूम–3, जु.दि.2012
13. 'संचार माध्यम और सांस्कृतिक वर्चस्व', शिलर हरबर्ट (अनु–) राम कवींद्रसिंह, ग्रंथशिल्पी, दिल्ली
14. 'सूचना क्रांति की राजनीति और विचारधारा', धूलिया, सुभाष, ग्रंथशिल्पी, दिल्ली
15. 'भूमंडलीय जनमाध्यम', हरमन एडवर्ड व मैकचेस्नी, ग्रंथशिल्पी, दिल्ली
16. 'द डायनेमिक्स ऑफ़ मास कम्यूनिकेशन', जोसेफ़ आर डोमेनिक, इंटरनेशनल एडिशन मैकग्रा हिल, 2011
17. 'Reshaping movement media for a new millennium, Soical Studies', Atton, C. (2003), 2(1), 3-13.
18. 'नया मीडिया : अध्ययन और अभ्यास', शालिनी जोशी और शिवप्रसाद जोशी 2015, पेंग्विन, दिल्ली
19. 'न्यू मीडिया एंड द लैंग्वेज', आनंदिता पैन, मीडिया वॉच 23–28, वॉल्यूम–3, जुलाई–दिसंबर 2012
20. 'द न्यू मीडिया हैंडबुक', एंड्रयुयुडने ऐंड पीटर राइड, 2006, रूटलेज
21. 'ऑनलाइन जर्नलिज़म एथिक्स', सेसेलिया फ्रेंड एंड जेन बी. सिंगर, इंडियन रिप्रिंट, 2007, पी. एच. आई लर्निंग प्रा. लि.
22. 'चंद्रभूषण भूमंडलीय जनमाध्यम निगर पूंजीवाद के नए प्रचारक', हरमन, एडवर्ड एस. और मैकचेस्नी, रोवर्ट डब्ल्यू (अनु.), ग्रंथशिल्पी, दिल्ली
23. 'इंटरनेट पत्रकारिता', कुमार, सुरेश, 2004, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
24. 'मीडिया समग्र', जगदीश्वर चतुर्वेदी, अनामिका प्रकाशन, नई दिल्ली
25. 'द डायनेमिक्स ऑफ़ मास कम्यूनिकेशन', जोसेफ़ आर डोमिनिक, 2011, इंटरनेशनल एडीशन मैकग्रो हिल
26. 'मोबिलाइजिंग द वाइट मार्च : मीडिया फ्रेम्स आज ऑल्टर्नेटीव्स टू मूवमेंट ऑर्गानाइजेशन्स', वाल्ग्रेव, एस और मन्संस, जे.(2005) लैनहॉम, रोमन एंड लिटलफील्ड पब्लिशर्स, स्वीडन
27. 'अमेरिकन सोशियोलॉजिकल रिव्यू', मैककार्थी, जे. डी., मैकफैल, सी. आर स्मिथ, जे. (1996) वॉल्यूम 1982 और 1991 ने 61
28. 'युवा संवाद', नवम्बर 2016
29. 'उदारवाद की तानाशाही', प्रेम सिंह, नई दिल्ली
30. 'जर्नल ऑफ़ कम्यूनिकेशनल जांच', केन्सेकी, एल. जे.(2001), वॉल्यूम, 25, पी. 150

नई दिल्ली, भारत

drmala.misra@gmail.com

इक्कीसवीं शती में सूचना प्रौद्योगिकी और प्रयोजनमूलक हिंदी

–डॉ. रमा नवले

जन्म : 12.01.1959

शिक्षा :
- ❖ पी. एच. डी. (हिंदी)
- ❖ एम. फ़िल. (हिंदी)
- ❖ एम. ए. (हिंदी)

व्यवसाय :
- ❖ अध्यक्षा, पी. जी. हिंदी विभाग तथा शोध संस्थान, पीपल्स कॉलिज, नांदेड़, महाराष्ट्र
- ❖ पूर्व प्रिंसिपल एवं मुख्य अधीक्षक, एस. आर. टी. एम. यू. परीक्षा नांदेड़
- ❖ शोध मार्गदर्शिका
- ❖ एक्स्टर्नल परीक्षक एवं रेफ़ेरी
- ❖ समंवयक, यशवंतराव चव्हाण महाराष्ट्र मुक्त विद्यापीठ एवं पी.जी हिंदी विभाग तथा शोध संस्थान, पीपल्स कॉलिज, नांदेड़
- ❖ समंवयक, पी.एच.डी. कोर्स, एम. फिल. कोर्स

प्रकाशन :
- ❖ (पुस्तक) 'मृदुला गर्ग के कथा साहित्य में नारी', 'भूषण का प्रशस्ति काव्य', 'भाषा और साहित्य के विविध आयाम', 'नाटक तथा एकांकी'
- ❖ (संपादन) 'आधुनिक काव्य सृष्टि एवं दृष्टि'
- ❖ (अनुवाद) 'समाज परिवर्तन – प्रक्रिया एवं इकाइयाँ', 'पर्यावरण एवं समाज स्थानिक', 'आयुवर्धन प्रक्रिया – स्वरूप एवं व्याप्ति'
- ❖ लेख एवं कहानियों का अनुवाद
- ❖ पत्र–पत्रिकाओं में लगभग 38 आलेख

पुरस्कार – पंजाब साहित्य अकादेमी 'पंकस अकादमी' द्वारा 'राष्ट्रीय विशिष्ट अकादमी सम्मान'

इक्कीसवीं शती में हिंदी ने सदियों की यात्रा केवल बीस–तीस सालों में ही पार कर अपना रंग–रूप बदल दिया है। एक स्थिर परिनिष्ठित भाषा (हिंदी) रोज़मर्रा की बोली–बातचीत का रूप धारण कर ग्लोबल बनने का ख़्वाब देख रही है। सूचना प्रौद्योगिकी की भाषा बन वह परवान चढ़ रही है। अपनी प्रयोजनमूलकता में बड़े विश्वास के साथ फैल रही है। उसकी इस स्थिति को देखकर बर्मिंघम में एक भाषण में बिल गेट्स के पुत्र ने कहा – "अंग्रेज़ी को थोड़ा चीनी–हिंदी–स्पेनिश से सजग रहने की आवश्यकता है। निश्चित ही यह बात इक्कीसवीं शती में हिंदी के दबाव के बढ़ने की बात है।

"इक्कीसवीं शती में सूचना प्रौद्योगिकी और प्रयोजनमूलक हिंदी" इस शीर्षक पर विचार करते समय सबसे पहले सूचना प्रौद्योगिकी शब्द का अर्थ समझना होगा, फिर सूचना प्रौद्योगिकी और हिंदी के संबंध को स्पष्ट करना होगा और 21वीं शती में सूचना प्रौद्योगिकी की भाषा हिंदी की विकास–यात्रा का अवलोकन करना होगा। सूचना प्रौद्योगिकी ज्ञान की ऐसी शाखा है, जिसका सरोकार यान्त्रिकीय या मशीनी (कंप्यूटर) कला से है। सूचना प्रौद्योगिकी यह एक तकनीकी पारिभाषिक शब्द है। सूचनाओं को एकत्रित कर उसका भंडारण किया जाता है; जिसे आँकड़ा (data) कहते हैं। प्रज्ञा–विवेक–बुद्धिमत्ता (intelligence) के आधार पर उसपर प्रक्रिया (प्रोसेसिंग) की जाती है। प्रोसेसिंग की हुई सूचनाओं का प्रसार किया जाता है। पूर्वनिर्धारित लक्ष्य तक इन सूचनाओं का संप्रेषण करना इस कार्य का लक्ष्य होता है। इस तरह यह कला केवल हार्डवेअर–सोफ़्टवेअर तक ही सीमित नहीं है, बल्कि मनुष्य की बौद्धिक क्षमता और उसके द्वारा निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने में है। सूचना प्रौद्योगिकी भाषा सूचनाओं के संजाल का नित–नूतन तरीके से हुए विकास को रेखांकित करती है। भाषा की समस्त संरचनाओं का तकनीकीकरण सूचना प्रौद्योगिकी का अभिन्न अंग है। इसी भाषा के द्वारा ही तो संप्रेषण होता है, पर संप्रेषण का तरीका भी बिलकुल भिन्न होता है। बात बहुत सहजता के साथ पहुँचाई जाती है। अपेक्षित हर जानकारी उपभोक्ता को प्राप्त हो इसका ख़्याल रखा

जाता है। यही मशीनी कला की ताकत है। उदाहरण के तौर पर रेल का क्षेत्र यदि लेते हैं, तो आज उपभोक्ता को जहाँ जाना है; उसके संबंध में उस तिथि को कौन–कौन सी गाड़ियाँ उपलब्ध हैं, उस गाड़ी का क्रमांक क्या है, उस गाड़ी का नाम क्या है, वह रेल कहाँ से निकलती है, कहाँ पहुँचती है, गाड़ी के स्टेशन पर अनेक समय, रेल के छूटने का समय, गंतव्य स्टेशन तक गाड़ी के पहुँचने का तथा गाड़ी छूटने का समय, यात्रा कितने कि. मी. पार करनी है, कौन–कौन से स्टेशन बीच में आते हैं, आपकी उम्र के अनुसार किराया कितना रहेगा, श्रेणी के अनुसार किराया कितना रहेगा, आरक्षण की स्थिति क्या है, कितनी सीटें उपलब्ध हैं, प्रतीक्षा सूची क्रमांक क्या है, यदि टिकट प्रतीक्षा क्रमांक के साथ मिल रहा है, तो यात्रा की तिथि तक उपलब्ध होने की संभावना कितनी है, प्रतीक्षा सूची क्रमांक डालकर हमें आरक्षण मिल रहा है या नहीं, इसके अलावा भी कई प्रकार की जानकारी केवल एक सेकण्ड में सारे विकल्पों के साथ उपलब्ध होती है। इस वेबसाइट के बनानेवाले दिमाग का कमाल दिखाते हैं। आपको जो जानकारी चाहिए और जिस भाषा में चाहिए वह सारी इंटरनेट पर उपलब्ध है। फिर उपभोक्ता जैसा चाहे वैसा टिकट घर बैठे ही प्राप्त कर सकता है, यात्रा रद्द होने की स्थिति में नियमानुसार टिकट कैंसल भी कर सकता है। यह सारा कमाल सॉफ्टवेअर, हार्डवेअर, मनुष्य की बुद्धिमत्ता तथा भाषा के उचित प्रयोग का है। ठीक इसी तरह पाठक को किस विषय से संबंधित पुस्तक पढ़नी है, किस भाषा में पढ़नी है, उस विषय से संबंधित कौन–कौन सी पुस्तकें हैं, शोधलेख कौन–कौन से हैं, प्रकाशक कौन है, पुस्तक कैसे उपलब्ध की जा सकती है आदि इससे भी अधिक जानकारी सारे विकल्पों के साथ जिस भाषा में चाहें उपलब्ध हैं। कोई भी चीज़ खरीदनी है, तो उस वस्तु की संपूर्ण जानकारी नेट पर उपलब्ध है। आप कहीं कार से यात्रा कर रहे हैं और आपको रास्ता पता नहीं है, तो चिंता करने की ज़रूरत नहीं है, नेविगेटर लगाओ और विश्वास के साथ चलो – आपको किस रास्ते से जाना है, आपको कहाँ मुड़ना है, गलत मोड़ लेने पर तुरंत सही रास्ते पर लाने का काम भी उसी का है। हर छोटी से छोटी गली का पता उसे है। सूचना प्रौद्योगिकी का संबंध मनुष्य जीवन के हर क्षेत्र से है। हर जानकारी से है । जीवन का कोई भी क्षेत्र अब अछूता नहीं है। प्रशासन, खेल, शिक्षा, राजनीति, व्यवसाय, साहित्य, ज्ञान–विज्ञान आदि कई विषयों से सूचना प्रौद्योगिकी जुड़ा है। आप किसी भी प्रकार की जानकारी नेट पर किसी भी ढंग से और किसी भी भाषा में खोज सकते हैं; यह सूचना प्रौद्योगिकी का कमाल है ।

अब हमारे सामने यह प्रश्न है कि सूचना प्रौद्योगिकी में किस भाषा का प्रयोग हो? इसका निश्चित उत्तर यह दिया जा सकता है कि जो भाषा अधिकाधिक लोगों की समझ में आए और, जिसका प्रयोग अधिकाधिक लोग करते हों; सूचना प्रौद्योगिकी की भाषा वही होगी। विश्व में बोलनेवालों की संख्या की दृष्टि से हिंदी की चर्चा कभी तीसरे, कभी दूसरे तो कभी पहले स्थान की हो रही है। निश्चित प्रमाण के अभाव में इस विवाद में न पड़ते हुए कुछ अन्य बातों की ओर ध्यान देना अधिक उचित होगा। राजभाषा विभाग की पूर्व संयुक्त सचिव श्रीमती पूनम जुनेजा ने कहा है कि विश्व के चार–पाँच देशों को छोड़कर अन्य सभी देशों में भारतीय मूल के लोग रहते हैं। उनमें हिंदी बोलनेवालों की संख्या निम्न है –

यु.एस.ए.	एक लाख (100000)
मॉरीशस	छह लाख पचासी हज़ार एक सौ सत्तर (6,85,170)
साउथ अफ्रीका	आठ लाख नब्बे हज़ार दो सौ बानवे (8,90,292)
यमन	दो लाख बत्तीस हज़ार सात सौ साठ (2,32,760)
युगांडा	एक लाख सैंतालीस हज़ार (1,47,000)
सिंगापुर	पाँच हज़ार (5, 000)
नेपाल	आठ करोड़ (8,00,00,000)
न्यूज़ीलैंड	बीस हज़ार (20, 000)
जर्मनी	तीस हज़ार (30, 000)

सन्दर्भ–अगस्त 2015 में राजभाषा भारती – **rajbhaasha.gov.in** इस संजाल पर दिए गए आंकड़े[1]

राजभाषा भारती द्वारा दिए गए ये आँकड़े हिंदी की व्यापकता की ओर संकेत कर रहे हैं। दूसरी बात अब हिंदी का प्रयोग किस तरह और किन–किन क्षेत्रों में हो रहा है; यह देखना भी ज़रूरी है। विभिन्न संजालों पर (वेबसाइट) उपलब्ध जानकारी तथा विभिन्न सन्दर्भ ग्रंथों के आधार पर निम्न बातों की ओर संकेत करना यहाँ अभिप्रेत है।

इंटरनेट और हिंदी के संबंधों को स्पष्ट करते हुए 19 अगस्त

2009 में गूगल ने कहा कि हर पाँच वर्षों में हिंदी की सामग्री में 94 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हो रही है। यह आँकड़ा आश्चर्यजनक है। और गूगल ने यह भी स्वीकार किया है कि इक्कीसवीं शती में भारत दुनिया के बड़े कम्प्यूटर बाज़ारों में से एक होगा। इन आंकड़ों के माध्यम से हिंदी के इंटरनेट पर बढ़ते प्रयोग के ग्राफ़ को हम समझ सकते हैं। इस स्थिति को देखकर हिंदी में खोज को आसान बनाने के तरीके ढूँढे जा रहे हैं। यूनिकोड के पदार्पण ने इस क्षेत्र में क्रांति कर दी है। अब अपनी भाषा में अभिव्यक्ति आसान हो गयी है। अभी भारत में इंटरनेट का प्रयोग करनेवाले लोगों की संख्या केवल 8 प्रतिशत हैं। (यह आँकड़ा बड़ा भी हो सकता है – पीछे 'नवभारत टाइम्स' समाचार–पत्र में 32 प्रतिशत की बात कही गयी थी; पर संजाल पर 8प्रतिशत ही दिखाया जा रहा है) विकासशील देशों (अमेरिका, चीन और जापान) में यही औसत 90 प्रतिशत है। यह प्रतिशत कम इसलिए है, क्योंकि अब तक इंटरनेट पर अंग्रेज़ी का ही वर्चस्व था। अंग्रेज़ी जानने–समझने वालों की संख्या कम होने के कारण इंटरनेट के प्रयोग का औसत कम हो सकता है। इंटरनेट पर हिंदी में जानकारी उपलब्ध होने के कारण इंटरनेट के प्रयोगकर्ताओं की संख्या तेज़ी से बढ़ने की संभावना है; जिसका प्रमाण गूगल के उपर्युक्त आँकड़े हैं। हिंदी में इंटरनेट का प्रयोग करनेवालों की संख्या तेज़ी से बढ़ जायेगी तब हिंदी किस प्रकार धूम मचाएगी, इसकी कल्पना मात्र हिंदी के दबाव का अहसास दिलाती है। दूसरी बात मीडिया समाज को चलाता है, समाज के मस्तिष्क को प्रभावित करता है – इन बातों को हम अब तक सुन रहे थे; पर आज अगर यह कहें, तो अत्युक्ति नहीं होगी कि अब नौजवानों के हाथ में मीडिया है। अब अभिव्यक्ति के लिए किसी का मोहताज होने की आवश्यकता नहीं है; बल्कि हमारे नौजवान यू ट्यूब, फेसबुक, ब्लॉग, ट्विटर के माध्यम से खुलकर अभिव्यक्ति कर रहे हैं। अपनी भाषा में मीडिया पर अभिव्यक्ति का मौका यह स्वर्ण अवसर है। वे कोई डॉक्युमेंट्री बना सकते हैं और यू ट्यूब पर डाल सकते हैं। मीडिया को आयडिया अच्छा लगे, तो इस आयडिया का रूपांतरण फ़िल्म में हो सकता है। कोई विज्ञापन बनाया जा सकता है, उपर्युक्त मीडिया के किसी भी माध्यम का उपयोग कर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया जा सकता है। विश्व के किस कोने से कब और कौन–सी खबर फ़िल्म का रूप धारण करेगी यह बात आश्चर्यजनक होने के बावजूद वास्तविक है। अगस्त 2016 में रिलीज़ हुई बुधिया सिंह पर बनी फ़िल्म को देखकर क्या कोई कभी सोच सकता था कि 2002 में ओड़िसा में जन्मे बुधिया पर कभी फ़िल्म बनेगी। भयानक ग़रीबी के कारण जिसकी माँ ने उसे केवल 800 रु. में एक व्यक्ति को बेचा था; उस 14 साल के बुधिया पर आज फ़िल्म बनी है। जेम अटवाल बी.बी.सी. के माध्यम से पहली बार बुधिया को एक धावक के रूप में टी.वी. पर लाये जो 3 साल की उम्र में 30 मील भाग सकता है। भारत की ग़रीबी भी सामने आ रही है; पर यहाँ इस घटना के उल्लेख का मकसद आज की मीडिया की क्षमता को बताना है। आज यही बुधिया विश्व में परिचित हो गया है।

आज इंटरनेट पर प्रमुख भारतीय भाषाओं का प्रयोग सफलता के साथ किया जा रहा है; बावजूद हिंदी का महत्व बढ़ रहा है। विकासशील समाज अध्ययन पीठ csdm ने कहा है कि आज हिंदी भारतीय भाषाओं के बीच बौद्धिक संपर्क सूत्र के रूप में अंग्रेज़ी की जगह ले रही है। क्षेत्रीय भाषाओं के साथ उसका सह अस्तित्व चल रहा है। अनुवाद में हिंदी की उपस्थिति काबिले तारीफ़ है। हिंदी अनुवाद का क्षेत्र भी सूचना प्रौद्योगिकी की तरह फल–फूल रहा है। किसी भी भाषा का संबंध जब अर्थ–प्राप्ति से जुड़ जाता है, तब वह भाषा आत्मविश्वास से दमक उठती है। अनुवाद इसमें सहायता कर रहा है। अनुवादकों की माँग तेज़ी से बढ़ी है। हिंदी प्रकाशन का क्षेत्र आसमान छू रहा है। सभी प्रकार के प्रकाशनों से बाज़ार गर्म है। वर्तमान समय विमर्शों का समय है। सभी विमर्शों में दलित विमर्श और स्त्री विमर्श आज के प्रमुख विमर्श हैं। दलित विमर्श और स्त्री विमर्श ने हिंदी को अपनाया है। सभी जानते हैं कि आज प्रकाशन के क्षेत्र में इन विमर्शों के किताबों की माँग बढ़ी है। पुस्तक मेलों में इन किताबों की बिक्री बढ़ी है। गूगल ने कहा है कि हिंदी टी.वी. चैनलों की संख्या के साथ हिंदी अखबार पढ़नेवालों की संख्या भी बढ़ गयी है। हिंदी के पाठकों की खरीद की ताकत बढ़ी है। नैशनल रीडरशिप सर्वे, 2006 के बारे में द हिंदू, नई दिल्ली की रिपोर्ट, 30 अगस्त 2006 प्रतिशत 13 के आधार पर अभय कुमार दुबे लिखते हैं– "बीसवीं सदी के आख़िरी वर्षों में आए हिंदी–बूम की जड़ में हिंदी की व्यावसायिक ताकत बढ़ी है। आज हिंदी में अखबार और पत्रिका निकालना बहुत मुफीद है। हर साल होनेवाला पाठक सर्वेक्षण बताता है कि हिंदी प्रकाशनों ने प्रसार–संख्या में अंग्रेज़ी प्रकाशनों को बहुत पीछे छोड़ दिया है।[2] आगे वे "बिज़ीनेस स्टेण्डर्ड, 29 दिसंबर, 2006 में छपी शुचि बंसल की खबर प्रतिशत 'हिंदी पेपर्स राइड मार्किट

बूम' का हवाला देते हुए लिखते हैं कि "सन् 2006 के एक आंकड़े के अनुसार हिंदी की पत्र–पत्रिकाओं में एक साल में करीब 15, 000 करोड़ रूपये के विज्ञापन छप रहे हैं।"[3] टी.वी. चैनलों , रेडियो, फ़िल्म, समाचार–पत्रों ने हिंदी को विश्व में फैलाया है; इसे अलग से रेखांकित करने की ज़रूरत नहीं है। पर यह ध्यान में रखना होगा कि जिस हिंदी की हम बात कर रहे हैं, उस हिंदी ने अपना रंग–रूप बदल दिया है।

हिंदी के इन तेवरों को देखकर यहाँ एक बात की ओर संकेत करना आवश्यक है कि आज शुद्ध साहित्यिक हिंदी और बोलचाल की हिंदी यह विवाद यहाँ उत्पन्न हुआ है। इस बात को ध्यान में रखकर सुधीश पचौरी कहते हैं – "प्रिंट मीडिया ने एक परिनिष्ठित हिंदी बनाई थी, जो आज भी मौजूद है, जिसमें हम सब सोचते हैं, गोष्ठियाँ करते हैं। टी.वी. ने इस भाषा को ही एक विराट 'बोली' में बदल दिया है। यद्यपि ऐसा करते हुए उसने प्रिंट मीडिया को प्रभावित तो किया है, नष्ट नहीं किया है। इस तरह टी.वी. की भाषा के प्रति हर शिकायत टी. वी. इतर मीडिया की भाषा की शिकायत है। लेकिन एक स्थिर परिनिष्ठित भाषा को ग्लोबल बनाकर उसे रोज़मर्रा की बोली–बातचीत में बदल डालना एक क्रांतिकारी कार्य है, जो दूरदर्शन और हिंदी चैनलों ने किया है। सदियों बाद इस महाद्वीप को एक ऐसी भाषा नसीब हुई है, जिसमें श्रीलंका से लेकर खाड़ी के देशों तक संचार संभव हुआ है। इसे रूबी भाटिया, जावेद जाफ़री, साजिद ने बनाया है। इसे चैट शो वालों ने बनाया है, इसे आमंत्रित जनता ने बनाया है। इसे देखकर शुद्धतावादी चित्त और शुद्धतावादी वैयाकरण रोते हैं तो क्या करें? यह श्रव्य और वाच्य भाषा है। इससे जीवन चलता है। .....यह मुक्त बाज़ार में निर्मित मध्य वर्ग की, बाज़ार द्वारा बाज़ार के लिए बनी भाषा है और सरेआम बनती भाषा है। .... अनेक चैनलों के भावी परिदृश्य में हम एक ऐसी भाषा पायेंगे, जो और भी वर्णसंकर, और भी खिचड़ी होगी। .....बाज़ार की शक्तियों और उनके सहयोगी माध्यम टीवी ने यह मसला सुलझा दिया है कि कौन–सी भाषा जनसंचार में सक्षम है। जो सक्षम है वह बड़ी भाषा है। यह हिंदी है; जिसे वर्णसंकर, भ्रष्ट और हिंग्रेज़ी कह सकते हैं।[4] इस हिंदी को सुधीश पचौरी ने 'उपभोग की हिंदी' कहा है। विवाद की चिंता भाषा के प्रयोगकर्ता को नहीं है। वे तो प्रयोग कर ही रहे हैं। इन्हीं प्रयोगकर्ताओं की इस भाषा की तोड़–मरोड़ में ही हिंदी की प्रयोजनमूलकता की क्षमता अधिक निखरेगी। किसी भी भाषा के विकास की क्षमता उसके प्रयोजनमूलक रूप में अधिक होती है और हिंदी ने इस क्षमता का परिचय दिया है। आज विश्व में कोई भी भाषा एकरूपी नहीं है, अंग्रेज़ी भी नहीं। अंग्रेज़ी भी प्रयोग के समय हर देश के साथ स्थानीयता के रंग में रंगकर विविधमुखी हो जाती है। जैसे यूरोप की अंग्रेज़ी अलग, अमेरिकन अंग्रेज़ी अलग, भारत की अंग्रेज़ी अलग। उसका व्याकरण अलग। तब हिंदी भी स्थान, विषय, क्षेत्र, माध्यम, प्रयोगकर्ता, ज़रूरत के अनुसार अपना रूप बदल रही है। शब्दों को अपने अनुकूल गढ़ रही है। उसकी यह प्रयोजनमूलकता में उसमें सूचना प्रौद्योगिकी की भाषा बनने की क्षमता है। इसे दुनिया भी देख रही है। इसलिए कभी इससे बचने की बात की जा रही है, तो कभी इस पर मुग्ध होकर अमेरिकन अध्यक्ष बुश जैसे व्यक्ति को भी कहना पड़ रहा है कि 21 वीं शती हिंदी की होगी।

सन्दर्भ सूची प्रतिशत

1. राजभाषा भारती – rajbhaasha.gov.in (visited 24/08/2015)
2. सामयिक विमर्श – **हिंदी में हम**, आधुनिकता के कारखाने में भाषा और विचार – अभयकुमार दुबे, पृ– 100
3. वही पृ– 101
4. वही पृ– 145, आधार – सुधीश पचौरी (2000), 'हिंग्रेजी का समाजशास्त्र, संकलित प्रतिशत पुरुषोत्तम अग्रवाल और संजयकुमार' (संपा–), हिंदी नयी चाल में ढली/एक पुनर्विचार, देशकाल प्रकाशन प्रतिशत 91–101
5. www.swargvibha.in(visited 25/08/2015)
6. https://samidhafoundation.wordpress.com
7. https://ichs2015.sciencesconf.org(visited 25/08/2015)
8. www.hindivishwa.org>contentdtl(visited 1/08/2016)
9. Bharatdiscovery.org > india (visited 25/08/2015)
10. Vishwahindisammelan.gov.in(visited 25/08/2015)

नांदेड़, महाराष्ट्र, भारत

ramanawle@gmail.com

डिजिटल मीडिया और हिंदी

– श्रीमती सुनीता पाहूजा

वैश्वीकरण के दौर में जब बढ़ते वाणिज्य एवं व्यापार के कारण सूचना के आदान–प्रदान की आवश्यकता अचानक बहुत अधिक बढ़ गई तब उस स्थिति का सामना करने में जन–संचार मीडिया ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आई क्रांति की देन नए जन–संचार मीडिया यानी डिजिटल (तकनीकी) मीडिया ने दुनिया का स्वरूप ही बदल डाला।

सूचना को जन–जन तक पहुँचाने वाले रेडियो, टेलीविज़न, समाचार–पत्र, फ़िल्म, प्रोजेक्टर, सी.डी., डी.वी.डी. इत्यादि के रूप में हमें इतने सशक्त जनसंचार माध्यम मिले कि दृश्य, श्रव्य, वीडियो, एनिमेशन और अनुरूपण माध्यमों द्वारा किसी भी सूचना का प्रसार आसानी व तेज़ी से किया जाने लगा। यहाँ तक कि हमें सप्ताह के सातों दिनों के चौबीसों घंटे समाचार तथा अन्य कार्यक्रम प्रसारित करने वाले रेडियो स्टेशन और टी.वी. चैनल उपलब्ध हो गए और सी.डी., डी.वी.डी– के ज़रिए हम अपनी मन–पसंद रिकॉर्डिंग अपनी सुविधानुसार देखने–सुनने लगे।

जब डिजिटल मीडिया का दौर आया तब इंटरनेट, मोबाइल, कम्प्यूटर, वेबसाइट, ई–मेल, फ़ेसबुक, ब्लॉग, व्हाट्सएप्प, वेब–पत्रकारिता इत्यादि के ज़रिए हमें सूचना के मात्र आदान–प्रदान से बढ़कर, संचरण और प्रसारण के अलावा सूचना के भण्डारण और पुनःप्राप्ति (रिट्रीवल) की भी सुविधा मिल गई, वो भी अपने मनचाहे समय पर! अब चाहे हमें सूचना प्राप्त करनी हो या भेजनी हो, किसी दूसरे व्यक्ति के सिस्टम पर मौजूद रहने की आवश्यकता भी समाप्त हो गई।

अब चाहे जनसंचार मीडिया हो या फिर डिजिटल मीडिया, भाषा और लिपि के बिना इनका अस्तित्व तेल और बाती से रहित दीपक जैसा है।

प्रथम दृष्टया भले ही इंटरनेट पर अंग्रेज़ी का वर्चस्व दिखाई देता हो, परंतु सत्य तो यही है कि कंप्यूटर अपना काम करने के लिए हिंदी, अंग्रेज़ी, चीनी, जापानी, जर्मनी, रूसी, फ्रेंच या स्पेनिश इत्यादि

शिक्षा :

- ❖ वाणिज्य स्नातकोत्तर, दिल्ली विश्वविद्यालय
- ❖ हिंदी स्नातकोत्तर, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय
- ❖ बी.एड, अन्नामलई विश्वविद्यालय

व्यवसाय :

- ❖ (सम्प्रति) सहायक निदेशक, राजभाषा विभाग, केंद्र सरकार
- ❖ (2010–2013) द्वितीय सचिव (हिंदी एवं संस्कृति), भारतीय उच्चायोग, पोर्ट ऑफ़ स्पेन, त्रिनिदाद एवं टोबेगो, वेस्ट इंडीज़
- ❖ हिंदी प्रचार–प्रसार के लिए कार्य
- ❖ द्विमासिक गृह–पत्रिका 'यात्रा' का सम्पादन–कार्य

प्रकाशन : पत्र–पत्रिकाओं में लेख व कविताएँ प्रकाशित

भाषाओं को नहीं समझता, उसकी भाषा तो दो अंकोंवाली बाइनेरी भाषा है, शून्य और एक की भाषा।

कोई भी तकनीक हो, उसका उद्देश्य प्रयोक्ता के काम को सहज, सरल और सुगम बनाना है और किसी भी व्यक्ति के लिए सुगमता तभी संभव होती है जब तकनीक उसे उसकी अपनी भाषा में उपलब्ध हो। इसी अनिवार्यता के चलते आज तकनीक उद्योग में विविध भाषा समुदायों के लोग (विशेषज्ञ) शामिल हो रहे हैं।

डब्ल्यू 3 टेक्स (W 3 Techs) नामक अनुसंधान एजेंसी की वर्ष 2013 की एक रिपोर्ट के अनुसार इंटरनेट पर सबसे ज़्यादा इस्तेमाल की जाने वाली भाषा अंग्रेज़ी है। इंटरनेट पर सबसे ज़्यादा इस्तेमाल होनेवाली 10 भाषाओं में, हिंदी या किसी भी अन्य भारतीय भाषा का, कहीं स्थान नहीं है। हिंदी दुनिया की तीसरी सबसे अधिक बोली जानेवाली भाषा है, बावजूद इसके हिंदी का स्थान इस सूची में नहीं है,

इससे यह स्पष्टतः सिद्ध होता है कि हिंदी भाषी भी कंप्यूटर पर अंग्रेज़ी का ही प्रयोग करते हैं। यह पूर्णतः हमारी औपनिवेशिक मानसिकता को दर्शाता है और इससे बाहर निकलने का उत्तरदायित्व समग्रतः हम प्रयोक्ताओं पर ही है।

गूगल के मुख्य कार्यकारी अधिकारी एरिक श्मिट ने कुछ समय पहले एक टिप्पणी की थी कि आनेवाले पाँच से दस साल के भीतर भारत दुनिया का सबसे बड़ा इंटरनेट बाज़ार बन जाएगा। कोई दूसरे या तीसरे नंबर का नहीं, बल्कि सबसे बड़ा, यानी पहले नंबर का बाज़ार। उन्होंने यह भी कहा है कि कुछ साल में इंटरनेट पर जिन तीन भाषाओं का दबदबा होगा, वे हैं –हिंदी, मंदारिन और अंग्रेज़ी।

हम देख ही रहे हैं कि आज इंटरनेट भारत में आम आदमी तक अपनी पहुँच बना चुका है और इंटरनेट का प्रयोग करनेवालों की संख्या भी दिन–ब–दिन बढ़ती ही जा रही है। ऐसी आशा की जा रही है कि वर्ष 2020 तक हर व्यक्ति किसी न किसी रूप में इंटरनेट से जुड़ा होगा।

इसी संबंध में 19 अगस्त 2016 को 'बिज़नेस स्टेंडर्ड' में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार "इंटरनेट की पहुँच बढ़ने के कारण वर्ष 2020 तक ग्रामीण भारत में इसके उपयोगकर्ताओं की संख्या बढ़कर 73 करोड़ तक पहुँच सकती है। नैसकॉम और अकामाई टेक्नोलॉजी की एक संयुक्त रिपोर्ट के मुताबिक इंटरनेट के करीब 10 नए उपयोगकर्ताओं में से 7 का संबंध ग्रामीण क्षेत्रों से होगा। वर्तमान में भारतीय इंटरनेट उपभोक्ताओं की संख्या करीब 40 करोड़ है। लेकिन अगले 30 करोड़ नए उपयोगकर्ताओं में से 75 फीसदी ग्रामीण भारत से जुड़े होंगे। साथ ही, इतनी ही संख्या में लोग स्थानीय भाषा में डेटा का इस्तेमाल करेंगे। रिपोर्ट के मुताबिक चीन के बाद इंटरनेट उपभोक्ताओं की संख्या में भारत का स्थान आता है। वैश्विक रूप से वर्ष 2020 तक दुनिया की करीब आधी जनसंख्या के पास इंटरनेट उपलब्ध होगा। नैसकॉम के अध्यक्ष आर– चंद्रशेखर ने कहा कि भारत इंटरनेट उपभोग में पहले ही अमेरिका से आगे निकल गया है और वैश्विक रूप से दूसरे स्थान पर है। वर्ष 2020 तक यह देश के और दूरदराज़ के भूभागों में फैलेगा, जिससे हर किसी के लिए और अवसर पैदा होंगे।

गूगल हो, याहू, एम.एस.एन. या अन्य बहु–राष्ट्रीय कम्पनियाँ, सभी भारत के संख्या–बल से भली–भांति परिचित हैं। वे जानती हैं कि भारत में अंग्रेज़ी की बजाय हिंदी और भारतीय भाषाओं को तरजीह देनेवाले लोग करोड़ों की संख्या में मौजूद हैं और अगर उन तक पहुँचना है, तो उनकी भाषा, उनके समाज, उनके परिवेश के अनुसार ढलना ही होगा। इसी को श्री बालेंदु शर्मा दाधीच 'लोकलाइज़ेशन' कहते हैं। राष्ट्रपति श्री प्रणब मुखर्जी के हाथों प्रतिष्ठित आत्माराम पुरस्कार से सम्मानित श्री दाधीच माइक्रोसॉफ़्ट में भारतीय भाषाओं का दायित्व संभालते हैं। वे डिजिटल मीडिया, सोशल मीडिया, हिंदी सॉफ़्टवेयरों के विकास, हिंदी माध्यम से तकनीकी प्रशिक्षण और जनभाषा में जटिल तकनीकी विषयों पर सरल भाषा में लेखन आदि के लिए जाने जाते हैं।

सभी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ इस 'लोकलाइज़ेशन' के प्रति बेहद सजग और प्रयासरत दिखाई दे रही हैं। अब हिंदी के साथ–साथ सभी भारतीय भाषाओं में कंप्यूटर का प्रयोग न केवल संभव अपितु अत्यधिक आसान भी बन गया है।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए भले ही यह व्यवसाय–मात्र हो और उनका मुख्य केंद्र धनार्जन यानी लाभ कमाना हो, किंतु यह भी तो उतना ही बड़ा सच है कि इसमें लाभ हिंदी को अवश्य मिल रहा है। हिंदी दिन–ब–दिन समृद्धतर होती जा रही है। वर्षों से हमारे अंदर घर कर चुकी मानसिकता धीरे–धीरे बदल रही है, हिंदी के प्रयोग में हिचक व शर्मिंदगी महसूस करनेवालों की संख्या अब घट रही है। बड़ी बात यह है कि युवा वर्ग हिंदी को स्वीकार कर रहा है।

जहाँ एक ओर जन–जन तक अपनी पहुँच बनाने के लिए डिजिटल मीडिया के लिए हिंदी एक आधारभूत आवश्यकता है, वहीं दूसरी ओर, डिजिटल मीडिया हिंदी को विकसित भी कर रहा है, उसे एक नया चेहरा दे रहा है और हिंदी के साथ हमारे रिश्ते को नए आयाम मिल रहे हैं। इससे हिंदी के विकास की यात्रा और उसमें गति सुनिश्चित होती दिखाई दे रही है। डिजिटल मीडिया के चलते हिंदी भाषा की संप्रेषण–क्षमता का बहुमुखी विकास हो रहा है। वैश्विक संदर्भ में भी हिंदी की शक्ति में वृद्धि हो रही है। फेसबुक, व्हाट्सएप्प, ब्लॉग, एम.एस.एन. और इमोटिकॉन्स में हिंदी का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

यह और बात है कि यह भाषा साहित्य की भाषा की तरह संस्कृतनिष्ठ नहीं है। डिजिटल मीडिया की भाषा सामान्य जन की भाषा है, आम बोलचाल की भाषा है, इसीलिए इसने जन–स्वीकृति हासिल की है। इसके प्रभाव तुरंत, व्यापक और दूरगामी

हैं। हाँ, हिंदी में अभिव्यक्ति के लिए रोमन लिपि के प्रयोग का जो चलन है, इसे हतोत्साहित किया जाना ज़रूरी है। इस भ्रम को दूर किया जाना ज़रूरी है कि 'देवनागरी लिपि में काम करना तकनीकी दृष्टि से मुश्किल है' लेखक चेतन भगत ने जब हिंदी भाषा के लिए रोमन लिपि का प्रयोग करने का सुझाव दिया था तब उन्हें काफ़ी विरोध का सामना करना पड़ा था। अनेक हिंदी विद्वानों तथा बड़ी संख्या में सामान्य जन ने भी इसकी कड़ी आलोचना की थी। सच तो यह है कि देवनागरी लिपि अपनी ध्वन्यात्मकता के कारण कंप्यूटर विज्ञान के लिए अपेक्षाकृत अधिक अनुकूल है।

डिजिटल मीडिया को अपने प्रयोक्ताओं के लिए भाषा की जो आवश्यकता है, लिपि उसमें संपर्क का काम करती है।

भाषा सभ्यता की जड़ों को सींचती है, भाषा केवल संवाद और अभिव्यक्ति का माध्यम-भर नहीं है, यह देश की संस्कृति का दर्पण है। भारत की संस्कृति सामासिक संस्कृति है, इसलिए जब हम हिंदी की बात करते हैं तब उसमें अन्य भारतीय भाषाएँ भी शामिल मानी जाती हैं। भारतीय संस्कृति को जीवित रखने के लिए इन सभी भाषाओं को साथ लेकर चलना ज़रूरी है।

हालाँकि यह एक कड़वा सच है कि आज भी डिजिटल मीडिया में हिंदी की स्थिति अंग्रेज़ी, जापानी, रूसी इत्यादि की स्थिति जैसी सुदृढ़ नहीं है, फिर भी हिंदी को लेकर हुई प्रगति को भी संदेह की नज़र से नहीं देखा जा सकता।

यह प्रगति अनेक रूपों में दृष्टिगोचर है। डिजिटल मीडिया के कारण हिंदी का कंप्यूटरी विकास तेज़ी से हो रहा है। यह स्वागत-योग्य है कि इंटरनेट पर हिंदी का प्रयोग दिन-ब-दिन बढ़ रहा है। कंप्यूटर, मोबाइल, ब्लॉग, ई-मेल, पॉड कास्ट, वेबकास्ट हों या सोशल नेटवर्किंग साइट्स जैसे – फ़ेसबुक, ऑरकुट, गूगल प्लस, व्हाट्सऐप इत्यादि – हिंदी की लोकप्रियता में इनकी भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। अन्य भारतीय भाषाओं में संदेश भेजना भी आसान हो गया है।

सोशल नेटवर्किंग साइटों के चलते हिंदी को लेकर क्रांति तो निस्संदेह आई है। हालाँकि इनपर इस्तेमाल की जानेवाली हिंदी में अंग्रेज़ी, देशज, तकनीकी, चित्रात्मक और अनौपचारिक शब्दावली की भरमार है। अतः आवश्यकता है सायास सजग रहने की, कि कहीं भाषा की यह विलक्षणता उसे विकृत न कर दे।

वेबदुनिया डॉट कॉम, प्रभात खबर डॉट कॉम, जागरण डॉट कॉम, भास्कर डॉट कॉम, अमरउजाला डॉट कॉम, प्रभासाक्षी डॉट कॉम आप बस नाम गिनते जाएँ। ऐसे अनेक वेब पेज हैं, जिन्हें हिंदी दैनिकों का स्तर ऊँचा उठाने का श्रेय दिया जा सकता है। हिंदी वेब पत्रकारिता का खासा बोलबाला है, इसे इंटरनेट पत्रकारिता, ऑनलाइन, सायबर पत्रकारिता भी कहा जाता है। जैसा कि वेब पत्रकारिता नाम से स्पष्ट है, यह कंप्यूटर और इंटरनेट के सहारे संचालित ऐसी पत्रकारिता है, जिसकी पहुँच समूचे संसार तक है। कोई भी पढ़े! कहीं भी पढ़े!! कभी भी पढ़े!!! वाह, क्या आज़ादी है!

बी.बी.सी. हिंदी (ऑनलाइन) की पूर्व संपादिका स्व. सलमा ज़ैदी ने कहा था – "वेब जर्नलिज़म (पत्रकारिता) प्रिंट का ही विकसित रूप माना जाता है। यहाँ लिखने और छपने के स्टाइल में फ़र्क ज़रूर होता है। यहाँ वाक्य छोटे, सरल और आसानी से पढ़े जा सकनेवाले शब्दों के इस्तेमाल के साथ लिखे जाते हैं। यहाँ पैराग्राफ़ छोटे होते हैं और खबर की भाषा ऐसी होती है, जिसे लोग सहजता से समझ सकें।"

प्रसंग छिड़ा है, तो बात बी.बी.सी. हिंदी की-यूँ तो बी.बी.सी. लंदन से हिंदी में प्रसारण पहली बार 11 मई 1940 को हुआ था; यानी बी.बी.सी. हिंदी पिछले पचहत्तर से भी अधिक वर्षों से ताज़ा समाचार और सामयिक विषयों पर कार्यक्रम प्रसारित करती रही है, परंतु परिवर्तन के महत्त्व को पहचानते हुए बी.बी.सी. हिंदी ने वर्ष 2001 में बी.बी.सी. हिंदी डॉट कॉम की शुरुआत की। इसका उद्देश्य भारत और दुनिया भर के हिंदी भाषी पाठकों तक समाचार और विश्लेषण पहुँचाना था।

हिंदी के कंप्यूटरी विकास का श्रेय यूनिकोड को देना अनुचित न होगा। 'यूनिकोड' यूनीवर्सल कोड का संक्षिप्त रूप है। दरअसल, जब दो विभिन्न संकेत लिपियों अथवा प्लैटफॉर्मों के बीच डेटा भेजा जाता है तब उस डेटा के हमेशा खराब होने का जोखिम रहता है। यूनिकोड से यह सब कुछ बदल रहा है। यूनिकोड एक ऐसा प्रोग्राम है, जिसका प्रयोग किसी भी सॉफ़्टवेयर में या किसी भी भाषा में किया जा सकता है। आज यूनिकोड का प्रयोग विश्व के सभी कंप्यूटरों पर किया जा रहा है। यूनिकोड में टाइप किए गए पाठ या सामग्री को कहीं भी ले जाने पर उसका स्वरूप नहीं बदलता, उसे पूरी दुनिया में कहीं भी पढ़ा जा सकता है, इसके लिए किसी फ़ोंट विशेष की आवश्यकता नहीं

होती है। यूनिकोड विश्व की ज़्यादातर भाषाओं में बदला जा सकता है। हिंदी यूनिकोड आने से हिंदी कंप्यूटिंग को एक नई दिशा मिल गई है। और तो और हिंदी टाइपिंग न जाननेवाले भी अब हिंदी में टाइप कर सकते हैं।

यूनिकोड की बदौलत आज हिंदी में 'सर्च' कर सकते हैं,'चैट' कर सकते हैं, ई–मेल भेज सकते हैं, वेबसाइट या ब्लॉग बना सकते हैं। कंप्यूटर पर फ़ाइलों और फ़ोल्डरों के नाम हिंदी में रख सकते हैं। फ़ेसबुक और ट्वीटर जैसी सोशल नेटवर्किंग साइट्स और एम.एस.एन., व्हाट्सएप्प इत्यादि पर आसानी से हिंदी में लिख सकते हैं।

आज भारत सरकार ने अपने सभी कार्यालयों में यूनिकोड अनिवार्य कर दिया है और इसकी सभी साइटों पर भी यूनिकोड का प्रयोग किया जा रहा है। यहाँ तक कि नई भर्ती में अभ्यर्थियों के लिए यूनिकोड फ़ोंट में टाइपिंग टेस्ट भी अनिवार्य कर दिया गया है।

यदि आप इंटरनेट पर ऐसे संसार में प्रवेश करना चाहते हैं, जहाँ हर क्लिक पर हिंदी में सूचना का विस्फ़ोट हो, तो आप किसी भी हिंदी पोर्टल पर जाएँ आप देश–विदेश के हर क्षेत्र से जुड़े समाचार, बॉलिवुड की ख़बरें, फ़िल्मों की समीक्षा आदि पढ़ ही सकते हैं, हर प्रकार की जानकारी भी हासिल कर सकते हैं; चाहे वह तीज–त्यौहार से संबंधित हो, ज्योतिष से, शिक्षा से, साहित्य से या फिर मनोरंजन से। आज इंटरनेट पर अनगिनत हिंदी पोर्टल हैं – वेब दुनिया, हिंदी खोज, कविता कोश, भारत खोज इत्यादि।

हिंदी ब्लॉग, जिसे चिट्ठा जगत् के नाम से भी जाना जाता है, विशाल से विशालतर होता चला जा रहा है। यहाँ राजनीति, सांस्कृतिक, साहित्यिक, व्यक्तिगत, वाणिज्य, अनुसंधान और शिक्षा आदि सभी क्षेत्रों की जानकरी साझा की जाती है। आज दुनिया भर के अनेक साहित्यकार ही नहीं, बल्कि सामान्य जन भी हिंदी भाषा में ब्लॉग लिखकर अपनी बात को लोगों तक पहुँचा रहे हैं। आज हिंदी ब्लॉग पर लेखों की संख्या तीन लाख का आँकड़ा पार कर चुकी है। दिलचस्प बात यह है कि जहाँ पहले एक लाख हिंदी लेख पाँच साल से भी ज़्यादा समय में लिखे गए थे, वहीं अगले एक लाख लेख केवल 200 दिनों में ही लिख लिए गए और तीसरे एक लाख लेख केवल 160 दिनों में ही लिख लिए गये। हिंदी ब्लॉग्स (Hindi Blogs) की शुरुआत अप्रैल 2003 में हुई थी जब हिंदी (Hindi) का पहला चिट्ठा (Blog) लिखा गया था और हिंदी ब्लॉग्स पर एक लाखवां लेख 11 जुलाई 2008 को लिखा गया। एक से दो लाख तक पहुँचने में केवल 200 दिन ही लगे। इस बीच हिंदी ब्लॉग्स की संख्या बढ़कर 9200 हो गयी है। आजकल इन चिट्ठों पर प्रतिदिन लगभग 625 लेख लिखे जा रहे हैं।

2015 के कुछ चुने हुए ब्लॉग की सूची वर्णमाला के क्रम से http://www.indiantopblogs.com/p/hindi-blog-directory.html पर दी गई है। हिंदी के सर्वश्रेष्ठ ब्लॉगों की डाइरेक्टरी का यह 2014–15 संस्करण 30 सितम्बर 2015 को जारी किया गया था। इसमें करीब 160 ब्लॉग हैं जिन्हें, इंग्लिश की वर्णाक्षरी के क्रम में दिया गया है।

'कविता कोश' एक सामाजिक एवं स्वयंसेवी परियोजना है, जो भारतीय काव्य को एक जगह संकलित करने के उद्देश्य से आरम्भ की गई है।

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय (वर्धा) की वेबसाइट डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू डॉट हिंदीसमय डॉट कॉम पर अब तक हिंदी के लगभग 1000 रचनाकारों की रचनाओं का अध्ययन किया जा सकता है।

इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों का प्रयोग करने वाले 'इ–शिक्षण' से हमारी शिक्षा व्यवस्था में आया क्रांतिकारी सुधार स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। आज ज्ञान के आदान–प्रदान के लिए तकनीक के प्रयोक्ताओं की संख्या में ज़बर्दस्त वृद्धि देखी जा सकती है क्योंकि यह ज्ञानार्जन का अत्यंत सुविधाजनक तरीका है। इ–शिक्षण को पहले 'वेब आधारित प्रशिक्षण' या 'इन्टरनेट आधारित प्रशिक्षण' कहा जाता था, आज इसे 'इ–लर्निंग' के नाम से जाना जाता है। इ–शिक्षण के अनुप्रयोगों और प्रक्रियाओं में वेब–आधारित कक्षाएँ, कंप्यूटर–आधारित कक्षाएँ, आभासी कक्षाएँ और डिजिटल सहयोग भी शामिल हैं। पाठ्य–सामग्री का वितरण इंटरनेट, इंट्रानेट/एक्स्ट्रानेट, ऑडियो या वीडियो टेप, उपग्रह टी. वी. और सीडी–रोम के माध्यम से किया जाता है। इसे स्वयं भी ग्रहण किया जा सकता है या फिर किसी अनुदेशक के नेतृत्व में भी। इ–शिक्षण का लाभ उठाते हुए शिक्षकगण एवं छात्रगण अपनी भौतिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा अन्य सीमाओं के कारण उत्पन्न होनेवाली बाधाओं का आसानी से सामना कर सकते हैं। समय और स्थान भी इनके मार्ग में बाधा उत्पन्न नहीं कर सकते, क्योंकि इ–शिक्षण के ज़रिए

अपनी सुविधानुसार कहीं भी और किसी समय भी शिक्षा ग्रहण की जा सकती है।

शिक्षा और ज्ञान के प्रसार में इ–बुक रीडर और इ–प्रकाशक की महत्वपूर्ण भूमिका है।

इ–बुक रीडर एक मोबाइल इलेक्ट्रॉनिक डिवाइस है, जिस पर इ–बुक्स और डिजिटल पत्रिकाएँ पढ़ने की सुविधा है। आज हिंदी की भी अनेक इ–बुक्स उपलब्ध हैं।

ऑनलाइन पढ़ने की सुविधा के अलावा आज एक और सुविधा उपलब्ध है और वह है – इ–प्रकाशक।

डॉ. वशिनी शर्मा जी का कहना है –

"हम अपनी इ–बुक्स खुद बना सकते हैं और प्रकाशित भी कर सकते हैं"।

डॉ. वशिनी शर्मा केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा से सेवानिवृत्त होने के बाद भी विदेशी भाषा के रूप में हिंदी–शिक्षण के क्षेत्र में अत्यधिक सक्रिय हैं। इस समय चल रहा उनका परियोजना–कार्य है – 'ऑनलाइन पाठ्यक्रम' – "बिज़नेस हिंदी" जिसमें आप प्रो. सुरेंद्र गंभीर के साथ युनिवर्सिटी ऑफ़ पेन्सिलवेनिया के व्हार्टन स्कूल ऑफ़ बिज़नेस मैनेजमेंट के एम.बी.ए. के छात्रों के लिए ऑनलाइन हिंदी पाठ्यक्रम के सामग्री–निर्माण में सहयोग दे रही हैं।

उन्हीं के शब्दों में –

"बस, विडबुक का प्रयोग कीजिए जैसे मैंने किया और घर बैठे ई–बुक्स प्रकाशित कीजिए जैसे मैंने किया –

1. A world of undiscovered Ebooks
2. http://www.widbook.com
3. अस्मि
4. https://www.widbook.com/ebook/read/asmi1
5. Papers in Applied Linguistics
6. https://mail.google.com/mail/u/0/#search/widbook+2+papers+in+applied/14b4463badc257ee
7. मल्टीमीडिया शिक्षण–सामग्री
8. लोकप्रिय कॉमिक्स को दृश्य–श्रव्य सामग्री बनाना जैसे – अक़बर और बीरबल, तेनालीराम, पंचतंत्र की कथाएँ
9. फ़िल्मी गीतों को कक्षा–शिक्षण की सामग्री बनाना
10. फ़िल्मी संवादों का प्रयोग
11. इ–प्रकाशक की सेवाएँ लीजिए'

तो अब आप ऑनलाइन हिंदी पुस्तकें पढ़ तो सकते ही हैं, स्वयं अपनी सामग्री का ऑनलाइन प्रकाशन भी कर सकते हैं। इ–प्रकाशक श्री बालेन्दु शर्मा दाधीच की परियोजना है; जिसके तहत हिंदी में अनेक इ–बुक्स का प्रकाशन किया गया है। इनमें सिर्फ़ पाठ (टेक्स्ट) ही नहीं, बल्कि ध्वनि और वीडियो का भी समायोजन किया जा चुका है।

यह सम्भव हुआ है ओ.सी.आर. (Optical Character Recognition) यानी प्रकाश द्वारा वर्णों की पहचान से। ओ. सी. आर. की मदद से कंप्यूटर हस्तलिखित, टाइप किए हुए या प्रिंट किए हुए पाठ की छवि को पढ़े जाने योग्य टेक्स्ट में परिवर्तित कर लेता है और तैयार हो जाता है आपका प्रकाशन।

डॉ. वशिनी शर्मा की विशेषज्ञता का लाभ उठाते हुए लेखिका ने भी उनके साथ मिलकर, प्रो. विजय कुमार मल्होत्रा जी के मार्गदर्शन में, एक नवीन प्रयोग किया। यह प्रयोग वर्ष 2011 में किया गया जब लेखिका विदेश मंत्रालय में प्रतिनियुक्ति पर भारतीय उच्चायोग में त्रिनिदाद एवं टोबेगो में द्वितीय सचिव (हिंदी एवं संस्कृति) के पद पर कार्यरत थी। उस देश के तमाम स्थानीय हिंदी शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए एक कार्यशाला आयोजित की गई थी। इस कार्यशाला की विशिष्टता यह थी कि यह वेबकास्ट के ज़रिए, स्काइप पर की गई थी। सभी भागीदार बेहद प्रसन्न थे क्योंकि उनकी समस्याओं का समाधान डॉ. वशिनी जी उनसे रू–ब–रू होकर एक साथ कर रहीं थीं। कई हज़ारों मील दूर बैठकर भी बातचीत का सुख!! यही है तकनीक का जादू।

निराशाजनक स्थिति कहीं है, तो वेबसाइट्स के कंटेंट यानी विषयवस्तु को लेकर। समस्त सामग्री अंग्रेज़ी में है, कहीं–कहीं हिंदी में उपलब्ध तो है, परन्तु उसका प्रतिशत भी बहुत ही कम है और शुद्धता भी। अधिकांश स्थानों पर हिंदी के मात्र लिंक दिए गए हैं, जिनपर क्लिक करने से आप अंततः अंग्रेज़ी साइट पर ही पहुँच जाते हैं। इन सभी वेबसाइटों का अनुवाद अपेक्षित है, जिसके लिए भारत सरकार में अनुवाद की शीर्ष संस्था 'केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो' द्वारा इस क्षेत्र में काम शुरू कर दिया गया है।

इस क्षेत्र में भी क्रांति की ज़रूरत है, जिसकी आहट तो सुनाई दे रही है, लेकिन दिल्ली अभी दूर है। मशीनी अनुवाद की बात करें, तो यह अत्यंत वांछनीय भी है और चुनौतीपूर्ण भी। इस क्षेत्र में भी केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो की अध्यक्षता में अनुसंधान करने के लिए एक टीम बनाई गई थी। आठ अलग–अलग सर्च–इंजनों पर 6 विभिन्न मंत्रालयों की वेबसाइट्स से पाठ लेकर मशीनी अनुवाद किए गए। यह पाया गया कि छोटे–छोटे वाक्यों के सही अनुवाद के अलावा कोई बड़ी सफलता इस क्षेत्र में अभी दिखाई नहीं देती। जटिल वाक्यों और अनेकार्थी शब्दों के अनुवाद पर भरोसा नहीं किया जा सकता। कहना न होगा कि कहीं–कहीं तो अनुवाद निरर्थक और कहीं–कहीं बेहद हास्यास्पद भी बन पड़ा था। कारण स्पष्टतः हिंदी और अंग्रेज़ी भाषा की प्रकृति में मूलभूत भिन्नता है।

केवल गूगल और माइक्रोसॉफ़्ट पर उपलब्ध अनुवाद ही कुछ सीमा तक स्वीकार्य था, हालाँकि उनमें भी अत्यधिक संशोधनों की आवश्यकता स्पष्ट दिखाई देती थी। श्री बालेंदु शर्मा दाधीच का यह कथन भी इसी बात का समर्थन करता है: "मशीनी अनुवाद मानवीय मेधा और तर्क–शक्ति के आगे हमेशा नतमस्तक ही रहेगा। लेकिन मशीन के पीछे भी इंसानी दिमाग ही है जो प्रयास करना नहीं छोड़ता। यही वजह है कि अंग्रेज़ी से हिंदी और हिंदी से अंग्रेज़ी अनुवाद की सुविधा में धीरे–धीरे क्रमिक सुधार आ रहा है। लेकिन ये अनुवाद कब विश्वसनीयता के स्तर पर पहुँचेंगे, कहा नहीं जा सकता"। इतना ज़रूर है कि व्याकरणिक समानता के कारण एक उत्तर भारतीय भाषा से दूसरी उत्तर भारतीय भाषा में अनुवाद करना अपेक्षाकृत आसान चुनौती है।

डिजिटल मीडिया की बदौलत हिंदी अपने पंख तो फैलाने लगी है, लेकिन फिर भी अभी अनेक चुनौतियाँ सामने मुहँ बाए खड़ी हैं। यूनिकोड से मानकीकरण की दिशा में यात्रा शुरू तो हो गई है, परंतु की–बोर्ड के मानकीकरण को भी अनिवार्य बनाया जाना ज़रूरी है। फ़ॉनेटिक टाइपिंग से वर्तमान में काम तो आसान दिखाई दे रहा है, किंतु इसके दूरगामी परिणाम मुश्किलें पैदा कर सकते हैं।

मानक इनस्क्रिप्ट भारत का आधिकारिक की–बोर्ड है। यह अत्यंत सरल और बहुत तीव्र ढंग से टाइप करनेवाली की–बोर्ड प्रणाली है। आवश्यकता इस बात की है कि इनस्क्रिप्ट की–बोर्ड पर टाइपिंग का प्रशिक्षण स्कूली स्तर से ही प्रारम्भ किया जाए। हिंदी के प्रसार की यह बहुत ही बुनियादी ज़रूरत है।

इसके साथ ही रोमन लिपि में हिंदी लिखने का जो चलन है, यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है। शिक्षण, साहित्य और मीडिया जैसे क्षेत्रों में हिंदी को रोमन लिपि में लिखने और पढ़ने की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

मौजूदा वेबसाइट्स का हिंदी में उपलब्ध होना तो अनिवार्य है ही, इस बात की ओर भी ध्यान दिए जाने की ज़रूरत है कि साहित्य और समाचार के क्षेत्रों से आगे बढ़कर हिंदी में शिक्षा, ज्ञान–विज्ञान, वाणिज्य और व्यापार के पोर्टल, ब्लॉग और वेबसाइट्स हों। आम व्यक्तियों और संस्थाओं को भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए कि वे हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अपनी वेबसाइट्स बनाएँ।

यह अत्यंत आवश्यक है कि हिंदी में तकनीकी शिक्षण के प्रति जागरूकता भी बढ़ाई जाए और इस क्षेत्र में व्यापक स्तर पर प्रशिक्षण के अवसर प्रदान कराए जाएँ, ताकि हिंदी और देवनागरी का स्वाभाविक विकास और प्रसार हो सके। सरकारी विभागों, शिक्षण संस्थानों, निजी संस्थानों और आम तकनीकी उपयोक्ताओं को भी इसपर ध्यान दिए जाने की ज़रूरत है।

इस बात में आशा की किरण ज़रूर दिखाई देती है कि आज भारतीय भाषा–प्रेमियों का एक ऐसा वर्ग भी है जो सूचना–प्रौद्योगिकी में दक्ष है और तकनीक के ज़रिए भाषा के प्रसार के लिए बेहद सजग भी। हम सभी भारतीयों को तकनीक और हिंदी दोनों को लेकर अपनी हिचक छोड़ देनी चाहिए और हिंदी लिखने, पढ़ने और अपने कंप्यूटर व मोबाइल इत्यादि पर हिंदी के प्रयोग में गर्व महसूस करना चाहिए। तभी हम हिंदी के उज्ज्वल भविष्य के सपने को साकार कर सकेंगे।

'हिंदी को मिले जो करनी का रंग
तब होगी सचमुच मन में उमंग

हर ज़ुबान हर घर की बने भाषा
तब संयुक्त राष्ट्र की बनेगी आशा।'

नई दिल्ली, भारत
sunitapahuja23@gmail.com

सूचना व संचार प्रौद्योगिकी और हिंदी अनुसंधान

–श्री रोहित कुमार 'हैप्पी'

सूचना व संचार प्रौद्योगिकी के प्रभावी उपयोग पर नए–नए प्रयोग चल रहे हैं। हिंदी भी अछूती नहीं है और इसमें भी भरपूर संभावनाएँ हैं। मोबाइल पर नित नए ऐप्स के अतिरिक्त इंटरनेट का उपयोग प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

पिछले वर्ष 'द गार्डियन' व 'द टेलीग्राफ़' जैसे समाचार–पत्रों ने अपनी रिपोर्ट में कहा था कि मोबाइल वेब ब्राउज़िंग डेस्कटॉप की अपेक्षा अधिक उपयोग की जा रही है। यह आँकड़े अब और ऊपर गए हैं, जिनके कारण गूगल जैसी कंपनियाँ मोबाइल रिस्पोंसिव वेबसाइट से भी अधिक विकसित टेक्नोलॉजी 'ए.एम.पी.' (Accelerated Mobile Pages) का भरपूर समर्थन कर रही हैं ताकि वेब पृष्ठ तेज़ी से खुल सकें। गूगल अपने खोज परिणामों में इन्हें विशेष स्थान दे रहा है।

गूगल पर हिंदी में खोजने का चलन भी तेज़ी से बढ़ रहा है। प्रौद्योगिकी के प्रभावी उपयोग के लिए अति–आवश्यक है कि हम क्षेत्रीय भाषाओं में संसाधन उपलब्ध करवाएँ। गूगल व माइक्रोसॉफ़्ट का सूचना व संचार प्रौद्योगिकी में हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं को स्थापित करने का उपक्रम सराहनीय है। पिछले कुछ समय से निम्न विषयों ने भारतीय भाषाओं में, विशेषतः हिंदी में, नई क्रांति ला दी है:

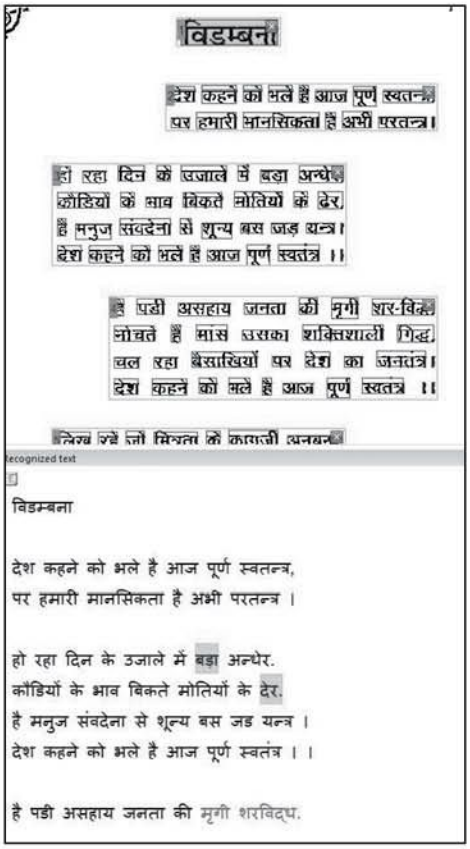

ओ.सी.आर. (OCR)

ओ.सी.आर. – ऑप्टिकल करेक्टर रिकोग्निशन (Optical Character Recognition) एक ऐसी तकनीक है, जिसमें किसी इमेज से टेक्स्ट को पहचान कर उसे सम्पादन योग्य टेक्स्ट में परिवर्तित किया जा सकता है। ओ.सी.आर. मुद्रित हिंदी सामग्री के डिजिटलीकरण के लिए एक महत्वपूर्ण औज़ार है।

अब तक हिंदी में सही परिणाम देनेवाला केवल हिंदी ओ.सी.आर. नामक एक ही औज़ार उपलब्ध था। यह भी कम आश्चर्यचकित करनेवाला नहीं कि इसे किसी भारतीय ने नहीं, बल्कि एक हिंदी प्रेमी जर्मन ने विकसित किया है। डॉ. आलिवर हेलविग संस्कृत के विद्वान हैं। हिंदी के अतिरिक्त वे संस्कृत, मराठी, तमिल व गुजराती ओ.सी.आर. विकसित कर चुके हैं।

अब गूगल भी ओ.सी.आर. के क्षेत्र में लोकप्रियता पा रहा है। आइए, अब एक प्रयोग द्वारा डॉ. आलिवर हेलविग के ओ.सी.आर. का गूगल ओ.सी.आर. से तुलनात्मक अध्ययन करें।

पहले हम एक पृष्ठ को अपने स्कैनर से स्कैन करते हैं, ताकि हमारे पास एक हिंदी छवि उपलब्ध हो जिसे हम उपरोक्त ओ.सी.आर. सॉफ़्टवेयर द्वारा संपादन योग्य लेखन में परिवर्तित करेंगे। फिर इनकी गुणवत्ता देखते हुए इनका विश्लेषण करेंगे।

हिंदी ओ.सी.आर. का परिणाम काफ़ी संतोषजनक है। इस सॉफ़्टवेयर की विशेषता यह है कि यह फ़ॉरमैट को भी यथावत रखता है। हमने कविता स्कैन करके ओ.सी.आर. की तो उसका प्रारूप कविता के रूप में ही संजोया हुआ उपलब्ध है। इस हिंदी ओ.सी.आर. की कीमत 170 डॉलर है व इसके प्रोफ़ेशनल संस्करण की कीमत 227 डॉलर है। इसका डेमो संस्करण निम्नलिखित वेबसाइट पर उपलब्ध है :

http://www.indsenz.com/int/index.php?content=software_ind_ocr_hindi

अब गूगल ओ.सी.आर. का प्रयोग करके देखते हैं।

गूगल ड्राइव व गूगल डॉक्स द्वारा ओ.सी.आर.

पिछले कुछ समय से गूगल भी हिंदी ओ.सी.आर. विकसित कर रहा है। किसी भी चित्र या पी.डी.एफ़ फ़ाइल को गूगल ड्राइव के माध्यम से टेक्स्ट में परिवर्तित किया जा सकता है। यह इस प्रकार काम करती है:

कार्य–पद्धति

इसके लिए पहले हमें गूगल ड्राइव में अपलोड करने हेतु फ़ाइल तैयार करनी होगी फिर उसे गूगल डॉक्स में खोलना होगा, जिससे वह संपादन योग्य सामग्री में परिवर्तित हो जाए।

फ़ाइल तैयार करना :

आप किसी भी पुस्तक के हिंदी पृष्ठ को अपने स्कैनर के माध्यम से स्कैन करके किसी ग्राफ़िक सॉफ़्टवेयर में जे.पी.ई.जी. (JPEG), पी.एन.जी. (PNG), जी.आई.एफ़. (GIF) या पी.डी.एफ़. (PDF) प्रारूप में फ़ाइल संरक्षित (Save) कर लें। फ़ाइल का आकार 2 एम.बी. या उससे कम होना चाहिए।

ये सुझाव आपको सर्वोत्तम परिणाम देंगे।

प्रारूप: आप जे.पी.ई.जी. (JPEG), पी.एन.जी. (PNG), जी.आई.एफ़. (GIF) या पी.डी.एफ़. (PDF) को संपादन योग्य प्रारूप में परिवर्तित कर सकते हैं।

फ़ाइल का आकार: फ़ाइल 2 एम.बी. या उससे कम होनी चाहिए।

ओरिएंटेशन: दस्तावेज़ सही साइड होना चाहिए यदि आपके स्कैन किया हुआ पृष्ठ या छवि उलटी या टेढ़ी है तो इसे गूगल डिस्क पर अपलोड करने से पहले किसी ग्राफ़िक सॉफ़्टवेयर में घुमाकर सही कर लें।

भाषाएँ: गूगल ड्राइव दस्तावेज़ की भाषा का स्वतः पता लगाने में सक्षम है।

फ़ॉन्ट: श्रेष्ठ परिणामों के लिए, आम फ़ॉन्ट जैसे 'एरियल' या 'टाइम्स न्यू रोमन' का उपयोग करें, हिंदी के लिए मंगल फ़ॉन्ट उपयुक्त है।

शिक्षा :

- ❖ पत्रकारिता में प्रशिक्षण, मैस्सी यूनिवर्सिटी, न्यूज़ीलैंड
- ❖ न्यू ज़ीलैंड से इंवेस्टिगेटिव सर्विसस, ग्राफ़िक्स व वेब डिवलपमेंट में प्रशिक्षण

व्यवसाय :

- ❖ (सम्प्रति) संपादक, 'भारत–दर्शन' (इंटरनेट पर विश्व की पहली हिंदी पत्रिका 1996–97 से इंटरनेट पर प्रकाशित)
- ❖ निरंतर हिंदी–कर्म में अग्रसर
- ❖ न्यूज़ीलैंड में 'हिंदी न्यू मीडिया' के माध्यम से हिंदी भाषा, लेखन व साहित्य के प्रचार–प्रसार हेतु प्रयासरत
- ❖ 'वॉय्स ऑव अमेरिका' तथा 'डॉयचे वेले' पर वार्ताओं में सक्रिय
- ❖ 90 के दशक में न्यू ज़ीलैंड में 'कम्युनिटी रेडियो', 'रेडियो देस–प्रदेस', 'रेडियो तराना' पर समाचार वाचक

प्रकाशन:

- ❖ हिंदी में कविता, ग़ज़ल, कहानी, लघु–कथा और आलेख लेखन
- ❖ 'आउटलुक', 'नई दुनिया', 'पाञ्चजन्य', 'जी न्यूज़', 'वेब दुनिया', 'पंजाब केसरी', 'वीर प्रताप', 'हरिगंधा', 'शांति दूत', 'सृजन–गाथा', 'प्रभा साक्षी', 'अभिव्यक्ति' तथा न्यूज़ीलैंड की 'स्कूप', 'वायकाटो टाइम्स', 'संडे स्टार', 'इंडियन टाइम्स', 'एशियन मैग्ज़ीन' में रचनाएँ

सम्मान : न्यूज़ीलैंड में 'कम्युनिटी रेडियो पर 'सर्वश्रेष्ठ कार्यक्रम' के लिए सम्मानित

छवि की गुणवत्ता: स्पष्ट, स्वच्छ व भली–भांति पढ़ सकने वाली सामग्री अच्छे परिणाम देती है व सरलता से संपादन योग्य टेक्स्ट में परिवर्तित हो जाती है।

गूगल ड्राइव पर अपलोड करना:

अपने कंप्यूटर पर गूगल ड्राइव (drive.google.com) पर जाएँ। इसके लिए आपको गूगल लॉगिन करना होगा।

अब यहाँ स्कैन की हुई फ़ाइल अपलोड करें।

गूगल डॉक्स के रूप में अपलोड की हुई फ़ाइल खोलना :

अपलोड हुई वांछित फ़ाइल पर राइट–क्लिक करें।

अब इसे गूगल डॉक्स के रूप में खोलें। छवि दस्तावेज़ में परिवर्तित

हो जाएगी व आप अब इसे टेक्स्ट के रूप में संपादित कर सकते हैं। हमने सामने दी गई कविता को गूगल ड्राइव में अपलोड करके परिवर्तित किया है :

विडम्बना

देश कहने को भले है आज पूर्ण स्वतन्त्र,
पर हमारी मानसिकता है अभी परतन्त्र।

हो रहा दिन के उजाले में बड़ा अन्धेर,
कौड़ियों के भाव बिकते मोतियों के ढेर,
है मनुज संवदेना से शून्य बस जड़ यन्त्र।
देश कहने को भले है आज पूर्ण स्वतंत्र ।।

है पड़ी असहाय जनता की मृगी शर-विद्ध,
नोचते हैं मांस उसका शक्तिशाली गिद्ध,
चल रहा बैसाखियों पर देश का जनतंत्र।
देश कहने को भले है आज पूर्ण स्वतंत्र ।।

लिख रहे जो मित्रता के कागज़ी अनुबन्ध,
छद्म-वेषी क्या बनायेंगे मधुर सम्बन्ध ।
हर प्रलोभन के उदर में है छुपा षड्यन्त्र।
देश कहने को भले है आज पूर्ण स्वतंत्र ।।

प्रार्थना सँग हैं लगे यदि घूस के पहिये,
चल पड़ेगी रुकी गाड़ी, खिन्न मत रहिये।
आज धन-बल और भुज-बल सफलता के मन्त्र।
देश कहने को भले है आज पूर्ण स्वतंत्र।।

***

परिणाम व समस्याएँ

उपरोक्त कविता को यदि हम गूगल ड्राइव के माध्यम से गूगल डॉक्स में परिवर्तित करते हैं तो टेक्स्ट तो संतोषजनक परिवर्तित हो जाती है किंतु इसका प्रारूप बिगड़कर गद्य हो जाता है। अब इसके परिणाम पर विचार करें, उपरोक्त कविता की छवि (स्कैन्ड डॉक्यूमेंट्स) से हमें निम्नलिखित संपादन योग्य हिंदी सामग्री उपलब्ध हुई है :

ध्यान से पढ़ेंगे तो पाएँगे कि केवल प्रारूप की क्षति हुई है; अन्यथा सामग्री ठीक है। सामग्री पठनीय है और थोड़े से श्रम से इसे संशोधित किया जा सकता है। सरलता से इसे संपादित करके प्रिंट व वेब मीडिया के उपयोग के लिए तैयार किया जा सकता है। कविता की अपेक्षा गूगल ओ.सी.आर. गद्य सरलता से परिवर्तित करता है। यह प्रौद्योगिकी डिजिटल पुस्तकालयों व प्रकाशकों के लिए संजीवनी प्रमाणित हो सकती है।

वाणी से लेखन (Voice to Text)

विडम्बना ॥ देश कहने को भले है आज पूर्ण स्वतन्त्र, पर हमारी मानसिकता है अभी परतन्त्र।
हो रहा दिन के उजाले में बड़ा अन्धेर, है मनुज संवदेना से शून्य बस जड़ यन्त्र। देश कहने को भले है आज पूर्ण स्वतंत्र ।
है पड़ी असहाय जनता की मृगी शर-विद्ध, नोचते हे मांस उसका शक्तिशाली गिद्ध, चल रहा बैसाखियों पर देश का जनतंत्र। देश कहने को भले है आज पूर्ण स्वतंत्र ॥
लिख रहे जो मित्रता के कागज़ी अनुबन्ध, छद्म-वेषी क्या बनायेंगे मधुर सम्बन्ध । हर प्रलोभन के उदर में है छुपा षड्यन्त्र। देश कहने को भले है आज पूर्ण स्वतंत्र ।
प्रार्थना सेंग हैं लगे यदि घूस के पहिये, चल पड़ेगी रुकी गाड़ी, खिन्न मत रहिये। आज धनबल और गुजबल सफलता के मन्त्र। देश कहने को भले है आज पूर्ण स्वतंत्र।
प्रतिनिधि गीत (82) उदयभानु हंस

इसे 'स्पीच टू टेक्स्ट', 'वॉय्स टू टेक्स्ट' व 'वॉय्स टाइप' के नाम से जाना जाता है।

क्या इसका उपयोग शब्द संसाधन हेतु भी किया जा सकता है?

अंग्रेज़ी सामग्री के लिए इसका प्रयोग प्रभावी ढंग से किया जा सकता है; चूंकि इसमें संपादन की पूर्ण व्यवस्था है लेकिन हिंदी जैसी भाषाओं के लिए अभी ऐसी व्यवस्था नहीं है। हाँ, मोबाइल पर नोट्स लेने, वॉय्स सर्च इत्यादि के लिए यह उपयोगी है। यदि डेस्कटॉप की बात करें तो यह अभी केवल गूगल क्रॉम में प्रयोग किया जा सकता है, यथा उपयोगिता सीमित है। कुछ श्रम किए जाने पर इसके परिणाम संतोषजनक हो सकते हैं।

हिंदी में वाणी टंकण (Voice Type) करने के लिए सरल उपाय है कि आप गूगल डॉक्स का उपयोग करें।

इसके लिए आप फ़ाइल में जाकर 'हिंदी' भाषा' चुनें।

अब आप 'टूल्स' के अंतर्गत 'वॉय्स टाइपिंग' का चयन करें।

अब आप वॉय्स टाइपिंग के लिए तैयार हैं।

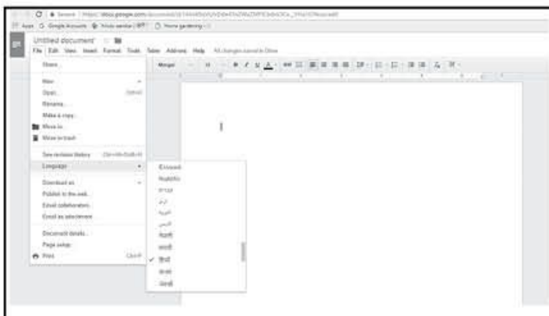

अब आप 'टूल्स' के अंतर्गत 'वॉय्स टाइपिंग' का चयन करें।

माइक स्क्रीन पर दिखाई देने पर कृपया इसकी भाषा 'हिंदी' कर लें।

अपना माइक संभालिये और बोलना आरंभ करें। आप जो बोलते हैं वह स्वत: टंकित होता रहेगा।

आप देखेंगे कि टाइप तो हो रहा है लेकिन यदि आप बोलते हैं :

नमस्कार, आप कैसे हैं? यानि, नमस्कार [कोमा] आप कैसे हैं [क्वश्चन मार्क] तो परिणाम आता है 'नमस्कार कोमा आप कैसे हैं क्वेश्चन मार्क'

उपरोक्त वाक्य को शुद्ध करने के लिए कीबोर्ड का सहारा लेना होगा। अभी केवल जर्मन, अंग्रेज़ी, स्पेनिश, फ्रेंच, इतालवी और रूसी में ही संपादन चिह्न

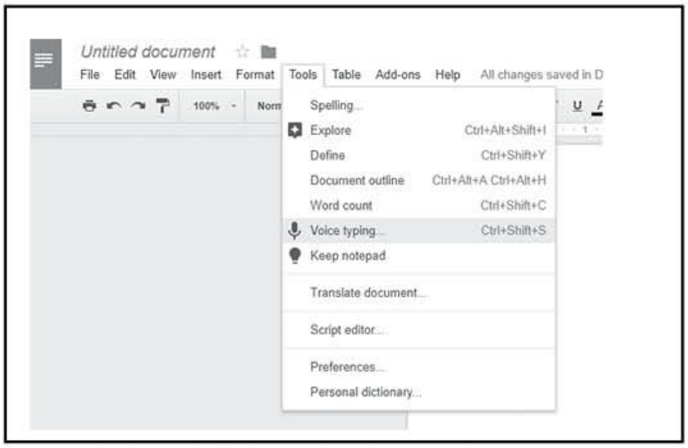

काम करते हैं। कीबोर्ड के सहयोग से आप संतोषजनक परिणाम पा सकते हैं फिर भी पूर्णविराम (।) के स्थान पर या तो आप फुलस्टॉप (–) या फिर (2) का ही प्रयोग कर पाएँगे। हाँ, आप गूगल या माइक्रोसॉफ़्ट इनपुट टूल्स का उपयोग करके अवश्य ही वांछित

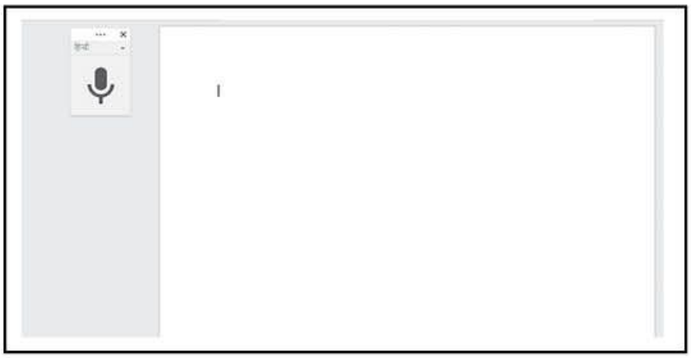

परिणाम पा सकते हैं।

गूगल के अतिरिक्त भारत सरकार ने भी इस ओर प्रयास किए हैं। श्रुतलेखन–राजभाषा नामक यह सॉफ़टवेयर सी.डैक द्वारा आइ.बी.एम. के सहयोग से विकसित किया गया है। इसमें आपको अपने कम्प्यूटर के यू.एस.बी. में एक डोंगल (dongle) का उपयोग करना पड़ता है।

सॉफ़टवेयर निःशुल्क नहीं है व इसके परिणामों को संतोषजनक बनाने के लिए अभी काफ़ी श्रम अपेक्षित है। सनद रहे कि गूगल का वाणी लेखन सॉफ़टवेयर संतोषजनक परिणाम दे रहा है व यह पूर्णतया निःशुल्क है।

यह भी जानना होगा कि उपलब्ध वाणी से लेखन सॉफ़्टवेयर

की शब्द संसाधन गति प्रति शब्द कितनी है और यदि हम टंकण या ओ. सी.आर. से इसकी तुलना करें तो गति व समय दर क्या है? कौन–सी प्रणाली कहाँ उपयोग की जा सकती है?

हिंदी वॉय्स–टू–टेक्स्ट, हिंदी टी.टी.एस., हिंदी ओ.सी.आर. व हिंदी टंकण का तुलनात्मक अध्ययन करना होगा।

टेक्सट–टू–स्पीच (TTS) लेखन से वाणी

इस प्रणाली में शब्दों को वाणी दिए जाने का काम होता है। इसे मूलतः नेत्रहीनों की सहायता के लिए विकसित किया गया था। गूगल ने टेक्स्ट–टू–स्पीच एंड्रॉय्ड ऑपरेटिंग सिस्टम के लिए विकसित किया है। अब इस सॉफ़्टवेयर का उपयोग अन्य कार्यों के लिए भी किया जा रहा है।

यह सॉफ़्टवेयर नेत्रहीन, विकलांग व अनपढ़ लोगों के लिए भी उपयोगी है, क्योंकि इसकी सहायता से कम्प्यूटर स्क्रीन को बोलकर, पढ़/सुना सकता है व व्यक्ति पढ़ने की अपेक्षा सुनकर अपना कार्य सम्पन्न कर सकता है।

यह किसी भी लिखित दस्तावेज़ को ध्वनियुक्त दस्तावेज़ में परिवर्तित कर देता है, जिससे इसे सुना जा सकता है।

इस समय मोबाइल पर 'वॉय्स सर्च' इसी पद्धति द्वारा किया जा रहा है। आप मोबाइल पर बोलकर सर्च इंजन पर खोज सकते हैं। आप यदि हिंदी में खोजना चाहें तो वह विकल्प भी उपलब्ध है। मोबाइल के अतिरिक्त डेस्कटॉप पर गूगलक्रोम पर इसका उपयोग किया जा रहा है।

इस समय गूगल इसका अपनी अनुवाद सेवा में भी उपयोग

कर रहा है।

आइए, एक प्रयोग करके देखें :

इस प्रणाली का उपयोग वाणी निर्देशन जैसे फ़ोन, मोबाइल या आपकी वेबसाइट इत्यादि पर निर्देश या सुझाव देने हेतु भी किया जाता है।

भारत सरकार ने भी प्रवाचक–राजभाषा के नाम से एक सॉफ़्टवेयर विकसित किया है जो निःशुल्क उपलब्ध है:

https://pravachak-rajbhasha.rb-aai.in

"प्रवाचक–राजभाषा एक टेक्स्ट–टू–स्पीच (टी.टी.एस.) सिस्टम है, जो राजभाषा विभाग (डी.ओ.एल.), नई दिल्ली और एप्लाइड ए आई ग्रुप,

सी–डैक पुणे द्वारा विकसित किया गया है। यह हिंदी (यूनिकोड) टेक्स्ट को हिंदी स्पीच में परिवर्तित कर देता है। प्रवाचक–राजभाषा में किसी वेब पेज अथवा टेक्स्ट फ़ाइल से चुने हुए हिंदी यूनिकोड टेक्स्ट को पढ़ने की सुविधा है।"

प्रवाचक के वेबसाइट के अनुसार इसे विभिन्न रूप से उपयोग करने के लिए निम्नलिखित सुविधाएँ उपलब्ध हैं :

- ❖ प्रवाचक–राजभाषा एक यूनिकोड सुसंगत सिस्टम है।
- ❖ 3 अनुप्रयोग प्रकार में उपलब्ध हैं : वेब नेरेटर, इ–रीडर एवं इ–मेल रीडर।
- ❖ यह वेब, इ–मेल (माइक्रोसॉफ़्ट आउटलुक 1997–2007) एवं स्टैंडएलोन दस्तावेज़ की पाठ्य–सामग्री को पढ़ सकने में सक्षम है।
- ❖ यूनिकोड में टाइप करने की सुविधा दी गई है।
- ❖ प्ले स्पीड एवं वाल्यूम को कम करने की सुविधा दी गई है।
- ❖ यह स्टैंडएलोन दस्तावेज़ का समर्थन करता है जैसे एम.एस. वर्ड फ़ाइल, टेक्स्ट फ़ाइल, एवं एच. टी. एम. एल. फ़ाइल।
- ❖ प्रवाचक–राजभाषा में फ़ोनेटिक, इन्स्क्रिप्ट एवं रेमिंगटन में टाइपिंग करने की सुविधा के लिए वर्चुअल की–बोर्ड प्रदान किया गया है।

इस सॉफ़्टवेयर का पाठ–वाचन तो ठीक है पर यदि हम इसमें फ़ोनेटिक की–बोर्ड का उपयोग करना चाहें तो वह सरल नहीं। उदाहरणतः यदि आप, 'मेरा भारत' टंकित करना चाहें तो आपको लिखना होगा, "merA bhArat"

इसी तरह दीर्घ–स्वरों जैसे "आ' के लिए 'A' व 'ई' के लिए 'I' टाइप करना होगा।

संयुक्त व्यंजन में यदि आपको 'क्क' लिखना है तो 'kzk' लिखना होगा। हलंत् के लिए 'Z' का प्रयोग करना होगा।

यदि मुझे 'भारत–दर्शन' लिखना है तो मुझे ' bhArat darshan' टाइप करना होगा।

कम्प्यूटर पर हिंदी टंकण

माइक्रोसॉफ़्ट इंडिक लेंग्वेज इनपुट टूल (Microsoft Indic Language Input Tool ILIT) आपको किसी भी माइक्रोसॉफ़्ट विंडोज़ एप्लिकेशन में आसानी से भारतीय भाषा में टंकित करने की सुविधा देता है। इसके अतिरिक्त, यह संपादन कुंजीपटल उपलब्ध करवाता है जो शब्दों को ठीक से टंकित करता है। यह निःशुल्क उपलब्ध है:

http://bhashaindia.com/Downloads/Pages/newpage.aspx

गूगल हिंदी इनपुट टूल्स

यह भी आपको उपरोक्त की भांति किसी भी विंडोज एप्लिकेशन में

आसानी से भारतीय भाषा में टंकित करने की सुविधा देता है। यह इनपुट उपकरण वर्तमान में 22 विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध है: अम्हारिक, अरबी, बांग्ला, फ़ारसी, यूनानी, गुजराती, हिब्रू, हिंदी, कन्नड़, मलयालम, मराठी, नेपाली, उड़िया, पंजाबी, रूसी, संस्कृत, सर्बियाई, सिन्हाला, तमिल, तेलुगू, टिग्रिन्या और उर्दू। यह इनपुट टूल भी निःशुल्क निम्नलिखित वेब पर उपलब्ध है: https://www.google.com/intl/hi/inputtools/windows/

लिपिकार हिंदी व भारतीय भाषाओं के लिए एक अद्वितीय सॉफ़्टवेयर

यदि टंकण की बात करें तो 'लिपिकार' को सबसे सरल व वैज्ञानिक हिंदी सॉफ़्टवेयर कहा जा सकता है। यह सॉफ़्टवेयर निःशुल्क नहीं है, इसकी कीमत लगभग 1800 है, लेकिन इसका ऑनलाइन संस्करण निःशुल्क प्रयोग किया जा सकता है। इसे आप कुछ ही क्षणों में सीख कर अच्छी गति से टंकण कर सकते हैं। ऑनलाइन हिंदी टंकण हेतु निम्नलिखित वेब पृष्ठ का उपयोग करें:

http://www.lipikaar.com/online-editor/hindi–typing

लिपिकार को विकसित करने के पीछे आइ.आई.टीयन जुगल गुप्ता का हाथ है जो 1989 से भारतीय भाषाओं के लिए काम कर रहे हैं।

आने वाले समय में इंटरनेट पर क्षेत्रीय भाषाओं का वर्चस्व निःसंदेह बढ़नेवाला है, इसके लिए अभी से तैयारी करनी होगी ।

यदि गूगल की वॉय्स टाइप व लिपिकार जैसा टंकण उपकरण संयुक्त रूप में उपलब्ध हो तो जीवन सरल हो सकता है। 'भारत–दर्शन' भी पिछले कुछ वर्षों से इसी दिशा में काम कर रहा है। हिंदी पर नित्य नए प्रयोग व अनुसंधान किए जा रहे हैं और शीघ्र ही सफल सामने होंगे।

संदर्भ ग्रंथ:

Sivathiban Krishnamurtthu. (2010). Voice to text system for disabled (V2TS). Kuantan, Pahang: UMP

• Govindaraju,V. and Setlur, S. (2010). Guide to OCR for Indic Scripts. London: Springer London

• Jones, K. (2004). Windows speech recognition programming. New York: iUniverse, Inc

• Gibbs, S. (2017).. Mobile web browsing overtakes desktop for the first time. [online] the Guardian.
Available at: https://www.theguardian.com/technology/2016/nov/02/mobile&web&browsing&desktop&smartphones&tablets [Accessed 20 Jun. 2017].

• Titcomb, J. (2017). Mobile web usage overtakes desktop for first time. [online] The Telegraph.

Available at: http://www.telegraph.co.uk/technology/2016/11/01/mobile-web-usage-overtakes-desktop-for-first-time/
[Accessed 22 Jun. 2017].

न्यूज़ीलैंड
editor@bharatdarshan.co.nz

भूमंडलीकरण के दौर में मीडिया की भाषाई चुनौतियाँ

–श्री राकेश कुमार दुबे

व्यवसाय :

- सम्प्रति – भारत सरकार द्वारा स्थापित उड़ीसा केन्द्रीय विश्वविद्यालय कोरापुट, ओडिशा के पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग में शोध व अध्यापन
- मीडिया से जुड़े तमाम पहलों व पहलुओं पर पैनी नज़र
- युवा विशलेषक, समीक्षक, और लेखक के रूप में पहचान
- देश के विभिन्न संस्थानों, महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों में आमंत्रित विशेषज्ञ व अतिथि संकाय के रूप में अध्यापन और व्याख्यान
- मीडिया उद्योग में कार्य अनुभव : लगभग 6 वर्षों का (जनसंपर्क अधिकारी, संपादन सहयोग, शोध प्रभाग, रिपोर्टिंग आदि के रूप में)
- अनेक राष्ट्रीय संगोष्ठियों व कार्यशालाओं में सह–संयोजक की भूमिका
- 20 से अधिक राष्ट्रीय संगोष्ठियों व कार्यशालाओं में आयोजन समिति के सदस्य

प्रकाशन :

- 150 से अधिक लेखों समीक्षाओं आदि का अनेक राष्ट्रीय समाचार–पत्रों और पत्रिकाओं में प्रकाशन
- 20 से अधिक शोध आलेख विभिन्न राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय शोध जर्नल्स में प्रकाशित
- विभिन्न सम्पादित पुस्तकों के अध्यायों में योगदान
- 3 सम्पादित पुस्तकों का प्रकाशन
- 2 मौलिक शोध आधारित पुस्तकें प्रकाशाधीन

टॉमस ईकिन्स, जार्ज बिंगहैम और विंस्लो होमर जैसे कलाकारों ने भले ही अमेरिकी लोकजीवन का आलेखन बेहद बारीकी से किया हो, लेकिन भारतीय भाषाई पत्रकारिता (यानी मीडिया) ने भारत की लोक संस्कृति के लिए ऐसा नहीं किया। दरअसल, अनेक संस्कृतियों या परम्पराओं से दर्शकों या श्रोताओं का परिचय स्थापित कराने के लिए मीडिया को स्थानीयता के इस्तेमाल का सहारा लेना ही पड़ता है। यही वह प्रमुख बिन्दु है, जिसके चलते विभिन्न अंचलों में सुदूर बैठा पाठक या दर्शक मीडिया से अपना जुड़ाव महसूस कर पाता है। साहित्य की भाषा में कहा जाए तो मीडिया से उसका तादात्म्य स्थापित होता है, साधारणीकरण की स्थिति आती है और अपनत्व का भाव प्रबल होता है। बात अगर भारत की हो तो स्थानीयता के पुट का यह सवाल और भी महत्वपूर्ण और प्रासंगिक हो जाता है, क्योंकि समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को देखते हुए ही इसे सामाजिक संस्कृति कहा जाता है। मीडिया की बात करें तो जात्रा, नौटंकी या तमाशा जैसे साधन आम रहे हैं जिन्हें हम 'फ़ोल्क मीडिया' नामक एक व्यापक पदबन्ध के अन्तर्गत रखते हैं। अगर असम में बिमाना गाया जाता है, सन्त शंकरदेव और माधवदेव की धुनें उठती हैं, मणिपुर में 'यायफरे यायफरे......' की गूँज सुनाई देती है, तो उत्तर प्रदेश या बिहार के बिरहा और कजरी भी कुछ कम रोचक या मनोरंजक नहीं हैं।

भूमंडलीकरण हर चीज़ को तेज़ कर देता है – ज़िन्दगी को, उसकी रफ़्तार को, संगीत को, उसकी धुनों को और धुनों की तीव्रता को भी। तभी तो दलेर मेहन्दी का 'तुनक तुनक तुन, तुनक तुनक तुन' हवाओं पर सुरीले तरीके से रेंगता रहता है, हंसराज हंस की 'झाँझर' और उसकी खनक कानों में तैरती रहती है और मन गुरदास मान के 'दिल होणा चाहिदा जवान' को सुनकर जल्द ही आकांक्षी हो उठता है। किस चीज़ का आकांक्षी? संगीत का? लोकधुनों का? गाँव–ज्वार की माटी की सोंधी खुशबू का? खेती–किसानी में जूझ रही, कमर में गमछा बाँधे किसी भारतीय विरहिणी के खतों का, सन्देशों का या हाल–खबर का? इन 'पुरानी' चीज़ों का आकांक्षी? हर्गिज़ नहीं। फिर क्या? जींस में फिर किसी छाती तानकर चलनेवाली बनावटी लड़की के दर्शन का? उस पर लाइन मारने का आकांक्षी? हाँ, यह आज के

उस आधुनिक सच की एक हल्की–सी तस्वीर है, जिसकी भारत में शायद ही कभी इस बात पर गौर फ़रमाने की फुर्सत पाते हों कि अंग्रेज़ों से बढ़कर परम्परावादी या कंज़रवेटिव भला कौन होगा! ब्रिटेन की राजनीतिक व्यवस्था में दो क्विंटल राजनीतिक दल नहीं है। सिर्फ़ दो ही राजनीतिक दल हैं और उनमें से एक का नाम ही कंज़रवेटिव पार्टी है। लेकिन इन बातों का यहाँ क्या अर्थ है? ख़ासकर मीडिया के सन्दर्भ में? अर्थ है, मीडिया के सन्दर्भ में तो और भी ख़ास अर्थ है। अब देखिए न, रतन टाटा ने जगुवार और लैंड रोवर्स के ब्रांड खरीदने के लिए 9,200 करोड़ रुपये विदेश में झोंक दिए। मीडिया इस खरीद के गुण गाते नहीं थक रहा है। क्या इस पैसे से भारत में रोज़गार नहीं पैदा किये जा सकते थे? और सरकार क्या कर रही है? सरकार के अधिकारी जब विदेश जाते हैं तो कटोरा लेकर जाते हैं और विदेशी पूँजीपतियों से गुज़ारिश करते हैं कि चलो माई–बाप! चलो, वहीं पैसा लगाओ! हालात पैसा वहाँ लगाने के बिलकुल अनुकूल हैं। और यही सरकार अम्बानी बन्धुओं को युगांडा में सेवाएँ देने के लिए बधाई देती है। धन्य है मीडिया!

भविष्य में मीडिया अपना यह काम कब तक करेगा, भाषा को किस असन्तुलन तक पहुँचाएगा या फिर लोगों की नज़र में मीडिया की तस्वीर क्या होगी? ऐसे प्रश्नों से आज हमारा बौद्धिक वर्ग, चाहे अकेले में ही सही, उलझता ज़रूर है। तिकड़ी के अंगस्वरूप इंटरनेट पत्रकारिता के नये आयाम के रूप में उभरा है। इसमें अख़बारों, टेलीविज़न या रेडियो की तुलना में कई सुविधाएँ व सुलभताएँ हैं। मसलन यह यूज़र–फ्रेंडली है, अन्तर क्रियात्मक है। आप तुरन्त अपना फ़ीडबैक इसमें दे सकते हैं। इसकी पहुँच ग्लोबल है। अपडेशन और डेडलाइन की ताज़ा से ताज़ा खबरें व सूचनाएँ हैं। अन्य माध्यमों से सस्ता है या फिर पुराने अंकों पुरानी ख़बरों को भी इसमें आसानी से और द्रुत गति से देखा जा सकता है। फिर भी इंटरनेट को लेकर अनेक व्यावहारिक उलझनें हैं। भारत जैसे देश में अगर निरक्षरता के बिन्दु को छोड़ भी दें तो भी सर्फ़िंग की तकनीकी समस्याएँ या साइबर क्राइम की लकीरें कम परेशान करनेवाली नहीं हैं। हैकिंग, क्रेकिंग, डेटा डिडलिंग, म्यूज़िक पाइरेसी, सॉफ़्टवेयर पाइरेसी, स्पेम मेल, ऑनलाइन डेटा/मनी ट्रांसफर की समस्याएँ या साइबर सुरक्षा जैसे कितने ही सवाल हैं, जिनके फुलप्रूफ़ जवाबों को खोजना अभी बाकी ही है।

जुगाड़ और तुरन्ताबाज़ मीडिया (चाहे वह ग्लोबल हो या लोकल या रोलाँद रॉबर्टसन के शब्दों में कहें तो ग्लोकल) के सन्दर्भ में आज के सवाल ही उसकी कल की भाषा तय करेंगे और मीडिया (या उसकी भाषा) के समकालीन सवाल बाज़ार–केन्द्रित और बाज़ार द्वारा संचालित अर्थव्यवस्था से जुड़े हैं। ढेरों सवाल हैं, जो मीडिया की चौखट पर खड़े दरवाज़ा पीट रहे हैं और पत्रकारिता के सरोकारों पर प्रश्नचिह्न लगा रहे हैं। तो क्या मान लिया जाए कि बाज़ार संचालित पत्रकारिता एक व्यवसाय या व्यापार है? खबरें उत्पाद हैं और पाठक–दर्शक–श्रोता उपभोक्ता हैं, ग्राहक हैं? और मुनाफ़ा कमाते चले जाना ही मीडिया का लक्ष्य है? क्या सम्पादकीय स्वायत्तता और समाचार–मूल्यों में गिरावट नहीं आयी है? क्या सम्पादक की भूमिका समाचार संगठन के वैचारिक नेतृत्वकर्ता की बजाय एक प्रबन्धक की होती जा रही है? सम्पादन के बदलते मानदंडों के मद्देनज़र क्या समाचारों को मनोरंजक बनाकर पेज–थ्री पत्रकारिता को बढ़ावा दिया जा रहा है? अगर एडवर्ड एस.हर्मन और नॉम चॉम्स्की के 'प्रोपेगैंडा मॉडल' का सहारा लें तो इन्होंने अपनी पुस्तक 'मैन्युफ़ैक्चरिंग कंसेंट : द पॉलिटिकल इकोनॉमी ऑफ़ मास मीडिया' में शक्ति और धन की असमानता और मासमीडिया पर इसके (नकारात्मक) प्रभावों का ज़िक्र करते हुए व्याख्या की है कि किस प्रकार शक्ति और धन मिलकर समाचारों के विकल्पों को फ़िल्टर करते हैं। आज नये–ताज़े और उत्साही मीडिया को ध्यान रखना होगा कि उसके एजेंडे और जनता की ज़रूरतों और प्राथमिकताओं के बीच दूरी बढ़ने की बजाय घटे, लोकतन्त्र पर मीडियातन्त्र हावी न हो जाए।

एफ़.एम. रेडियो

"मैं एक लड़की से सीरियसली लव करता हूँ। शी इज़ माई क्लासमेट। यू नो, वह बहुत इनोसेंट है। हिम्मत ही नहीं होती कहने की! चाहती वह भी है, बट वह शाइंग है। देखकर नज़रें झुका लेती है और शरमाकर भाग जाती है। वैसे फ्रेंडशिप डे पर मैंने उसको एक फ्रेंडशिप बैंड गिफ़्ट किया था। उसकी मॉम ने एक दिन शक कर लिया और उसे बहुत डाँट पड़ी। तब से वह बहुत दुखी रहती है। उसका दुख मुझसे देखा नहीं जाता। तड़पकर रह जाता हूँ। अब तो आप ही मुझे रास्ता दिखाओ लव गुरू! बहुत पज़ल्ड हूँ। आप तो एल.एल.बी. भी हैं। कुछ बताओ न, प्लीज़।"

लव गुरू उवाच् – ''देखिए, ये जो अट्रैक्शन है, ये जो इन्फैच्युएशन है, आकर्षण है, फीलिंग्स हैं, भावनाएँ हैं, प्रॉब्लम्स हैं, जुनून है... ये जो सिचुएशन है, कभी लगता है कि प्यार करती है, कभी लगता है नहीं करती है, हाँ कि नेचुरल है। नथिंग प्रॉब्लमेटिक! आप ऐसा करें कि...।''

जी हाँ, यह आजकल के महानगरीय एफ़.एम. ज़्यादा की कथा है। मारकोनी भी अगर आज जीवित होते तो यह देखकर उनकी आँखें आश्चर्य से फटी की फटी रह जातीं कि उनकी एक साधारण–सी खोज़ 'रेडियो' ने आधुनिक मानव के अन्तःस्थल तक भी बड़ी असाधारण पहुँच बना ली है। भाषा–वैज्ञानिकों का प्रबुद्ध झुंड चाहे जितनी माथापच्ची करता रहे, एफ़. एम. रेडियो ज़्यादा ने आधुनिक, जटिल और विचित्र स्थितियों के अनुरूप अपनी अवसरानुकूल भाषा गढ़ ही ली है। एशियाई और यूरोपीय शब्दकोश का रोचक मिश्रण, बाज़ारवादी रवैया, विकट समस्याओं के फौरी हल और प्रभावोत्पादक जीवनशैली की चित्रात्मक महागाथा – लगभग सबके सब ऊपर के एक मामूली–से उदाहरण में आसानी से देखे जा सकते हैं। यह बात दीगर है कि किसी भी समस्या का समाधान चाहे न मिले, लेकिन समस्या से सम्बन्धित विलोम और पर्यायवाची शब्दों से परिचय ज़रूर स्थापित हो जाता है। अगर क्राउथर को आज निर्धारित करना पड़ता तो यह कहना मुश्किल है कि क्या वे आधुनिक मनुष्य द्वारा किये गये सबसे महत्वपूर्ण आविष्कारों की संख्या सिर्फ़ 3 (वोट, महिला और मुद्रा) ही रखते? क्या वे वृद्धों से लेकर बालकों, विवाह पूर्व से लेकर विवाहेत्तर सम्बन्धों के स्वामियों और स्त्रियों से लेकर पुरुषों तक – सभी को प्रभावित (या निर्धारित) करने की क्षमता वाले एफ़. एम. रेडियो ज़्यादा की उपेक्षा कर पाते? किस–किस लालबत्ती पर ट्रैफ़िक जाम है, आज का तापमान कितना है, आज कपल्स बोटिंग करने क्यों न जाएँ, एक्ज़ामिनेशन की टेंशन कैसे कम करें, टॉप टेन में आज के प्रमुख गाने कौन–से हैं, आज की न्यूज़ हेडलाइन्स क्या हैं, सचिन तेंदुलकर विश्वकप में क्यों अच्छी बल्लेबाज़ी नहीं कर पाये या आप सलाद को किस तरह गोल–गोल काटकर और उसके ऊपर धनिये का पाउडर बुरककर कैसे उसे आकर्षक और स्वादिष्ट बना सकती हैं.... ऐसे कितने सवालों से भरी जिज्ञासु मनोवृत्ति को एफ़. एम. रेडियो पल भर में ही ठंडा और शान्त करने की कूवत रखता है। लेकिन इसकी सीमाएँ यहीं तक नहीं हैं। नित नये क्षितिज को अनावृत करनेवाले एफ़.एम. चेनल अब कहीं आगे तक जाते हैं। संचारविद् फेस्टिंज़र के शब्दों में कहें तो वे व्यक्ति और समाज की अभिरुचियों का सन्तुलन बनाते–बिगाड़ते हैं। हार्ड न्यूज़, बैक ग्राउंडर, साइड बार, सीरीज, डॉक्यूमेंट्री या फीचर–जो भी हो, उसका फ़ॉलोअप और किकर (अर्थात् बुलेटिन के अन्त में जो बातें सुनाकर श्रोताओं का मूड और स्वाद बदल दिया जाता है) इतना रोचक बनाया जाता है कि आप चाहकर भी अपना कान और ध्यान हटा नहीं पाएँगे। इसके अलावा टीजर (ब्रेक पर जाने से पहले संक्षेप में यह घोषणा करना कि ब्रेक के बाद आपको क्या सुनने को मिलेगा) और मोंटाज़ (कार्यक्रम के पूर्व सुनायी जानेवाली उसकी भूमिका) भी एफ़.एम. की कामयाबी के राज हैं।

तकरीबन दर्जन भर एफ़.एम. चेनल कुछ–न–कुछ अलग या हटकर करने का कितना भी दावा क्यों न करें, सेलेक्टिव परसेप्शन, सेलेक्टिव एक्सपोज़ियर या सेलेक्टिव रिटेंशन जैसी बातें सभी ज़्यादा पर लागू होती हैं। सभी मूलभूत ज़रूरतों पर बातें करते हुए श्रोताओं का 'स्वस्थ' मनोरंजन करते हैं। और इन 'मूलभूत' आवश्यकताओं पर 'विचार–मंथन' करते समय ये रेडियो चेनल मैसलोव के पदसोपानीय ढाँचे का पूरा–पूरा ध्यान रखते हैं। इस श्रेणीतन्त्र का क्रम यों है – सबसे पहले तो शारीरिक आवश्यकताएँ। तो अगर डॉक्टर लव किसी पॉश इलाके से आयी समस्याग्रस्त लड़की के फ़ोन कॉल का जवाब देते हुए कहते हैं कि आपने गलती तो की ही है, गलत टाइम पर सेक्सुअल रिलेशन बनाया है.... फिर भी अभी ताज़ा–ताज़ा मामला है, किसी गाइनेकोलॉजिस्ट से मिलकर एबॉर्शन करा दीजिए, तो इसमें माथा पकड़नेवाली कोई बात नहीं है। तब भी, जब आप उस अनाम लड़की का 'विशेषज्ञ' से चल रहा वार्तालाप अपनी माँ, बहन, भाई, पिता या पुत्री के साथ रेडियो पर लाइव सुन रहे हों। तभी तो जॉर्ज गर्वनर 'मीन वर्ल्ड सिंड्रोम' की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि ज़्यादा रेडियो सुननेवाले लोग क्रमशः अपनी चारों तरफ़ की दुनिया के प्रति आशंकित रहने लगते हैं और अनचाहे भय से उपजे खतरों को लेकर व्यर्थ में ही चिन्तित होना प्रारम्भ कर देते हैं। इसी रोचक और सनसनीखेज हिंसा को उन्होंने 'हैपी वायलेंस' कहा है। बात तब और गम्भीर हो जाती है, जब सीमियोटिक्स, वाइनरी अपोज़िशंस (मसलन मासूमियत और कामुकता का कंट्रास्ट) या बहुअर्थी कोड्स का इस 'हैपी वासलेंस' में एफ़.एम. पर तीखा छौंक लगा दिया जाता है। क्या इस छौंक को परिभाषित करने

की ज़रूरत है? एफ़.एम. रेडियो ज़्यादा पर कोई भी स्वस्थ परिचर्चा करते समय कुछ बातों की बिल्कुल भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के बढ़ते प्रसार और सम्पत्ति के केन्द्रीकरण (कम से कम समतामूलक वितरण तो हर्गिज़ नहीं) का स्वाभाविक सम्बन्ध पूरे मीडिया से है। चाहे वह अखबार हों, टेलीविज़न हो, इंटरनेट हो, चिट्ठियाँ हों या फिर रेडियो ही क्यों न हो – कार्यक्रमों में मिर्च–मसाला लगाना अब बिल्कुल आम और स्वाभाविक–सा हो चला है। इन माध्यमों द्वारा किये गये अपराध और अपराधियों के महिमामंडन का परिणाम क्या हो रहा है, इस पर चिन्ता या विमर्श अकाल में मुरझाये पेड़ों की तरह हो गये हैं। क्या किसी भी अपराधी का महिमामंडन उसकी छवि को सुधार नहीं देता? क्या इससे अपराध और सनसनी के प्रति आम जनता की अपराध–विरोधी चेतना की धार कुंद नहीं पड़ जाती? डब्ल्यू आयी थॉमस अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'साइकोलॉजी ऑफ़ येलो जर्नलिज़म' में कुछ ऐसे ही चेतावनीपूर्ण निष्कर्षों तक पहुँचते हैं। इसीलिए तो सनसनीखेज़ मसाला खबरों को 'पाप और अपराध के सकारात्मक एजेंट' कहा गया है। लव गुरू का एल.एल.बी. होना (लड़की, लव और बॉलीवुड–जैसा कि गुरूवर स्वयं व्याख्या करते हैं) किसे प्रिय नहीं होगा? अगर टेलीविज़न बलात्कार पीड़िता का चेहरा छुपाने के लिए 'मोज़ैक' का सहारा लेता है, अख़बार 'गुप्त सूत्रों' का हवाला देते हैं, तो एफ़.एम. भी पीछे नहीं है। वह सम्बन्धों का औचित्य साबित करने के लिए अभिज्ञानशाकुंतलम्, भास के तेरह नाटकों या मृच्छकटिकम का हवाला देता है। फिर आगे एफ़. एम. बताते हैं कि शूद्रक के इस 'मृच्छकटिकम' में किस प्रकार एक निर्धन ब्राह्मण एक वेश्या के साथ प्रेम कर बैठता है।

एफ़. एम. ज़्यादा का साहित्य, मानसिकता, समाज, परम्पराओं, तरीकों या भाषाओं पर कम असर नहीं पड़ा है। प्रेस आया तो पाण्डुलिपियाँ विलुप्त हुईं, पुस्तकें आयीं और कृतियों की दीर्घजीविता बढ़ी। स्मरणीय है कि ई.एम. फ़ोस्टर की यह बात कि मुद्रणकला की कोख से ही चिरस्मरणीयता का जन्म हुआ, एफ़. एम. रेडियो ज़्यादा पर भी बराबर लागू होती है। वृद्ध श्रोताओं और प्रेम में नाकामयाब रहे प्रेमी–प्रेमिकाओं को रात में नींद कहाँ आती है? जहाँ पहला वर्ग एलीट लिटरेचर को लेकर हक्सले या थॉमस हार्डी के जटिल गद्य पर आनुभविक गोटियाँ बिखेरता है, वहीं दूसरा वर्ग 'हम छोड़ चले हैं महफ़िल को....', 'दोस्त दोस्त न रहा....' या 'होके मजबूर मुझे उसने भुलाया होगा' के बहाने मुकेश, रफ़ी, बेग़म अख़्तर या मेहंदी हसन के दर्द भरे नगमे आधी रात के बाद किसी एफ़.एम. चेनल पर 'नॉन स्टॉप गीत–संगीत' के तहत सुन सकता है। दर्द ज़्यादा बढ़ जाए तो मोबाइल के ज़रिये रेडियो एंकरों को एम.एम.एस. करके गज़लें सुनी जा सकती हैं। हुस्नो–इश्क की बातचीत के बहाने दुनिया की मुसीबतों को अपने जिगर में समाने वाली इस ईरानी फ़ॉर्मेट से अगर एफ़.एम. श्रोताओं को सुकून मिलता है, तो इसमें हैरत क्या है? और फिर विश्व साहित्य के पुरोधाओं या उनकी प्रवृत्तियों के बारे में मुफ़्त में जानकारी हासिल करना भला किस श्रोता को बुरा लगेगा? लेकिन मुफ़्त में मिली यह जानकारी क्या परोपकार या सदाशयता के चलते उपलब्ध करायी जाती है? एफ़. एम. द्वारा अलापा जानेवाला 'विश्व साहित्य' का राग कम गौरतलब नहीं! 'विश्व साहित्य शब्द' वेल्ट लिटरेचर' का अनुवाद है, जिसका प्रयोग सर्वप्रथम गोयटे ने किया था। यह शीर्षक इस विश्वास को व्यंजित करता है कि विश्व का संपूर्ण साहित्य आगे चलकर एक हो जाएगा। लेकिन यूरोप की फ्रांले (फ्रेंच और इंग्लिश भाषाओं का घालमेल) की तर्ज पर अपने यहाँ भी टिंगलिश के विकास में एफ़. एम. का योगदान किसी अन्य कारक से जरा भी उन्नीस नहीं है। 'रिजीम चेंज़', 'वेपन्स ऑव मास डिस्ट्रक्शन', 'इन टच कल्चर' या 'कर्टशिप पीरियड' जैसे शब्दों को गढ़कर उन्हें एक अर्थ विशेष के प्रयोजन के लिए आरूढ़ करके चलन में लाना बदस्तूर जारी है। इसके अलावा राष्ट्रीय ज़्यादा के महानगरवाद या क्षेत्रीयतावाद सम्बन्धी प्रयत्न क्या कोई महत्वपूर्ण और बारीक सन्देश नहीं देते? देते हैं, लेकिन उन्हें रेखांकित करने की ज़रूरत हैं, वरना बिना कोई 'ब्रीदिंग स्पेस' छोड़े लगातार और दनदनाती साँसों से यह बताने की क्या आवश्यकता है कि अमुक नायिका या अमुक नायक दिल्ली, मुम्बई या बंगलौर के फलाँ होटल में अगला वीकेंड मनाने आ रहा है और अगर आप उनके साथ नाचना चाहते हैं, मस्ती में झूमना चाहते हैं या उन्हें छूना चाहते हैं तो अभी उठाइए और डायल कीजिए नाइन थ्री फ़ोर....।

किसी दूसरी चीज़ की ही तरह एफ़. एम. को भी कई नज़रियों और कोणों से देखा जा सकता है। फिर भी एफ़. एम. वाले मामले में ख़ास बात यह है कि इसके प्रेक्षण कोण उतने ही नहीं जितने चेनल के हैं। बल्कि उतने हैं जितने व्यक्ति हैं या और अच्छे तरीके से विश्लेषण करें तो उतने हैं जितने अलग–अलग व्यक्तियों, जातियों, धर्मों या उन वर्गों के लोगों के मूड या मानसिकता के प्रकार हैं। वरना कामान्ध मानसिकता को पलटकर धर्मान्ध बनाने की 'पारलौकिक' क्षमता की

उपलब्धि की व्याख्या भला कैसे की जा सकेगी! और फिर हल्के–फुल्के मूड में कही गयी बातों और लच्छेदार शब्दों के ज़रिये प्रसारण की भाषा और एफ़.एम. की अन्तर्वस्तु का मूल्यांकन करना क्या ज़रूरी नहीं? ब्रिएन की बात यहाँ और ज़्यादा प्रासंगिक हो जाती है, जो इन संगठनों या ज़्यादा के कामों को कटघरे में खड़ा करते हैं। उनके शब्दों में यह 'न सिर्फ़ संरचना बल्कि कार्यप्रणाली के दर्शन का भी निर्यात' है। शिक्षा को बहुराष्ट्रीय निगमों के अनुरूप ढाला जाना या सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के ज़रिये तीसरी दुनिया पर विशेष प्रकार की जीवनशैली का थोपा जाना तो महज कुछ बानगियाँ हैं। लकीरें और भी गहरी हैं।

ऑडियंस की भूमिका, क्रिएटिव फ़ीडबैक या सूचना–प्रसार जैसी बातें दिखने में भले ही खूबसूरत और प्रतिनिधित्वकारी लगें, पर वास्तव में ऐसा है नहीं। आज इस तथ्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती कि साइबर आइडियोलॉज़ी के माध्यम से एक किस्म की 'इन्फ़ॉरमेशन इनइक्वलिटी' का जन्म हो रहा है जिसमें एफ़.एम. की भूमिका उन्नीस नहीं है। क्या 'सुपर हाइवे' नाम से आ रहे परिवर्तन जनता के धन की कीमत पर नहीं आ रहे हैं? क्या 'रेडियो स्पेक्ट्रम फ्रीरीक्वेंसी' का कारपोरेट हितों के विस्तार के लिए प्रयोग नहीं हो रहा है? चर्चित सूचनाविद् हर्बर्ट शिलर की पुस्तकों–'मास कम्युनिकेशन एंड अमेरिकन एंपायन' (1969) और 'दि माइंड मैनेजर्स' (1973) के तर्क और निष्कर्ष गौर करने लायक हैं कि इन सारी मीडिया प्रक्रियाओं का ताल्लुक राजनीतिक और आर्थिक सत्ताओं के साथ बड़ा गहरा है। आखिर मीडिया सत्ता प्रतिष्ठानों और ताकतवर लोगों पर नज़र कम और कृपादृष्टि ज़्यादा रखता है? ढेर सारी सूचनाएँ देकर उनका घालमेल करने से व्यक्ति सूचित नहीं, असूचित हो जाता है। एफ़.एम. की चिल्लाहट खामोशी की सच्चाई को कैद नहीं कर सकती। छुपा नहीं सकती। मुक्तिबोध के शब्दों में कहें तो, 'सब चुप, साहित्यिक चुप .... चिन्तक, शिल्पकार, नर्तक चुप हैं। उनके ख़्याल से यह सब गप है। मात्र किंवदन्ती' लेकिन इन खामोशियों और आवाज़ों के द्वन्द्व और अन्तर्विरोध 'ग्लोबल' और 'लोकल' को एक खास किस्म से आमने–सामने लाते हैं। तभी ये दोनों बातें एक साथ बतायी जाती हैं कि दिल्ली के कमला नगर में कपड़ों की सेल लगी है और फ्रांस के शहर पेरिस में भी। 'ग्लोबल' और 'लोकल' के इस सम्पर्क को रोलाँद रॉबर्टसन अपनी कृति 'ग्लोबलाइज़ेशन सोशल थ्योरी एंड ग्लोबल कल्चर' (1992) में 'ग्लोबलाइज़ेशन' कहते हैं। एफ़.एम. का यह स्थानीय वैविध्य कम रोचक नहीं। एफ़.एम. सुभाषित कहता है – "अगर आप अपनी कार लेकर कनॉट प्लेस साइड में निकले हैं, तो जान लीजिए वहाँ आप एक संगठन की रैली के कारण ट्रैफ़िक जाम में बुरी तरह फँसने जा रहे हैं "लेकिन ऐसा सम्बोधन सिर्फ़ कार वाले लोगों के लिए ही क्यों होता है? कभी यह क्यों नहीं कहा जाता कि "रिक्शे वाले भाइयो....!" ज़ाहिर है इसलिए क्योंकि एफ़.एम. को रिक्शेवाले कोई विज्ञापन दे सकने की हैसियत नहीं रखते, भले ही वे रिक्शे में रेडियो रखकर दिन–रात उसे सुना करते हों। और जब से मोबाइल में रेडियो और कैमरा आ गया है, तब से तो तकनीकी परिवर्तनों ने विकास के वर्तुलों को और भी ज़्यादा चटख़ारेदार बना दिया है। साथ ही ज़िन्दगी भी 'जीने लायक' होती जा रही है। जब मैकडोनाल्ड, बर्गर किंग, पिज़ा हट, लेवीस्त्रास, बेनेटोन, रीबॉक और कोका–कोला जैसे ग्लोबल ब्रांडों की ही स्तुति बार–बार की जा रही हो तो ज़िन्दगी 'न जीने लायक' हो भी कैसे सकती है? कालिदास की विरहिणी पात्रों के लिए दूतों का काम मेघों ने किया, मुगलकाल में हरकारों की कतारों ने किया और आज एफ़. एम. ये सारे काम मुफ़्त में कर रहा है। यह बात अलग है कि 'लिबरल' मीडिया का मिथक आगे, कौन जीत रहा है, कौन हार रहा है जैसे सवालों के ज़रिये ऐसी पत्रकारिता का विकास कर रहा है जिसे 'वाचडॉग' की बजाय 'हॉर्स रेस जर्नलिज़म' कहना ही उचित होगा। एजेंडा सेटिंग की यह भीड़ 'डिस–इन्फ़ॉर्मेशन' की उलझाऊ व्यूह–रचना और खोखली जीवनशैली को बढ़ावा देती है। अधिकतम लोगों तक पहुँच और निरक्षर लोगों तक को रिझाकर बाँधे रखनेवाले एफ़. एम. का पूरा चित्र खींचना आसान नहीं है। अगर उपयोगिता के लिहाज से देखें तो एफ़. एम. चेनल इस कसौटी के शिखरों पर विचरण करते नज़र आते हैं। ज्ञान–विज्ञान के रोचक कार्यक्रम हैं कार्यक्रमों में देशकाल का प्रभावी वर्णन करने की ललक है, कार्यक्रमों के अन्त में क्विज़ हैं या फिर 'क्या है, आज का सवाल' जैसे उपसंहार हैं, जिनका जवाब देकर रेडियो एसी, फ्रिज, कूलर, मोबाइल, लैपटॉप, टेलीविज़न, बाइक या कभी–कभी कार तक ईनाम में पायी जा सकती है। रेडियो के पास सिर्फ़ आवाज़ है, विज़ुअल्स तो हैं नहीं! इसलिए 'राइटिंग टु पिक्चर्स' की धारणा यहाँ काम भले न कर पाती हो, लेकिन बाघ की गूँज़ती आवाज़ के बाद सुनाया जानेवाला 'बब्बर शेर' कार्यक्रम खींचता ज़रूर है। इस तथ्य के बावजूद कि न इस शेर में मतला होता है न मक़ता न रदीफ़, न ही काफ़िया और न ही तखल्लुस। चौबीसों घण्टे एफ़.एम. का फीवर चलता रहता है, श्रोता थक सकता है, एफ़.एम. नहीं। हर घण्टे पर समाचार आते हैं। हालाँकि बता पाना

मुश्किल है कि एफ़. एम. पर समाचार आते हैं या फिर समाचारों पर एफ़. एम. आता है। अंग्रेज़ी गानों को बजानेवाले चेनल हैं, जो पामेला एंडरसन, केट विंसलेट या ब्रिटनी स्पियर्स का बखान करते पाये जाते हैं। टैरो कार्ड रीडर गलती किसकी, कहाँ हुई भूल और सामुदायिक रेडियो जैसे प्रयास बेशक सराहनीय है। इसके अलावा घोंटुल प्रथा और आदिवासियों से लेकर सैलानियों के काम की ढेरों चीज़ें बतायी और सुनायी जाती हैं। ब्रेक पर जाने से पहले एंकर की गुज़ारिश होती है कि बस मिलते हैं थोड़ी ही देर में, रेडियो बन्द मत कीजिएगा। जितनी बार ब्रेक होगा, एंकर उतनी बार अपना नाम बताएगा/बताएगी। मैं हूँ न! घबराइए नहीं, मैं भी पहले घबराती थी। सब कुछ ईगोसेंट्रिक। 'अहं हि सर्वयज्ञानाम् भोक्ता न प्रभुरेव च।' खुश रहिए। मस्त रहिए। श्रोता में इस हीडोनिस्टिक कैलकुलस के चलते नयी ऊर्जा का ज़ोरदार संचार होता है। वह 'ऋण कृत्वा घृतं पिवेत' का वास्तविक अर्थ जान पाता है। अमेरिकी मार्क्सवादी विचारक फ्रेडरिक जेमेसन ने ठीक ही लिखा है – अतीत की उत्तेजित अनुभूति बढ़ती है, भविष्य की चिन्ता विलुप्त हो जाती है और वर्तमान की लड़ियाँ चिरस्थायी हो उठती हैं। यह मानव मन की रूखी सड़कों पर सरपट दौड़ती एफ़. एम. की बर्निंग ट्रेन है।

कार्यक्रमों में जीवन्तता लाने के लिए एफ़. एम. 'बाइट्स' की व्यवस्था करता है, सुबह–सुबह भक्तों को हरि के गुणों का रसपान करवाकर उन्हें 'स्थितप्रज्ञ' बनाता है, बॉलीवुडीय सितारों और क्रिकेट खिलाड़ियों के डुप्लीकेटों का प्रबन्ध करके उनसे मनचाही बातें कहलवाता है, हिंदी की बिहारी टोन में बोलकर (हे महराज धमकी, जेतने प्यार से हम पइसवा देत हैं ना, वइसे खोपड़िया भी चीट देत हैं, हाँ!) महानगरवासियों का मनोरंजन कराता है और आजकल तो 'रात्रि के यात्री' बनकर गली–गली घूमकर सबसे कुछ अटपटे सवाल तक पूछता है ताकि आप एफ़. एम. बन्द न करें। जीवन को एफ़. एम. मय करने के लिए आसपास के वातावरण की ध्वनियों को कैद करनेवाले 'नेट' की आकर्षक पैकेजिंग की जाती है, जिससे श्रोता को भली–भाँति यह अहसास हो सके कि वह एफ़. एम. को सुन नहीं, जी रहा है। एफ़. एम. सुनते–सुनते आप मधुर कल्पनाओं के कोमल संसार में जाकर नश्वरता–अनश्वरता जैसी बहसों से परे हो सकते हैं, जीवन की निस्सारता भी समझ में आ सकती है या अनजाने में ही आपसे कुछ बड़े काम सम्पन्न हो सकते हैं। क्या रेडियो जॉकी जाह्नवी के 'गुड मॉर्निंग मुम्बई' को सुनकर लम्पट मुरली ने प्रोफ़ेसर मुरली का रूप धर गाँधीवाद को आचरण में उतारने में कामयाबी नहीं हासिल की? हम 'लगे रहो मुन्नाभाई' को छोड़ दें तो 'सलाम नमस्ते' की घटनाएँ क्या इन बातों का 'मर्म' समझने के लिए पर्याप्त नहीं है? फिर रेडियो ज़्यादा खर्चीला भी नहीं है।

टी. आर. पी. की पूरी योजना उस पूर्वोत्तर की एकदम उपेक्षा करती है, जो हमारा सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र है। अभी तक यह ज्ञान असन्दिग्ध नहीं बन पाया है कि टेलीविज़न दर्शकों के वर्ग में पूर्वांचल, बिहार या असम–नागालैंड को कितना वज़न दिया जाता है। इनकी तो बात छोड़िये, टी. आर. पी. का वरदहस्त करंजिया जैसे पत्रकारों को भी नहीं मिल पाता जिन्होंने भारत में टेबलॉयड पत्रों की नींव डाली। लोग भूल चुके हैं कि 'ब्लिट्ज़' नाम का कोई पत्र भी निकलता था जिसने मोटे तौर पर अमेरिका और नवसाम्राज्यवाद के विरोध की भूमिका निभायी थी। हाँ, इतना ज़रूर है कि करंजिया ने 'द डेली' (देश के शुरूआती टेबलॉयड दैनिकों में से एक) की जो परम्परा डाली थी वह आज किसी–न–किसी रूप में जारी ज़रूर है। मसलन, 'ऑफ्टरनून कुरियर डिस्पैच' या फिर 'मिड डे'। हाल की बात करें तो दर्शकों या पाठकों की रुचि के प्रभाव मीडिया की अनुकूलन–क्षमता पर भी पड़े हैं। दिल्ली की ही बात करें तो यहाँ से पिछले कुछ महीनों से 'मेट्रो नाउ' और 'मेल टुडे' निकलना शुरू हुआ है, जो टेबलॉयड की एक नयी दशा–दिशा का संकेत करता है। लेकिन भारत दिल्ली नहीं है और दिल्ली पूरा भारत नहीं है। असम, बंगाल, केरल या तमिलनाडु में कितने ही ऐसे पत्र प्रकाशित होते हैं, जिन्हें बाज़ार की गलाकाट होड़ में उपेक्षा की मार झेलनी पड़ रही है। अनेक पत्र–पत्रिकाओं की पत्रकारिता गम्भीर होते हुए भी जनसमर्थन से वंचित होने को अभिशप्त हैं। बड़े स्तर पर देखें तो भारतीय पत्रकारिता की एक धुँधली लकीर ब्लिट्ज़ में ही देखी जा सकती है कि एक ऐसी पत्रिका जो लाखों में बिक सकती है, विज्ञापनदाताओं के समर्थन के अभाव से किस तरह वंचित रह सकती है। किसी पत्र–पत्रिका का सहयोग कोई क्यों करे? किसी पत्रिका की प्रतिष्ठा क्यों बनने दी जाये? इस समस्या के गुणसूत्र समाज की जेनेटिक्स में मौजूद हैं। इनकी खोजबीन ज़रूरी है। भूलना नहीं चाहिए कि करंजिया जैसे लोगों ने ही हमारे समाज को पी. साईनाथ जैसा ज़िम्मेदार पत्रकार दिया है।

दरअसल समाज में विरोध और मतभेद तो होंगे ही। शायद ये विरोध या द्वन्द्व जीवन की शोभा हैं। पर समाज या मानवता का

लक्ष्य द्वन्द्वों से परे जाकर सहिष्णु और द्वन्द्वातीत हो जाना है। न कि द्वन्द्वातीत होने का नाटक करना। तान्त्रिकों की अँगूठी पहने कम्युनिस्ट और कुंडलिनी जागरण या काली पूजा के नाम पर अपनी रोटी सेंक रहे वामपन्थी–पत्रकारिता को और अधिक वस्तुनिष्ठ या उद्देश्यपूर्ण होने की प्रेरणा देते हैं। हिंदी पाठकों की बात करें तो पत्रकारिता का यह दायित्व और भी अधिक बढ़ जाता है। न्यूज़ ब्रॉडकास्टिंग एसोसिएशन द्वारा रचित सिद्धान्त हमारे मार्गदर्शक बन सकते हैं। हम मीडिया के नियमन की भावना को समझें, न कि उसके शब्द–मात्र को। स्टिंग ऑपरेशनों के भी कुछ दिशा–निर्देशक सिद्धान्त बनाने होंगे–सेक्स या फूहड़ता या सड़ाँध से भरी स्टिंग शैली को कतई उचित नहीं कहा जा सकता। बिना अनुमति के किसी व्यक्ति (व्यक्ति क्या, 'सेलिब्रिटी' कहना चाहिए) के निजी जीवन को तब तक सार्वजनिक चर्चा का विषय बनाने पर रोक ज़रूरी है, जब तक उससे कोई लोकसिद्धि न होती हो।

समाचारों की इमारत आजकल मनोरंजन के बगीचे में खड़ी की जाती है। इमारत की खिड़कियाँ खोलिए तो मनोरंजन की मादक हवाएँ कमरे में घुस आएँगी। एक–दो गर्मागर्म चुम्बन घुस जाएँगे, एक–दो ऐसी खबरें चली आएँगी कि आप चैनल बदल देंगे, कभी–कभी तो ऐसी ख़बरें भी, कि आप कसम खा लेंगी/लेंगे कि आइन्दा परिवार के साथ बैठकर 'समाचार' नहीं देखना है। यौन–हिंसा और क्राइम–अपराधों का ग्लेमराइज़ेशन मन को अजीब–सी हालत में पहुँचा देता है। खिलाड़ियों या हीरोइनों के विवादित विचारों को किस तरीके से धनोत्पादक बना दिया जाता है, बताने की ज़रूरत नहीं है। यह बहुत ही दुर्भाग्य का विषय है कि आज के अनेक वरिष्ठ और संवेदनशील साहित्यकार न्यूज़–चैनलों के प्रति उदासीन हो चुके हैं। यानी मीडिया अपने नारकोटिक डिस्फ़ेशन के काम को अंजाम दे चुका है। यही सब कारण हैं कि आज लाइसेंस प्रक्रिया को बदलने के नियमन पर जोर देने की बातें शिद्दत से महसूस की जा रही हैं।

यहाँ विचारणीय प्रश्न है कि समाचार पत्रों के शीर्षकों में अंकों का अक्षर के स्थान पर प्रयोग किस सीमा तक और क्यों किया जाये (सभी 31 जुलाई) वस्तुतः शीर्षक देना एक कला है। व्यस्त जीवन में अखबारों से अधिक उसके शीर्षक बिकते हैं तथा उससे समाचार–पत्र की प्रसार–संख्या में अभिवृद्धि होती है। समाचार–पत्र के शीर्षक आँखों को विश्राम देते हैं ये समाचार–पत्र के विज्ञान जैसे होते हैं जो पाठकों को पत्र खरीदने के लिए प्रेरित करते हैं।

अतएव शीर्षक तैयार करते समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिये कि शीर्षक समाचार के सम्बद्ध भाव को शीघ्रता से प्रकट कर दे। शीर्षक में 'विशेषण' अथवा 'अभिमत' न हो। शीर्षक संक्षिप्त, चुस्त–दुरुस्त, रोचक, आकर्षक एवं प्रभावशाली हो। वह शीघ्रता से तत्व–बोध कराये। शीर्षक भूतकाल में न लिखा जाये, साथ ही इसमें पूर्णवाक्य और क्रियापद का प्रयोग न किया जाये। द्विअर्थी शीर्षक से बचना चाहिये। समाचार–पत्र के पृष्ठ की सजावट शीर्षक से हो। निःसंदेह हिंदी के प्रमुख समाचार–पत्रों के शीर्षकों में (कुछ अपवादों को छोड़कर) वह गरिमा, उदात्तता और मूल्यबोध नहीं रहा जो अब तक रहा था। भद्दपन, अपमिश्रण और त्रुटियों ने उसकी जगह पा ली है। शीर्षक को आकर्षक और प्रभावी बनाने के लिए ऐसे जुमले गढ़ लिये जाते हैं कि वे अनूठे से लगें। उनका शुद्ध भाषा या मूल भाषा से कोई लेना–देना नहीं होता। भूमंडलीकरण की मार से 'जनसंचार माध्यम' भाषा को अर्थशास्त्र के साथ जोड़ने के प्रयास में भाषा के साथ जो खिलवाड़ कर रहा है, उसके परिणामस्वरूप 'हिंग्लिश' भाषा का स्वरूप सबके सामने आ रहा है। इस रास्ते को पकड़कर हमारी भाषाएँ हाइटेक स्पीड में दौड़ लगा रही हैं। यह दौड़ हमारी सम्पन्न भाषिक परंपरा की परवाह किये बिना बहुत आगे बढ़ रही है, जो दुखद है। भाषा से संबंधित सारे सरोकार बेमानी हो रहे हैं। यदि बाज़ार की सत्ता को हिंदी भाषा की सत्ता पर हावी होने से नहीं रोका गया तो आशंका है कि वह दिन दूर नहीं जब भारत में उर्दू की भाँति कोई नयी भाषा जन्म न ले ले और नये राष्ट्र के निर्माण के रास्ते न खुल जायें।

संदर्भ ग्रंथः

1. सेसेलिया फ्रेड एंड बी सिंगर, ऑनलाईन जर्नलिज़म एथिक्स, इंडियन, रिप्रिंट, 2007, पीएच.आई लर्निंग प्रा. लि.
2. द डायनोमिक्स ऑफ़ मास कम्यूनिकेशन, जोसेफ़ आर डोमिनिक, इंटरनेशलन एडीशन मैकग्रॉ हिल, 2011
3. न्यू मीडिया एंड द लैंग्वेज, आनंदिता, पैन, मीडिया वॉच 23'28, वॉल्यूम 3, जुलाई–दिसंबर 2012
4. शालिनी जोशी और शिवप्रसाद जोशी 2015, ''नया मीडियाः अध्ययन और अभ्यास, पेंग्विन, दिल्ली
5. द न्यू मीडिया हैंडबुक, एंड्रजु ड्युडने एंड पीटर राइड, स्टलेज़, 2006

6. शिलर, हरबर्ट आई. (अनु.) राम कवींद्र सिंह, संचार माध्यम और सांस्कृतिक वर्चस्व, ग्रंथशिल्पी, दिल्ली
7. पाण्डेय, भगवान देव, पाण्डेय, मिथिलेश कुमार, ग्लोबल मीडिया टुडे, तक्षशिला प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली
8. कुमार, सुरेश, इंटरनेट पत्रकारिता, 2004, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
9. जगदीश्वर चतुर्वेदी, मीडिया समग्र, अनामिका प्रकाशन, नई दिल्ली
10. धूलिया, सुभाष, सूचना क्रान्ति की राजनीति और विचारधारा, ग्रंथशिल्पी, दिल्ली
11. हरमन, एडवर्ड एस और मैकचेस्नी, रोवर्ट डब्ल्यू (अनु.) चंद्रभूषण, भूमंडलीय जनमाध्यम निगम पूँजीवाद के नए प्रचारक, ग्रंथशिल्पी, दिल्ली
12. जगदीश्वर चतुर्वेदी, माध्यम साम्राज्यवाद, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली
13. जगदीश्वर चतुर्वेदी, टेलीविज़न संस्कृति और राजनीति, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली
14. जोड, सी.ई. एम. इंट्रोडक्शन टु मॉडर्न पोलिटिकल थ्योरी, ऑक्सफोर्ड, यूनिवर्सिटी प्रेस, मुंबई
15. भारतीय विज्ञापन में नैतिकता . मधु अग्रवाल, राज कमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000
16. आउटलुक साप्ताहिक.16, अक्टूबर 2006
17. गैमनसन, डब्लू, ए. और वोल्फ़्सफेल्ड, जी (1993) ''मास मूवमेंट एंड मीडिया इंटरैक्टिंग सिस्टम'' में एनल्स ऑफ़ द अमेरिकन एकेडमी ऑफ़ पॉलिटिकल एंड सोशल साइंस, वॉल्यूम 528
18. मैककार्थी, जे. डी, मैकफ़ैल, सी और स्मिथ, जे (1996) अमेरिकन सोशियालॉजिकल रिव्यू, वॉल्यूम 1982 और 1991 न. 61
19. कुमार के. (2004) यूएसआईडी की मीडिया सहायता: नीति और कार्यक्रम संबंधी पाठ मूल्यांकन कामकाजी 16, यू.एस. एजेंसी फॉर इंटरनेशनल डेवलपमेंट ब्यूरो फ़ॉर पॉलिसी एंड प्रोग्राम कोऑर्डिनेशन
20. Gamson, W.A. and Wolfsfled, G. (1993). "Movements nad Media as Interacting Systems" in Annals of American Academy of Political and Social Science, Vol. 528. p. 64.
21. Stockwell, C. (1992). "The role of the media in the juvenile justice debate in Western Australia", Australian Institute of Criminology Conference Proceedings, September, 2224, 1992.
22. Claussen D. (1998) "Print mass media coverage of the Promise Keepers: The first five years" in Association for Education in Journalisam and Mass Communication Convention, August 5 to 8, Baltimore, Maryland.
23. Kumar, K. (2004). USAID's media assistance: Policy and Programmatic Lessons. Evaluation working paper 16, U.S. Agency for International Development, Bureau for Policy and Program Coordination, p. xiii.
24. Bosnjak, S. (2005). "Fight the power, The Role of the Serbian Independent electronic media in the democratization of Serbia". Simon Fraser University, Unpublished MA Thesis.
25. Sulkanishvili, G. (2003). "Freedom of Expression in the Republic of Georgia: Framing the Attempted Shutdown of the Independent TV Station", Unpublished MSc Thesis, Louisiana State University.
26. Khudiyev, I. (2005). "Coverage of the 2003 post election protests in Azerbaijan: Impact of media ownership on objectivity" Unpublished BA thesis, Louisiana State University.
27. Ahwell, N. (2003). "World Bank Ready to cooperate with Georgia" in WMRC Daily Analysis. 28 November 2003.
28. Atton C. (2001). Alternative media, London: Sage.

कोरापुट, ओड़िशा, भारत
rkdubey.bharat@gmail.com

हिंदी : नाटक एवं रंगमंच

- विविधरंगी छवियों का आकर्षक कॉलिज : भारतीय रंगमंच - डॉ. मनीषा शर्मा
- अमेरिका में हिंदी विकास में रंगमंच का योगदान - डॉ. कुसुम नैपसिक
- सूरीनाम में हिंदुस्तानी रंगमंच का उद्भव और विकास - श्रीमती भावना सक्सैना
- हिंदी रंगमंच की ऐतिहासिक यात्रा - डॉ. के. एस. सुधा अनंत पद्मनाभ
- मॉरीशस का प्रथम हिंदी नाटक : 'जीवन-संगिनी' - डॉ. अलका धनपत
- मॉरीशस में हिंदी नाट्य समारोह का आयोजन - श्री राकेश श्रीकिशन
- सूर्यदेव सिबोरत जी से एक भेंट-वार्ता - डॉ. उदय नारायण गंगू

विविधरंगी छवियों का आकर्षक कॉलिज : भारतीय रंगमंच

–डॉ. मनीषा शर्मा

भारत में रंगमंच की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। भारत की विविध रंगी छवियों की तरह ही भारतीय रंगमंच भी विविध छवियों का अद्भुत मिश्रण हैं, जिसमें अनेकानेक रंग, परंपराएँ मिलकर इसके स्वरूप को भव्यता प्रदान करती हैं। इस प्रकार भारतीय रंगमंच विविध रंग छवियों का कॉलिज है, जो अद्भुत और आकर्षक है।

रंगमंच वह स्थान है, जहाँ नृत्य, नाटक आदि होते हैं। रंगमंच दो शब्दों 'रंग'+ 'मंच' के योग से बना है। दृश्यों को आकर्षक बनाने के लिए रंग का प्रयोग किया जाता है। दीवारों, छतों तथा पर्दों पर विविध प्रकार की चित्रकारी और अभिनेताओं की वेशभूषा और सज्जा में विविध रंगों का प्रयोग होता है। 'मंच' शब्द इसलिए प्रयुक्त हुआ कि दर्शकों की सुविधा के लिए रंगमंच का तल फर्श से ऊँचा होता है। दर्शकों के बैठने का स्थान प्रेक्षागार और रंगमंच सहित सम्पूर्ण भवन को प्रेक्षागृह या रंगशाला या नाट्यशाला कहते हैं। पश्चिम में इसे थिएटर या ओपेरा नाम दिया जाता है।

सामान्य एवं प्रचलित परिभाषा के अनुसार रंगमंच ऊँचे चबूतरे को कहते हैं, जो अगल–बगल और ऊपर से ढका रहता है। जिसके पीछे चित्र या पर्दा लटकता रहता है तथा जिसपर नाटक के पात्र अभिनय करते हैं।[1]

नाटककार के लिए निर्देशक ही रंगमंच है। वह चाहे जिस शैली में, जिस शिल्प में, जिन परिवर्तनों एवं सुधारों के साथ नाटक प्रस्तुत करे।[2]

डॉ. ओझा के अनुसार – "रंगमंच का अपना व्याकरण होता है। निर्देशक या प्रस्तोता, दर्शक अभिनेता, नाट्यमण्डल, दृश्यबंध और रंग–सज्जा के निर्माता रंगशिल्पी, रंगदीपकार या प्रकाश–योजना करने वाला व्यक्ति, ध्वनि, संकेत या ध्वनि–प्रभाव के अवयव आदि रंगमंच के व्याकरण के अंग हैं। इनके इकाई बद्ध और प्रभावोत्पादक प्रयत्न से प्रस्तुतीकरण की कला का सौंदर्य व्यक्त होता है।"

अतः समग्र रूप से कहा जा सकता है कि जिन माध्यमों से नाट्यवस्तु दृश्य बनकर मूर्तरूप में अभिव्यक्त होती है; वह रंगमंच

जन्म : 1977

शिक्षा :
- पी.एच.डी. (हिंदी साहित्य एवं मास कम्युनिकेशन)
- एम.पी. सेट
- एम. फ़िल. (हिंदी)
- एम.ए (हिंदी)
- एम.जे (पत्रकारिता)
- बी.एस.सी. (बॉयोलॉजी)

व्यवसाय :
- चोईथराम कॉलिज ऑफ़ प्रोफ़ेशनल स्टडीज़, इंदौर में प्राचार्य
- शिक्षण एवं साहित्य–लेखन के क्षेत्र में सक्रिय
- कई राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय सेमिनार एवं वर्कशॉप में शोध–आलेख प्रस्तुत

प्रकाशन :
- पत्र–पत्रिकाओं में आलेख, फ़ीचर, कहानी, समीक्षाओं एवं कविताओं का प्रकाशन
- हिंदी पत्रकारिता : स्वरूप एवं परिचय
- विश्व पटल पर हिंदी : सफलता एवं संभावनाएँ, रंग प्रकाशन इंदौर, 2015
- गीता के संचार के तत्व पुस्तक
- मीडिया विविध आयाम पुस्तक, शिवशक्ति प्रकाशन, नई दिल्ली 2011
- ओस की बूँदें (काव्य–संग्रह), रंग–प्रकाशन, इंदौर 2010
- गुंजन सप्तक (सात कवियों का संग्रह), पार्वति प्रकाशन, इंदौर
- विश्व मानवतावादी : डॉ. अबेडकर, रंग–प्रकाशन, इंदौर

पुरस्कार :
- परशुराम आवर्ड (2012)
- ओस की बूँदें (काव्य–संग्रह) हेतु रंग–प्रकाशन द्वारा पुरस्कृत
- कविता–लेखन हेतु सहजीवन फ़ाउंडेशन इंदौर द्वारा पुरस्कृत
- काव्य कलश कालीदास सम्मान (2013)
- जनकवि सम्मान (2013)
- कवि कुलाचार्य सम्मान
- माहेश्वरी सम्मान
- शब्दप्रवाह सम्मान
- उत्कृष्ट शोध पत्र सम्मान (2015)
- रिझवानी साहित्य सम्मान (2016)
- शब्द निष्ठा सम्मान (2016)

है। भाषा, अभिनय, मंच, मंचीय उपकरण, प्रकाश, दृश्यविधान, ध्वनि, रूपसज्जा आदि इसके विभिन्न माध्यम हैं।

नाटक की कलात्मक सार्थकता तभी व्यक्त होती है, जब उसका अभिनय किया जाता है। अभिनीत होने के पश्चात् ही वह अपने अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति करता है। इस अभिनय के लिए रंगमंच की आवश्यकता है, क्योंकि रंगमंच के माध्यम से ही मंचीय प्रस्तुति सरल एवं प्रभावशाली होती है।

भरतमुनि का नाट्यशास्त्र

भरतमुनि का नाट्यशास्त्र अपने आप में पूर्णतः व्यवस्थित और व्यापक ग्रंथ है, जिसमें नाट्य से जुड़े प्रत्येक अंग को सूक्ष्मता के साथ स्पष्ट किया गया है। शास्त्रीय संस्कृत रंगमंच के सभी पहलुओं को विवेचित करता यह ग्रंथ तीसरी शताब्दी के पूर्व लिखा गया था। इस ग्रंथ के कई अध्यायों में नृत्य, कविता, संगीत एवं सौंदर्यशास्त्र सहित नाटक की सभी भारतीय अवधारणाओं पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। इसी के साथ भारतीय दर्शन एवं संस्कृति पर आधारित विभिन्न कलाओं पर भी विस्तार से विचार–विमर्श किया गया है। इसका उद्देश्य भारतीय पुरुषार्थ की अवधारणा में निहित 4 पुरुषार्थों–धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के प्रति लोगों को जागरूक बनाना है। ये 4 पुरुषार्थ जीवन के 4 लक्ष्य हैं। भारतीय नाटकों को इन्हीं 4 लक्ष्यों के प्रति जागरूक बनाने के माध्यम के रूप में प्रयुक्त किया गया।

नाट्यशास्त्र में नाट्य से संबंधित सभी विषयों का आवश्यकतानुसार विस्तार या संक्षेप में निरूपण किया गया है। नाट्य की विषयवस्तु, पात्र, रस, वृत्ति, प्रेक्षागृह, अभिनय, भाषा, नृत्य, गीत और वाद्य के प्रयोग के समय की जाने वाली धार्मिक क्रिया, नाटक के भाव, शैली, सूत्रधार, विदूषक, गणिका, नायिका आदि पात्रों को किस प्रकार कुशलता के साथ अपनी भूमिका का निर्वाह करना चाहिए, उनमें किस प्रकार की कुशलता अपेक्षित है; इन सभी तत्वों पर भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में विस्तार से विचार किया है।

नाट्यशास्त्र की उत्पत्ति को लेकर मतभेद है। भारतीय परंपरा तो इसे 'दैवीय' स्वीकार करती है। इसी के साथ इसकी उत्पत्ति को लेकर एक विवरण भी प्रचलित है। उसके अनुसार सतयुग के समाप्त और त्रेतायुग के आरंभ होने पर सुख में दुख तथा आनन्द में शोक मिश्रित हो गया, इसी के साथ लोग व्याकुल हो गए। तब इन्द्रादि प्रमुख देवताओं ने सृष्टिकर्ता ब्रम्हा से जाकर प्रार्थना की कि आप श्रव्य–दृश्य युक्त पंचमवेद की रचना करें, जिसे सारे ही वर्ण के लोग देख–सुन सकें।

'क्रीड़नीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यंच भद्भवेत्।
न वेदव्यवहारोऽयं संश्राव्यरू शूद्र जातिषु।
तस्मात् सृजापरं वेद पचंम सार्व वर्णिकम्' [3]

इन्द्र के आग्रह पर ब्रम्हा ने भरतमुनि को इस नाट्य–रचना का कार्य सौंपा और भरतमुनि की प्रार्थना पर उन्होंने विश्वकर्मा को प्रेक्षागृह बनाने का आदेश दिया। भरतमुनि ने इसकी रचना की और अपने पुत्रों को पढ़ाया। एक विवरण यह प्रचलित है कि इसके प्रवर्तक स्वयं प्रजापति है, जिन्होंने ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस का परिग्रह कर पंचम वेद के रूप में नाट्यशास्त्र का प्रादुर्भाव किया। महादेव ने सुप्रीत हो लोगों के मनोरंजन के लिए इसे लास्य एवं तांडव का सहयोग प्रदान कर उपकृत किया। देखा जाए तो ऐसा कोई शास्त्र, कोई कला, कोई शिल्प और न ही कोई विद्या है, जिसके विषय में नाट्यशास्त्र में विवेचन न किया गया है। यह अनुपम दिव्यता से अनुप्रमाणित ग्रंथ है। इस प्रकार अनुपम दिव्यता से अनुप्राणित नाट्यशास्त्र के अधिष्ठाता देव की भी कल्पना, इतर वेद एवं वेदांगों के अधिष्ठाताओं की तरह की गई है। जिसके स्वरूप का उल्लेख 'नृसिंहप्रसाद' नामक ग्रंथ में मिलता है।

'नाट्यशास्त्रमिदं रम्यं मृगवक्त्रं जटाधरम्।
अक्षसूत्रं त्रिषुलं च विभ्रार्णाच त्रिलोचनम्।'

वस्तुतः यह ग्रंथ नाट्य से जुड़े संविधान तथा रससिद्धांत की संहिता है। इसे अत्यधिक मान्यता एवं सम्मान प्राप्त है; इसी कारण इसके वाक्य 'भरतसूत्र' कहे जाते हैं।[4]

इस ग्रंथ में प्रत्यभिज्ञा दर्शन की छाप है। इस दर्शन में स्वीकृत 36 मूल तत्वों के प्रतीक स्वरूप नाट्यशास्त्र में 36 अध्याय हैं। यह ग्रंथ मुख्यतः दो पाठान्तरो औत्तरीय और दक्षिणात्य में उपलब्ध है। इन 36 अध्यायों में कुल 4426 श्लोक और गद्य भाग हैं। संगीत, नाटक और अभिनय के संपूर्ण ग्रंथ के रूप में यह मान्य व सम्मानित है। इसमें केवल नाट्य–रचना के नियमों का आकलन नहीं होता, बल्कि अभिनेता, रंगमंच और प्रेक्षक इन तीनों तत्वों की पूर्ति के साधनों का विवेचन होता है। इसके 36 अध्यायों में भरत ने रंगमंच अभिनेता, अभिनय, नृत्य, गीत, दर्शन एवं रस–निष्पति से संबंधित सभी तथ्यों का विवेचन किया है। नाटक की सफलता केवल लेखक की प्रतिभा पर आधारित नहीं होती, बल्कि विभिन्न कलाओं और कलाकारों के सम्यक सहयोग से ही होती है।[5]

आदिकालीन रंगमंच

जब हम सीतावंगा की गुफ़ा को देखते हैं तब हमें भारत में प्रचलित आदिकालीन नाट्यमंडपों के स्वरूप का आभास मिल जाता है। सीतावंगा गुफ़ा 13.8 मीटर लम्बी तथा 7.2 मीटर चौड़ी है। अंदर प्रवेश करने हेतु बाईं ओर से सीढ़ियाँ हैं,

जिनसे शायद अभिनेता प्रवेश करते थे। भीतरी भाग में रंगमंच की व्यवस्था है। यह 2.3 मीटर चौड़ी 3 सीढ़ियों से बना है, जो एक–दूसरे से 75 सेंटीमीटर ऊँची हैं। चबूतरों के सामने दो छेद हैं, जिनमें शायद बाँस या लकड़ी के खंभे लगाए जाते थे। दर्शकों के लिए जो स्थान है, वह ग्रीक ऐंफीथिएटर की भाँति सीढ़ीनुमा है। यहाँ 50 व्यक्ति बैठ सकते हैं। यह आदिकालीन रंगमंच का स्वरूप भी ऊपर वर्णित विकसित स्वरूप से मेल खाता है। भरत नाट्यशास्त्र से भी हमें नाट्यमंडप के प्राचीन स्वरूप का संकेत मिलता है। आदिवासियों के मंडप गुफ़ारूपी हुआ करते थे, किन्तु आर्य लोग अपनी आश्रम सभ्यता के अनुरूप अस्थायी तंबूनुमा नाट्यमंडपों से ही काम चलाया करते थे।[6]

भारत के आदिवासियों के नाट्यमंडपों का प्राथमिक रूप हमें सीतावंगा गुफ़ा, हाथीगुफ़ा तथा नासिक के पास फुलुमई गुफ़ा में प्राप्त होता है।

भरतमुनि द्वारा वर्णित रंगमंच

भरत ने 3 प्रकार के नाट्यमंडप बताए हैं – (1) विकृष्ट अर्थात् आयताकार (2) चतुरस्त्र अर्थात् वर्गाकार (3) त्रयस्त्र अर्थात् त्रिभुजाकार। भरत ने इनके तीन भेद और किए, जिसके अंतर्गत ज्येष्ठ (देवताओं के लिए), मध्यम (राजाओं के लिए) तथा ऊपर (औरों के लिए)। नाट्यशास्त्र में वर्णित इनके निर्देशों के अनुसार ज्येष्ठ की लम्बाई करीब 51 मीटर, मध्यम की लगभग 29 मीटर और ऊपर की लम्बाई लगभग 2 मीटर होगी। चतुस्त्र मंडप की चौड़ाई लंबाई के बराबर और विकृष्ट की लंबाई से आधी होगी।

भरत ने आदिवासियों और आर्यों दोनों के नाट्यमंडपों की संरचना को अपनाया है। इन दोनों के सम्मिलन से बने नाट्यमंडपों के रूप सर्वथा भारतीय हैं। ये पाश्चात्य रंगमंच से अलग हैं। पाश्चात्य नाट्यमंडप का निर्माण खुले मैदानों में होता था और दर्शकों के लिए सीढ़ीनुमा अर्धचंद्र के आकार में प्रेक्षास्थान बनते थे। इसके उलटा भारत में नाट्यमंडपों की व्यवस्था एक गृह के अंदर होती थी। इन नाट्यमंडपों में दीवारों के साथ खंभे बनाकर ऊपर छत का निर्माण किया जाता था। रात के समय प्रकाश हेतु दीपकों और मशालों का प्रयोग किया जाता था। भरत के समय तक नाट्यमंडप के रूप के विषय में नियमों का निर्धारण हो चुका था तथा उनपर धर्म का नियन्त्रण भी स्थापित होना प्रारम्भ हो चुका था।

प्राचीन काल में रंगमंच

भारत में रंगमंच और अभिनय–कला का उदय वैदिक काल में ही हो चुका था। ऋग्वेद के कतिपय सूत्रों में यम और यमी, पुरूरवा और उर्वशी आदि के कुछ संवादों में लोग, नाटक के विकास के चिन्ह प्राप्त करते हैं। माना जाता है कि इन्हीं संवादों से प्रेरित होकर लोगों ने नाटकों का सृजन किया और धीरे–धीरे नाट्यकला का विकास हुआ। इसके पश्चात् भरतमुनि ने इसे शास्त्रीय रूप प्रदान किया। महाभारत में रंगशाला का उल्लेख है और रामायण में नाटक खेले जाने का वर्णन है। रामायण, महाभारत, हरिवंश आदि में नट और नाटक का भी उल्लेख है। पाणिनी ने भी 'शिलाली' और 'कृशाश्च' नामक दो नटसूत्रकारों का उल्लेख किया है। शुल्क यजुर्वेदीय, शतपथ ब्राह्मण और सामवेदीय अनुपद सूत्र में भी शिलाली का नाम मिलता है। विद्वानों ने ज्योतिषीय गणना के अनुसार 'शतपथ ब्राहाण' का समय चार हजार वर्ष से ऊपर बताया है। अग्निपुराण, शिल्परत्न, काव्यमीमांसा तथा संगीत मार्तंड में भी राजप्रसाद में निर्मित नाट्यमंडपों के विवरण प्राप्त होते हैं। इसलिए वे कतिपय, पाश्चात्य विद्वान जो ये मानते हैं कि नाटकों का प्रादुर्भाव सर्वप्रथम ग्रीस या यूनान में हुआ, उनका आकलन सही प्रतीत नहीं होता। वहीं विल्सन जैसे पाश्चात्य विद्वान स्पष्टतः इस तथ्य को स्वीकारते हैं कि नाटकों का प्रादुर्भाव हमारे यहाँ हुआ और हिन्दुओं ने इसे अपने आप किया था। प्राचीन हिंदू राजा बड़ी–बड़ी रंगशालाओं का निर्माण नाटकों के मंचन हेतु करवाते थे।

संस्कृत साहित्य में नाट्यशास्त्र के साथ ही अनेक नाट्यसंबंधी शास्त्रीय ग्रंथ लिखे गए। संस्कृत से होते हुए नाटक लिखने की परिपाटी हिंदी को प्राप्त हुई। संस्कृत नाटकों का सृजन उत्कृष्ट कोटि का है और वे अभिनय के अभीष्ट उद्देश्य को लेकर ही लिखे गये थे। संस्कृत भाषा तथा पाली भाषा के विभिन्न ग्रंथों के शोध द्वारा भी यह बात प्रमाणित होती है कि नाट्यकला प्राचीन भारत के लोगों के जीवन का अभिन्न अंग था। कौटिल्य द्वारा रचित 'अर्थशास्त्र' से तो यह भी पता चलता है कि नागरिकों के जीवन के इस अंग पर राज्य को नियत्रंण करने की आवश्यकता पड़ गई थी। मध्यप्रदेश के सरगुजा में स्थित एक गुफ़ा के भीतर इस प्रकार की रंगशाला के चिन्ह मिले हैं। हो सकता है कि अत्यंत प्राचीन काल में नाटकों के अभिनय के दौरान चित्रपट काम में नहीं लाए जाते हों, क्योंकि अब भी रामलीला और रासलीला बिना परदों के ही अभिनीत की जाती हैं। ऐसा विदित होता है कि भारत में नाट्य परंपरा भरत के पूर्व भी विकसित रही होगी, क्योंकि नाट्यशास्त्र में सैकड़ों ऐसी नाट्यरूढ़ियों का वर्णन है, जो दीर्घकाल की परंपरा द्वारा ही बन सकती है –

"पाश्चात्य प्राच्य विद्वानों के लिए तो भारतीय रंगमंच का अर्थ संस्कृत रंगमंच ही था। भरत के नाट्यशास्त्र और संस्कृत के नाटकों की खोज भी तब हुई जब प्राच्यविदों ने भारतीय ग्रंथों की खोज का काम शुरू किया।"

विलियम जोन्स ने कालीदास के नाटक 'अभिज्ञान शांकुतलम्' की खोज की और सन् 1789 में इसका अनुवाद प्रकाशित किया। कालीदास के पूर्ववर्ती नाटककार भास के नाटक 20वीं सदी में सामने आए। संस्कृत का रंगमंच शास्त्र बद्ध था, जिसमें नाट्य प्रकारों, अभिनय, मंच–सज्जा, रंगापकरणों के साथ शैली की भी परिभाषा निर्धारित थी। इसका केन्द्रीय तत्व 'रस' था। भरतमुनि ने भी नाट्यशास्त्र में 'विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगाद्रसरसः निष्पति' कहकर इसे मूल तत्व माना और रस की उत्पत्ति का स्त्रोत बताते हुए कहा कि विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी (संचारी) भावों से रस की उत्पत्ति होती है। शुद्रक, भवभूति, हर्ष, विशाखदत्त आदि संस्कृत के उल्लेखनीय नाटककार थे। अपभ्रंश भाषाओं के विकसित होने से क्षेत्रीय भाषाओं के रंगमंच को भी विकास के अवसर उपलब्ध हुए हालाँकि इन्होंने भी संस्कृत रंगमंच की विशेषताओं को अपनाया। जनभाषा में होने के कारण ये नाट्यरूप अधिक लोकप्रिय हुए। कुछ विद्वान संस्कृत रंगमंच के अवसान के लिए विभिन्न राजनीतिक परिस्थितियों को भी ज़िम्मेदार मानते हैं।

मध्यकाल

मध्यकाल में प्रादेशिक भाषाओं का उदय हुआ । इस समय मुस्लिम शासकों के प्रभाव के कारण, उनकी धार्मिक कट्टरता के कारण हमारी साहित्यिक रंग–परंपरा बाधित हुई, लेकिन इस समय में भी लोक भाषाओं ने रंगमंच का जिम्मा संभाले रखा। लोकभाषाओं में लोकमंच का अच्छा प्रसार हुआ। रासलीला, रामलीला, नौटंकी आदि के रूप में लोकोन्मुख नाट्यमंच बना रहा। इसके पश्चात् भक्तिकाल में ब्रज व आसपास के प्रदेश में कृष्ण की रासलीलाओं को ब्रजभाषा में अत्यधिक लोकप्रियता मिली। इसी के साथ अवध में मशहूर हुई रामलीला विजयदशमी के अवसर पर भारत के छोटे–बड़े शहरों में बड़ी धूमधाम से मनाई जाने लगी। मध्यकाल में कुछ संस्कृत नाटकों के हिंदी में छायानुवाद भी हुए जैसे नेवाज कृत 'अभिज्ञान शाकुंतल' सोमनाथ द्वारा लिखित 'मालवी माधव' हदयराम कृत 'हनुमन्नाटक' आदि। इसी के साथ कुछ पद्यबद्ध संवादात्मक रचनाएँ भी लिखी गईं, जैसे रघुराम नागर कृत 'सभासार' (नाटक) गणेशकवि द्वारा 'प्रघुम्नविजय' आदि। परन्तु ये रचनाएँ केवल संवादात्मक कही जा सकती हैं। इसमें नाटकीय पद्धति का अभाव मिलता है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि मध्यकाल में साहित्यिक रंगमंच में कोई विशेष उपलब्धि हासिल नहीं हुई। आधुनिक काल में साहित्यिक तथा व्यावसायिक रंगमंच के उदित होने के पहले लोकमंच ने ही नौटंकी, रामलीला व रासलीला के रूप में लगभग चार–साढ़े चार सौ वर्षों तक हिंदी रंगमंच को जीवित रखा। आज भी यह परंपरा जारी है।

आधुनिक रंगमंच

आधुनिक भारतीय नाट्य साहित्य का इतिहास ज़्यादा पुराना नहीं है। इसका वास्तविक विकास 19वीं शती के उत्तरार्ध से आरंभ हुआ और फिर निरन्तर नए–नए सुधार होते रहे। इस काल में अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना के साथ ही रंगमंच हेतु सकारात्मक वातावरण मिला। अंग्रेज़ों के मनोरंजन हेतु पाश्चात्य रंगमंच का भी प्रवेश हुआ। पाश्चात्य रंगमंच ने अपने नाटकों के मंचन हेतु यहाँ अभिनयशालाओं का संयोजन किया, जो थिएटर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस तरह का पहला थिएटर कलकत्ता में प्लासी युद्ध में बहुत पहले बन गया था। दूसरा थिएटर सन् 1795 में खुला, जिसका नाम 'लेफ़ेडफ़ेयर' था। तत्पश्चात् सन् 1812 में 'एथीनियम' तथा 1813 में 'चौरंगी' थिएटर खुले। कलकत्ता के कुछ संभ्रात परिवारों के अमीरों ने इनके निर्माण में योगदान दिया था। इसी के साथ समूचे भारत में व्यावसायिक नाटक मंडलियाँ स्थापित हुईं।

इस प्रकार पाश्चात्य रंगमंच सबसे पहले बंगाल आया, जिसने उसके अनुकरण पर अपने नाटकों के लिए रंगमंच को नया रूप दिया। इसी के साथ बंबई में पारसी लोगों ने भारतीय नाटकों हेतु एक नए ढंग की अभिनयशाला को जन्म दिया। पारसी नाटक कंपनियों ने रंगमंच को आकर्षक और मनोरंजक बताकर अपने नाटक उपस्थित किए। पारसी मंडलियों में एक्प्रेस विक्टोरिया, ओरिजिनल विक्टोरिया, अल्फ्रेड, थियेट्रिकल, आदि ने व्यावसायिक रंगमंच बनाया। ये कंपनियाँ बंबई, हैदराबाद, लखनऊ, बनारस, दिल्ली, लाहौर आदि स्थानों में घूम–घूमकर नाटकों का प्रदर्शन करने लगीं। फ़ारसी रंगमंच के लेखकों में आगाहश्र कश्मीरी, प. नारायण प्रकाश 'बेताब', श्रीकृष्ण हसरव, जमुनादास मेहरा, रौनक बनारसी आदि प्रमुख थे। जनता का सस्ता मनोरंजन कर धन कमाना ही इनका एकमात्र उद्देश्य था। इस कारण उन्हें सस्ते फूहड़ और अश्लील प्रदर्शन में भी जरा संकोच नहीं था। सन् 1630 के आसपास इसकी चमकदमक फीकी पड़ने लगी। सिनेमा ने इसे जड़ से उखाड़ फेंका। फ़ारसी रंगमंच कंपनियाँ अपनी फूहड़ता, कृत्रिमता और अभिनय में अतिरंजना के कारण स्वयंमेव खत्म होने की कगार पर पहुँच गई।

हिंदी रंगमंच और भारतेंदु

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने पारसी रंगमंच के विरूद्ध अव्यावसायिक और साहित्यिक नाट्य लेखन का एक नया आंदोलन ही खड़ा कर दिया। भारतेंदु के पूर्व हिंदी रंगमंच में साहित्यिक प्रयास तो हुए, पर हिंदी का वास्तविक और

स्थायी रंगमंच निर्मित और विकसित नहीं हो पाया। भारतेंदु के पूर्व हिंदी में अव्यावसायिक साहित्यिक रंगमंच के निर्माण का श्रीगणेश आगाहसन अमानत लखनवी के 'इंदरसभा' नामक गीति रूपक से माना जा सकता है। 'इंदर सभा' वास्तव में रंगमंचीय कृति नहीं थी। इसमें शामियाने के नीचे खुला स्टेज रहता था। एक और तख्त पर राजा इंदर का आसन रहता था। शेष 3 और दर्शक बैठते थे। राजा इंदर, परियाँ आदि पात्र एक बार आकर वहीं उपस्थित रहते थे। वे अपने संवादों को बोलकर वापस नहीं जाते थे। इसी के अनुकरण पर कई सभाएँ रची गईं। ये रचनाएँ न तो नाटक थीं, न इनसे हिंदी का रंगमंच निर्मित हुआ था। इसी कारण भारतेंदु इन्हें नाटकाभास कहते थे। उन्होंने इसकी पैरोडी के रूप में बंदरसभा लिखी थी।

भारतेंदु के नाटक लिखने की शुरुआत बंगला के विघासुन्दर (1867) नाटक के अनुवाद से होती है। भारतेंदु से पूर्व नाटककारों में रीवा नरेश विश्वनाथसिंह (1846–1911) के ब्रजभाषा में लिखित नाटक 'आनंद रघुनंदन' और गोपालचंद्र के 'नहूष' (1841) को अनेक विद्वान हिंदी का प्रथम नाटक मानते हैं। गोपालचंद्र भारतेंदुजी के पिता थे, परन्तु ये भी पूर्ण नाटक नहीं थे न ही पदों और दृश्यों की योजना वाला विकसित रंगमंच इस समय तक निर्मित हुआ था। भारतेंदु ने सन् 1868 ई– से सन् 1885 तक अपने अल्प और अत्यंत व्यस्त जीवन में अनेक नाटकों का सृजन किया, अनेक नाटकों में अभिनय किया, रंगशालाएँ बनवाई और इस प्रकार हिंदी रंगमंच को स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके द्वारा लिखित मौलिक नाटकों में 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'सत्य हरिश्चंद्र', 'श्री चंद्रावली', 'भारत दुर्दशा', 'नीलदेवी', 'अंधेर नगरी', 'प्रेमजोगिनी', 'सती प्रताप' आदि प्रमुख है।

यही नहीं उन्होंने अनेक लेखकों और रंगकर्मियों को नाट्य सृजन और अभिनय के लिए प्रेरित भी किया। इन्हीं के प्रोत्साहन व प्रेरणा स्वरूप काशी, प्रयाग, कानपुर, आदि अनेक स्थानों पर हिंदी का अव्यावसायिक साहित्यिक रंगमंच स्थापित हुआ। भारतेंदु के ही जीवनकाल में कुछ रंग संस्थाएँ स्थापित हो चुकी थीं। काशी में 'नैशनल थियेटर', प्रयाग में 'आर्य नाट्य सभा', कानपुर में 'भारत मनोरंजनी सभा' तथा आरा में 'सार्वजनिक नाट्य मंडली' आदि समय समय पर नाटकों का मंचन करके जनता का मनोरंजन करती थीं। ये सभी संस्थाएँ विशुद्ध रूप से अव्यावसायिक थीं। उनके समकालीन लेखकों में प्रतापनारायण मिश्र, केशवराम भट्ट, बाबू जैनेन्द किशोर, बद्रीनाथ भट्ट आदि ने इस क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया। कानपुर में पं. प्रतापनारायण मिश्र ने हिंदी रंगमंच का नेतृत्व किया और भारतेंदु के 'सत्य हरिश्चंद्र', 'भारत दुर्दशा', 'अंधेर नगरी' आदि नाटकों का अभिनय कराया।

भारतेंदु ने संस्कृत, प्राकृत की पूर्ववती भारतीय नाट्य परंपरा के साथ ही अंग्रेज़ी नाट्यधारा से प्रेरणा ली, जिसमें विषय–वस्तु का गंभीर्य नहीं था, न ही शैली–शिल्प की श्रेष्ठता थी। इसी कारण भारतेंदु के हिंदी नाटक कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से विशेष उत्कर्ष को प्राप्त नहीं हुए।

भारतेंदु के निधन के पश्चात् नाट्य–लेखन का उत्साह कुछ धीमा पड़ गया। 19वीं शती के अंतिम दशक में फिर कुछ प्रयत्न हुए। कई नाटक मंडलियों की स्थापना हुई, जैसे प्रयाग में 'श्री रामलीला नाटक मंडली' तथा 'हिंदी नाट्य समिति'। काशी में भारतेंदु के भतीजों द्वारा स्थापित 'श्री भारतेंदु नाटक मंडली' तथा 'काशी नाटक मंडली' आदि। परंतु धनाभाव और प्रोत्साहन के अभाव में ये रंगमंच भी बहुत दिनों तक नहीं चल सके।

20वीं सदी के तीसरे दशक में सिनेमा के आगमन ने पारसी रंगमंच को पूरी तरह खत्म कर दिया। इसके बाद डॉ. रामकुमार वर्मा, सेठ गोविन्ददास, जगदीशचंद्र माथुर, उपेन्द्रनाथ अश्क आदि नाटककारों ने एकांकी नाटकों तथा दीर्घ नाटकों की रचना की। श्री जयशंकर प्रसाद ने उच्चकोटि के साहित्यिक नाटकों की रचना कर हिंदी नाट्य साहित्य को समृद्ध किया। प्रसादोत्तर नाटककारों ने जार्ज बनार्ड शॉ, इब्सन आदि पाश्चात्य नाटककारों के प्रभाव से सुन्दर रंगमंचीय नाटकों की सृष्टि की। हिंदी रंगमंच की चर्चा तब तक पूर्ण नहीं समझी जा सकती जब तक की 'इप्टा' और 'पृथ्वी थियेटर' की बात न हो। 'इप्टा' अव्यवसायी संस्था है, इसके निःस्वार्थ सदस्यों ने खुले थियेटर का बड़ा ही सफल प्रयोग किया है। इसके रंगमंच पर खेले गए नाटकों ने भी काफ़ी लोकप्रियता प्राप्त की है। पृथ्वी थियेटर जो पृथ्वी राजकपूर द्वारा स्थापित किया गया था ने कई नाटक प्रस्तुत किए हैं, जैसे दीवार, गद्दार, पठान, कलाकार आदि। धन की हानि उठाकर भी इसने उत्साहपूर्वक अच्छा कार्य किया।

स्वतंत्रता पश्चात् हिंदी रंगमंच के स्थायी निर्माण की दिशा में अनेक सरकारी और गैर सरकारी प्रयास हुए हैं। रंगमंच को आर्थिक सहायता भी मिली। 6ठे दशक के प्रारंभ में बंगला, मराठी और कन्नड़ जैसी भाषाओं के साथ हिंदी रंगमंच के क्षेत्र में भी संवेदनशील रंगकर्मियों का जन्म हुआ। इनमें हबीब तनवीर, इब्राहीम अल्काजी, लक्ष्मीनारायण लाला, गिरीश कर्नाड, विजय तेंदुलकर आदि स्वनामधन्य प्रमुख राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त निर्देशक हैं।

स्वतंत्रता के बाद हिंदी के रंगमंच को योजनाबद्ध ढंग से विकसित करने का काम प्रारम्भ हुआ। 'नेशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा' की स्थापना

हुई और प्रांतो में सरकारी स्तर पर रंगांदोलन को प्रोत्साहन मिला। इसी परिप्रेक्ष्य में जनवरी 1953 तक अनेक राज्यों में प्रादेशिक अकादमियों की स्थापना के साथ–साथ सन् 1958–59 में 'एशियाई नाट्य संस्थान' अथवा 'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' का स्थापन भारतीय और विशेषत: हिंदी रंगमंच पर नवीन रंगचेतना तथा तकनीक समृद्ध गंभीर रंगकर्म के उदय की दृष्टि से निर्णायक एवं बुनियादी मोड़ कही जा सकती है।[8]

आधुनिक रंगशाला में एक तल फ़र्श से नीचे होता है, जिसे वादित्र कक्ष कहते हैं। ऊपर एक ढालू बालकनी होती है। कभी–कभी फ़र्श और इस बालकनी में बीच में एक छोटी बालकनी और होती है। प्रेक्षागृह में बैठा दर्शक रंगमंच तक सीधा देख सके, इसलिए उसमें उपयुक्त ढाल का विशेष ध्यान रखा जाता है। समय की कमी के कारण आधुनिक नाटक अधिक लम्बे नहीं होते हैं। आधुनिक रंगमंच में ध्वनि–व्यवस्था का उच्च स्तर रखा जाता है। पहले रंगमंच से कोई चित्रकला को दूर करने की कल्पना भी नहीं कर सकता था, लेकिन आधुनिक रंगमंचों में रंग पर्दों, कपड़ों और प्रकाश तक ही सीमित हो गया है। वर्तमान में विद्युत प्रकाश के नियंत्रण और संयोजन द्वारा रंगमंच पर वह प्रभाव उत्पन्न किया जाता है, जो कभी चित्रित पर्दों द्वारा किया जाता था। प्रकाश की व्यवस्था द्वारा ही विविध दृश्यों का रंगमयी मायाजाल बुना जाता है। पहले विभिन्न दृश्यों के परिवर्तन में मंचीय व्यवस्था परिवर्तित करने तथा अभिनेताओं के आने–जाने में जो समय लगता था; उस समय दर्शकों के मनोरंजन हेतु अवकाश गीत रखे जाते थे। परन्तु वर्तमान में परिभ्रामी रंगमंच बनने लगे हैं, जिनमें एक दृश्य समाप्त होते ही रंगमंच घूम जाता है और दूसरा दृश्य जो अन्यत्र पहले से ही सुसज्जित रहता है, समक्ष आ जाता है।

इब्राहीम अल्काजी के शब्दों में – 'भारतीय रंगमंच के विकास में 6ठाँ दशक अनेक कारणों से बहुत ही समृद्ध और महत्वपूर्ण कालों में से एक माना जाएगा। सबसे स्पष्ट और प्रमुख कारण यही है कि इन वर्षों में रंगकला की आनुषंगिक शाखाओं : नाट्यलेखन, अभिनय, निर्देशन, मंच–परिकल्पना एवं प्रकाश–व्यवस्था ने विशिष्ट प्रतिभाओं के ज़रिए प्रौढ़ता प्राप्त कर ली। यह व्यापक उत्कर्ष आकस्मिक नहीं था, क्योंकि इसके पीछे दीर्घ, लेकिन दृढ़ एवं समर्पित प्रयत्न के दस पंद्रह वर्ष है"।

स्वतंत्रता के पश्चात् सरकारी प्रयत्नों से रंगमंच अच्छा प्रदर्शन कर रहा है। अब स्त्रियाँ भी इनमें बढ़–चढ़कर न केवल अभिनय, बल्कि निर्देशन भी कर रही हैं। स्कूलों एवं कॉलिजों की गतिविधियों में भी रंगमंच को प्रोत्साहन मिल रहा है। अनेक सामाजिक सांस्कृतिक संस्थानों से संबद्ध कुछ अच्छे स्थायी रंगमंच बने हैं, जैसे 'थिएटर सेंटर' के तत्वावधान में दिल्ली, बंबई, कलकत्ता, हैदराबाद, बंगलौर आदि स्थानों पर स्थायी रंगमंच स्थापित है। केन्द्र सरकार भी इसे सतत् प्रोत्साहित कर रही है। केन्द्रीय सरकार ने संगीत नाटक अकादमी स्थापित कर नाटककारों और कलाकारों को अच्छा मंच उपलब्ध कराया है। सिनेमा के बढ़ते आकर्षण के उपरांत भी देहाती क्षेत्रों में लोकमंच तथा शहरों में अनेक संस्थाएँ रंगमंच के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य कर रही हैं। भारत में नाट्य–प्रशिक्षण के क्षेत्र में कई विश्वविद्यालय एवं स्वतंत्र संस्थान सक्रिय हैं। जयपुर, हैदराबाद, मैसूर, पुणे, कोलकत्ता, में नाट्य–विभाग स्थापित है। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय (NSD) महत्वपूर्ण संस्थान है, जो रंगमंच के सिद्धांत और व्यवहार दोनों ही पक्षों पर पर्याप्त बल देती है। इसके अतिरिक्त लखनऊ में 'भारतेंदु नाट्य' अकादमी, कोलकाता में 'इंडियन माइम थियेटर' भोपाल में 'रंगमंडल' आदि संस्थान भी लम्बे समय से नाट्य–प्रशिक्षण के क्षेत्र में सक्रियता से कार्य कर रहे हैं।

सिनेमा तथा अन्य माध्यमों के आने से लोगों की रुचियों में बदलाव हुआ, इससे रंगमंच के समक्ष भी चुनौतियाँ उभरीं। फिर भी वह इन चुनौतियों का डटकर सामना कर रहा है और कथ्य एवं शिल्प के क्षेत्र में निरन्तर नवाचार को अपनाकर जीवित है। इसका श्रेय उसकी ताकत बने निष्ठावान रंगकर्मियों को जाता है। आज हिंदी रंगमंच व्यापक स्तर पर राष्ट्रीय रंगमंच की भूमिका में क्रियाशील है तथा रंगशिल्प के प्रति अधिक जागरूक है। वस्तुत: इसका कोई विकल्प नहीं है, इसलिए तमाम चुनौतियों को दरकिनार करते हुए हर दौर में इसका अस्तित्व था, है और भविष्य में भी रहेगा।

संदर्भ–सूची :

1. राजकुमार, 'नाटक और रंगमंच', पृ –55
2. नरनारायण राय, 'नाटक विमर्श', पृ– 41
3. डॉ. मान्धाता ओझा, 'हिंदी नाट्य समालोचना', पृ– |8–19
4. भरतमुनि, 'नाट्यशास्त्र', – 1/11–12
5. डॉ. सुधाकर मालवीय, 'हिंदी दशरूपक', कृष्णदास अकादम, पृ–7
6. 'भरत और भारतीय नाट्यकला के नाट्यशास्त्र की खोज का विवरण'
7. डॉ. जयदेव तनेजा, 'मोहन राकेश : रंगशिल्प और प्रदर्शन', पृ–29

इन्दौर, भारत

dr-manishasatish@rediffmail.com

अमेरिका में हिंदी विकास में रंगमंच का योगदान

–डॉ. कुसुम नैपसिक

"कबिरा खड़ा बाज़ार में लिए लुकाठी हाथ।
जो घर फूंके आपना चले हमारे साथ।"
– कबीरदास

इसी घर फूँक हौंसले के साथ, जो स्वेच्छा से रंगमंच से जुड़ता है, वही रंगमंच की तपस्या में सफ़ल हो पाता है। इस लेख का ध्येय यही पड़ताल करना है कि अमेरिका की भूमि, जहाँ विभिन्न भाषा–भाषी लोग रहते हैं, वहाँ हिंदुस्तानी लोग कैसे अपनी सांस्कृतिक और भाषिक पहचान को रंगमंच के माध्यम से कायम रख पाने में सफल हैं और इसका क्या प्रभाव यहाँ के समाज पर पड़ता है? क्या हिंदुस्तानियों के इस प्रकार खुलकर अपनी भाषा और संस्कृति प्रस्तुत करने से अमेरिकी समाज में हिंदुस्तानियों के प्रति सोच बदल रही है और वे क्या कारण हैं कि हिंदुस्तानी लोग रंगमंच को ही माध्यम बना रहे हैं?

इसमें कोई दो राय नहीं है कि रंगमंच सांस्कृतिक और भाषिक आदान–प्रदान का सबसे उत्तम मार्ग है। चेतना पर इसका प्रभाव सबसे अधिक पड़ता है। इसी कारण हिंदुस्तानियों ने रंगमंच को ही अपनी पहचान और अपनी संस्कृति के विकास का साधन बनाया है। इस तरह अमेरिका में हिंदी को विकसित करने में रंगमंच बहुत ही अहम भूमिका निभा रही है। अमेरिकी विश्वविद्यालय और नाट्य मंडलियों में ऐसे रंगकर्मी और विद्यार्थी हैं, जिनका लक्ष्य पैसा कमाना न होकर हिंदी के प्रचार–प्रसार के माध्यम से लोगों को हिंदुस्तानी संस्कृति और परंपरा से जोड़ना है।

जन्म : भारत

शिक्षा :
- ❖ पी.एच.डी., एम. फिल., एम.ए., हिंदी साहित्य, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय,दिल्ली
- ❖ बी.ए., दिल्ली विश्वविद्यालय के गार्गी कॉलिज
- ❖ पोस्ट ग्रेजुएशन, हिंदी पत्रकारिता, केंद्रीय हिंदी संस्थान

व्यवसाय : अमेरिका के ड्यूक यूनिवर्सिटी, नॉर्थ कैरोलाइना में हिंदी प्राध्यापिका

प्रकाशन :
- ❖ कहानी : बेटी (2012), इमरती (2012), हमारी अलका (2013)
- ❖ कविता : नियति (2011), दरवाज़ा (2017)
- ❖ लेख : परंपरागत भोजन और थैंक्सगिविंग (2014), अमेरिका में महिलामताधिकारों का आगाज़ (2014), तेरे मेरे गाँव (2017)
- ❖ हिंदी वर्णमाला और व्याकरण की वेबसाइट : http://www.hindicentral.com/

अमेरिका में हिंदी नाट्य मंडलियाँ

वैसे तो, अमेरिका में हिंदी रंगमंच का इतिहास मुश्किल से 25–30 साल पुराना होगा, लेकिन यहाँ के लोगों का रंगमंच से अपनापन और जुड़ाव नया नहीं है। अपने हृदय में हिंदुस्तानी मिट्टी की महक लिए कुछ लोगों ने जब हिंदी नाटकों की शुरुआत अमेरिका में की, तो उन्हें कई मुश्किलों से दो चार होना पड़ा। सबसे बड़ी मुश्किल थी लोगों तक कैसे पहुँचा जाए? क्या विदेशी इसे स्वीकार कर पाएँगे? भारत की भाषिक विविधता के चलते हिंदी को अपनी नाट्य भाषा बनाने में क्या–क्या बाधाएँ आएँगी? अपने इन्हीं प्रश्नों के उत्तर पाने के लिए मैंने अमेरिका के कुछ नाट्यकर्मियों और नाट्यनिर्देशकों से बातचीत की और उनके जोश और जज़्बे को देखकर यही लगता है कि जो मशाल उन्होंने जलाई है वह बहुत आगे तक जाएगी। वैसे भी लोगों में जितना

लगन और प्रेम नाटकों के प्रति दिखाई देता है, उतना अन्य किसी विधा में नहीं।

न्यू जर्सी की नाट्य मंडली

अमेरिका की वर्षा नामजोशी नायक का न्यू जर्सी में अपना 'नवरंग डांस अकादमी' है, जहाँ वे करीब 5 सालों से भारतीय नृत्य सिखा रही हैं। न्यू जर्सी में रामलीला का मंचन, तो बहुत सालों से हो रहा है, लेकिन जब अचानक वर्षा को उसमें भाग लेने का अवसर मिला, तब उन्होंने इससे जुड़ना अपना सौभाग्य समझा और हिंदू संस्कृति और परंपरा के अपने प्रेम को इस रामलीला में पिरो दिया।

वर्षा ने इन नाट्य कथाओं में नृत्य, संगीत और आधुनिकता का पुट भी दिया है जिससे लोगों की दिलचस्पी और भी बढ़ी है। लोकधुनों पर आधारित इन नाटिकाओं में सभी समुदाय और धर्म के लोग काम करते हैं। लोकाचार को लोकोत्सव, रीति–रिवाज़, अनुष्ठान, पूजा, व्रत, मेले आदि का समुच्चय कहा जाता है। इसी को उन्होंने अपने नाटकों का सिरमौर बनाया। संगीत की उत्पत्ति का आधार जो भी हो, भारतीय लोक जीवन में संगीत की परंपरा और संस्कार गहराई से समाए हुए हैं। ऐसा कोई अवसर नहीं, जहाँ संगीत की आवश्यकता न हो। 'सामवेद' स्वयं संगीत पर आधारित वेद है, जिसे लोगों द्वारा सम्मिलित रूप से गाए जाने का विधान है। इसलिए आजकल के नाटकों में संगीत की विशेष अहमियत है। इसी कारण धीरे–धीरे नृत्य एवं संगीत के साथ–साथ उन्होंने रंगमंचीयता को भी शामिल कर दिया, जो बहुत सफल रहा।

उन्होंने कहा – **"पहली बार रामलीला करने की प्रेरणा उन्हें देखने से मिली। उन्होंने सोचा सभी तरह के लोग इसको देखने जाते हैं, तो क्यों न अपने देश के लोकनाट्य 'रामलीला' और 'कृष्णलीला' को भी आगे लाया जाए।"**

"रंगमंच केवल समाज का चित्र प्रस्तुत करने के लिए नहीं है, वह कुछ मूल्यों को आधुनिक युग की बुद्धिसंगतता को स्थापित करने के लिए भी है।" इसी विचार के साथ उन्होंने लोकनाट्य को अपने नृत्य में स्थान दिया।

आज भारत जीवंत संस्कृति एवं परंपरा का परिचायक है। भारत के लोग किसी–न–किसी रूप में एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं और उस जुड़ाव की एक सांस्कृतिक परंपरा है, जो उस लोक समूह की पहचान है, पारिवारिक एकता का आदर्श है। राम और कृष्ण दोनों ही आम जन से जुड़े हुए हैं। इसलिए इन दोनों को अपने नाट्य का माध्यम बनाकर वर्षा ने पूर्णता का प्रदर्शन किया है। एक ओर मर्यादापुरुषोत्तम राम तो दूसरी ओर नटखट माखनचोर कृष्ण को लोगों के सामने प्रस्तुत किया। दोनों ही लोकरक्षा हेतु अवतरित हुए हैं और आज रंगमंच द्वारा लोकधर्म एवं लोक संस्कृति की रक्षा कर रहे हैं।

लोगों ने उनके नाटकों में रुचिपूर्वक भाग लिया। उनके नाटकों और रामलीला में आधुनिकता का समावेश तो है ही, साथ ही भारतीय परंपरा और संस्कृति का गठजोड़ भी है, जो उनके नाटकों की ओर लोगों को आकर्षित करता है। लोग उनसे जुड़ते चले जाते हैं और आज उनकी मंडली में हज़ारों लोग शामिल हैं, जिसमें देसी और विदेशी दोनों लोगों का समत्व है। उन्होंने बताया कि भारत की संस्कृति में कुछ ऐसी बात है कि विदेशी उससे आकर्षित हुए बिना नहीं रह पाते। भारतीय वस्त्र, आभूषण एवं भाषा बरबस उन्हें अपनी तरफ़ खींचती है, जिसके प्रलोभन में वे भी इन नाटकों का हिस्सा बनने की चाह रखते हैं और जहाँ भी उनको मौका मिलता है वे लोग इसमें भाग लेते हैं।

उनका कहना है कि भारत के लोकनाट्य 'रामलीला' और 'कृष्णलीला' विश्वप्रसिद्ध हैं और किसी पहचान के मोहताज नहीं हैं। इसके साथ ही भारतीय लोक जीवन में रामकथा और कृष्णकथा का अस्तित्व न जाने कब से परंपरा एवं संस्कृति के विकास के साथ जुड़ा है। समय के साथ इस कथा के स्वरूप एवं वातावरण में थोड़ा–बहुत परिवर्तन अवश्य आया है, लेकिन इससे कोई भी भारतीय अछूता नहीं रह सकता।

वर्षा के अनुसार इस नाटक के लिए कपड़े तथा साज–सज्जा भारत से मँगवाए जाते हैं, लेकिन गदा, तलवार इत्यादि वह अमेरिका में ही अपनी मंडली के सहयोग से तैयार करती हैं। आजकल के तकनीकी युग में वर्षा रामलीला के दृश्य डिजिटल स्क्रीन द्वारा दिखाती हैं, जिससे उन्हें हर बार दृश्य बदलते समय सारा मंच तैयार नहीं करना पड़ता। उनका कहना है कि

दुख के क्षणों में काली रोशनी और सुख में लाल रोशनी लोगों को दृश्य के साथ जोड़े रखने में बहुत उपयोगी है। लोग भी पौराणिक कथाओं में तकनीक देखकर हर्षित होते हैं और उससे अधिक जुड़ाव महसूस करते हैं। उन्होंने अपने नाटकों में सरल हिंदी का उपयोग किया है, जो घरों में बोली जाती हैं। तुलसीदास के शब्दों में –

'भाषा भनिति, भोरि मति मोरी।
हँसिबे जोग, हँसे नहिं खोरी।'

अर्थात लक्ष्य है लोगों तक पहुँचना, जिसके लिए भाषा ही उत्तम मार्ग है, चाहे इसके लिए लोगों की हँसी का पात्र ही क्यों न बनना पड़े। इसी तरह वर्षा भी अपने नाटकों में जनभाषा को ही माध्यम बनाती हैं, जिससे जन–जन को इससे जोड़ा जा सके। उनका कहना है कि अमेरिका में जो भारतीय रहते हैं उनकी भिन्न–भिन्न भाषाएँ हैं। कोई तमिल बोलता है कोई कन्नड, कोई गुजराती, तो कोई मराठी, लेकिन हिंदी थोड़ा–बहुत सभी जानते हैं इसलिए हिंदी नाटकों के विकास में हिंदी–भाषियों के अतिरिक्त अन्य भाषा–भाषियों का भी अमूल्य योगदान नकारा नहीं जा सकता। वर्षा स्वयं हिंदी तथा मराठी भाषी हैं, लेकिन उनके अनुसार हिंदी ही वह धागा है जो हम सबको एक माला में पिरोने का कार्य बखूबी कर सकता है, इसलिए उन्होंने हिंदी को ही अपने नाटकों की माध्यम–भाषा बनाने का निश्चय किया।

वर्षा के अनुसार उनके नाटकों को देखने पंद्रह से सत्रह हज़ार लोग आते हैं। लोगों के उत्साह और संख्या को देखते हुए इसका प्रवेश निःशुल्क रखा गया है, लेकिन फिर भी इसमें आयोजकों को आर्थिक दृष्टि से हानि नहीं होती क्योंकि सबकी भरपाई विज्ञापन और खाने–पीने के खोमचों से हो जाती है। 3 महीने तक लगभग सौ रंगकर्मी, जो स्वयंसेवी भी हैं, इन नाटकों का पूर्वाभ्यास करते हैं। ये रंगकर्मी न सिर्फ़ हिंदी, भारतीय संस्कृति या हिन्दू कथाओं से लगाव के कारण, बल्कि अपने बच्चों को अपनी संस्कृति से अवगत कराने के लिए, अपना समय नाट्य प्रदर्शन को समर्पित करते हैं। लोग अपने बच्चों को राम बनाना चाहते हैं। 3 महीने के बच्चे को माँ स्वयं राम के किरदार के लिए तैयार करने में हर्ष का अनुभव करती हैं। कुल मिलाकर वर्षा को रंगकर्मियों की कमी नहीं है। 3–4 महीने के बच्चे से लेकर 70 साल तक के लोग सहर्ष उनके नाटकों में भाग लेते हैं।

नाटकों के पूर्वाभ्यास के दौरान स्वयंसेवक अपनी मानसिक और शारीरिक स्वच्छता का भी ध्यान रखते हैं। नाटक मंचन के दौरान ये स्वयंसेवक न केवल शांत मन–चित होकर अपनी बातचीत में मधुरता लाते हैं, बल्कि मांस–मंदिरा के सेवन से भी दूर रहते हैं। वे रंगमंच की पवित्रता बनाए रखने के लिए रंगमंच पर जूते–चप्पल भी नहीं पहनते। रामलीला के किरदार निभाने वाले लोग अधिकतर हर साल वही होते हैं, इसलिए लोग उनको उनके अपने नाम से नहीं बल्कि उनके रामलीला के किरदार से ही जानने लगे हैं। श्री रामचंद्र के किरदार निभाने वाले को न्यू जर्सी में सभी 'राम जी' से ही संबोधित करते हैं और पैर छूकर आशीर्वाद लेते हैं। वर्षा कहती हैं कि वे आज के 'अरुण गोविल' बनते जा रहे हैं।

उनकी मंडली में लोग गृहस्थ जीवन और उद्योग–धंधों से जुड़े होने पर भी समाज में क्रांति लाने एवं अपनी संस्कृति से जुड़े होने के कारण शामिल हैं। भारत भूमि की गंध लिए उनके नाटक जीवन से साक्षात्कार कराते हैं। वर्षा नाटकों का अनुवाद बिलकुल नहीं करतीं, वह नाटकों की मौलिकता में विश्वास रखती हैं। ज्योतिष जोशी ने नाटकों की मौलिकता पर कहा है –

"हिंदी रंगकर्म में अनुवाद और नाट्यांतरण की संस्कृति से दूरी बनाई जानी चाहिए, साहित्य की पाठ्य–विधाओं में भी जबर्दस्ती नाटक खोजने से बचा जाना चाहिए और कोशिश की जानी चाहिए कि हिंदी में लिखित मौलिक नाटकों को तरजीह दी जाए। रंगकर्म जब सचमुच एक मिशन हो सकेगा और हिंदी में उसकी एक संस्कृति बन सकेगी जैसे कि वह जनता की भागीदारी होगी, तो कोई चुनौती हिंदी रंगमंच के विकास और उसकी सृजनशीलता को प्रभावित नहीं कर सकेगी।"

वर्षा ने समाज में स्त्रियों के प्रति जागरूकता फैलाने के लिए भी कई नाटकों का मंचन किया है, जिसमें 'ड्रीम इंडिया' नामक नाटक बहुत प्रसिद्ध हुआ। यह नाटक 'निर्भया बलात्कार' विषय पर आधारित है, जिसमें मृत्यु के बाद वह स्वर्ग में सीता, द्रौपदी और

अहिल्या से नारी के अधिकारों और उसके अस्तित्व के विषय में प्रश्न करती है। भारतीय नारियाँ, जो इन नायिकाओं के पदचिह्नों पर चलना अपना कर्तव्य समझती हैं, यह विशेष संदेश उनके लिए है। इन नाटकों से लोगों में जागरूकता बढ़ती है और वे किसी का अंधानुकरण करने के बजाय अपने विवेक का इस्तेमाल करते हैं। इन नाटकों से भारत के प्रति लोगों की सोच बदल रही है और वे उनके विषय में अधिक जागरूक हो रहे हैं।

कैलिफ़ोर्निया का 'नाटक'

सुजीत सर्राफ जो 'नाटक' ग्रुप का संचालन अमेरिका के कैलिफ़ोर्निया राज्य में करते हैं वे 'द टाइम्स ऑफ़ इंडिया' के एक साक्षात्कार में कहते हैं कि इसकी शुरुआत उन्होंने 1996 में की थी। उनके नाट्य मंडली के सभी लोग किसी–न–किसी दूसरे व्यवसाय से जुड़े हैं और नाटक अपनी रुचि एवं नाटकों के प्रति प्रेम के लिए करते हैं। वे खुद नाटक लिखते हैं और उसका निर्देशन करते हैं। उनके नाटक बहुत प्रसिद्ध हैं और लोग दूर–दूर से इन नाटकों को देखने आते हैं। उन्हें इससे कोई आर्थिक लाभ नहीं होता, न ही हानि होती है। नौकरीपेशा होने के कारण समय का अभाव ज़रूर रहता है, लेकिन वर्षों के अनुभव से उन्होंने इन दोनों में तालमेल बिठाना सीख लिया है।

'धूप–छाँव' नाटक मंडली

संध्या सक्सेना भगत हॉल में ही अटलांटा में 'धूप–छाँव' हिंदी नाट्य समूह की 10वीं वर्षगाँठ मनाते हुए हर्षित और गर्वित महसूस करते हुए बोलीं – **"हिंदी के प्रति प्रेम ही है, जो उन्हें इस ओर खींच लाया।"** यह प्रेम भी वैसा है जैसा सूरदास के कृष्ण का अपने ब्रज के प्रति है, **'ऊधो, मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं'** अर्थात अपनी मिट्टी से जुड़ने का सबसे उत्तम मार्ग संध्या को नाटक ही लगा। इसने उन्हें लोगों से जोड़ा और उन्हें अमेरिकी समाज में एक नई पहचान मिली। नाटक लेखन एवं निर्देशन से लेकर मंचित करने तक का पूरा काम वे स्वयं करती हैं। 'एक बंटवारा ऐसा भी' और 'ये कैसा आया ज़माना' आदि नाटकों को रंगमंच पर उतारने वाली संध्या अपने चुटीले व्यंग्य के लिए जानी जाती हैं। बॉलीवुड गानों की पेरोडी बनाना उनके बाएँ हाथ का काम है। इसके साथ ही उन्होंने मशहूर नाटककार मोहन राकेश और के. पी. सक्सेना के नाटकों जैसे 'अंडे के छिलके', 'बाप रे बाप' का भी सफ़लतापूर्वक मंचन किया।

उनके अनुसार अमेरिका में रंगमंच करने से मानसिक संतुष्टि तो है, लेकिन आर्थिक रूप से अभी सफ़लता मिलनी बाकी है। यहाँ के कलाकार भी हिंदी और अभिनय में रुचि के कारण इन नाटकों में काम करना चाहते हैं। कई कलाकार तो विश्वविद्यालय में हिंदी के छात्र होते हैं, उन्हें अपनी भाषा का उपयोग और अभ्यास करने का इससे अच्छा मंच कहाँ मिलेगा? इन छात्रों के कारण उनके नाटकों में विविधता भी आती है।

संध्या के अनुसार उन्हें नाटक में एक बड़ी चुनौती का सामना तब करना पड़ता है, जब वे किसी ऐसे शख़्स से मिलती हैं, जिसे अभिनय करने का बहुत शौक हो, लेकिन उचित अवसर के अभाव में कभी मंच पर उतरने का मौका न मिला हो। ऐसी स्थिति में वे उन लोगों को रंगमंच और अभिनय से संबंधित अतिरिक्त प्रशिक्षण देती हैं, जिससे उन्हें परिश्रम तो करना पड़ता है, लेकिन उनका कहना है कि अगर **"हम मौका नहीं देंगे तो उनकी यह इच्छा कब पूर्ण होगी।"** इस प्रकार मंच पर मौका देने के साथ–साथ वे अपने साथी कलाकारों की भावनाओं का भी ख्याल रखती हैं।

दूसरी कठिनाई उन्हें पैसों की कमी के कारण रंगमंच मिलने में होती है। इस समस्या से निजात पाने के लिए उन्होंने अपने नाटकों का प्रवेश शुल्क 10 डॉलर प्रति व्यक्ति कर दिया है, जिससे उनके नाटकों का खर्चा निकल आता है। उनके नाटक और नाटक मंडली के लोग किसी भी धार्मिक विचारधारा को बढ़ावा नहीं देते। अपने रंगमंच को वे एक पैकेज के रूप में बताती हैं, जिसमें भाईचारा, एकता और मानवता को ही प्रमुख स्थान दिया गया है। उनकी नाटक मंडली में अब लगभग 70 लोग हो गए हैं, जो भिन्न–भिन्न देशों, धर्मों और भाषाओं से हैं। उनकी यही इच्छा है कि उनके नाटकों का मंचन अटलांटा के बाहर अन्य राज्यों में भी हो।

विश्वविद्यालय में हिंदी नाटकों का मंचन

हिंदी नाटक का मंचन अमेरिकी विश्वविद्यालयों में बहुत आम बात है। जैसे ही विद्यार्थी हिंदी लिखना और पढ़ना सीख लेते हैं, उनका अगला लक्ष्य हिंदी में कुछ कर दिखाने का होता है, जिसे वे बड़े

चाव से करते हैं। नाटक के कथानक विद्यार्थी स्वयं ही चुनते हैं। कभी–कभी ये नाटक उनके अपने जीवन की एक झांकी होती है और कभी–कभी वे भारतीय पौराणिक कथाओं को अपने नाटक का विषय बनाते हैं। ये नाटक उनके लिए बहुत रोचक होते हैं, क्योंकि इन नाटकों को लिखने से लेकर अभिनीत करने तक के सभी मोर्चे वे स्वयं ही संभालते हैं। लड़कियों की संख्या भाषा की कक्षाओं में अमूमन अधिक पाई जाती है। अतः लड़कियाँ ही अधिकतर लड़कों की भूमिका अदा करती हैं। जब पुरुष पात्रों के संभाषण लड़कियाँ करती हैं, तब हास्य रस की उत्पत्ति सहज ही होती है।

इन नाटकों से विद्यार्थी एक दूसरे के निकट भी आते हैं और अधिक जान–पहचान होती है। कई दोस्ती तो उम्र–भर के लिए हो जाती है। इन नाटकों को देखने के लिए उनके मित्र तथा अन्य प्रोफ़ेसर भी आते हैं, इसलिए उनके मन में बहुत अच्छा करने की लालसा होती है। इन नाटकों के मंचन के बाद उन्हें भारतीय भोजन भी खाने को मिलता है, जिसमें वे अन्य लोगों से मिलते हैं और लोगों की प्रतिक्रिया से अवगत होते हैं।

जब मैं कोलोराडो विश्वविद्यालय में पढ़ा रही थी तब कोलोराडो में हिंदी के जाने–माने व्यंग्य लेखक यशवंत कोठारी जी अपनी बेटी से मिलने आए हुए थे। संयोग से मेरी मुलाकात उनसे हुई और मैंने उन्हें अपने वार्षिक हिंदी उत्सव में आमंत्रित किया। जब मैंने अपने विद्यार्थियों को उनके आमद की सूचना दी, तो वे अपने अभिनय को लेकर थोड़ा भयभीत ज़रूर हुए, लेकिन यह जानकार उन्हें अत्यंत हर्ष का अनुभव हुआ कि उनके कार्यक्रम को देखने भारत के एक जाने–माने लेखक आने वाले हैं। यशवंत जी को खाने के दौरान उनसे बात करने का मौका मिला, तो उन्होंने विद्यार्थियों के काम की सराहना करते हुए उनका उत्साहवर्धन किया।

जिन नाटकों का मुख्य रूप से मंचन विश्वविद्यालयों में हुआ है, उसमें प्रेमचंद की कहानी 'ठाकुर का कुआँ', 'रामायण' और 'अंधेर नगरी' हैं। 'अंधेर नगरी' के मंचन में **"चूरन साहेब लोग जो खाता। सारा हिन्द हजम कर जाता।"** गाते हुए विद्यार्थियों का जोश देखने लायक होता है। इस प्रकार भारतीय इतिहास और संस्कृति से परिचय करवाना ही इन नाटकों का मुख्य लक्ष्य है, इसलिए यहाँ के पाठ्यक्रम में नाटक लिखना और उसे अभिनीत करना एक अनिवार्य तत्व है।

अंत में यही कहा जा सकता है कि अमेरिका में हिंदी रंगमंच का इतिहास बहुत नया है, फिर भी कथानक और अभिनय की कसौटी पर खड़ा, यह हिंदी रंगमंच जीवन की गहरी अनुभूति कराते हुए अपनी अमिट पहचान छोड़ता है। जब भारत के लोग अन्य देशों में बस जाते हैं, तब नाटकों के प्रति रुझान होना स्वाभाविक ही है। इसलिए नाटकों का मंचन–दर्शन–प्रदर्शन, अपनी सांस्कृतिक विरासत से जुड़ने की एक चेष्टा ही है। हृदय में कुछ छूटने का अहसास सबसे अधिक विदेशों में ही महसूस किया जा सकता है, तभी लोग अपनी संस्कृति, गौरव, भाषा को कायम रखने की अधिक आवश्यकता महसूस करते हैं। कहा भी गया है –

"मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै। जैसे उड़ि जहाज को पंछी, फिरि जहाज पै आवै।"

संदर्भ–सूचीः

1. डॉ. रामसागर त्रिपाठी, 'भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमंच', 1971, अशोक प्रकाशन, दिल्ली
2. सं. सच्चिदानंद वात्स्यायन, 'सृजन और सम्प्रेषण', 1984, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली
3. डॉ. सीताराम झा "श्याम", 'नाटक और रंगमंच', 2000, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना
4. तुलसीदास, 'रामचरितमानस'
5. 'रंगमंचः हिंदी रंगमंच की चुनौतियाँ', जून 5, 2016, जनसत्ता
6. Chidnanand Rajghattal, The times of India, Sep 6, 2014

साक्षात्कार के लिए विशेष आभार : वर्षा नामजोशी नायक, नवरंग डांस अकादमी, न्यू जर्सी, अमेरिका संध्या सक्सेना भगत, धूप–छाँव नाट्यमंडली, एटलांटा, अमेरिका

नॉर्थ केरोलाइना, अमेरिका
kusumknapczyk@gmail.com

सूरीनाम में हिंदुस्तानी रंगमंच का उद्भव और विकास

–श्रीमती भावना सक्सैना

जन्म : 20.01.1973

शिक्षा :
- पी.एच.डी
- एम. फ़िल.
- एम.ए. (हिंदी)
- बी.ए. (प्राणी विज्ञान, रसायनशास्त्र तथा भौतिक विज्ञान)
- संस्कृत एवं स्पेनिश में डिप्लोमा

व्यवसाय : भारत सरकार के गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग में कार्यरत

प्रकाशन :
- सूरीनाम में हिंदुस्तानी, भाषा, साहित्य व संस्कृति नामक पुस्तक प्रकाशित
- अनेक पत्र–पत्रिकाओं में लेख, कविता व कहानी प्रकाशित
- सूरीनाम साहित्य मित्र संस्था द्वारा प्रकाशित प्रथम कविता–संग्रह 'एक बाग के फूल' और कवि श्री देवानंद शिवराज के कविता–संग्रह 'अभिलाषा' का संपादन

पुरस्कार :
- अनुवाद प्रशिक्षण में स्वर्ण पदक
- उत्तम अध्यापक पुरस्कार
- राष्ट्रीय पुरस्कार
- उत्तम शोध ग्रंथ पुरस्कार
- राष्ट्रभाषा रत्न एवं सारस्वत सम्मान

नाटक की उत्पत्ति मूलत: उसी दिन से हुई होगी जब किसी बालक ने खेल–खेल में अपने में किसी अन्य व्यक्ति की कल्पना की होगी। उसी दिन से यह कला निरंतर विकसित होती रही है। पूर्व और पश्चिम के विद्वान, वर्षों से इस विषय में गवेषणा करते आ रहे हैं कि नाटक की उत्पत्ति सबसे पहले किस देश और किस काल में हुई। यद्यपि यह अलग चिंतन का विषय है, तथापि यह समझना आवश्यक है कि किसी देश के नाट्य इतिहास को उस देश के विकास, वास्तविक इतिहास और सांस्कृतिक परंपराओं से जोड़कर ही समझा जा सकता है, साथ ही नाट्य–चिंतन को अंतरराष्ट्रीय स्वरूप के परिप्रेक्ष्य में रखकर समझा जा सकता है।

वर्तमान में 552,112 की बहुसांस्कृतिक जनसंख्या वाले देश सूरीनाम के तट की खोज़ सर्वप्रथम 1499 में अलोन्सो होजया व अमेरिगो वेसपुसी ने की थी और 15वीं शताब्दी तक सूरीनाम में कैरीब, आरावाक, वराओ अमर–इंडियन बसे थे। बाद में यह अंग्रेज़ी व डच उपनिवेश बना और 1863 में विश्व भर में दास प्रथा की समाप्ति के बाद 1870 में ब्रिटेन की रानी विक्टोरिया और हॉलैंड के सम्राट विलियम तृतीय के बीच हुए समझौते के परिणामस्वरूप भारत से सूरीनाम के लिए शर्तनामे पर मज़दूरों की भर्ती आरंभ हुई।

उत्तर प्रदेश के पूर्वी भागों व बिहार से श्री राम देश के सुख और धर्म प्राप्ति की लालसा में निकले भोले–भाले लोग लालारुख जहाज़ से अनेक कठिनाइयों, खराब मौसम आदि का सामना करते हुए 3 माह में, 5 जून, 1873 को पारामारिबो पहुँचे। कालांतर में 64 जहाज़ों से 34304 भारतीय मज़दूर सूरीनाम पहुँचे। 1916 में गिरमिट प्रथा समाप्त हुई। 5 वर्षों की गिरमिट की अवधि समाप्त होने पर 11512 व्यक्ति हिंदुस्तान वापस लौट गए और जिन्होंने सूरीनाम में रुकने का निर्णय लिया, वे वहाँ अपने जीवन को संवारने में जुट गए।

सूरीनाम में रंगमंच की बात करें, तो यहाँ मौजूद थियेटर थालिया कैरिबियाई क्षेत्र का सबसे पुराना थियेटर है, जिसकी नींव 1838 में रखी गई और इसमें पहली बार मंचन 1840 में हुआ। इस रंगमंच पर पहली बार मंचित नाटक थे – सी–एरेस्टो का 'द ईस्ट इंडीज' और 'द रूम ऑफ़ वैक्स गर्ल'। इसके बाद यहाँ यूरोप के

सफल नाटकों का मंचन होता रहा। यहाँ स्थानीय रूप से रचित नाटकों का मंचन काफ़ी बाद में आरंभ हुआ। हिंदुस्तानियों के अतिरिक्त डच, क्रियोल व इंडोनेशियाई मूल के लोगों ने नाटक मंचन किया और ख्याति प्राप्त की। यहाँ सिर्फ़ हिंदुस्तानियों द्वारा किए गए रंगमंच पर ही चर्चा की जा रही है।

सूरीनाम के हिंदुस्तानियों की नाट्य संस्कृति को समझने के लिए उसे भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखना भी आवश्यक है। पराधीन भारत से 1876 में जब सूरीनाम के लिए पहला जहाज़ लालारुख चला, तो उस समय भारत में नाटक कला, स्वांग व नौटंकी का काफ़ी विकास हो चुका था। भारत में अभिनय व रंगमंच का विकास वैदिक काल से ही माना जाता है, जिसका प्रमाण भरतमुनि का नाट्यशास्त्र है। प्राचीन समय में भारत में धार्मिक अवसरों, सांस्कृतिक पर्वों और सामाजिक समारोहों में संस्कृत नाटक खेले जाते थे और जब संस्कृत बोलचाल की भाषा नहीं रही, तो संस्कृत नाटकों का मंचन प्रायः समाप्त हो गया। आधुनिक भारत में हिंदी के विशुद्ध साहित्यिक रंगमंच और नाट्य सृजन की परंपरा में सन् 1800 का बहुत महत्व है। यह भारतेंदु हरिश्चंद्र का समय था, जिन्होंने सन् 1868 से सन् 1885 तक अपने जीवन में अनेक नाटकों का सृजन किया, अनेक नाटकों में स्वयं अभिनय किया, अनेक रंगशालाएँ निर्मित कराईं और हिंदी रंगमंच की स्थापना का स्तुत्य प्रयास किया। अंग्रेज़ी राज्य में भी रंगमंच को प्रोत्साहन मिला। फलतः समूचे भारत में व्यावसायिक नाटक मंडलियाँ स्थापित हुईं।

जिस समय गिरमिटया मज़दूरों का पहला जहाज़ रवाना हुआ, उत्तर भारत में रामलीलाओं के अतिरिक्त महाभारत पर आधारित 'वीर अभिमन्यु', 'सत्य हरिश्चंद्र' आदि नाटक तथा 'रूप बसंत', 'हीर रांझा', 'हकीकत राय', 'बिलवा मंगल' की नौटंकी खेली जाती थी। अंतिम जहाज़ के सूरीनाम पहुंचने तक भोजपुरी के शेक्सपियर माने जाने वाले भिखारी ठाकुर का जन्म हुआ और उनके द्वारा किशोरावस्था में ही भोजपुरी क्षेत्र में नाटक की परंपरा स्थापित की गई। इसका अर्थ यह हुआ कि लगभग 1905 के बाद, जो हिंदुस्तानी भारत से गिरमिटिया मज़दूर के रूप में वहाँ गए, वे अपने साथ भिखारी ठाकुर के भोजपुरी नाटक 'बिदेसिया' के साथ–साथ उनके द्वारा प्रणेत अन्य नाट्य रूप, जैसे 'धोबी नाच', 'छोकरा नाच' आदि भी ले गए। भिखारी ठाकुर की मंडली ने भी उत्तर भारत के शहरों के अलावा मॉरीशस, फ़िजी, कीनिया, नेपाल, ब्रिटेन, गयाना, यूगांडा, सिंगापुर, म्यांमार, दक्षिण अफ़्रीका, त्रिनिदाद आदि देशों के साथ–साथ सूरीनाम की भी यात्राएँ कीं और वहाँ बसे भारतीय मूल के लोगों को उनकी जड़ों से परिचित कराया।

64 जहाज़ों से सूरीनाम पहुँचे श्रमिकों की अपेक्षाएँ पूरी न हुई और उनकी स्थिति बद से बदतर हो गई। वे दुख और शारीरिक श्रम से टूटे थे, किंतु हारे नहीं थे। ये गिरमिटिया मज़दूर शाम के समय एकत्र हो स्वदेश को याद करते अपने घर–गाँव से जुड़े किस्से सुनाते और बिरहा के गीत गाते थे। धीरे–धीरे यहाँ बैठक गाने का विकास हुआ और उन्हीं बैठकों में सवाल–जवाब के रूप में गीत उभरने लगे। अपनी परिस्थितियों से तादात्म्य बैठा, तो स्मृतियों में बसे नाटक, स्वाँग आदि उभरने लगे और फिर वही बीज बने एक समय में फल–फूल रही सूरीनाम की हिंदुस्तानी नाट्य संस्कृति का।

सूरीनाम में सन् 1901 से 1920 तक का समय को नाट्य संस्कृति का आरंभिक काल माना जा सकता है। इस समय यह देश निर्माण प्रक्रिया से गुज़र रहा था। गिरमिट समाप्त होने के बाद काफ़ी हिंदुस्तानी सूरीनाम में रहने का विकल्प अपना चुके थे और स्वतंत्र जीवन स्थापित कर चुके थे। उनका ध्यान अब अपनी संस्कृति को जीवित रखने पर अधिक था और आने वाली पीढ़ियों को शिक्षा देने के लिए अपनी संस्कृति से परिचित कराने के लिए नाटकों का विकास हुआ। इसका आरंभ करताल, मंजीरा, झांझर, ढोल और चौताल के साथ हुआ। इस समय अधिकतर विषय रामायण से लिए जाते थे। होली के समय पर विषय में परिवर्तन होता था – कबीर के दोहे गाए जाते थे। सूरीनाम में कबीर के दोहे गाने की परंपरा आज भी कायम है। इसमें कबीर–वाणी को चौताल पर गाया जाता है।

वर्ष 1920 से 1940 तक संगीत और नृत्य के माध्यम से कहानियों की अभिव्यक्ति में विकास हुआ और रासलीला में नौटंकी अधिक खेली जाने लगी। 40 वर्ष से अधिक समय तक संगीतमाला रेडियो और टेलीविजन से जुड़े रह चुके, वर्ष 1939 में जन्मे पंडित रामदेव रघुवीर रंगमंच से जुड़े वरिष्ठ कार्यकर्ता थे, जिनसे 2009 में जिला वानिका में आयोजित एक कार्यक्रम में मिलने का सुअवसर प्राप्त

हुआ था। उन्होंने बताया कि उनके पिता भी नाटक मंडली में कार्य करते थे। उस समय नाटक मंडलियों का प्रचलन इस सीमा तक था की 11 वर्ष की आयु में ही नाटक मंडली में शामिल हो गए थे। कुछ वर्ष नाटक खेल कर अपनी माता के ज़ोर देने पर उन्होंने पढ़ाई और व्यवसाय पर ध्यान दिया और जब पुनः हिंदी शिक्षण से जुड़े, तो फिर नाटक लिखने व खेलने में व्यस्त हो गए। उस समय एकांकी नाटक बहुत प्रचलित था। अतः रघुबीर जी ने 1960 से 1970 के बीच कई एकांकी लिखे। इनके द्वारा लिखे नाटक हिंदुस्तानियों में बहु चर्चित हुए, जिनमें 'बहू भी बेटी है', 'बकरा', 'मैं भी औरत हूँ', 'लड़की क्यों बहकी' आदि प्रमुख हैं।

इस समय खेले गए कुछ और मुख्य नाटक 'सत्यवादी हरिश्चंद्र', 'राजा नल', 'गोपीमल पूरणमल', 'दशावतार', 'कृष्णावतार', 'भक्त प्रहलाद', 'आल्हा ऊदल', 'बिल्व का गौना', 'श्रवण कुमार', 'पृथ्वीराज चौहान', 'रानी लक्ष्मीबाई' आदि थे। बिजली आदि की सुविधा न होने के कारण अधिकांश नाटक दिन के समय ही खेले जाते थे। सभी नाटकों में सिर्फ़ पुरुष ही भाग लेते थे और स्त्री पात्रों की भूमिका भी पुरुष ही निभाते थे।

उस समय तक महिलाएँ नाटकों के मंचन में भाग नहीं लेती थीं, लेकिन वह विवाह आदि में नाटक खेलती थीं। उत्तर प्रदेश में परंपरा थी कि परिवार में पुत्र विवाह के समय बारात में पुरुष जाया करते थे और बारात के जाने के बाद घर में मनोरंजन के लिए नाटक खेले जाते थे, जिसमें महिलाएँ पुरुष के कपड़े पहनकर अभिनय करती थीं। यही परंपरा सूरीनाम पहुँच कर भी कायम रखी गई।

उस समय बहुत से नाटक लिखे गए और उनका सफ़ल मंचन भी हुआ, किंतु सभी हस्तलिखित रूप में ही रहे। प्रकाशन सुविधाओं के अभाव में सभी को सहेजा नहीं जा सका और आज बहुत कम कथानक उपलब्ध हैं। स्मृतियों और चर्चा के आधार पर, जो ब्योरे मिले उनके अनुसार निम्नलिखित नाटकों के लिखे जाने का उल्लेख है –

1. चंद्रमोहन रणजीत सिंह ने 'अछूत उद्धार', 'नवलखाहार', 'सत्य प्रतिज्ञा', 'भक्त ध्रुव', 'विजय की रोशनी', 'सत्य की रोशनी दशावतार' नाटक लिखे। इनमें से किसी की पांडुलिपि सुरक्षित नहीं है। चंद्रमोहन जी की पुत्रवधु ने बताया कि उनके देहांत के कुछ वर्षों बाद घर में आग लगने पर सब पांडुलिपियाँ नष्ट हो गईं।
2. राम अवतार राम किशन ने 'धर्म की रोशनी', 'विजय की रोशनी', 'कलिकाल की रोशनी', 'भगवान विष्णु का दसवाँ अवतार', 'भागवत पुराण' के कुछ अंश लिखे।
3. वंशीधर रामचंद्र ने लिखे, 'सत्य की रोशनी', 'खुदा दोस्त', 'सुल्तान', 'कृष्णावतार' , 'श्रवण कुमार'।
4. बालकिशन करताराम ने 'ग़रीब की दुनिया' और 'राम राज्य' लिखे।
5. तमन ने लिखा– 'सत्य की विजय'
6. प्रेमानंद भोंदु ने 'परदेसी', 'दीपक' और 'तकदीर' जैसे नाटक लिखे।
7. झिंकू छेदी ने लिखा 'हरिश्चंद्र', 'रस रंग बहार', 'विश्राम सागर', 'बाल चंद्रहास'

8– सूरज प्रसाद बलदेव सिंह 'फूट का नतीजा', 'सत्य की ज्योति', 'खून का नतीजा'

9. सुखराज जग्गू 'सती प्रतिज्ञा', 'विजय बहादुर', 'लखन विजय'
10. अमर सिंह रमण 'कृष्ण सुदामा', 'महालक्ष्मी पूजा', 'धरती के लाल', 'भक्त प्रहलाद कलयुग का अवतार', 'बगीचा', 'प्रवासी भारतीय', 'रहमान खान राम भरोसे'
11. राम देव रघुबीर ने 'बहू भी बेटी है', 'बकरा', 'मैं भी औरत हूँ', 'लड़की क्यों बहकी', 'हिरण्यकश्यप', 'लक्ष्मी पूजन', 'पंचायत', 'एक गांव की लड़की', 'विवाह संस्कार', 'रक्षाबंधन' नाटक लिखे।

सूरीनाम के हिंदुस्तानी वंशजों द्वारा संस्कृति परिलक्षित करने और सहेजने के प्रयास में लिखे गए इन नाटकों की भाषा रोमन लिपि में सरनामी हिंदी है और बाद में इनकी भाषा व लिपि डच व सरनामी मिश्रित रही। खेद का विषय है कि उस समय मुद्रण इत्यादि की सुविधा सुलभ न होने के कारण अधिकांश नाटक लिखित रूप में उपलब्ध नहीं है। किंतु इन सभी में अभिनय, संवाद, कविता, संगीत इत्यादि एक साथ मौजूद थे। इनमें हिंदुस्तानियों की स्थिति, रहन–सहन और संस्कारों की झलक मिलती

थी, जो हिंदुस्तानी संस्कृति को बचाए रखने का अथक प्रयास था। इन नाटकों में अनैतिकता, अत्याचार, राजनीति में भ्रष्टाचार, दमित वासना, शराब आदि का विरोध दिखाया गया। श्री अमर सिंह रमण के नाटक 'प्रवासी भारतीय' का आरंभिक अंश देखने पर स्पष्ट होता है कि उसमें भाषा का प्रयोग कैसा था और किस प्रकार हिंदुस्तानियों की दशा का चित्रण किया जाता था –

(परदा खुलता है । मंच पर एक टेबल दिखाई पड़ता है। उसके आस–पास दो व्यक्ति बैठे हैं। एक तो मंझा होता है। दूसरा सरदार। मंझा बोलता है।)

मंझाः Offr. Sital, eris mewe Hnngrate bimme.

सरदारः ***(जल्दी से खड़ा हो कर बोलता है)*** Ja miji heer.

मंझाः Laat fe bimmem kome.

सरदारः (Ja–Ja करके भीतर दौड़ कर जाता है। और नए मज़दूर को लाता है मंच पर।

नए मज़दूर मंझा को सलाम करते हैं। फिर सरदार ने कहा, मंझा साहेब से ऐसे सलाम नहीं किया जाता है।

मज़दूरः हम तो ना जानित है कैसे करै के हैं। सरदार साहेब तुमही हमारे खातिर कर देवा।

सरदारः नहीं मैं तुम लोग को बताऊँगा, सलाम कैसे करल जाई। (सरदार के बताने पर सबने मंझा को सलाम किया। मंझा हँसता है।)

मंझाः ह–ह–ह–ह ***(हाथ से इशारा भी करता है। फिर सरदार के बताने पर बारी–बारी से सबका नाम भी पूछता है। और मंझा लिखता है।)***

वर्ष 1960 में भारत के बाबू महातम सिंह के सूरीनाम आगमन के पश्चात् भाषा, परिधान आदि में परिष्करण हुआ। इन्होंने नाटकों में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी को प्रोत्साहित किया। श्री अमर सिंह रमण ने अपनी पत्नी व पुत्री को नाटकों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया और उन्होंने कई नाटकों में स्त्री पात्रों की भूमिका निभाई। अमर सिंह रमण हिंदी शिक्षक और पंडित होने के साथ–साथ पेशे से दर्जी थे। उनके पास रामलीला के सभी नाटकों की वेशभूषा उपलब्ध रहती थी। उन्होंने बताया कि जब उन्हें भारत सरकार की ओर से भारत आकर केंद्रीय हिंदी संस्थान में हिंदी सीखने का अवसर मिला, तो वापसी में उनके सामान में दाढ़ी–मूंछ, गदा–तलवार, पूंछ आदि, नाटक के सामान ही भरे थे।

उत्साही कार्यकर्ताओं के परिश्रम के परिणामस्वरूप कुछ नाटक अत्यधिक सफ़ल रहे, जैसे रघुवीर द्वारा लिखित 'अयोध्यापति', 'देश की पहचान', 'लड़की क्यों बहकी' । सांस्कृतिक सभा शांतिदल के अंतर्गत और श्री बालकिशन व रामदेव रघुवीर के निर्देशन में नाटक 'आज और कल' को गांधी संस्था के सहयोग से गयाना में और श्री हिंदू जी के सहयोग से त्रिनिदाद में भी दिखाया गया। भारतीय सांस्कृतिक दूत बाबू महातम सिंह के निर्देशन में खेला गया नाटक 'सुंदर रस' भी सूरीनाम के सभी प्रांतों में दिखाए जाने के बाद गयाना में भी दिखाया गया। 1970 के दशक में सूरीनाम में सभी भाषाओं के नाटक लेखकों, निर्देशकों के कलाकारों का सम्मेलन हुआ, जिसमें सभी ने अपने अनुभव बाँटे और सामूहिक रूप से आदान–प्रदान हुआ। श्री रामदेव रघुबीर जी इस प्रकार के सम्मेलनों को बहुत उपयोगी मानते थे।

धीरे–धीरे अमर सिंह रमण, रामदेव रघुबीर जी की पीढ़ी को वय और स्वास्थ्य के कारण नाटकों से दूर होना पड़ा और इस नाट्य संस्कृति को संभालने वाले कम होते गए।

वर्तमान स्थिति

आज रामलीला का मंचन, तो प्रायः उसी प्रकार जारी है, जैसा पहले था। उसमें नवीन प्रयोग द्वारा काफ़ी सुधार भी हुए हैं। सांस्कृतिक संघ सूरीनाम इस दिशा में विशेष रूप से प्रयासरत है, किंतु अन्य नाटकों का मंचन प्रायः समाप्त हो गया है। इसका एक मुख्य कारण फ़िल्मों और टेलीविज़न के प्रति बढ़ता रुझान भी है। इस दिशा में मात्र कुछ हिंदी अध्यापक, जैसे भजन धनवंती, ऋगवती विमला तुकुन आदि प्रयासरत हैं। आशा है नवागत पीढ़ियों में वैदिक परंपरा आगे ले जाने के लिए उत्साही युवक शीघ्र आगे आएँगे। सांस्कृतिक संघ सूरीनाम के पूर्व अध्यक्ष और मौजूदा उपराष्ट्रपति श्री अश्विन अधीन इस संबंध में काफ़ी सकारात्मक हैं। सांस्कृतिक संघ सूरीनाम के मौजूदा अध्यक्ष अनिल मनोरथ भी काफ़ी सक्रियता से रामलीला के मंचन को प्रोत्साहित कर रहे हैं।

रामलीला मंचन में कुछ संस्थाओं का उल्लेख करना अवश्यंभावी है। इनमें से सामाजिक सांस्कृतिक संगठन 'विश्व ज्योति' विशेष उल्लेखनीय है। संगठन ने 1969 से सूरीनाम में रामलीला का मंचन आरंभ किया तथा इसके मौजूदा अध्यक्ष श्री खूबलाल प्रसाद अनिरुद्ध हैं। सूरीनाम के ज़िला वानिका में फ्रेदनबर्ग सेरी बी में स्थित 'विश्व ज्योति', हर वर्ष सितंबर माह में पारामारिबो और अन्य ज़िलों में रामलीला का मंचन कराती है। यह सांस्कृतिक संघ सूरीनाम के सहयोग से राष्ट्रीय दिवाली उत्सव के दौरान सूरीनाम के इंडिपेंडेन्स स्क्वेयर में भी रामकथा के कुछ अंशों की नाट्य प्रस्तुति कराती है। सूरीनाम के शिक्षा मंत्रालय के संस्कृति विभाग के नीति सलाहकार श्री जन सूरज नारायण सिंह सुभाग अपनी संस्कृति के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित हैं और इन कार्यक्रमों की सफ़लता के लिए जी–जान से जुटे रहते हैं।

'विश्व ज्योति' के अतिरिक्त स्टिचिंग रामलीला एंड रामायण फ़ाउंडेशन सूरीनाम (Stitching Ramlila and Ramayan Foundation Suriname) प्रमुख रूप से रामलीला आयोजित करते हैं। इसके वर्तमान अध्यक्ष श्री अमरीक अनिरुद्ध हैं और संस्था का उद्देश्य नाटक, संगीत और सांस्कृतिक गतिविधियों के सभी तत्वों का समावेश करते हुए रामलीला का विकास करना तथा अलग–अलग संगठनों को एक साथ लाते हुए आवश्यकतानुसार उनकी सहायता करना।

लेइदिंग स्थित सोशल, कल्चरल एंड यूथ एसोसिएशन (Social Cultural and Youth Association) के अध्यक्ष गिरीश रघुनाथ और 'श्री महाशक्ति दुर्गा समाज' के अध्यक्ष श्री राम सुकुल हैं। ये दोनों संस्थाएँ भी रामलीला के मंचन और रामकथा के प्रसार में जुटी हुई हैं। इन सभी के प्रयास से मन आश्वस्त है कि भविष्य में सूरीनाम में रामलीला का अस्तित्व बना रहेगा तथा इसकी उन्नति निर्बाध गति से बढ़ती जाएगी।

रंगमंच का एक विस्तार नृत्य नाटक भी है। जिस प्रकार सूरीनाम में धर्म संस्कृति के साथ–साथ भारत की प्राचीन कलाओं में विद्याओं का प्रसार हुआ है, उसी प्रकार नाट्य संस्कृति का भी विस्तार हुआ है। श्रीमती माधुरी जगमोहन भरतनाट्यम का आधार स्तंभ हैं और उनकी शिष्या और आज की कुशल शिक्षक सुश्री साधना मोहन नृत्य नाटिकाओं के माध्यम से नाट्य संस्कृति को जीवित रखे हुए हैं। माधुरी जी ने 'शिव–पार्वती', 'रामायण और कृष्णलीला' नृत्य नाटिकाएँ प्रस्तुत की हैं, तो साधना मोहन ने 'मीरा' का मंचन किया है। हाल ही में भारतीय सांस्कृतिक केंद्र के सहयोग से 'रावण' नामक नृत्य नाटिका का सफल मंचन किया गया।

विवाह आदि में किया जाने वाला लौंडवा का नाच भी अपने ही तरीके से सूरीनाम में अभिनय की भूमि को पुष्ट करती है। पिछले कुछ वर्षों से क्रियोल व जावानीज़ जैसे अन्य मूल के लोग भी भारतीय नाट्य संस्कृति से जुड़ गए हैं। जावानीज़ सांस्कृतिक केंद्र सना बुदाया में भी रामायण प्रसंगों पर आधारित नृत्य–नाटिकाओं का मंचन किया जाता है।

इससे यही प्रतीत होता है कि सूरीनाम में पूर्वजों की संस्कृति को पीढ़ी–दर–पीढ़ी तक पहुँचाने में रंगमंच का अतुल्य योगदान रहा है। यह यू ही कायम रहेगा, ऐसी आशा एवं विश्वास के साथ सूरीनाम में रंगमंच के उन्नति की कामना करते हैं।

संदर्भ–सूचीः

Oleg Kerensky, The new British Drama

दशरथ ओझा, – हिंदी नाटक उद्भव और विकास

अमर सिंह रमण, – कृष्ण सुदामा और लक्ष्मी पूजा, 1983

भगवती प्रसाद द्विवेदी, विदेसिया – भिखारी की अद्भुत देन http://www.abhivyaktihindi.org/natak/rangmanch/2014/videsiya.htm

- Edtd. Bart Barendregt and Els Bogaerts, Recollecting Resonances: Indonesian&Dutch Musical Encounters
- Campbell Sode, An Asian Immigrant and the Organic Creation of the Caribbean*s Most Unique Fusion Culture, Suriname

भावना सक्सैना, सूरीनाम में हिंदुस्तानी भाषा साहित्य और संस्कृति

सूरीनाम

bhawnasaxena@hotmail.com

हिंदी रंगमंच की ऐतिहासिक यात्रा

–डॉ. के. एस. सुधा अनंत पद्मनाभ

किसी भी देश का साहित्य उसके बाह्य जीवन, राजनीतिक तथा आर्थिक स्थितियों का विवरण मात्र होता है, परंतु राष्ट्र के साहित्य के इतिहास का अध्ययन उस देश के समाज के बौद्धिक, आत्मिक तथा मानसिक विकास का सिंहावलोकन समुपस्थित करता है। 'साहित्य' मनोवेगों की सृष्टि है, उसमें सहित तत्व (सहितस्य भाव: साहित्यम्) की वाणी और अर्थ के वैभव का समावेश होता है। समाज का उत्थान–पतन, उसकी विचारधाराएँ तथा उसकी चेतन के विकास का स्रोत जानने के लिए साहित्य के इतिहास का अध्ययन आवश्यक है। हज़ार वर्षों की दबी भावनाएँ, अनुभूतियाँ तथा सुख–दुख से संबंध विचार शृंखलाएँ साहित्य के माध्यम से ही समझी जा सकती हैं।

हिंदी साहित्य का विकास विभिन्न उत्कर्षों से आन्दोलित परिवेश में क्रमबद्ध मंथरगति से होता आया है। यवनों के आक्रमण ने तो इसकी दिशा ही बदल दी थी, परंतु परिस्थितियों के दुर्गम शिखरों को भी सरलता से पार कर हिंदी–साहित्य जनसाधारण की भाषा में ढलकर लोकप्रिय बनता गया और अब तो इसे जनप्रियता की इतनी प्रभूत राशि उपलब्ध हो गई है कि हिंदी को राष्ट्रभाषा के पद पर सच्चे अर्थों में प्रतिष्ठा प्राप्त हो या न हो, हिंदी साहित्य का अध्यापन कश्मीर से कन्याकुमारी तक अविराम गति से प्रशस्त होता जा रहा है। हिंदी–साहित्य की मूलभूत विशेषता इसकी जनप्रियता है। हिंदी भाषा जन–जन की भाषा होकर संपूर्ण विश्व को एकता के सूत्र में बाँधने का कार्य अत्यंत सरलता से करती जा रही है।

आधुनिक काल के पूर्व हिंदी का समस्त प्राचीन साहित्य पद्य में लिखा गया, किंतु आधुनिक हिंदी साहित्य की रचना पद्य की अपेक्षा गद्य में ही अधिक हुई। हिंदी के आधुनिक साहित्य में गद्य का आविर्भाव नवयुग की चेतना का प्रतीक है।

जिस तरह प्राचीन काल में मनुष्य मूर्ति–रचना, चित्रांकन, संगीत तथा कविता की भिन्न–भिन्न प्रगतियों से अपनी भावनाएँ व्यक्त करता था, उसी प्रकार वह आज भी कर रहा है। साहित्य के मूल में भी वे ही मनोभाव हैं, जो सब कलाओं के मूल में हैं। साहित्य की उत्पत्ति और विकास प्रकार भी उसी तरह हुई है, जिस तरह से अन्य कलाओं का हुआ है। अन्य ललित कलाओं की ही भाँति साहित्य–स्रष्टा का चौतन्य भी मनुष्य है। यह संसार असंख्य जीवधारियों की निवास–भूमि है।

जन्म: 18.07.1976

शिक्षा:
- पी.एच.डी.
- एम. फ़िल.
- बी. एड.
- एम.ए

व्यवसाय: व्याख्याता, हिंदी विभाग

प्रकाशन:
- 'वागप्रवाह' पत्रिका में 'मुद्राराक्षस का साहित्यिक अवधान' नामक लेख प्रकाशित, 2014
- 'भारत का साहित्य और विश्वशांति' पुस्तक में 'साहित्य और विश्वशांति' नामक लेख प्रकाशित, 2013
- 'समकालीन साहित्य की चुनौतियाँ' पुस्तक में 'हिंदी की प्रमुख दलित कहानियाँ' नामक लेख प्रकाशित
- 'हिंदी साहित्य में परिलक्षित संवेदना और सरोकार' पुस्तक में 'हिंदी साहित्य में भक्ति अन्दोलन' नामक लेख प्रकाशित

पुरस्कार: गोवा की राज्यपाल, श्रीमति मृदुला सिन्हा द्वारा पी.एच.डी. आवर्ड, 2015

वर्तमान काल के भारतीय नाटक अधिकांश में पश्चिमी शैली का अनुकरण करके सफलता प्राप्त करना चाहते हैं, परंतु इस देश में रूपक–रचना का मार्ग प्रशस्त किया जा चुका है और हम निस्संकोच रूप से कह सकते हैं कि यहाँ का रचना–क्रम पाश्चात्य प्रणाली से किसी अंश में कम उत्कृष्ट नहीं है। जब हम इस बात पर ध्यान देते हैं कि ईसा के कई शताब्दी पूर्व यहाँ 'नाट्य–शास्त्र' जैसे चमत्कारी ग्रंथ प्रसिद्ध हो चुके थे और भास तथा कालिदास जैसे श्रेष्ठ नाटककार अपनी नाट्य–सृष्टियाँ प्रस्तुत कर चुके थे, तब हमारे मन में आनंद और उल्लास की धारा प्रवाहित हो चलती है।

हिंदी रंगमंच का इतिहास

भारतीय रंगमंच की परंपरा अति प्राचीन है। भारतीय पुराण कथा के अनुसार

स्वयम्भू मनु के साथ ही सतयुग समाप्त हो गया तथा वैवस्वत मनु के साथ त्रेतायुग आरंभ हुआ। उस समय लोग भोग–विलास में डूब गए और चारों ओर दुख बढ़ गया, तब इन्द्र को अपना नेता बनाकर देवता ब्रह्मा के पास प्रार्थना करने गए कि उन्हें मनोरंजन का ऐसा साधन चाहिए, जो दृश्य तथा श्रव्य दोनों हो। अतः उन्होंने ऋग्वेद से पाठ, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस लेकर नाट्य–वेद की रचना की। 'नाट्य–शास्त्र' में वर्णित अन्य कथाओं के अनुसार सर्वप्रथम नाट्याभिनय इन्द्रलोक में देवासुर संग्राम में देवताओं के विजयोत्सव के समय हुआ। अतः रंगमंच की दृष्टि से 'ध्वज–महोत्सव' भारतीय सांस्कृतिक जीवन की प्रथम घटना है। इस अभिनय में भयानक युद्ध तथा मार–काट की चुनौती थी। देवराज इन्द्र को रंगमंच का रक्षक माना गया। दूसरा अभिनय 'त्रिपुरदाह' का हुआ। यह प्रदर्शन ब्रह्मा तथा भरत के सहयोग से त्रिनेत्र भगवान शंकर के सम्मुख किया गया। भरतमुनि के महाभाष्य में अभिनीत होनेवाला तीसरा नाटक था– 'लक्ष्मी स्वयंवर'। पतंजलि के महाभाष्य में 'कंस वध' तथा 'बालि वध' नामक दो नाटकों के अभिनय का प्रमाण मिलता है। वाल्मीकि रामायण में नट, नाटक, नर्तक, संगीत आदि का उल्लेख है। महाभारत काल में सभी वर्गों के लिए नाटक खेले जाते थे।

नाटक एवं रंगमंच की पाश्चात्य परंपरा पर्याप्त समृद्ध एवं महत्वपूर्ण रही है। पाश्चात्य रंगमंच ने लगभग सभी देशों के नाटककारों को दिशा दी है। भारतेंदु–युग से ही हिंदी–साहित्य में पश्चिमी प्रभाव के संकेत मिलते हैं। इसके उपरांत, तो पश्चिमी प्रभाव गहराता गया। आधुनिक काल में हिंदी के अनेक रंगमंचीय आन्दोलन पाश्चात्य जगत् की देन है। हिंदी रंगमंच के दो रूप दिखाई पड़ते हैं –

- लोक–नाट्य–साहित्य को प्रस्तुत करनेवाले रंगमंच और
- साहित्यिक नाटकों को प्रस्तुत करनेवाले रंगमंच

लोक–नाट्य–साहित्य को प्रस्तुत करनेवाले रंगमंच

आधुनिक भारतीय नाटकों को संस्कृत–नाट्य से जोड़नेवाली मूल शृंखला विविध क्षेत्रीय नाटकों की है। रंगमंचीय निरंतरता बनाए रखने के साथ ही ये, नाट्य–शैलियाँ विभिन्न आँचलिक क्षेत्रों को एक सूत्र में बाँधती हैं। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में इस प्रकार की नाट्य–शैलियाँ उपलब्ध हैं –

इनमें जात्रा लोक–रंगमंच का सर्वाधिक सशक्त एवं सुगठित रूप है, जिसने आधुनिक परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तित एवं समृद्ध रूप ग्रहण करते हुए पर्याप्त परिष्करण प्राप्त किया है। मध्यकाल में प्रचलित विविध नाट्य–रूपों की प्रवृत्ति दो प्रकार की है – लौकिक तथा धार्मिक। रामलीला का अभिनय उत्तरी भारत के कोने–कोने में होता रहा है तथा खुले आकाश में मंचीय यह रूप अलौकिक रंगमंच का एक सुंदर उदाहरण है।

साहित्यिक नाटकों को प्रस्तुत करनेवाले रंगमंच

रामलीला (काशी, अयोध्या)	ख्याल (राजस्थान)	कूडियाट्टम (केरल)
रासलीला (व्रज)	रम्मत (राजस्थान)	चविट्ट (केरल)
जात्रा (बंगाल)	रासक (राजस्थान)	भागवतमेल (तमिलनाडु)
अंकिया नाट (असम, बिहार)	तमाशा (महाराष्ट्र)	यक्ष.गान (मैसूर)
कीर्तनियाँ नाट (मिथिला, बिहार)	नौटंकी (उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब)	कुचिपुड़ि(आंध्र प्रदेश)
बिदेशिया (बिहार)	सांग (उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब)	
भवई (गुजरात)	भाण्डजशन (कश्मीर)	
मांच (मध्य प्रदेश)	करियाला (हिमाचल प्रदेश)	

हिंदी के साहित्यिक रंगमंच की स्थापना का श्रेय भारतेंदु हरिश्चन्द्र को है। आधुनिककाल के हिंदी–रंगमंच को निम्नलिखित कालों में विभाजित कर सकते हैं –

1. भारतेन्दु–पूर्व पारसी–हिंदी रंगमंच
2. भारतेंदु–युगीन रंगमंच
3. द्विवेदीकालीन रंगमंच
4. प्रसादयुगीन रंगमंच
5. प्रसादोत्तर रंगमंच
6. समसादोत्तर रंगमंच

1. भारतेंदु–पूर्व हिंदी–पारसी रंगमंच

अंग्रेज़ी रंगमंच से प्रभावित एवं आकर्षित होकर कुछ पारसियों ने भारत में नाट्य मंडलियों की स्थापना की। सर्वप्रथम पेस्टनजी फ्रामजी (Pestonji Framji) ने 'ऑरिजिनल थियेटर' (Original Theatre) की स्थापना की। कंपनी ने मुंशी मदारीलाल से 'इन्दर सभा' नामक एक नाटक लिखवाया और प्रस्तुत किया। अन्य लेखकों में मोहम्मद मियाँ रौनक तथा हुसैन मियाँ ज़रीक का स्थान प्रमुख है। कंपनी के प्रमुख अभिनेता थे – खुर्शीदजी बालीवाला (Khurshidji Balliwala), कावसजी खट्टन (Cowasji Khattan), सोहराबजी, जहाँगीरजी तथा पारनिसजी। कालांतर में खुर्शीदजी बालीवाला ने 'विक्टोरिया थियेट्रिकल कंपनी' (Victoria Theatrical Company) तथा कावसजी खट्टन ने 'एल्फ्रेड थियेट्रिकल कंपनी' (Alfred Theatrical Company) की स्थापना की। पारसी थियेटर के नाटक–लेखकों में मुंशी विनायक प्रसाद 'तालिब', मेहंदी हसन

असहन, नारायण प्रसाद 'बेताब', पं– राधेश्याम कथावाचक, आगा हश्र कश्मीरी, कृष्णचन्द्र 'जेबा', ज्वाला प्रसाद 'बर्क', हुसैन मियाँ 'जरेफ़', हाफ़िज मुहम्मद आदि का नाम प्रतिनिधि कलाकारों के रूप में लिया जा सकता है। पारसी–हिंदी नाटकों के कथानक पौराणिक एवं ऐतिहासिक प्रसिद्ध चरित्रों, दंत–कथाओं, आख्यान कथाओं आदि पर आधारित होते थे। रंगमंच पर शौर्य, साहसिकता, आश्चर्यमूलक चमत्कार आदि की स्थितियाँ पैदा करना पारसी रंगमंच की व्यावसायिक सफलता की कुंजी है। भावुकतापूर्ण, सपाट कथानक को सजाने के लिए ही तरह–तरह के मनोहरी दृश्यों की योजना की जाती थी। नाटकों के बीच–बीच में कई स्थलों पर नृत्य तथा चित्रवत् झाँकी प्रस्तुत करना नाटककार के कमाल की कसौटी ही थी। कथा में चटपटे गीत, फड़कते हुए संवाद तथा स्थान–स्थान पर शेर के द्वारा इसे और मनोरंजक बनाया जाता था।

2. भारतेंदु–युगीन रंगमंच

हिंदी के साहित्यिक रंगमंच की स्थापना का श्रेय भारतेंदु हरिश्चन्द्र को है। उन्होंने पारसी–रंगमंच के हाथों हिंदी के उच्चकोटि के नाटकों की दुर्दशा देखकर परिमार्जित रुचि के अनुकूल नाट्य–मंडली का निर्माण किया। एक बार भारतेंदु, डॉ. थीबो को लेकर शकुन्तला का अभिनय देखने के लिए 'नाचघर' गए। वहाँ जब उन्होंने धीरोदात्त नायक दुष्यन्त को कमर पर हाथ रखकर मटक–मटक कर नाचते और 'पतली कमर बल खाय' गाते देखा तथा भारतीय नाटकों की महान् नायिका शकुन्तला को उसी के अनुकूल अभिनय करते देखा, तो वह डॉ. थीबो, बाबू प्रमदादास आदि नाचघर छोड़ कर उठ आए। भारतेंदु की नाट्य–मंडली को प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनाथ भट्ट, बालकृष्ण भट्ट, बदरीनारायण चौधरी आदि ने भरपूर सहयोग दिया। इस नाट्य–मंडली ने भारतेंदु तथा उनके मण्डल के नाटककारों के नाटकों का सफल अभिनय किया। भारतेंदु ने जिस रंगमंच की स्थापना की थी वह बहुत–कुछ बंगला रंगमंच से प्रभावित था। भारतेंदु रंगमंच ने हिंदी–समाज में एक नई चेतना पैदा की, जिसके परिणामस्वरूप कई बड़े नगरों में साहित्यिक अभिरुचि के हिंदी रंगमंचों का निर्माण हुआ। भारतेंदु–युगीन सभी नाटककारों की मूल दृष्टि रंगमंच पर ही टिकी रही। सुखांत एवं दुखांत दोनों प्रकार का नाट्य–सृजन इस काल में हुआ। इन लोगों ने बंगला नाटकों के अनुवादों का भी मंचन किया।

3. द्विवेदीकालीन रंगमंच

द्विवेदी–युग में नाटक के क्षेत्र में निष्क्रियता फैलने लग गई थी। भारतेंदु के प्रयास से जिस नाटकीय रंगमंच की स्थापना हुई थी, वह शिथिल पड़ गई। द्विवेदी–युग का योगदान नाट्य–रचना के क्षेत्र में न होकर नाट्य–प्रस्तुति के क्षेत्र में अधिक रहा। इस काल की सबसे बड़ी देन के रूप में पंडित माधवप्रसाद शुक्ल जैसे प्रतिभाशाली उत्साही अभिनेता, निर्देशक, लेखक का नाम उल्लेखनीय है।

4. प्रसाद–युगीन रंगमंच

प्रसाद–युग में आकर जनता की साहित्यिक अभिरुचि में निश्चय ही बड़ा परिष्कार हुआ। हालाँकि प्रसाद के मन में नवीन नाट्य–शैली एवं रंगमंच के खोज की प्रेरणा बलवती रही है, नाटकों के लिए अभिनेयता को आवश्यक नहीं मानते थे। हिंदी में साहित्यिक नाटकों के घोर संकटकाल में पारसी नाटक के दोले में झूलते हुए नाटक को प्रसाद ने स्थिर साहित्यिक रूप, सक्षम भाषा–शैली, सार्थक जीवनानुभूति, संपन्न वस्तु एवं शिल्प तथा नवीन रंगमंचीय दिशा तथा दृष्टि दी। रंगमंचीय संकट के उस समय में विद्रोह का स्वर उठाते हुए प्रसाद ने नवीन सार्थक रंगमंच की खोज आरंभ की। 'विशाख' से लेकर 'ध्रुवस्वामिनी' तक की विकास–यात्रा को ध्यान से देखने पर स्पष्ट होता है कि किस प्रकार प्रसाद नाट्य–रचना में उत्तरोत्तर उन्नति की ओर अग्रसर हुए। प्रारंभिक नाटकों की तुलना में उनके 'स्कन्दगुप्त', 'चन्द्रगुप्त' तथा 'ध्रुवस्वामिनी' में नाट्य–शिल्पगत प्रौढ़ता द्रष्टव्य है।

5. प्रसादोत्तर रंगमंच

नाट्य–रचना के क्षेत्र में प्रसाद के समकालीन लेखकों का योगदान, प्रसाद की अपेक्षा बहुत ही कम रहा है। कुछ लोगों ने तो नाट्य–रचना को शौकिया अपनाया तथा एक–दो नाटकों की रचना के बाद इस विधा से मुकर गए। फिर भी उदयशंकर भट्ट, सेठ गोविन्ददास, गोविन्द बल्लभ पंत, लक्ष्मीनारायण मिश्र, हरिकृष्ण 'प्रेमी', वृन्दावन लाल वर्मा आदि के प्रयास अपेक्षाकृत उल्लेखनीय हैं। इनके नाटक केवल लिखे गए और प्रकाशित हुए। ये किसी भी रंगमंचीय परंपरा से जुड़े न थे। चौथे दशक के अंतिम चरण से हिंदी रंगमंच के क्षेत्र में प्रकाश की किरण दिखाई दी। इसी समय 'पृथ्वी थियेटर' के साथ हिंदी के व्यावसायिक रंगमंच ने पहली करवट ली। फ़िल्मी जगत् की प्रसिद्ध हस्ती पृथ्वीराज कपूर ने नाटक कंपनी खोलकर देश के प्रायः सभी बड़े शहरों में नाटक खेले। इस परिवर्तित रंगमंचीय चेतना की सर्वप्रथम अभिव्यक्ति उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के नाटकों में मिलती है। उन्हीं के नाटकों से हिंदी नाटक यथार्थवादी रंगमंच से जुड़ा। अश्क के प्रायः

सभी नाटक अभिनेयता की शर्त पूरी करते थे तथा जगदीशचन्द्र माथुर को नाट्य–क्षेत्र में अपूर्व सफलता प्राप्त हुई।

6– समसामयिक रंगमंच

हिंदी–साहित्य का 6ठा दशक हिंदी नाट्य जगत् में अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण रहा है। इसी समय धर्मवीर भारती का काव्य–रंगमंचीय 'अंधा युग' नाटक प्रकाशित हुआ। इसके प्रकाशन से सिद्ध हो गया कि काव्य और नाटक का अन्योन्याश्रित संबंध है। इब्राहिम अलकाजी ने इसका मंचन दिल्ली के पुराने किले के खण्डहरों की पृष्ठभूमि में मुक्तकाशी रंगमंच पर किया। नई नाट्य–संभावनाओं के कारण 'अंधा युग' नाटक और रंगमंच के बीच दोहरे और जटिल संबंध में निहित भाषागत दृष्टियों तथा अभिनयात्मिका वृत्ति से अनेक उपलब्धियाँ प्रस्तावित करता है। दुष्यंत कुमार का 'एक कंठ विषपायी' नवीन नाट्य–धारा का उल्लेखनीय काव्य–नाटक है, पर 'अंधा युग' से आगे नहीं बढ़ पाता, क्योंकि इसके पात्र मूल कथ्य और रंग–संभावनाओं को धूमिल बना देते हैं। अज्ञेय का नाटक 'उत्तर प्रियदर्शी' पुराण कथा पर आवृत्त है।

'7'वें दशक के काव्य–नाटकों में दिनकर की 'उर्वशी' अत्यधिक महत्वपूर्ण है। कवि ने रंग–निर्देशों की योजना भी की है। नए रंगमंचीय आन्दोलनों में लक्ष्मीनारायण लाल, विष्णु प्रभाकर, विनोद रस्तोगी, नरेश मेहता, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार आदि के नाम काफ़ी चर्चित रहे हैं। लक्ष्मीनारायण लाल ने नाट्य–लेखन, मूल्यांकन, निर्देशन, अभिनय, सभी क्षेत्रों में हिंदी रंगमंच की सेवा की है। उन्होंने 'अंधा कुआँ', 'मादा कैक्टस', 'तोता–मैना', रातरानी' आदि अनेक नाटकों की रचना की है। उनके सर्वाधिक सफल नाटक 'दर्पण' और 'मिस्टर अभिमन्यु' है। विष्णु प्रभाकर का नाटक 'डॉक्टर' नए रंगमंचीय आन्दोलन का सार्थक प्रतीक है। स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में नेहरू–युग की आशा–निराशा अनेक नाटकीय मोड़ों के साथ व्यक्त हैं। तत्कालीन नाटककारों में डॉ. शिवप्रसाद सिंह, कृष्ण किशोर श्रीवास्तव, विमला रैना, चिरंजीत, रेवतीशरण शर्मा एवं ज्ञानदेव अग्निहोत्री उल्लेखनीय हैं।

सन् 1961 में 'भारतीय नाट्य–संघ' के तत्वावधान में आयोजित अखिल भारतीय नाट्य–गोष्ठी की सिफ़ारिश पर नए नाटककारों ने संस्कृत और लोक–नाट्य की पद्धतियों का प्रयोग करके नए रंग–आन्दोलन को विकसित करने के प्रयास आरंभ कर दिए। गिरीश करनाड ने 'हयवदन' में पारंपरिक लोक–नाट्य यक्षगान के कुछ तत्वों को प्रयुक्त किया है। विजय तेण्डुलकर ने महाराष्ट्र की तमाशा–शैली को तथा उत्पल दत्त ने बंगाल की जात्रा–शैली को अपने नाटकों में प्रयुक्त किया।

इधर विभिन्न निर्देशकों ने महत्वपूर्ण नाटकों का प्रदर्शन भिन्न–भिन्न भाषाओं या एक ही भाषा में अपनी–अपनी सृजनात्मक प्रतिभा के अनुसार विभिन्न शैलियों में किया है, जैसे – 'तुग़लक' को अलकाज़ी ने उर्दू में, कारंत ने कन्नड़ में, देशपाण्डे ने मराठी में, ओदिमनी ने अंग्रेज़ी में और श्यामानन्द जालान ने बंगाली में प्रस्तुत किया। 'ख़ामोश अदालत जारी है' का निर्देशन इसी प्रकार 'एवं इन्द्रजीत' को श्यामानन्द जालान, सत्यदेव दुबे तथा बादल सरकार ने निर्देशित किया।

7 वें दशक में हिंदी रंगमंच की कला स्वतंत्र रूप से विकसित हुई और जन–नाट्य मंच, थियेटर ग्रुप, लिटल थियेटर ग्रुप आदि अनेक नाट्य–केंद्रों ने प्रदर्शन की नवीन प्रवृत्तियाँ प्रस्तावित कीं। नाट्य–लेखन के इसी दौर में अर्थ–व्यंजक लघु नाटक 'तीन अपाहिज', 'एक और दिन' और 'अपना–अपना जूता' लिखे गए। लोक नाट्य–शैली की प्रभाव–क्षमता को उजागर करते हुए हबीब तनवीर ने लोकमतों के प्रयोग द्वारा 'आगरा बाज़ार', 'चरनदास चोर', 'गाँव का नाम ससुराल मोर नाम दामाद' आदि सशक्त रंगमंचीय नाटक लिखे। राजधानी के 'राष्ट्रीय नाट्य–विद्यालय' ने भी हिंदी रंगमंच को नई दिशा देनी चाही है। इस समय देश में विभिन्न नाट्य–संस्थाएँ लीक से हट कर नए रंगमंच की एक नयी तस्वीर पेश कर रही हैं। इनमें दिशांतर, संकेत, अभियान, इप्टा, अनामिक कला–संगम, संगीत श्यामला, अदाकार, रंगकर्मी, जन नाट्य–मंच, यात्रिक, त्रिवेणी कला–रंगमंच, सेतु–बंध, लकीज, भारतेंदु नाट्य–केंद्र, अग्रदूत, श्रीराम कला संस्कृति केंद्र, थियेटर कम्यून, रूपांतर आदि उल्लेखनीय हैं। 'रंगकर्मी' (कलकत्ता) की निर्देशिका उषा गांगुली रंग–चेतना की अनुपम–भावी तस्वीर हैं। हिंदी–रंगमंच अपने विकास–मार्ग की ओर लगातार बढ़ रहा है। इस विकास के मूल में श्री कारन्त, भानु भारती, रामगोपाल बजाज, राजेन्द्रनाथ, ब्रजमोहन शाह, हबीब तनवीर जैसे समर्थ नाट्य–निर्देशक हैं। हिंदी–रंगमंच आज नई–से–नई प्रयोगधर्मिता को बढ़ावा देने की स्थिति में है।

संदर्भ–सूचिः

1. डॉ. रामरतन भटनागर, हिंदी साहित्य का इतिहास एक सर्वेक्षण
2. आचार्य दुर्गा शंकर मिश्र, हिंदी साहित्य का इतिहास
3. डॉ. श्यामसुन्दर दास, साहित्यालोचन
4. शिवलोचन पाण्डेय, हृदयेश मिश्र, हिंदी साहित्य का इतिहास

तिपतुर, कर्नाटक, भारत

kssudha229@gmail.com

मॉरीशस का प्रथम हिंदी नाटक -'जीवन-संगिनी'

–डॉ. अलका धनपत

जन्मः 1961

शिक्षाः

- पी.एच.डी. (छायावादोत्तर हिंदी काव्य–लेखन और आधुनिकता)
- एम. फ़िल. (संशय की एक रात – परंपरा और आधुनिकता)
- एम.ए., बी. एड, बी.ए. (हिंदी)

व्यवसायः

- वरिष्ठ प्राध्यापिका, हिंदी विभाग, महात्मा गांधी संस्थान
- पूर्व हिंदी विभागाध्यक्षा, महात्मा गांधी संस्थान

प्रकाशनः

- 'संशय की एक रात'– 'परंपरा तथा आधुनिकता' (पुस्तक)
- 'दर्द अपना–अपना' (कहानी)
- अनेक लेख व शोध–पत्र 'गवेषणा', 'राजभाषा मंजूषा' (शोध पत्रिका), 'गगनांचल', 'वसंत', 'रिमझिम', 'सुमन' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित

पुरस्कारः

- प्रवासी शिक्षक सम्मान, भारत
- हिंदी सेवी सम्मान
- 'डॉ. जॉर्ज ग्रियर्सन पुरस्कार'

मॉरीशस की प्रथम हिंदी पुस्तक 'मॉरीशस का इतिहास' में पंडित आत्माराम लिखते हैं–

'वृत्तपत्र बिना जनता में जागृति नहीं उत्पन्न हो सकती है, इसलिए एक हिन्दुस्तानी समाचार–पत्र निकालने पर आपने कमर बाँधी। फिर भी धन का सवाल सामने आकर खड़ा हुआ। चंदा करके हिन्दुस्थान से एक छापेखाना मँगवाया और 'हिंदुस्थानी' नामी समाचार–पत्र अंग्रेज़ी और हिंदी भाषा में प्रकाशित करना आपने आरम्भ किया। थोड़े ही दिनों के अन्दर 'हिंदुस्थानी' ने यहाँ के जमींदारों में हाहाकार मचा दिया।' (1998, पृ– 174)

इसी 'हिंदुस्थानी' पत्र में मॉरीशस की प्रथम हिंदी कविता 'होली' छपी थी, जिसके रचनाकार कवि गणेशी थे। कविता के बाद कहानी–लेखन भी प्रारंभ हुआ, पर नाटक की दृष्टि से मॉरीशस का प्रथम प्रकाशित नाटक 'जीवन–संगिनी' है। यह जयनारायण राय कृत है तथा इसका प्रकाशन सन् 1941 में हुआ था। इस नाटक का प्रकाशन हिंदी प्रचारिणी सभा ने किया और इस नाटक के 10 वर्ष बाद सन् 1951 में ब्रजेन्द्र कुमार 'मधुकर' भगत का नाटक'आदर्श बेटी' हिंदी में प्रकाशित हुआ।

'जीवन–संगिनी' नाटक कभी रंगमंच पर नहीं खेला गया। इस प्रकाशित नाटक से पूर्व मॉरीशस में नाटक खेलने की लोक परंपरा मिलती है। आस्तानंद सदासिंह 'तू तू' पुस्तक की भूमिका में लिखते हैं:

"नाटकों का मंचन उतना ही पुराना है जितने कि हमारे पूर्वज।"

दास प्रथा के उन्मूलन के बाद सन् 1834 से भारत से शर्तबंद मज़दूर मॉरीशस लाए गए। जो मज़दूर भारत से मॉरीशस गिरमिटिया या शर्तबंदी की प्रथा के अंतर्गत आए थे, वे धोखे से यहाँ लाए गए थे। उनसे कहा गया था कि मॉरीशस टापू पर पत्थर उलाटने पर सोना मिलता है। अपनी मजबूरी, भारत में अंग्रेज़ों के अत्याचार तथा एक अच्छे भविष्य की लालसा के कारण वे मॉरीशस आए। ये शर्तबंद मज़दूर, अपने साथ अपने संस्कार, अपनी संस्कृति तथा कुछ धार्मिक पुस्तकें भी लाए थे। प्रारंभ में इनके पास कैथी लिपि की ही कुछ पुस्तकें थीं। आज भी इनकी कुछ प्रतियाँ महात्मा गांधी संस्थान के संग्रहालय में देखी जा सकती हैं। वे स्वभाव से धर्मनिष्ठ थे। दिन भर कठोर परिश्रम करने के बाद संध्या समय वे अपने–अपने गाँवों में इकट्ठे होकर रामायण, महाभारत, भागवत पुराण, कुछ लोक गीत, कुछ धार्मिक गीत, कबीरा आदि गाते थे। इन बैठकाओं में धीरे–धीरे कुछ नाटक भी खेले जाने लगे। हज़ारीसिंह के अनुसार: ***"सभी रियासतों तथा आसपास के गाँवों में एक ऐसा संगठन होता था, जहाँ शाम के समय भारतीय आप्रवासी मिलते थे और अपनी धार्मिक पुस्तकों का पारायण करते थे।"(1976, पृ– 66)***

संकट के दिनों में भी संध्या समय तथा अपने परिवार के छोटे–बड़े उत्सवों, विवाह, जन्म आदि पर किसी भी कथानक को हाव–भाव के साथ नकल करके प्रस्तुत किया जाता था। धीरे–धीरे विवाह के अवसरों पर नौटंकी शुरू हो गई। पुरुष ही स्त्रियों का पार्ट अदा करते थे। कभी–कभी ये नौटंकी भद्दे मजाकों से भी आपूरित होती थी। अपने आस–पास के लोगों की नकल आदि करके एक अच्छा मनोरंजक कार्यक्रम प्रस्तुत किया जाता था। धीरे–धीरे धार्मिक कथाओं पर आधारित नाटकों की भी प्रस्तुति होने लगी। ये नाटक लिखित रूप में उपलब्ध नहीं थे। डॉ. रामयाद लिखते हैं –

'रामचरित मानस के अंशों पर आधारित नाटक 19वीं शती में मंचित किए जाते थे। इनमें लोकप्रिय अंश थे – 'अरण्य काण्ड' के ये भाग – बनवास, संत– महात्माओं से मिलाप, सीता हरण, रावण–वध तथा श्री रामचंद्र जी की अयोध्या वापिसी।' (2001 पृ 14)

इस तरह के नाटक, बैठकाओं या मंदिरों के आँगन में खेले जाते थे। इनका निर्देशन कुछ पढ़े–लिखे लोग ही करते थे। ये प्रसंग भारतीय शर्तबंद मज़दूरों के जीवन के दुःख तथा सुख के प्रसंगों से कहीं न कहीं मेल भी खाते थे तथा मानसिक रूप से दिलासा भी देते थे कि राजा राम ने भी दुःख सहे। उन्हें भी बनवास मिला। उनकी भी पत्नी का अपहरण हुआ। राक्षसों का वध हुआ और वे पुनः अयोध्या लौटे। ये नाटक 'रामलीला' या फिर 'इन्दर सभा' का ही एक रूप था। भारतीय इन्हें स्मृतियों में, संस्कारों में अपने साथ लाए थे। आपस में खेले गए ये नाटक आज लिखित रूप में कहीं भी उपलब्ध नहीं है। मनोरंजन तथा धर्म–प्रचार ही इन नाटकों का मुख्य उद्देश्य था।

सन् 1920 में जब पारसी थियेटर मॉरीशस में आया तब इसका उद्देश्य व्यावसायिक था। थियेट्रिकल कंपनी द्वारा मंचित नाटक 'पाकजातपरी' प्रथम नाटक था। यह नाटक पोर्ट लुई के लूना पार्क में 14 मई 1923 को रात्रि के 9 बजे खेला गया था। इसके बाद कई धार्मिक तथा मनोरंजक विषयों पर नाटक खेलने की परंपरा शुरू हो गई। बाद में रेडियो के आगमन से कई भारतीय लेखकों के नाटक भी रेडियो पर खेले गए। पर 1941 से पहले कोई भी मॉरीशसीय नाटक हमें पुस्तक रूप में या पांडुलिपि रूप में प्राप्त नहीं है।

सन् 1941 में मॉरीशस का प्रथम हिंदी नाटक छपा–'जीवन–संगिनी' । डॉ. रामयाद लिखते हैं:

'मॉरीशस में हिंदी नाटकों का विवाद रोचक है। दृश्य नाटक के बाद श्रव्य नाटक का प्रचलन हुआ तब लिखित नाटक (पुस्तक रूप में) साहित्य का सृजन हुआ।' (पृष्ठ 60)

सन् 1941 में छपे 'जीवन–संगिनी' के रचनाकार श्री जयनारायण राय को 'सिरसा' नामक समुद्री जहाज से 4 सितंबर सन् 1925 को 17 वर्ष की आयु में भारत जाकर पढ़ने का मौका मिला। अपने इस अध्ययन काल में वे जहाँ भारत के महान नेताओं से मिले, वहीं उनकी भेंट हिंदी के सशक्त रचनाकारों से भी हुई :

" ••• मुझे प्रेमचन्द जी तथा 'आज' के सम्पादक श्री बाबू राव पराड़कर से मिलवाया गया। इसके बाद मेरा परिचय श्री प्रकाश, राजा शिवप्रसाद, आचार्य नरेंद्र देव और डॉ– भगवानदास से कराया गया। डॉ– भगवानदास का अपना एक पुस्तकालय था, जिसमें मैं पढ़ने के लिए पुस्तकें लेता था।"

जय नारायण राय सन् 1937 में 'करिबा' जलपोत से मॉरीशस लौट आए। वे गांधी जी के आन्दोलनों से काफ़ी प्रभावित थे।

लेखक आगे अपने अनुभव बाँटते हुए लिखते हैं –

'आज भी हिंदी लिखने में मुझे कुछ बाधा होती है, लेकिन अनजाने ही पंडित जी (बनारसी दास चतुर्वेदी) ने मेरे ह्रदय में हिंदी के प्रति जो अनुराग पैदा कर दिया था, उसके कारण ही मैंने अपना पूरा जीवन मॉरीशस में हिंदी प्रचार के लिए दे दिया है। मेरे सभी रविवार इसी कार्य में जाते हैं। (जयनारायण राय हिंदी प्रचारिणी सभा के 25 वर्षों तक (1952 – 1977) प्रधान रहे।)"

प्रहलाद रामशरण लिखते हैं :

"जयनारायण राय एक बहुमुखी प्रतिभासंपन्न साहित्यकार थे । स्वदेश लौटते ही उनके अंग्रेज़ी लेख धड़ाधड़ छपने लगे थे। पं. आत्माराम विश्वनाथ ने 'आर्य पत्रिका' पर 'राय और हिंदी' नोट लिखकर उनसे हिंदी में लिखने की मांग की। तब से उन्होंने हिंदी में लिखना प्रारम्भ किया और 1937 में ही दस लेख,

आठ कविताएँ और तीन कहानियाँ लिखकर मॉरीशस के हिंदी साहित्य की नींव रखी थी। इसी अभियान के अंतर्गत उन्होंने 1941में 'जीवन–संगिनी' एकांकी की रचना करके नाटक विधा की नींव रखी थी। सन् सत्तर में उन्होंने 'मॉरीशस में हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' लिखकर अपनी इतिहास प्रियता का परिचय दिया था। अंग्रेज़ी में उन्होंने 'मॉरीशस इन ट्रांज़ीशन' में देश का इतिहास बखान किया है।'

सन् 1941 ई. में जयनारायण राय का नाटक जीवन–संगिनी छपकर, मॉरीशसीय हिंदी–जगत् के हाथ में आया। यह नाटक मॉरीशसीय हिंदी साहित्य का प्रथम हिंदी नाटक है। लेखक के अनुसार यह नाटक करीब डेढ़ साल से उन्होंने लिखकर रखा हुआ था। लेखक ने हिंदी में नाटक की रचना करने में काफ़ी संकोच का अनुभव किया – ***'उम्र भर अंग्रेज़ी और फ्रेंच पढ़ने–लिखने के बाद आज पहली बार अपनी मातृभाषा में लिखने की धृष्टता कर रहा हूँ।' (भूमिका)***

लेखक के अनुसार यह एक मनोवैज्ञानिक नाटक है। लेखक ने नाटक में पाश्चात्य जीवन–पद्धति की नकल के कारण उत्पन्न मूल्यहीनता को दर्शाया है, पर साथ ही नारी शिक्षा के महत्व को भी उजागर किया है। भारतीय–संस्कृति में नारी की आस्था हो और वह शिक्षित भी हो जाए तो सोने पर सुहागा है।

'जीवन–संगिनी' नाटक करवट लेते मॉरीशस की सोच तथा परिवर्तन की ओर संकेत करता है। मॉरीशस की युवा पीढ़ी का विदेश जाकर पढ़ना, फिर वहाँ की चकाचौंध में फँसना तथा गिरना, इन सबकी ओर लेखक ने संकेत किया है। नाटक की प्रस्तुति में जहाँ–तहाँ मॉरीशसीय जीवन में प्रयुक्त शब्दों, मुहावरों का भी प्रयोग अनायास तथा सहज ही हुआ है।

लेखक ने नाटक समर्पित भी अपनी जीवन–संगिनी को ही किया है । समर्पण में वे लिखते हैं :

"क्या मालूम था कि छपने से पहिले ही तुम मेरी जीवन–संगिनी बन जोओगी । भला और किसे समर्पण करूँ?"

सन् 1941 तक मॉरीशस स्वतंत्र नहीं हुआ था। पर जो छात्र बाहर से पढ़कर आ रहे थे तथा जो उद्देश्यपूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहते थे, वे सार्वजनिक सेवा–कार्यों में जुट रहे थे। जनमत तथा जनसहयोग उन्हें मिल रहा था। ऐसे में यदि महिलाएँ भी पढ़कर सच्चे अर्थों में जीवन–संगिनी बनें, तो सफलता अवश्य मिलेगी। लेखक ने ऐसा ही चित्र इस नाटक में खींचा है।

नाटक का प्रकाशन हिंदी प्रचारिणी सभा ने किया तथा मुद्रक थे – मि. मोहम्मद इस्माइल रावत। नाटक का उद्देश्य था अपनी संस्कृति तथा अपनी भाषा की रक्षा। लेखक लिखते हैं –***'इस दूर–दराज देश में भी हम अपनी संस्कृति और भाषा को हमेशा कायम रखें, हिंदी प्रचार के निमित्त प्रचारिणी सभा मॉरीशस को (नाटक) प्रदान करता हूँ।' (जुलाई – 1941)***

लेखक ने 73 पृष्ठों के इस नाटक में सर्वत्र रंगमंचीय निर्देश भी दिए हैं, जो किसी भी नाटक की सफलता के लिए ज़रूरी है।

नाटक 3 अंकों में विभक्त है तथा प्रत्येक अंक में 4 दृश्य अर्थात कुल 12 दृश्य हैं। प्रत्येक अंक तथा दृश्य से पूर्व, रंग संकेत लेखक ने दिए हैं। पात्रों के हाव–भावों की प्रस्तुति के निर्देश भी सर्वत्र दृष्टिगोचर होते हैं। उदाहरणस्वरूप:

(सुखराज सिर हिलाकर नहीं का इशारा करता है।) पृष्ठ 27

(मुँह चमकाकर भाग जाता है। दूर से बिरहा गाने की आवाज़ होती है। धीरे–धीरे आवाज़ निकट होती जाती है; अंत में सुखराज गाना गाता हुआ प्रवेश करता है। शकल–सूरत से मालूम होता है कि वह आनंद में है।) नाटक में संकलन–त्रय (समय, स्थान,संकेत) का सर्वत्र निर्वाह हुआ है। उस समय देश में शिक्षा को लेकर जन–समाज जागरूक हो रहा था तथा आप्रवासी भारतीय अपने हकों को समझने लगे थे। इसके संकेत लेखक ने यथास्थान दिए हैं। अतः यह नाटक अपनी युगीन सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक समस्याओं की सटीक प्रस्तुति करता है।

नाटक का नायक कैलाश इंग्लैण्ड पढ़ने जाता है। वहाँ वह 'द इन्डियन स्टूडेंट्स एसोसिएशन' का सदस्य बनता है तथा वहाँ उसकी कई मित्रों से भेंट होती है। कुछ उसमें भारतीय तथा फ़िजी से भी हैं, जैसे 'अविनाशम्' नामक युवक वहाँ पढ़ने आया हुआ है।

यहाँ कैलाश, मिस मेहता (भारतीय) की ओर आकर्षित होता है। मिस मेहता भी उसे चाहती है। कैलाश का बैरिस्टरी का कोर्स 3 वर्षों का है पर वह 5 साल से यहीं रह रहा है। मिस मेहता एम.बी.बी.एस. कर रही हैं। मिस मेहता का कैलाश के प्रति आकर्षण टूटता है, जब उनकी

सहेली (मिस गुप्ता) उनसे कहती हैं –

मिस गुप्ता – ***'तो तुम भी इस साल बीमार हो जाओ और इम्तिहान में न बैठो। यह सबसे अच्छी तरकीब है। (ऊपर देखती हुई) मॉरीशस, भले आदमी, बैरिस्टर, गाना। इन्हीं चार भीत्तियों पर तुमने अपना प्रेम का महल खड़ा कर दिया है। इम्तिहान सिर पर नाचता है। प्रेम की बीमारी। (सिर झुकाकर) शायद फिर जुल्म कर रही हूँ। अब मुझे आज्ञा दो मैं जाती हूँ।' (पृष्ठ 26)***

अंततः मिस मेहता स्वदेश लौट जाती हैं तथा भारत के एक गाँव में डॉक्टर होने के कारण अपनी सेवाएँ दे रही हैं। इधर कैलाश निराशा में डूब कर मदिरापान भी करने लगता है, वह मिस मेहता को खोजने भारत भी जाता है और इतने सादे तथा सेवामय जीवन पर व्यंग्य भी करता है –

कैलाश– ***'मिस मेहता, आपको इस जहन्नुम में देखकर मुझे बड़ा सदमा होता है।'***

मिस मेहता – 'जिसको आप जहन्नुम समझते हैं, वही मेरी जन्नत है । मैंने इसे जानबूझ कर अपनाया है।'

कैलाश – 'तो क्या आपके जीवन में कोई आदर्श नहीं है?'

मिस मेहता – 'मेरे आदर्श ही ने मुझे इस राह को अख़्तियार कराया है।' (पृष्ठ 54)

मिस मेहता के कारण कैलाश अपनी पत्नी उषा की सेवा, तपस्या तथा त्याग को भी नकार देता है। वह अपने विवाह को नहीं स्वीकारना चाहता है। उसे लगता है कि यह विवाह बड़ों की इच्छा से हुआ है। उषा जैसी अनपढ़ लड़की के साथ वह जीवन व्यतीत नहीं कर पाएगा। दोनों के वार्तालाप से स्पष्ट होता है कि आज का नवयुवक जो शिक्षित हो गया है, वह अनपढ़ पत्नी के साथ नहीं रह पाएगा।

उषा – 'तो क्या मैं तुम्हारी यथार्थ–सेवा नहीं कर सकती हूँ ?'

कैलाश: 'नहीं। (उषा चौंक जाती है) इसीलिए कि जिसको तुम सेवा समझती हो, वह सेवा नहीं, सेवा टहल तो नौकर करते हैं। मैं चाहता हूँ कि मेरी स्त्री मेरी मित्र बने, मेरे मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक कामों में हाथ बँटा सके, अर्थात् हर तरह से मेरी जीवन–संगिनी बने।' (पृष्ठ 46)

लेखक अपने विचार नाटक के नायक से कहलवाता है, यह मानो मॉरीशस के जागृत होते युवकों के हृदय की आवाज़ थी। अब देश को केवल पति की पूजा करने वाली महिलाओं की नहीं वरन पति के कंधे से कंधा मिलाकर चलने वाली जीवन–संगिनियों की चाह थी। कैलाश स्पष्ट कहता है–

'रूप हो, चाहे गुण भी हो पर शिक्षा के बिन सब बेकार है। केवल सुन्दर साड़ी, सुन्दर शक्ल, सुन्दर पाउडर पर एक पढ़ा–लिखा युवक बिक नहीं सकता है। तुममें सब गुण है, परन्तु तुम पढ़ी–लिखी नहीं हो, इसलिए मेरी दृष्टि में तुममें कोई गुण नहीं है।' (पृष्ठ 47)

इस नाटक का शीर्षक 'जीवन–संगिनी' यही स्पष्ट करता है कि सही अर्थों में जीवन–संगिनी वहीं बन सकती है जो, पढ़ी–लिखी हो। नाटक में चरम के बाद जब कथा का उतार होता है तब लेखक बताता है कि उषा ने अपनी पढ़ाई पूरी की तथा चुनाव के दौरान पति की मदद भी की। चारों ओर कैलाश के साथ–साथ उषा की भी जयजयकार होती है।

उषा ही कैलाश को नशे के गड्ढे से बाहर निकालती है तथा सामाजिक कार्यों से जोड़ती है। उषा स्वयं पढ़ाई पूरी कर, अपना व्यवसाय, घर तथा पति का भी साथ देती है, वहीं नाटक के अंत में कैलाश उस से माफ़ी माँगता है। वह अपनी इच्छा की अभिव्यक्ति भी करती है। सुखराम जो घर में नौकर है, उसके पुत्र के लिए बैरिस्टरी की शिक्षा की व्यवस्था की माँग उषा करती है। नाटक का अंत आदर्शवादी है।

शिल्प की दृष्टि से नाटक में संकलन–त्रय का निर्वाह हुआ है। स्थान, समय तथा सूचनाएँ (रंगमंचीय निर्देश) यथास्थान दिए गए हैं। भाषा की अभिव्यक्ति सरल, सहज, तथा प्रवाहमयी है, भाषा–शैली पात्रानुकूल है। स्थान–स्थान पर संवादात्मक और आत्मकथानात्मक शैलियों का प्रयोग हुआ है। हिंदी की हिंदुस्तानी शैली सर्वत्र प्रयुक्त हुई है। अतः तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी सभी प्रकार के शब्द इसमें आए हैं।

सबसे बड़ी विशेषता यह है कि लेखक द्वारा प्रयुक्त हिंदी में सहज शब्द–भंडार एवं मुहावरों की छटा नाटक को और भी जीवंत बनाते हैं।

लेखक ने नाटक को रुचिकर तथा रसपूर्ण बनाने के लिए हिंदी फ़िल्मी गीतों का यथास्थान प्रयोग किया है :

'साजन, प्रेम कर निभाना
सजनी प्रेम कर निभाना' (पृष्ठ 6)

मुहावरों की छटा

चेहरे से खुशी टपकना (पृष्ठ 5)
जले पर नमक छिड़कना (पृष्ठ 23)
हनुमान की पूंछ (पृष्ठ 23)
बाबू कपड़ा ही मुताबिक़ मिजई कटेगी न? (पृष्ठ 63)

अन्य भाषाओं का प्रभाव

गलीबन की माँ कारो (क्रियोल शब्द) में काम करती है (पृष्ठ 15) (कारो = खेत)
कपार में गोबर (पृष्ठ 8) (भोजपुरी) (कपार = सिर)
घर में भूंजी भांग नहीं (भोजपुरी) (पृष्ठ 6)
फ़ात्क़ेर (फ्रंच) (पृष्ठ 28) (फ़ात्क़ेर = डाकवाला)
रूई के डिब्बे में रखोगे (भोजपुरी का हिंदीकरण)

मॉरीशसीय जीवन की छवि भी सर्वत्र द्रष्टव्य है

कटनी का प्रसंग (पृष्ठ 58)
दूसरे अंक के तीसरे दृश्य में मानस पाठ करना
अंधविश्वास (पृष्ठ 96)
भारतीय संस्कृति की चर्चा (पृष्ठ 24)
कारो में काम करने जाना (पृष्ठ 96)

शब्द भंडार की दृष्टि से शब्दों का सहज प्रयोग हुआ है, जैसे— ऑपरेशन, सूट–बूट, दत्तचित्त, आवाज़, व्याकुल, सेवा, हल्ला–गुल्ला, नमस्ते आदि।

मंच पर खेलने की दृष्टि से 'जीवन–संगिनी' सफल नाटक है । पात्रों की भरमार नहीं है । मॉरीशस, भारत तथा लंदन 3 दृश्यों में नाटक सिमट सकता है ।

नाटक में कुछ बातें पाठकों को सोचने पर मजबूर करती हैं, जैसे नौकर सुखराम तथा उसकी पत्नी सुगिया का पुत्र पहले अंक के तीसरे दृश्य में 4 वर्ष का दिखाया गया है। 7 वर्ष बाद कैलाश आता है तब उषा उसे बैरिस्टरी की पढ़ाई हेतु बाहर भेजने का प्रबंध करवाती है। मॉरीशस में 7+ 4 = 11 वर्ष में एस.सी. या एच.एस.सी. पूरा नहीं हो सकता। अतः वह 'लॉ' की पढ़ाई हेतु कैसे गया ? पृष्ठ 25 पर 'लोट–पोट होना' मुहावरे का प्रयोग किया गया है, जो उचित नहीं जान पड़ता शायद लेखक कहना चाहता होगा — 'लट्टू होना'।

'क्या मैं जानने का साहस कर सकती हूँ कि तुम उनके किन गुणों पर लोट–पोट हो रहे हो ?' (पृष्ठ 25)

लेकिन पाठक जब इस नाटक को पढ़ता है, तो रसास्वादन या साधारणीकरण में कोई रुकावट नहीं आती। अतः जयनारायण कृत 'जीवन–संगिनी' नाटक एक सफल तथा विशिष्ट नाटक है, जो अपने युग की करवट लेती मानसिकता का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करता है।

यह नाटक रंगमंच पर कभी भी प्रस्तुत न हो सका पर प्रसिद्ध ज़रूर हुआ। श्री ब्रजेन्द्र मधुकर भगत 'जीवन–संगिनी' की चर्चा करते हुए लिखते हैं:

"हमारे समस्त मित्र और संवाददाता श्री राय के नाटक 'जीवन–संगिनी' के बारे में मज़ेदार बातें सुनाते हैं। जहाँ तक हमें स्मरण है, हम कह सकते हैं कि मॉरीशस की किसी पुस्तक की भारत में आज तक इतनी चर्चा नहीं हुई है जितनी कि राय जी के नाटक की पुस्तक की। लोकप्रिय दैनिकों और मासिकों के स्तंभ भर गए हैं। रेडियो स्टेशन ने भी उसकी समालोचना की है। इलाहाबाद के एक प्रोफ़ेसर ने तो रेडियो पर उसकी भारी प्रशंसा की है। कुछ साहित्यिक संस्थाएँ उसे रंगभूमि में लाना चाहती हैं।"

(भारतीय संस्कृति का हरावल दस्ताः रामशरण 1995, पृष्ठ 125)

संदर्भ–सूचीः

1. पंडित आत्माराम, 'मॉरीशस का इतिहास', 1998, आत्माराम एंड संस
2. सदासिंह आस्तानंद, 'तू तू', 1979, स्टार बुक सेंटर
3. हजारी सिंह, 'मॉरीशस में भारतीयों का इतिहास', 1976, द मैकमिलन ऑफ़ इण्डिया
4. डॉ. रामयाद लक्ष्मी प्रसाद, 'मॉरीशस में खड़ी बोली हिंदी की व्यवस्था और प्रचार', 2001, महात्मा गांधी संस्थान
5. जय नारायण रॉय, 1941 'जीवन संगिनी', हिंदी प्रचारिणी सभा
6. इंदिरा गांधी सांस्कृतिक केंद्र एवं महात्मा गांधी संस्थान के पुस्तकालय

वाक्वा, मॉरीशस
alkadunputh@yahoo.co.in

मॉरीशस में हिंदी नाट्य समारोह का आयोजन

–श्री राकेश श्रीकिसुन

जन्मः 10 अक्टूबर 1972

शिक्षाः

- पी.एच.डी. जारी, मॉरीशस विश्वविद्यालय
- एम. फ़िल., मॉरीशस विश्वविद्यालय, 2017
- एम. बी. ए., लोक प्रशासन में विशेषज्ञता
- एम. ए. हिंदी, 2009
- बी. ए. (ऑनर्स) हिंदी, 2007
- डिप्लोमा, हिंदी भाषा, महात्मा गांधी संस्थान, 2003
- डिप्लोमा, फ्रेंच भाषा (Diplome D'Étude en Langue Francaise (DELF)-1er Degré par Alliance Francaise de L'Ile Maurice, 2002)

व्यवसायः

- सम्प्रति : कला अधिकारी, कला एवं संस्कृति मंत्रालय
- स्टेज मैनेजमेंट, कलाकारों का मेक–अप, स्थानीय और विदेशी कलाकारों के साथ संपर्क, नाटकों का निर्देशन, नाटकों का अनुवीक्षण, पटकथा–लेखन समिति के सदस्य
- 2007 में महात्मा गांधी संस्थान द्वारा आयोजित नाटक 'आप्रवासी घाट के तीन दिन' में सहायक निर्देशक
- टी. वी. तथा रेडियो प्रस्तुतकर्ता
- 2007 में काहिरा, मिस्र में प्रायोगिक नाटक के लिए अंतरराष्ट्रीय रंगमंच महोत्सव में भाग लिया
- नई दिल्ली के नेशनल स्कूल ऑव ड्रामा द्वारा आयोजित 'रंग महोत्सव' में प्रतिभागिता

प्रकाशन :

विश्व हिंदी सचिवालय की पत्रिकाओं तथा 'वसंत' पत्रिका में लेख प्रकाशित

मॉरीशस गणराज्य अफ़्रीकी महाद्वीप के तट के दक्षिण पूर्व में लगभग 900 किलोमीटर की दूरी पर हिन्द महासागर और माडागास्कर के पूर्व में स्थित एक छोटा–सा टापू है। उसकी आबादी **1,259,838 (स्टेटिस्टिक्स ऑफिस 2013)** (Census 2011)। इस द्वीप का दौरा यहाँ कई युरोपीय नाविकों ने किया और यहाँ पर बसने की भी इच्छा रखी। विदेशियों के आगमन का क्रम इस प्रकार है:

- पुर्तगाली – 1507
- हॉलैंड – 1598
- डच – 1638
- फ्रांस – 1710
- ब्रिटेन – 1810

इस देश में चीनी उत्पादन के लिए अफ़्रीका से दास लाए गए, परंतु 1835 में जब दास उन्मूलन हुआ तब कार्य को जारी रखने के लिए अंग्रेज़ी सरकार भारत से मज़दूर लाए। उन्हें ठगकर यहाँ लाया गया और कई कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं। उनसे बुरा बरताव किया जाता था, फिर भी उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। भारतीय मज़दूर मेहनती और अच्छे स्वभाव वाले थे।

प्रवासी भारतीय मॉरीशस में पहुँचते रहे और श्रमिकों के रूप में इस छोटे से द्वीप को आबाद करते रहे। धीरे–धीरे भारतीय धर्म, संस्कृति और परम्परा का प्रचार होने लगा।

मॉरीशस में भारतीयों के जीवन में सुधार लाने में शिक्षा प्रदान करने में तथा उन्हें अपना हक दिलाने हेतु महात्मा गांधी, मगनलाल मणिलाल डॉक्टर, प्रो. बासदेव बिसुन्दयाल जैसे महानुभावों का बड़ा योगदान रहा।

अधिकांश श्रमिक भारतवर्ष के हिंदी भाषी प्रदेशों के थे, जिसके फलस्वरूप यहाँ उन्हीं की भाषा स्थापित हुई और इस तरह हिंदी मॉरीशस में भारतीयों की प्रमुख भाषा बनी।

आज मॉरीशस पूर्ण रूप से एक स्वतंत्र देश बन गया है। सर शिवसागर रामगुलाम के लम्बे राजनैतिक संघर्ष व प्रयत्न के

पश्चात् 12 मार्च 1968 में मॉरीशस ने स्वतंत्रता प्राप्त की। यहाँ की औपचारिक भाषा अंग्रेज़ी और फ्रेंच है। इन दो भाषाओं के बीच में हिंदी को भी ऊँचा स्थान देने के लिए बड़ा संघर्ष हुआ है और अभी तक हो रहा है।

रंगमंच

रंगमंच (थिएटर) वह स्थान है, जहाँ नृत्य, नाटक, खेल आदि हों। रंगमंच शब्द 'रंग' और 'मंच' दो शब्दों के मेल से बना है। रंग इसलिए प्रयुक्त हुआ है कि दृश्य को आकर्षक बनाने के लिए दीवारों, छतों और पर्दों पर विविध प्रकार की चित्रकारी की जाती है और अभिनेताओं की वेशभूषा तथा सज्जा में भी विविध रंगों का प्रयोग होता है। और मंच इसलिए प्रयुक्त हुआ है कि दर्शकों की सुविधा के लिए रंगमंच का तल फर्श से कुछ ऊँचा रहता है। दर्शकों के बैठने से स्थान को प्रेक्षागार और रंगमंच सहित समूचे भवन को प्रेक्षागृह, रंगशाला या नाट्यशाला कहते हैं। पश्चिमी देशों में इसे थिएटर या ऑपेरा नाम दिया जाता है।

मॉरीशस में नाटक समारोह– स्वतंत्रता पूर्व

सत्रहवीं शताब्दी में नाटक और रंगमंच शुरू हो चुका था जब मॉरीशस फ्रांसीसी उपनिवेश था। उस समय फ्रांसीसी सैनिक/नाविक जब दक्षिण अफ्रीका जाने के लिए मॉरीशस टापू को पार कर रहे थे, तब मॉरीशस में थकान को दूर करने के लिए यहाँ पर रुके हुए थे। फ्रांसीसी सैनिक तथा नाविक उच्च कोटि वाले थे और उनके मनोरंजन के लिए नाटकों का मंचन किया जाता था। उस समय नाटक ऑपेरा के रूप में प्रस्तुत किया जाता था।

अठारहवीं शताब्दी में जब मॉरीशस ब्रिटिश उपनिवेश बना तब अंग्रेज़ी भाषा का प्रचार होने लगा। दास प्रथा के उन्मूलन के बाद भारत से शर्तबंध मज़दूरों की आवश्यकता पड़ी।

1901 में महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका की यात्रा के दौरान मॉरीशस में पधारे और देखा कि भारतीय मज़दूरों की स्थिति एकदम दयनीय थी। उनको बहुत सदमा पहुँचा, तभी उन्होंने प्रवासी मज़दूरों के जीवन स्तर को बढ़ाने के लिए मणिलाल डॉक्टर को यहाँ भेजा। उन्होंने महात्मा गांधी की माँग पर भारतीय मज़दूरों को सबसे पहले अपना हक दिलाया और उनके बच्चों को शिक्षा देने के लिए संघर्ष किया।

गाँव–गाँव के कोने–कोने में घास–फूँस की बैठकाएँ खोली गईं। रात को वहाँ सत्संग किया जाता था। अपना सुख–दुख बाँटते थे, 'रामायण' पाठ करते थे और वहीं सभाएँ लगती थीं, तीज–त्योहार मनाते थे और धार्मिक गतिविधियाँ चलाते थे । वहीं से हिंदी नाटक का प्रारम्भ हुआ। विशेष अवसरों पर नाटक प्रस्तुत किए जाते थे खासकर धार्मिक कथाएँ जैसे रामलीला, रासलीला आदि।

मॉरीशस में सबसे पहला हिंदी नाटक 1941 में जयनारायण रॉय द्वारा रचित 'जीवन संगिनी' का प्रकाशन हुआ। कहा जाता है कि उससे पहले कई नाटक लिखे गए, परन्तु उनका प्रकाशन नहीं हो पाया।

दूसरी ओर उस समय अंग्रेज़ी भाषा का बोल–बाला था। अंग्रेज़ी भाषा में नाटक लिखा जाता था और उसका मंचन अपने ही लोगों के बीच होता था।

अंग्रेज़ी सरकार द्वारा 1950 में यूथ हाउस की स्थापना हुई। 1952 में पहले यूथ ड्रामा फेस्टिवल का आयोजन हुआ। यह समारोह सिर्फ़ युवकों के लिए खुला था, जो पच्चीस वर्ष से कम उम्र वाले थे। नाटक पैंतालीस मिनट से कम का होता था।

यह समारोह एक प्रतियोगिता के रूप में होता था और अंतिम चरण के लिए सिर्फ़ दो बेहतरीन नाटक चुने जाते थे। उस समय सिर्फ़ तीन आवर्ड दिए जाते थे, जैसे: बेस्ट प्ले, बेस्ट एक्टर और बेस्ट एक्ट्रेस।

जब यह देखा गया कि इस समारोह के लिए काफ़ी लोग दिलचस्पी दिखा रहे हैं, अधिक माँगें मिल रही हैं, तब 1953 में फ्रेंच भाषा में भी नाटक समारोह आरम्भ हुआ। तब से हर साल दो भाषाओं में अलग रूप से प्रतियोगिताएँ होने लगीं और आवर्ड की संख्या भी बढ़ने लगी। ब्रिटिश और फ्रांसीसी उच्चायोग द्वारा नाटक और रंगमंच पर कार्यशालाएँ आयोजित की गईं, जिससे युवकों को ज़्यादा प्रशिक्षण मिले। इस प्रकार मॉरीशस में बहुत–सी नाटक टोलियाँ उत्पन्न होने लगीं। नाटक समारोह का अंतिम चरण बड़ी धूम–धाम से प्लाजा थिएटर, रोज़ हिल में

आयोजित होता था। रंगशाला एकदम खचाखच भरी रहती थी और दर्शकों को टिकटें खरीदनी पड़ती थीं।

दूसरी ओर उसी समय हिंदी एकांकियों की प्रस्तुति गाँव–गाँव की बैठकाओं के वार्षिकोत्सव के अवसर पर होती रहती थी। स्थानीय रेडियो में भी हिंदी रूपकों का प्रसारण शुरू हो चुका था।

1963 में हिंदी लेखक संघ ने हिंदी नाटक प्रतियोगिता का आयोजन किया और रंगकर्मियों तथा कलाकारों को उत्पन्न किया।

नाटक समारोह : स्वातंत्र्योत्तर

स्वतंत्रता के पश्चात् सभी पूर्वी भाषाओं का प्रचार–प्रसार होने लगा। मॉरीशस में हिंदी साहित्य लेखन पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से शुरू हुआ और यही से पद्य और गद्य का विकास होने लगा। उस समय जिन रचनाओं का प्रकाशन हुआ चाहे कविता हो या कहानी, सभी में इतिवृत पर विशेष ध्यान दिया जाता था और उनका उद्देश्य सामाजिक कुरीतियों का चित्रण, धार्मिक सिद्धांतों का प्रचार, समाज सुधार, आप्रवासियों पर हो रहे अत्याचार आदि का उद्‌घाटन करना था।

1969 में युवा एवं क्रीड़ा मंत्रालय की स्थापना हुई। 1969–1970 के बीच हिंदी नाट्य समारोह का आयोजन निजी संस्थाओं द्वारा शुरू हुआ।

1972 में श्री प्रियदत्त मेवासिंह की अध्यक्षता में मॉरीशस कला केन्द्र की स्थापना हुई, जिसमें प्रथम बार बड़े पैमाने में हिंदी एकांकी प्रतियोगिता का आयोजन हुआ। 14 मई 1973 को प्लाज़ा थिएटर में एकांकी प्रतियोगिता की अभूतपूर्व सफलता के बाद सरकार ने 1973 में प्रथम हिंदी नाटक समारोह आयोजित करने का निर्णय लिया। स्वर्गीय माननीय दयानन्दलाल बसंतराय जो उस समय युवा तथा क्रीड़ा मंत्री थे, उन्होंने निर्णय लिया कि अंग्रेज़ी और फ्रेंच की तरह भारतीय भाषाओं में भी नाटकोत्सव होना आवश्यक है।

इसके आयोजन के लिए हिंदी ड्रामा समिति का गठन प्रो. रामप्रकाश की अध्यक्षता में हुई। नाटक और रंगमंच के विकास और प्रचार–प्रसार के लिए मॉरीशस सरकार ने भारत से नाटक विशेषज्ञ बुलाए। मोहन महर्षि और उनकी पत्नी अंजला महर्षि और बाद में रणवीर सिंह भी आए। उनके यहाँ आने से नाट्यान्दोलन को पूरा बल प्राप्त हुआ।

1972 में मोहन महर्षि ने सपत्नीक ऑस ला रे यूथ ट्रेनिंग सेंटर में नाटक शिविर का आयोजन किया जिसमें देश के उभरते अभिनेताओं और निर्देशकों को रंगमंच के विभिन्न तकनीकों से अवगत कराया गया। दो सप्ताह का प्रशिक्षण देकर, नाटक के अनेक पहलुओं पर युवकों को नई रंगदृष्टि प्राप्त हुई। उस अवसर पर मोहन राकेश कृत 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक के प्रथम अंक की तैयारी और प्रदर्शन भी हुए।

इस प्रथम नाटक–कार्यशाला का कार्यभार सर्वश्री अभिमन्यु अनत, मुनिश्वरलाल चिंतामणि, पं– रविशंकर कौलेशर और डी. के.जानकी ने सम्भाला था। देश के कोने–कोने से एक सौ युवा रंग प्रेमियों ने भाग लिया। कार्यशाला के अंतर्गत तीन एकांकी तैयार किए गए, जिसकी प्रस्तुति शिविर की अंतिम रात में की गई। इस नाटक शिविर से नए कलाकारों में नई रंगचेतना उभर कर आई।

इस प्रकार से 1973 में युवा तथा क्रीड़ा मंत्रालय ने प्रथम हिंदी नाटक समारोह का आयोजन किया, जिसमें देश के 22 क्लबों ने भाग लिया और 125 युवकों तथा 40 युवतियों ने भाग लिया। इसका अंतिम चरण रोज़ हिल के प्लाज़ा थिएटर में आयोजित किया गया था। चार नाटक प्रस्तुत किए गए:

1. वी– पी– अग्रवाल का 'तीन अपाहिज'
2. अभिमन्यु अनत का 'मीठे बेर'
3. मोहन राकेश का 'आधे–अधूरे'
4. चेखव का 'क्लर्क की मौत'

शोभना दशरथ को 'आधे–अधूरे' में श्रेष्ठ अभिनेत्री, 'क्लर्क की मौत' में स्वाबीर गुडर को श्रेष्ठ अभिनेता और राजेन्द्र प्रसाद रघु को 'तीन अपाहिज' में श्रेष्ठ निर्देशन आवर्ड प्राप्त हुए।

हिंदी नाट्य समारोह के पश्चात् अन्य पूर्वी भाषाओं का भी नाट्य प्रस्तुतीकरण शुरू हुआ, जैसे उर्दू, तमिल, तेलुगु, मराठी, भोजपुरी और मंदारिन।

राष्ट्रीय नाट्य समारोह की शुरुआत :

क्रम	भाषा	वर्ष
1.	अंग्रेज़ी	1952
2.	फ्रेंच	1953
3.	हिंदी	1973
4.	उर्दू	1974
5.	तमिल	1975
6.	तेलुगु	1976
7.	मराठी	1977
8.	भोजपुरी	1983
9.	क्रियोल	1983
10.	मंदारीन	1985

स्रोत : कला एवं संस्कृति मंत्रालय

1982 में कला एवं संस्कृति मंत्रालय की स्थापना हुई। राष्ट्रीय नाट्य समारोह को एक नया मोड़ देने के लिए एक विशेष विभाग का निर्माण हुआ जैसे 'ड्रामा युनिट'। यह विभाग दस भाषाओं में राष्ट्रीय नाट्य समारोह का आयोजन करता है। मंत्रालय के अधिकारियों को नाटक और रंगमंच पर प्रशिक्षण मिला है। समारोह शुरू होने से पहले, हरेक जिला परिषद् में नाटक और रंगमंच पर कार्यशालाएँ होती हैं। इनका उद्देश्य प्रतिभागियों को अच्छी तरह से तैयार करना है।

यह समारोह साल के अप्रैल महीने से शुरू होता है और नवंबर के अंत तक चलता है। जितने भी प्रतिभागी होते हैं, मंत्रालय के अधिकारी उनके गाँव में जाकर उनको नाटक मंचन पर सलाह देते हैं और मंचन के लिए मदद करते हैं।

राष्ट्रीय नाट्य समारोह के नियम

राष्ट्रीय नाट्य समारोह सभी मॉरीशसियों के लिए खुला है। इसमें स्वतंत्र रूप से भाग ले सकते हैं, किसी भी भाषा की राष्ट्रीय नाटक प्रतियोगिता में भाग ले सकते हैं और आयु की कोई सीमा भी नहीं होती। परंतु इस समारोह को एक अच्छा स्तर देने के लिए मंत्रालय ने कुछ नियमों को लागू किया, जो ध्यान देने योग्य है। यह इसलिए क्योंकि मंत्रालय को काफ़ी खर्च करना पड़ता है।

1. यह प्रतियोगिता मॉरीशसवासियों के लिए खुली है तथा उन विदेशी लोगों के लिए जो 15 महीने से ज़्यादा मॉरीशस में रह रहे हैं।
2. उम्र की कोई सीमा नहीं है।
3. नाटक समारोह दस भाषाओं में होता है और कोई भी कलाकार किसी भी भाषा में भाग ले सकता है।
4. नाटक 30 से 55 मिनट के बीच होना चाहिए।
5. हर ग्रुप द्वारा किसी नाटक का मंचन होने के बाद, तीन साल बाद इसे पुनः प्रस्तुत किया जा सकता है। अर्थात् कोई ग्रुप एक ही नाटक को हर साल प्रस्तुत नहीं कर सकता। लेकिन एक दूसरा ग्रुप उसी नाटक को लेकर प्रस्तुत कर सकता है।
6. नाटक शिक्षाप्रद तथा मनोरंजक होना चाहिए। किसी भी प्राणी अथवा समुदाय के प्रति आलोचनात्मक नहीं होना चाहिए।
7. प्रत्येक भाषा की प्रतियोगिता में प्रतिभागी एक ही नाटक में भाग ले सकता है। लेकिन इसके अतिरिक्त अन्य दस भाषाओं की प्रतियोगिता में भी भाग लेने की अनुमति है।
8. कला एवं संस्कृति मंत्रालय के सगे–संबंधी इस समारोह में भाग नहीं ले सकते।
9. नाटक का लिखित रूप, प्रतियोगिता से पूर्व एक समिति द्वारा पढ़ा जाता है।
10. प्रथम चरण के पूर्व सभी निर्देशकों की बैठक होती है और तिथि एवं समय सभी की सहमति से तय की जाती है।
11. हरेक समारोह के लिए कम से कम छः नाटक टोलियाँ होनी चाहिए। अगर छः से कम हों, तो समारोह नहीं होता है।
12. अंतिम चरण के लिए सिर्फ़ तीन श्रेष्ठ नाटक चुने जाते हैं।
13. भट्टा – प्रोत्साहन के रूप में या खर्च को हलका करने के लिए सरकार हर ग्रुप के लिए रु. 6000 देती है। और जो अंतिम चरण में आ गए उनके लिए रु. 2000 और दिए जाते हैं।

14. हरेक भाषा की प्रतियोगिता के लिए जूरी के तीन सदस्य होते हैं, जो रंगमंच और भाषा पर अधिकार रखते हैं। जूरी द्वारा दिया गया परिणाम अंतिम होता है, अतः कोई भी जूरी के सदस्यों से बहस करने का अधिकार नहीं रखता।

नाटक समारोह में 10 की संख्या तक नाटकों के मंचन के लिए आवर्ड की सूची :

1. सर्वश्रेष्ठ नाटक
2. उप विजेता
3. सर्वश्रेष्ठ निर्देशक
4. सर्वश्रेष्ठ स्थानीय नाटककार
5. सर्वश्रेष्ठ सज्जाकार
6. सर्वश्रेष्ठ नायक
7. सर्वश्रेष्ठ नायिका
8. श्रेष्ठ उप नायक
9. श्रेष्ठ उप नायिका
10. विशेष पुरस्कार – सर्वोत्तम उदीयमान नायक
11. विशेष पुरस्कार – सर्वोत्तम उदीयमान नायिका
12. विशेष पुरस्कार – 15 वर्ष से कम नायक के लिए
13. विशेष पुरस्कार – 15 वर्ष से कम नायिका के लिए
14. प्रारंभिक समूह के लिए विशेष पुरस्कार
15. सर्वश्रेष्ठ नाटक के लिए विशिष्ट पुरस्कार
16. दो विशिष्ट निर्णायक पुरस्कार
17. सर्वश्रेष्ठ कॉलिज टीम पुरस्कार

नाटक समारोह में 11 या 11 की संख्या से अधिक नाटकों के मंचन के लिए आवर्ड की सूची

1. सर्वश्रेष्ठ नाटक
2. द्वितीय श्रेष्ठ नाटक
3. तृतीय श्रेष्ठ नाटक
4. सर्वश्रेष्ठ निर्देशक
5. द्वितीय श्रेष्ठ निर्देशक
6. सर्वश्रेष्ठ स्थानीय नाटककार
7. सर्वश्रेष्ठ सज्जाकार
8. सर्वश्रेष्ठ नायक
9. सर्वश्रेष्ठ नायिका
10. द्वितीय श्रेष्ठ नायक
11. द्वितीय श्रेष्ठ नायिका
12. विशेष पुरस्कार – सर्वोत्तम उदीयमान नायक
13. विशेष पुरस्कार – सर्वोत्तम उदीयमान नायिका
14. विशेष पुरस्कार – 15 वर्ष से कम नायक के लिए
15. विशेष पुरस्कार – 15 वर्ष से कम नायिका के लिए
16. प्रारंभिक समूह के लिए विशेष पुरस्कार
17. सर्वश्रेष्ठ नाटक के लिए विशिष्ट पुरस्कार
18. विशेष निर्णायक पुरस्कार
19. सर्वश्रेष्ठ कॉलिज टीम पुरस्कार– (जो फ़ाइनल में नहीं आया)

निर्णायक मंडल

- निर्णायक मंडल को अधिकार होगा कि वह प्रतियोगिता को आगे न बढ़ाए
- निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम होगा

संदर्भः कला एवं संस्कृति मंत्रालय, नाटक विभाग

प्रथम चरण

नाटक समारोह का प्रथम चरण प्रांतीय स्तर पर प्रस्तुत किया जाता है। इसका उद्देश्य इस प्रकार हैः

- हिंदी नाटकों को देश के कोने–कोने तक पहुँचना।
- कलाकार के माता–पिता, हित–मित्र, परिवार आदि को नाटक देखने का अवसर प्रदान करना
- ज़्यादा लोगों को रंगमंच के प्रति आकर्षित करना

अंतिम चरण

- तीन श्रेष्ठ नाटकों का चयन किया जाता है, जो वाक्वा के सर्ज कोंस्ताँतें थिएटर में प्रस्तुत किए जाते हैं। तत्पश्चात् पारितोषिक वितरण किया जाता है।

- दूरदर्शन (MBC TV), एम.एफ.डी.सी. (MFDC) तथा सरकारी फ़ोटोग्राफ़र इन नाटकों का कवरेज (coverage) करते हैं।
- तीनों नाटकों की प्रस्तुति के बाद निर्णायक मंडल अपना निर्णय देते हैं। तत्पश्चात् पारितोषिक वितरण होता है।

निष्कर्ष

राष्ट्रीय नाट्य समारोह हमारे देश और समाज के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है। हर साल लगभग 1500–2000 कलाकार नाटक समारोह में भाग लेते हैं। 150–200 नाटकों का मंचन दस भाषाओं में हो रहा है। नए–नए कलाकार भी कला की दुनिया में प्रवेश कर रहे हैं। नाटक समारोह गाँव–गाँव में मनाया जा रहा है। फलस्वरूप लोगों को नाटक देखने का अवसर मिल रहा है और उनका मनोरंजन भी हो रहा है।

क्रम	वर्ष	मंचित नाटकों की संख्या
1.	2007	14
2.	2008	20
3.	2009	18
4.	2010	18
5.	2011	19
6.	2012	23
7.	2013	18
8.	2014	16
9.	2015	29
10.	2016	24
11.	2017	22

2007 से 2017 तक हिंदी नाट्य समारोह

नाटक समारोह रोड्रिग्स में भी आयोजित होता है। फ्रेंच, अंग्रेजी एवं क्रियोल भाषाओं में कला एवं संस्कृति मंत्रालय द्वारा नाटक प्रतियोगिताएँ होती हैं।

प्राथमिक तथा माध्यमिक स्कूलों में ड्रामा क्लब का गठन हो रहा है। 9 इयर स्कूलिंग के अंतर्गत शिक्षा मंत्री ने नाटक विषय को अनिवार्य बनाया है। इसके लिए शिक्षकों को मॉरीशस इंस्टीट्यूट ऑफ़ एजुकेशन में प्रशिक्षण दिया जा रहा है। नाटक न सिर्फ़ मनोरंजन का साधन है, बल्कि बच्चों के व्यक्तित्व का निर्माण भी करता है। इसके साथ–साथ हिंदी नाटक के लिए महात्मा गांधी संस्थान/रवीन्द्रनाथ टैगोर संस्थान, हिंदी स्पीकिंग यूनियन, विश्व हिंदी सचिवालय, भारतीय उच्चायोग, सामाजिक–सांस्कृतिक संस्थाएँ, एन.जी.ओ. आदि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अपना योगदान दे रहे हैं।

मेबर्ग, मॉरीशस
rseerk@gmail.com

सूर्यदेव सिबोरत जी से एक भेंट-वार्ता

-डॉ. उदय नारायण गंगू

सूर्यदेव सिबोरत जी हिंदी के सच्चे उपासक हैं। उन्होंने किसी विश्वविद्यालय से हिंदी का ज्ञानार्जन नहीं किया, अपितु वे अपने बल–बूते बचपन से ही हिंदी की साधना करते रहे। बाल्यावस्था में अनेक कठिनाइयों को झेलते हुए हिंदी से लौ लगाए रहे। इस भाषा–प्रेम ने उन्हें उपकृत किया। वे हिंदी के कुशल–शिक्षक, स्कूल–निरीक्षक, रेडियो, टी.वी. में समर्पित फ्रीलांस एवं प्रतिष्ठित नाटककार एवं कवि बनें। अधोलिखित पंक्तियों में एक साक्षात्कार के माध्यम से उनकी हिन्दी–यात्रा का एक चित्र खींचने का प्रयास किया गया है। सूर्यदेव जी ने मेरे निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर बड़े ही सरल भाव से दिए–

शिक्षा :

- बी.ए. जेनेरल : हिंदी साहित्य, अंग्रेज़ी, समाजशास्त्र व राजनीतिशास्त्र –विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, भारत
- एम.ए. हिंदी – उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, भारत
- रिफ़्रेशर कोर्स – भारतीय दर्शन– सरदार पटेल कॉलिज, दिल्ली
- पी.एच.डी. हिंदी . "A Study of Mauritian Bhojpuri Folk Literature in the perspective of Indian Culture' – जिवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, भारत
- परिचय, प्रथमा, मध्यमा, विद्या वाचस्पती

व्यवसाय :

- 1965 से 1981 तक प्राथमिक पाठशाला में कार्यरत रहे
- 1981 से महात्मा गांधी संस्थान के हिंदी विभाग में कार्यरत
- आर्य सभा मॉरीशस द्वारा प्रकाशित 'आर्योदय' साप्ताहिक सूचना–पत्र के संपादक
- मॉरीशस में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के सौजन्य से डी.ए.वी. डिग्री कॉलिज की स्थापना 2007 में किया और कॉलिज के डीन भी रहे।

प्रकाशन :

- हिंदी व अंग्रेज़ी में कई पुस्तकें प्रकाशित
- अंतरराष्ट्रीय पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित हो चुके हैं।

प्रश्न : सूर्यदेव जी, आप हिंदी के सच्चे साधक रहे हैं। अपनी हिंदी–लगन के बारे में कुछ बताने की कृपा करें।

उत्तर : डॉक्टर साहब, मेरा बचपन अन्यों की तरह फूलों की सेज पर नहीं बीता। जब मैं चार साल का था तब मेरे पिता मेरी माता से अलग हो गए। हम तीन भाई थे और मैं सबसे बड़ा था। पिता जी ने फिर से शादी की। दूसरे विवाह के बाद उनके और सात बच्चे हुए... चार लड़कियाँ और तीन लड़के। माता जी का दूसरा विवाह एक आर्य समाजी पंडित के पुत्र से हो गया। मेरा बचपन पिता जी के यहाँ बड़ी ग़रीबी में बीता। प्राथमिक शिक्षा के बाद मैं गन्ने के खेतों में सात साल तक मज़दूरी करता रहा। जुलाई, 1964 में मैंने कॉपरेटिव दुकान में काम किया। कॉलिज जाने का मौका नहीं मिला। तायाक ग्राम में स्थित 'सावान संगीत संघ' में हिंदी की पढ़ाई होती थी। वहीं मैंने अनौपचारिक रूप से हिंदी का ज्ञान प्राप्त किया। मैंने हिंदी साहित्य सम्मेलन की कई परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। अपने हिंदी–प्रेम के कारण मैंने जनवरी सन् 1966 में 'अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय' में छात्राध्यापक के रूप में प्रवेश पाया। प्रशिक्षण के दौरान मुझे अपने प्राध्यापकों से अच्छी हिंदी सीखने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

प्रश्न : आपके प्रशिक्षण–काल में 'अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय' में कई प्राध्यापक प्रशिक्षण–कार्य में रत थे। उनमें आपका प्रेरणास्रोत कौन था?

उत्तर : भारत से आए हुए प्रोफ़ेसर नन्दलाल जोशी मेरे आदर्श थे। मैंने प्रोफ़ेसर नन्दलाल जोशी जी से हिंदी शब्दों के शुद्धोच्चारण

की प्रेरणा पाई। 'अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय' से विदा होने पर मैं सरकारी पाठशालाओं में हिंदी शिक्षक नियुक्त हुआ। अठारह वर्षों तक विभिन्न विद्यालयों में शिक्षण–कार्य करता रहा। हिंदी शब्दों के उच्चारण पर सदैव ध्यान देता रहा। प्रोफ़ेसर जोशी जी की प्रेरणा ने मेरा मार्ग–दर्शन किया।

मेरे दूसरे प्रेरणास्रोत प्रोफ़ेसर रामप्रकाश थे। वे विद्या–वारिधि थे। उन्होंने अपनी विद्वता से अनगिनत शिष्यों को प्रभावित किया। उनसे मैंने अनुशासन का पाठ पढ़ा। मेरे प्रशिक्षण–काल के दौरान उन्हीं की प्रेरणा से मैंने 'अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय' में 'वन्देमातरम्' स्वरचित एकांकी में अभिनय किया। उन्होंने नित आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा दी। उनकी प्रेरणा के कारण मैं एक कुशल और ईमानदार अध्यापक बनकर अपने साथी अध्यापकों की दृष्टि में सम्मान का पात्र बना। मैं कामचोर कभी भी नहीं रहा।

प्रशिक्षण महाविद्यालय में मेरे तीसरे प्रेरणास्रोत थे – डॉक्टर ईश्वरदत्त नन्दलाल जी। प्रशिक्षण की समाप्ति पर मैंने तीन साल तक डॉक्टर साहब से शास्त्रीय संगीत (गायन) की शिक्षा ली।

प्रश्न : आपकी श्रीमती जी भी हिंदी अध्यापिका रही हैं। कहा जाता है कि हर पुरुष की सफलता के पीछे उसकी पत्नी का हाथ होता है। क्या आप इस कथन का समर्थन करते हैं?

उत्तर : अवश्य। मेरी पत्नी का सहयोग मैं भूल नहीं सकता। यहाँ आपको यह बता देना उचित समझता हूँ कि मेरा विवाह, प्रेम–विवाह था। मेरी शादी मेरी प्रेमिका, कुमारी चंद्रावती उत्तीम के साथ 8 दिसंबर सन् 1968 को हुई। हम दोनों 'रिव्येर दे ज़ाँगी' में रहते थे। वह सन् 1968 में ही हिंदी अध्यापिका बनी थी। फिर वह डिप्युटी हेड टीचर बनीं। हम दोनों घर पर आपस में हमेशा हिंदी में ही बोलते रहे। चन्द्रावती बड़ी ज़िम्मेदार रहीं। हमारी शादी के तीन साल बाद 21 अक्तूबर, 1971 को हमारा पहला बेटा, नीरज पैदा हुआ। उसके छः साल बाद दूसरे बेटे, विमल ने जन्म लिया। बड़ा बेटा रॉयल कॉलिज गया। फिर लंदन के 'किंग्स कॉलिज' में इंजीनियरिंग पास की। छोटा लड़का 'सिंट जोज़फ़ कॉलिज' गया। मॉरीशस विश्वविद्यालय से 'फ़ाइनंस मैनेजमन्ट'' में स्नातक बना और अब वह 'एनजन पेट्रोलियम कंपनी' में नेटवर्क मैनेजर है। मेरे परिवार के निर्माण में मेरी पत्नी, चन्द्रावती नित सहयोग देती रही।

प्रश्न : सिबोरत जी, आपकी हिंदी–यात्रा में आपकी पत्नी ने आपको क्या सहयोग दिया?

उत्तर : आज मैं जो भी हूँ, अपनी पत्नी के कारण हूँ। मैं उन भारतीय नेताओं से बहुत प्रभावित था, जिन्होंने अंग्रेज़ी हुकूमत के दौरान अपने–अपने शैक्षिक प्रमाण–पत्र जला दिए थे। उन भारतीय नेताओं का पदानुसरण करने के कारण मैं कोई उच्च शैक्षिक प्रमाण–पत्र पाने का इच्छुक नहीं था। मेरी पत्नी मुझे समझाती रही कि भारतीय नेताओं का वह एक ज़माना था। आज हमारे देश में प्रमाण–पत्र का भारी महत्व है। उसके बिना सफलता नामुमकिन है। हमेशा पढ़ते रहना चाहिए और उच्च परीक्षाएँ देते रहना चाहिए। उनकी बातों का असर मुझपर पड़ा। मैंने स्वाध्याय प्रारंभ कर दिया। 'कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय' की कई परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुआ। हम पति–पत्नी ने एक साथ महात्मा गांधी संस्थान में तीन साल तक हिंदी और भारतीय दर्शन में डिप्लोमा किया। उन्हीं की प्रेरणा के फलस्वरूप मैं सरकारी पाठशाला का हिंदी निरीक्षक बना और एम.बी.सी. (मॉरीशस ब्रॉडकास्टिंग कॉपरेशन) में तीस साल तक फ्रीलांस के रूप में काम करता रहा, नाटकों में अभिनय भी करता रहा।

मैं लिखता हूँ। मेरी पत्नी मेरी लेखन–संबंधी गतिविधियों में हर प्रकार से मेरा हौसला बढ़ाती रहती है। वह सत्तर साल की उम्र तक महिला मंत्रालय द्वारा आयोजित कई कोर्सों में सफलतापूर्वक भाग लेती है। इनमें ग्लास–पेंटिंग, सिलाई, 'बुके' बनाना आदि मुख्य हैं। मुझे याद है कि उसने प्वेंत ज़ेरोम, मेबर्ग में मोहन महर्षि द्वारा आयोजित नाट्य प्रशिक्षण–सत्र में 'मृच्छकटिक' नाटक में 'वसंत सेना' की भूमिका निभाई थी। उसी वर्ष मेरे निर्देशन में मोहन राकेश के 'आधे–अधूरे' नाटक में 'सेकंड बेस्ट एक्ट्रेस' का पुरस्कार जीता था। उसके बिना मेरा जीवन बिल्कुल अधूरा है। उसके बगैर, मैं हूँ ही नहीं।

प्रश्न : तीन दशकों तक आपके मुख से मॉरीशस के रेडियो–टेलीविज़न पर हिंदी भाषा के हज़ारों शब्द

गूँजते रहे। निःसन्देह, अनगिनत जन आपकी हिंदी से प्रभावित हुए। आपने अवश्य ही अपने श्रोताओं की ओर से अनेक प्रतिक्रियाएँ प्राप्त की होंगी। कोई संस्मरण सुनाइए।

उत्तर : मैंने रेडियो–टेलीविज़न पर कई कार्यक्रम प्रस्तुत किए। साथ ही सुबह–शाम समाचार भी प्रसारित करता था। विधान–सभा के प्रतिवेदन पेश करते समय मुझे कई पारिभाषिक शब्दावलियों का प्रयोग करना पड़ता था। कानूनी शब्दावली भी आ जाती थी, जो आम जनता की समझ के परे होती थी। उन दिनों की बात है, जब श्री कासाम उतीम हमारे देश के राष्ट्रपति थे। उन्होंने एक बार मुझे कहा कि यदि आप अपनी भाषा को सरल बनाएँ, तो मैं आपके द्वारा प्रसारित समाचार को अधिक समझ सकूँगा। मेरा उत्तर यही था कि बहुत से ऐसे पारिभाषिक शब्द होते हैं, जिनके लिए सरल शब्द पाना कठिन होता है। फिर भी मैं अपनी भाषा को सरल–से–सरल बनाने का पूरा प्रयत्न करूँगा।

प्रश्न : वर्षों पहले प्रकाशित होने वाले 'अनुराग', 'वसंत' और 'दर्पण' जैसे स्थानीय साहित्यिक पत्रिकाओं में आपके निबंध और कहानियाँ प्रकाशित होती थीं। भारतीय पत्रिकाओं में भी आपके निबन्ध और कहानियाँ छपती थीं। क्या कारण है कि आपने इन विधाओं में लिखना छोड़ दिया?

उत्तर : दृश्य और श्रव्य काव्य में अभिरुचि होने के कारण। मैं बचपन से ही नाटक की ओर प्रवृत्त था। रिव्येर दे ज़ाँगी में स्कूली दिनों में, बैठकाओं में वार्षिकोत्सवों के अवसर पर बाल कलाकार के रूप में गुरु जी बीरू के निर्देशन में कई रूपकों में भाग लेता रहा। इसके अलावा बाद में आसपास के गाँवों के वार्षिकोत्सवों, एम.बी.एस., एम.बी.सी. रेडियो–टी.वी. आदि पर अनेक छोटे–छोटे नाटकों व रूपकों का लेखन–मंचन और उनमें अभिनय भी करता रहा। 1964 में हिंदी सप्ताह के मौके पर श्रीमती सीता रामयाद के निर्देशन में 'शराबी' नामक नाटक में भाग लिया, जो कई जगहों पर सफलतापूर्वक खेला गया। 1966 में आज़ादी के आन्दोलन से प्रेरित स्वचरित 'वंदे मातरम्' एकांकी हिंदी प्रचारिणी सभा शाखा नं– एक रिव्येर दे ज़ाँगी में प्रस्तुत किया गया। 1973 से मॉरीशस के रंगमंच का स्वर्णयुग शुरू हुआ। भारत से आए हुए नाटक–निष्णात–मोहन महर्षि और श्रीमती अंजला महर्षि के निर्देशन में 'आंस ला रे' और 'प्वेंत जेरोम' युवा–केन्द्रों में नाटक–मंचन संबंधी कई कार्यशालाएँ आयोजित की गईं। इन कार्यशालाओं में सम्मिलित होने से अभिनय के क्षेत्र में मेरी जानकारी बढ़ी। 1975 में 'त्रिवेणी' संस्था द्वारा तब के शिक्षा मंत्री स्व. खेर जगतसिंह के अनुरोध पर मोहन महर्षि ने डॉ. धर्मवीर भारती के 'अंधा युग' का मंचन, अंजला महर्षि को छोड़कर, मॉरीशसीय कलाकारों को लेकर किया, जो 'प्लाज़ा थिएटर' में कई बार प्रस्तुत किया गया। उसमें मुझे कृपाचार्य की भूमिका निभाने का अवसर मिला। 'अंधा युग' भारत में विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर नागपुर के 'घनवटे रंगमंदिर' और नई दिल्ली के 'गांधी मेमोरियल' में प्रस्तुत किया गया। मॉरीशस आकर 'अंधा युग' को गाँव–गाँव में ले जाया गया। 1975 से 1976 तक मुझे मोहन महर्षि और अंजला महर्षि के साथ 'ड्रामा युनिट' में सेकंडमेंट पर बुलाया गया। वहाँ नाटक में रुचि रखने वाले कई मित्रों का सान्निध्य प्राप्त हुआ। उन्हीं दिनों मोहन महर्षि के निर्देशन में पोर्ट लुई थिएटर और फिर एम.बी.सी. टी.वी. पर 'गंगा अवतरण' प्रस्तुत किया गया, जिसमें अंजला महर्षि ने गंगा और मैंने राजा भगीरथ की भूमिका निभाई थी। उसी समय पोर्ट लुई थिएटर में ही मेरे निर्देशन द्वारा बेशक मोहन महर्षि की देखरेख में, एक संस्कृत नाटक पेश हुआ। इस प्रकार मोहन महर्षि द्वारा मंचन का सिलसिला चलता रहा। त्रिवेणी की ओर से 'इन्द्रजीत' नाटक मंचित किया गया, जिसमें मुझे विमल का रोल मिला था। कुछ साल बाद महर्षि दम्पति स्वदेश लौट गए और उनकी जगह भारत के एन.एस.डी. से सीखकर कई मॉरीशसीय रंगकर्मी बनकर आए। मैं नाटक की दिशा में सभी से प्रेरणा पाता रहा। 1981 में मॉरीशस कला निकेतन द्वारा आयोजित 'राष्ट्रीय लेखन–प्रतियोगिता' में मेरे नाटक 'शीशा' को प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ था। इस पुरस्कार से उत्साहित होकर मैं निबन्ध एवं कहानी लेखन की अपेक्षा नाटक–लेखन की ओर केन्द्रित हो गया ।

प्रश्न : सूर्यदेव जी, आपने जिन स्वरचित नाटकों में अभिनय किया, उनमें कई अब तक अप्रकाशित हैं। वर्ष 2009 में आपका प्रसिद्ध नाटक 'प्रजाराज रासो'

प्रकाश में आया। इस कृति के नामकरण के बारे में कुछ प्रकाश डालिए?

उत्तर : 'रासो' प्राचीन भारत में राजा–महाराजाओं के प्रशस्ति–गान की एक परंपरा है, जो समाप्त हो गई, क्योंकि अब 'प्रजातंत्र' स्थापित हो गया है। फिर भी इस 21वीं सदी की दुनिया के काफ़ी देशों में शाही व्यवस्था अब भी मौजूद है, जो ज़ोर लगाकर पाली–पोसी जाती है। बल्कि अनेक देशों में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से शाही और तानाशाही व्यवस्था दोनों है; जहाँ सत्ताधारी अपने, पिता–पुत्र, भाई–भतीजे, बेटी–दामाद आदि रिश्तेदारों के ही हाथों लगातार, अनिश्चित काल तक करोड़पति–अरबपति बने रहता है और निरंकुश शासन करता है। इन राष्ट्रों में लिखित और बोलता प्रेस, लेखक और कुख्यात गुंडे भी मजबूरन या लालच में आकर मौजूदा शासन की प्रशंसा व गौरव–गान, नाम, ज़मीन और जागीर–जायदाद पाने के लिए करते हैं। कुछ राष्ट्रों का राष्ट्र–गान ही शाही परिवार का प्रशस्ति–गान होता है। यह 'रासो' परंपरा का दूसरा और आधुनिक रूप है।

अब प्रजातंत्र या लोकतंत्र एक ऐसे मंत्र में बदल गया है, जो धार्मिक परंपराओं और जाति–पाँति के मसालों को एक साथ घोलकर कार्य करता है। 'किंगमेकर' का नशा जीवन पर्यंत हर किसी को बराबर रहता है । आज जनता या पुराने शासकों की प्यारी 'प्रजा' चुनावी सुनहरे सपनों में फँसकर उसी जगह है, जहाँ सदियों पहले थी और 'शायद' वहीं पड़ी सड़ती रहेगी और 'प्रजा–राज' के नाम पर 'व्यक्ति–राज' स्थापित होता जा रहा है, जो सदियों पहले था। आज, 21वीं सदी में जहाँ धरती पर लाखों–करोड़ों लोग रोज़ भूखों मर रहे हैं, वहाँ राजनीतिक शासन यानि आधुनिक राजा–महाराजा चाँद की मिलकियत पा चुके हैं। 'प्रजाराज रासो' इसी सत्य से प्रेरित है। मैं सोचता हूँ कि मैंने अपने इस नाटक का सही नामकरण किया है।

प्रश्न : सूर्यदेव जी, कृपया यह बताइए कि समालोचकों ने आपके किन–किन नाटकों की समालोचना की हैं?

उत्तर : यद्यपि मैंने 1964 से नाटक लिखना प्रारंभ किया, तथापि मेरे अधिकांश नाटक अब तक व्ययसाध्य होने के कारण अप्रकाशित रहे हैं। वर्ष 2009 में मेरा पहला नाटक 'प्रजाराज रासो' प्रकाशित हुआ, जिसकी समीक्षा भारतीय उच्चायोग के तत्कालीन सचिव, श्री जय प्रकाश कर्दम जी ने की। उस समीक्षा का कुछ अंश प्रस्तुत करना चाहता हूँ – "सूर्यदेव सिबोरत एक जागरूक रचनाकार हैं, जो समाज में व्याप्त विसंगतियों और विद्रूपताओं को अपनी रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं। 'प्रजाराज रासो' उनकी इसी प्रकार की रचना है। इसमें उन्होंने प्रजातंत्र के विषय में जनता की सोच और उसके वास्तविक स्वरूप को रेखांकित किया है। यह नाटक एक राजनीतिक नाटक है और राजनीति पर तीखी टिप्पणी करता है, विशेष रूप से गरीब, मज़दूरों के शोषण का विरोध करने वाले तथा उनके समान अधिकारों की पक्षधरता में आवाज़ उठाने वाले साम्यवादी नेताओं की तीव्र आलोचना करता है और बताता है कि किस प्रकार पूंजीवाद का विरोध तथा प्रजातंत्र की वकालत करने वाले लोग जनता की भावनाओं के साथ खिलवाड़ करते हैं। 'न कोई शासक होगा, न शासित' : इस बात को ज़ोर–शोर के साथ कहने वाले लोग, सत्ता में आते ही यह सब भूल जाते हैं और स्वयं शोषक बन जाते हैं। कल तक पूंजीवाद के समूल नाश के लिए हड़ताल और आंदोलन चलाने वाले लोग सत्ता में आने पर किस तरह मज़दूरों के हितों की उपेक्षा कर पूंजीवाद के पक्षधर और उसके हाथों की कठपुतली बन जाते हैं, इसका सटीक चित्रण 'प्रजाराज रासो' नाटक में हुआ है।"

श्री जयप्रकाश कर्दम जी ने इस नाटक की समालोचना करते हुए आगे लिखा.. 'राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार और अराजकता से लेखक अनभिज्ञ नहीं है। लेखक के अनुसार, 'राजनेता, अफसर प्रजातंत्र की धज्जियाँ उड़ाते हैं। प्रजा का राज...। सब इनकी जेब में, लाखों रुपए के वेतन के साथ'। शायद इसीलिए देव की नज़र में 'सरकार सड़ी हुई है', नेता लोग धोखेबाज हैं। कोलो का यह कथन राजनीतिक अधःपतन और अनैतिकता का पर्दाफ़ाश करता है, 'हमारे पूर्वजों ने जो भी आज़ादी खून–पसीने से, यहाँ तक कि जान गँवाकर हासिल की थी, हमारे ही बुर्ज़ुआ और सामंती भाई–बन्धुओं की सरकार ने सुनहरी तश्तरी में अत्याचारी पूँजीपतियों के हवाले हँसी–खुशी कर दी... जो आज़ादी के खिलाफ़ थे, आज वे ही आज़ाद होकर खुले आम आज़ादी के मजे लूट रहे हैं।

नाटक में अनेक सामाजिक समस्याओं को रेखांकित या उल्लेखित किया गया है। सांप्रदायिक भेदभाव समाज का एक बहुत बड़ा विष है। इस विष को फैलाने में जितनी भूमिका

धार्मिक कठमुल्लों की होती है, उतनी ही राजनेताओं की होती है। राजनेता जब चाहें अपने स्वार्थ के लिए सांप्रदायिक दंगे कराते हैं। क्लोद कहता है, 'हर नेता के एक हाथ में सांप्रदायिक फसाद का डायनामाइट है और दूसरे हाथ में जलती मशाल।'

राजनेता जब तक सत्ता में नहीं आ जाते तब तक ही जनता के हितों की बात करते हैं। सत्ता में आते ही सब प्रतिक्रियावादी बन जाते हैं। देव राजनेताओं से यही कहता है, 'देशद्रोही तो तुम लोग हो मंत्रियो। बड़ी–बड़ी कुर्सियाँ सेंकनेवाले बड़े–बड़े अफ़सरो। देशद्रोही तुम लोग हो। आज... आज तुम सबके सब प्रतिक्रियावादी हो।'

भारतीय उच्चायोग के सचिव, श्री जयप्रकाश कर्दम जी ने विस्तारपूर्वक 'प्रजाराज रासो' की समीक्षा की है। इस नाटक के बारे में वे आगे लिखते हैं 'लेखक कहना चाहता है कि राजनेता देश के दुश्मन हैं। आज़ादी राजनेताओं की बंधक है। एक ओर भुखमरी और बेरोज़गारी है, जहाँ बच्चों को पालने के लिए औरतें अपने आप को बेच रही हैं... जवान लड़कियाँ एक छोटी नौकरी के लिए सब कुछ करने को मजबूर हो रही हैं। वहीं राजनेता दोनों हाथों से देश का धन लूट रहे हैं । वे सब विदेशी बैंकों में सैकड़ों, करोड़ों, अरबों जमा कर चुके हैं और उनकी जेब में दुहरी नागरिकता है।'

लेखक का चिंतन प्रगतिशील है, जो नाटक में अनेक स्थानों पर दिखाई देता है। देव शिक्षा–व्यवस्था को बिल्कुल सड़ी हुई और बेकार मानता है। शिक्षा–व्यवस्था पर देव की टिप्पणी लेखक के प्रगतिशील चिंतन का परिचय देती है, 'बच्चे वे विषय क्यों पढ़ें, जिनका वर्तमान जीवन से कोई मतलब नहीं.... इतिहास पढ़ो... फलाना राजा ने गद्दी के लिए फलाने को खंजर घोंपा। फलां राजकुमार ने फलां राजकुमारी को भगाया। फलां राजा की सात–सात, आठ–आठ रानियाँ थीं... क्या यही शिक्षा है।'

लेखक इस विश्वास को स्वीकार नहीं करता कि ईश्वर ने सबको बराबर बनाया है। चाचा देव से कहता है, 'भगवान् ने सबको बराबर नहीं बनाया है। कुछ खास, कुछ कम खास और कुछ कोई खास ही नहीं।' हालाँकि लेखक यह कहते हुए कर्म और भाग्यवाद का समर्थन करता दिखाई देता है कि 'अपना–अपना कर्म, अपना–अपना फल'। किंतु यथार्थ में, ईश्वर आधारित असमानता के सिद्धान्त का अस्वीकार कहीं न कहीं ईश्वर की सत्ता का अस्वीकार भी है। यह बात देव के इन शब्दों से भी स्पष्ट होती है, 'पूजा–पाठ, धरम–करम वे लोग करते हैं, जिन्हें अपने आप पर भरोसा नहीं होता'।

राजनीति पर आधारित इस नाटक में यद्यपि लेखक ने इकोनोमिक कल्चर से लेकर स्कूलों में मादक पदार्थों का सेवन तक अनेक ज्वलंत समस्याओं की ओर समाज का ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास किया है, व्यंग्य के प्रयोग ने नाटक को प्रभावी बना दिया है। शीर्षक से लेकर नाटक की भाषा तक व्यंग्य व्याप्त है। जाति और संप्रदायों के नाम पर तथा समाज के विघटन पर लेखक चिंता व्यक्त करता है और विभिन्न समुदायों को कड़ाही समुदाय, 'मरमिट' समुदाय, प्रेशर कुकर समुदाय, चमचा समुदाय, घास समुदाय, फूल, पौधे, जानवर, बैल, गधा, कुत्ता, सुअर समुदाय कहकर इस प्रवृत्ति पर प्रहार करता है। इसी तरह समाचार–पत्रों के नाम भी व्यंग्यपूर्ण हैं, यथा– 'अंगूठा छाप, चलती गाड़ी, ज़िंदा नागरिक, जलते दीपक, बरसाती मेंढक, टूटी जंज़ीर।'

प्रश्न : इसमें कोई सन्देह नहीं कि मॉरीशस में कार्यरत भारतीय उच्चायोग के सचिव श्री जयप्रकाश जी ने बड़ी बारीकी से 'प्रजाराज रासो' की समीक्षा की है। इसे पढ़कर आपको क्या प्रेरणा मिली?

उत्तर : श्री कर्दम जी की उपर्युक्त समीक्षा पढ़कर मैं बहुत ही उत्साहित हुआ। मुझे अपने अप्रकाशित नाटकों को प्रकाशित करने की प्रेरणा मिली। इस समय मेरे और दो नाटक प्रेस में प्रकाशाधीन है।

प्रश्न : एक अच्छे नाटकार के साथ ही आप एक प्रतिष्ठित कवि भी हैं। आपका प्रकाशित काव्य–संग्रह – 'एक फूल गन्ने का' भाव–पक्ष की दृष्टि से एक प्रबल रचना है। इस काव्य–संग्रह में शताधिक मर्मस्पर्शिनी कविताएँ हैं। इन कविताओं में अभिव्यक्त भावों के स्रोत पर कुछ प्रकाश डालिए।

उत्तर : डॉक्टर साहब, मेरी कविताएँ बनावटीपन के बोझ से दबी हुई नहीं हैं। मैंने सरल भाषा में उन्हीं भावों को व्यक्त

किया है, जो तिहत्तर वर्षों के जीवन में अनुभव किया है। मैं अपने काव्य–संग्रह में संकलित कविताओं के कुछ शीर्षकों को उद्धृत करके इस बात को स्पष्ट करना चाहता हूँ। 'इबादत' शीर्षक के अन्तर्गत मैंने जिस प्रेम को चित्रित किया है, वह भौतिक नहीं है। मैंने एक आत्मिक प्रेम की अभिव्यक्ति की है। अपनी कविता 'मृगतृष्णा' में यह बताया है कि असीमित चाह एक मृगतृष्णा के समान है। 'दो हिंदी' शीर्षक कविता में बताने का यत्न किया है कि स्वार्थी लोग हिंदी भाषा से अपना स्वार्थ साधते हैं। इस **कविता का एक अंश उदाहरणार्थ प्रस्तुत है :**

दो हिंदी

जब से
उस राजकुर्सी पर
गए बैठने तुम, बंधु!
उस दिन से
हुई हिंदी दो।
एक तुम्हारी
दूसरी मेरी।
मेरी चटाई की
तेरी कुर्सी की है ।
मेरी मुक्ति की
तेरी बंधन की है ।
निकलती है मेरी हिंदी आह पर
तेरी हिंदी निकलती है
वोट की चाह पर।
नहीं चाहिए! नहीं चाहिए!
उस हिंदी को नहीं सुनाओ
जिसमें तुम्हारी बर्बरता का
उच्छृंखलता का
स्वार्थ का
ज़हर भरा।
प्रथम डंडे की
प्रथम चोट की
प्रथम कुली की
प्रथम आह के
माध्यम में जो भाषा निकली
उस पर
मेरा
नितांत मेरा
अधिकार है :
पूर्णतः
एक मात्र।

प्रश्न : सूर्यदेव जी, आपकी कविताएँ एक निश्छल हृदय से उद्भूत हैं। आपके काव्य–संग्रह की कुछ कविताओं को कैम्ब्रिाज यूनिवर्सिटी की 'स्कूल सर्टिफ़िकेट' परीक्षा के लिए तैयार की गई पाठ्यपुस्तक में सम्मिलित किया गया है। आप हिन्दी के छात्रों को क्या सन्देश देना चाहेंगे?

उत्तर : डॉक्टर साहब, मैं और मेरे युग के लोग हिंदी को मातृभाषा मानते थे । आज हिंदी विश्वविद्यालय तक पहुँच गई है, पर हिंदी पढ़ने वालों में हिंदी के प्रति वह प्रेम दिखाई नहीं देता, जो पूर्व के लोगों में था। हम हिंदी के द्वारा अपनी जड़ से जुड़े हुए थे। आज हिंदी मात्र रोटी की भाषा बन गई। हमारे पूर्वज हिंदी पर जान देते थे, आज बहुत–से लोग हिंदी की जान ले रहे हैं। मेरा यह संदेश हैं कि छात्रगण, हिंदी को अपनी पहचान की भाषा समझें, हिंदी–ज्ञान के महत्व को समझें और अपनी जड़ से जुड़े रहें।

सूर्यदेव सिबोरत जी, आपने अपना अमूल्य समय दिया, इस भेंट–वार्ता के लिए आपको बहुत धन्यवाद।

मॉरीशस

हिंदी : विविध आयाम

- विश्व पटल पर हिंदी — डॉ. मजीद शेख
- स्वामी शंकरानंद संन्यासी : जिन्होंने बढ़ाया दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी का मान — डॉ. राकेश कुमार दूबे
- उपनिवेशों में हिंदी के प्रचार में आर्य समाज का योगदान एवं प्रासंगिकता — डॉ. एन. के. चतुर्वेदी
- दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी की विकास-यात्रा — श्रीमती सौभाग्यवती धनुकचन्द

विश्व पटल पर हिंदी

– डॉ. मजीद शेख

आज के इस भूमंडलीकरण के दौर में सब कुछ बदल रहा है। समाज, भाषा, साहित्य सब में एक प्रकार का परिवर्तन या बदलाव दिखाई दे रहा है। किंतु परिवर्तन या बदलाव की दिशा सही और रचनात्मक हो, तो परिणाम भी सुखद ही रहेगा। सैद्धांतिक रूप से वैश्वीकरण का सीधा अर्थ है वस्तुओं और सेवाओं का वह मुक्त प्रवाह, जो किसी देश के विभिन्न क्षेत्रों तक व्याप्त हो। इस प्रकार जो देश अन्य देशों की अपेक्षा अधिक सस्ती व बेहतर तकनीक से युक्त वस्तु का उत्पादन कर सकता है, वह विश्व के सभी देशों को अपने यहाँ निर्मित वस्तु का निर्यात कर सकता है। इसे ही कहा जाता है – एक देश की प्रतिस्पर्धा के कारण प्राप्त होनेवाले सर्वश्रेष्ठ लाभ। इसको सकारात्मक रूप से देखना पड़ेगा। वैश्वीकरण के पीछे प्रमुख विचार यह है कि सभी राष्ट्र केंद्रीय सक्षमता को विकसित करेंगे और वैसी चीज़ों का उत्पादन करेंगे, जिनमें वे निपुण हैं। ऐसी स्पर्धा देश को सक्षम और मज़बूत बनाने में मददगार होगी।

भारत में लगभग 26 करोड़ लोग गरीबी रेखा के नीचे रह रहे हैं। राष्ट्र को सुनिश्चित करना होगा कि वे ज़्यादा–से–ज़्यादा कमाएँ और अच्छा जीवन बिताएँ। सकल घरेलू उत्पाद दर को वास्तविक रूप में 10 प्रतिशत तक बढ़ाना होगा। यह तब संभव होगा जब भारत आर्थिक रूप से विकसित होगा। तभी करोड़ों लोग राष्ट्र की संपन्नता को महसूस करेंगे। डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम के शब्दों में:

'भारत के पास खुद को विकसित राष्ट्र के रूप में बदलने की क्षमता मौजूद है। अंतरिक्ष, रक्षा तथा परमाणु क्षेत्रों में अपनी परियोजनाओं के ज़रिए मैं यह जान चुका हूँ कि हमारे लोगों के पास श्रेष्ठता को हासिल करने की योग्यता है। हमारे पास विश्वास और ज्ञान का ऐसा अद्‌भुत मिश्रण है, जो हमें इस पृथ्वी के अन्य देशों से अलग ला खड़ा करता है। मैं यह भी जानता हूँ कि इन अनूठी क्षमताओं का लाभ नहीं उठाया गया है, क्योंकि हमें दूसरों की दासता स्वीकारने और शांत बने रहने की आदत–सी पड़ चुकी है।'

जन्म : 13.01.1976

शिक्षा :
- पी. एच. डी., हिंदी
- एम. ए., नेट

व्यवसाय : सहायक प्राध्यापक एवं शोध निर्देशक, हिंदी विभाग, प्रतिष्ठान महाविद्यालय, पैठण, महाराष्ट्र

प्रकाशन :
- 'डॉ.सूर्यनारायण रणसुभे : व्यक्तित्व एवं कृतित्व'
- 'आधुनिक हिंदी साहित्य के विविध परिदृश्य'
- देश के विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में नियमित रूप से लेखन – सम्मेलन पत्रिका, विवरण पत्रिका, वार्ता वाहक, अनुसंधान, वाङ्मय, द्विभाषी राष्ट्र–सेवक, संचारिका, राष्ट्रवाणी, वेब पत्रिका आदि।

पुरस्कार :
- नागरी लिपि परिषद्, नई दिल्ली द्वारा आयोजित 'नागरी निबंध प्रतियोगिता' में शोध–निबंध 'देवनागरी लिपि के प्रयोग का प्रारंभ एवं विकास तथा विगत दस वर्षों में हुई प्रगति' को वर्ष 2009–10 का प्रथम पुरस्कार प्राप्त।
- हिंदी साहित्य में उल्लेखनीय योगदान के लिए 'हिंदी साहित्य गंगा संस्थान, जलगाँव' का वर्ष 2010 का 'गंगा गौरव पुरस्कार' प्राप्त।
- इंदौर का 'प्रगतिशील चेतना की सफ़ल अभिव्यक्ति : बिल्लेसुर बकरिहा' इस शोध आलेख को वर्ष 2010 का 'रिसर्च लिंक सारस्वत सम्मान' प्राप्त।

स्वाधीन राष्ट्र की अस्मिता तीन चीज़ों पर निर्भर करती है – राष्ट्रध्वज, राष्ट्रगीत तथा राष्ट्रभाषा। 'तिरंगा' हमारा अपना राष्ट्रध्वज है, 'जन गण मन अधिनायक जय हे' नामक राष्ट्रगान भी है, पर हमारी कोई एक भाषा 'राष्ट्रभाषा' के पद पर विराजमान नहीं है। और इस पद पर विराजमान होने की प्रबल हकदार भाषा 'हिंदी' है। नेपोलियन बोनापार्ट ने बड़ा सटीक भाष्य किया था :

"केवल कुछ लोग पैसे के लिए काम करते हैं, लेकिन लाखों लोग अपनी संतुष्टि, अपनी खोज, स्वाभिमान आदि के लिए मरने तक को तैयार रहते हैं।"

भारत में समता के दर्शन की रचना की भाषा हिंदी है। बीसवीं सदी के प्रारंभिक दशकों पर गौर करें, तो समता की वैचारिक अभिव्यक्ति के तीन–चार पात्र दिखाई देते हैं और वे पात्र इस प्रकार हैं – स्त्री, गाँव, गरीब और अछूत। इन पात्रों का पैमाना बनाएँ, तो हम देख सकते हैं कि पिछली सदी में हिंदी ने समता के दर्शन को सामाजिक व्याप्ति देने में एक बड़ी भूमिका निभाई है। भारत की आत्मा गाँवों में निवास करती है। देश की कुल आबादी का 70 प्रतिशत भाग ग्रामीण जनता ही है।

वर्तमान समय में बहुराष्ट्रीय निगम और वैश्विक पूंजी के द्वारा एक नई हिंदी को विकसित किया जा रहा है, जो 'हिंग्लिश' या 'हिंग्रेज़ी' है। भाषा का यह रूप परिवर्तन एक विशेष उद्देश्य के तहत है। पूंजी का अनियंत्रित प्रवाह भाषा को प्रवाहित करता है। हिंदी भाषा के साथ यहाँ पर अधिक खिलवाड़ हो रहा है। हमारे पास भाषा की विराट पूंजी है। भाषा की इस संपन्न पूंजी को किनारे कर, 'नई वर्णमाला' बनाने से किसे लाभ है? आज समाचार–पत्रों में 40 प्रतिशत अंग्रेज़ी के शब्द मिलाकर हिंदी भाषा की हत्या करने का सुनियोजित षड्यंत्र है, चूँकि इसके प्रति हम अधिक सचेत नहीं है। हमें 'खिचड़ी भाषा' भी चलेगी, परंतु उसमें हमारी मिट्टी की, संस्कृति की अर्थात् अंतरात्मा की आवाज़ हो। हमारा मौलिक चिंतन स्वभाषा में होता है। कबीर अनपढ़ थे, पर इनका साहित्य विश्व–साहित्य की कोटि में आता है। उनके काव्य का आधार स्वानुभूति का यथार्थ है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है:

'मैं कहता हूँ आँखिन की देखी,
तू कहता कागद की लेखी।'

अक्षर–ब्रह्म के परम साधक कबीरदास सामान्य अक्षर–ज्ञान से रहित थे – 'मसि कागद छुयो नहीं, कलम गह्यो नहीं हाथ।' इनका चिंतन मिट्टी से जुड़ा हुआ था, वायवी बिल्कुल नहीं। आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी को कबीर का यही रूप आत्म–प्रेरित करता है।

'भाषा पर कबीर का ज़बरदस्त अधिकार था। वे वाणी के अधिनायक थे। उन्होंने जिस बात को, जिस रूप में प्रकट करना चाहा, उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया – बन गया तो सीधे–सीधे, नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार–सी नज़र आती है। उसमें मानों ऐसी हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी फ़रमाइश को मना कर सके।'

हमारी यह हीन भावना है कि हिंदी में अंग्रेज़ी मिलाने से स्तर ऊँचा हो जाता है, यह पूर्णतया निराधार है। टेलीविज़न पर जब भी हम रामायण, महाभारत आदि देखते हैं, तब उसमें हिंदी कितनी धारा–प्रवाह, मधुर और प्रभावी होती है, इसका अंदाज़ा भी नहीं लगाया जा सकता है। अंग्रेज़ी की घुसपैठ यहाँ पर बिल्कुल नहीं है, अर्थात् शब्द–चयन में सहज, सरल, लोक–भाषाई अभिव्यक्ति का ही स्वागत होता है। अब समय आ गया है कि इस दोगली पाश्चात्य राजनीतिक तथा सामाजिक नीति को त्यागकर भाषा के प्रति एक ऐसा रवैया अपनाया जाए, जो भाषा के मर्म के लिए आवश्यक है, क्योंकि जिन राष्ट्रों की भाषा खत्म हो जाती है उनका नाम इतिहास में नहीं रहता। गणेश शंकर विद्यार्थी ने बिल्कुल सही कहा है :

"पराई भाषा चरित्र की दृढ़ता का अपहरण कर लेती है, मौलिकता का विनाश कर देती है और नकल करने का स्वभाव बनाकर उत्कृष्ट गुणों और प्रतिभा से नमस्कार करा देती है।"

हम देखते हैं कि प्रत्येक प्रगतिशील, उन्नत, आज़ाद, स्वाभिमानी राष्ट्र की अपनी राष्ट्रभाषा है। इंग्लैंड, अमेरिका, चीन, जापान, रूस आदि सभी देशों में वहाँ की व्यापक, बहुप्रचलित भाषा राष्ट्रभाषा के रूप में व्यवहृत होती है। सुभाषचंद्र बोस ने हिंदी में ही देश से आह्वान किया था :

"तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आज़ादी दूँगा।"

यानी भावनात्मक एकता की शक्ति केवल हिंदी में है। भौतिक चिंतन एवं अनुसंधान के लिए निजभाषा को ही स्वीकार करना चाहिए। पुनर्जागरण काल में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने कहा था :

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को शूल।।"

राष्ट्र हित में शिक्षा का माध्यम स्वभाषा ही होना चाहिए। मनोवैज्ञानिक

सच्चाई यह है कि मौलिक चिंतन कम–से–कम प्राथमिक शिक्षा स्वभाषा में प्राप्त करने से ही संभव है। इसका कारण यह है कि मनुष्य जिस भाषा में सपनों की उड़ान भरता है, उसी भाषा में मौलिक चिंतन संभव है। स्वभाषा में ही सपने देखे जाते हैं और भौतिक चिंतन की उपज आविष्कार प्रथमतः एक सपना ही होता है। जयंत नारलीकर के शब्दों में :

"विज्ञान की पढ़ाई किस भाषा में होनी चाहिए? मैं अपना अनुभव बताता हूँ। मैंने विज्ञान हिंदी में पढ़ा था। मैं पहली कक्षा से दसवीं कक्षा तक बनारस में जिस स्कूल में विद्यार्थी था, वहाँ हिंदी माध्यम से विज्ञान पढ़ाया गया और मैं हिंदी में विज्ञान पढ़ता था। मुझे उसमें कोई कठिनाई नज़र नहीं आई। बच्चे जिस भाषा में विचार करते हैं, उस भाषा में विज्ञान पढ़ाना चाहिए, क्योंकि विज्ञान सोचने–समझने की चीज़ है, रटने की नहीं।"

अर्थात् प्राथमिक शिक्षा जब वह अन्य भाषा में शुरु करता है तब उसकी बहुत–सी शक्ति उस भाषा को सोचने में नष्ट हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि उसका अधिकार न अपनी भाषा पर रहता है और न ही अन्य भाषा पर, अपितु उच्च शिक्षा का अध्ययन स्वभाषा में करने से ही स्वभाषा में लिखने की क्षमता बढ़ती है। अंग्रेज़ों के शासनकाल में प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा थी, परिणामस्वरूप सी. वी. रमन, मेघनाद साहा, जयंत नारलीकर आदि जैसे वैज्ञानिक हुए। लगभग दो सौ वर्षों तक अंग्रेज़ी इस देश के शासकों की भाषा रही है, तब आज़ादी के बाद विज्ञान में इस देश को एक भी नोबेल पुरस्कार क्यों नहीं मिला? जबकि विश्व के 3 प्रतिशत विज्ञान के स्नातक भारत में हैं। अर्थात् विदेशी भाषा की स्वीकृति से ज्ञान का मात्र अर्जन होता है, सर्जन नहीं। इज़राइल (हिब्रू भाषा), चीन (मंदारिन), जापान (जापानी) आदि समुन्नत देश अपनी भाषा में जीते हैं और वे इसीलिए स्वतंत्र, वाचाल तथा सर्जनात्मक हैं, हमारे जैसे गुलाम, गूंगे तथा अनुर्वर नहीं हैं। यहाँ इस भाषाई खाई के कारण कृषक का पुत्र कृषक–वैज्ञानिक तथा लुहार का पुत्र धातुकी–अभियंता नहीं बन सकता। उपन्यासकार विद्याधर सूरजप्रसाद नायपॉल ने नोबेल पुरस्कार स्वीकारते समय अपने भाषण में कहा था :

"अपने लेखन के अंत की ओर आ रहे हैं, तब भी वे इसी तरह से लिखते हैं। वे लिखने के लिए कभी कोई योजना नहीं बनाते हैं। कोई सिस्टम नहीं अपनाते हैं, बस सहज प्रज्ञा से लिखते जाते हैं। हर बार वे एक किताब चाहते थे, कुछ ऐसी रचना चाहते थे, जो सरल और पढ़ने में रोचक हो। हर बार, हर स्तर पर उन्होंने अपने ज्ञान, संवेदना, बुद्धि और दुनिया को देखने के अपने नज़रिए के अनुसार लिखा।"

ज्ञान, संवेदना और बुद्धि का समन्वय 'स्वभाषा' में ही होता है, अन्य में नकल होने की संभावना अधिक रहती है। प्रेमचंद ने 'सेवासदन' उपन्यास में इस नकलची प्रवृत्ति का पर्दाफ़ाश किया है :

"आपकी अंग्रेज़ी शिक्षा ने आपको ऐसा पद्दलित किया है कि जब तक यूरोप का कोई विद्वान किसी विषय के गुण–दोष प्रकट न करें, तब तक आप उस विषय की ओर से उदासीन रहते हैं। आप उपनिषदों का आदर इसलिए नहीं करते कि वह स्वयं आदरणीय है, बल्कि इसलिए करते हैं कि ब्लावेट्स्कीम और मैक्समूलर ने उनका आदर किया है।"

वर्तमान समय में हो रहे अधुनातन आविष्कार स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा तक आसानी से पहुँच रहे हैं, किंतु उसे स्वीकार करने में हमारा भाषाई हीनताबोध आड़े आ जाता है। चार्ल्स हानेल के शब्दों में :

"प्रबल विचार या मानसिक दृष्टिकोण चुंबक है। नियम यह है कि समान चीज़ें समान चीज़ों को आकर्षित करती हैं। परिणामस्वरूप मानसिक दृष्टिकोण हमेशा अपनी प्रकृति के अनुरूप स्थितियों को आकर्षित करेगा।"

इक्कीसवीं सदी एशिया के नाम से जानी जाएगी। एशिया की दो बड़ी शक्तियाँ – चीन एवं भारत की अर्थव्यवस्था तीव्रगामी है। विश्व बाज़ार में भविष्य में इन दोनों देशों की भूमिका महत्त्वपूर्णरहनेवाली है। दोनों देशों की भाषाएँ – मंदारिन एवं हिंदी वैश्विक भाषाई विकल्प के रूप में उभरेंगी। हिंदी भाषा बाज़ार और व्यापार की भाषा बन गई है। कोई भी बड़ी विदेशी कंपनी हिंदी जाने बिना मध्य एशिया में व्यापार नहीं कर सकती। आज अपने माल

के प्रचार–प्रसार, पैकिंग, गुणवत्ता आदि के लिए हिंदी को अपनाना बहुराष्ट्रीय कंपनियों की विवशता है और उनकी यही विवशता हिंदी की शक्ति तथा सामर्थ्य की परिचायक है।

वैश्वीकरण में हिंदी की बदलती दुनिया को समझने की महती आवश्यकता है। मल्टी मीडिया के इस्तेमाल के लिए, आविष्कार के अनुरूप, विज्ञापन, एस.एम.एस., कम्प्यूटिंग सॉफ़्टवेयर आदि तकनीकों के अनुरूप हिंदी भाषा परिवर्तित हो रही है। विचारणीय यह है कि हिंदी भाषा में यह परिवर्तन उसके लिए कितना उचित और कितना अनुचित है, भूमंडलीकरण तो वह बिजली है, जिससे आपका घर रोशन भी हो सकता है और आपके द्वार में आग भी लग सकती है। प्रो. हरमहेंद्र सिंह बेदी के अनुसार :

"वैश्विकरण के इस दौर में हिंदी बहुत ही बड़ी भूमिका निभाने जा रही है। यह भूमिका सार्क (SAARC) देशों की एकमात्र भाषा बनकर उभरने में छुपी हुई है। सार्क देश अगर किसी एक भाषा पर भविष्य में निर्भर कर सकते हैं, तो वह हिंदी ही होगी, क्योंकि बांग्लादेश, भूटान, नेपाल, श्रीलंका एवं पाकिस्तान इस भाषा को सहज ही अपना सकते हैं।"

प्रवासी भारतीय भी हिंदी भाषा के प्रचार–प्रसार में महत्त्वपूर्णभूमिका का निर्वाह कर रहे हैं। फ़िजी, सूरीनाम, गयाना, मॉरीशस, त्रिनिदाद जैसे देशों में प्रवासी भारतीयों के द्वारा हिंदी का प्रयोग किया जा रहा है। विश्व में शायद ही कोई देश हो, जहाँ प्रवासी भारतीय न हों और वहाँ हिंदी भाषा विद्यमान न हो।

आज विश्व के लगभग 150 विश्वविद्यालयों तथा सैंकड़ों छोटे–बड़े केंद्रों में विश्वविद्यालयी स्तर से लेकर शोध–स्तर तक हिंदी के अध्ययन–अध्यापन की व्यवस्था हुई है। साहित्य की दृष्टि से यदि देखा जाए तो, एशिया के देशों में सर्वाधिक पाठक हिंदी साहित्य के हैं :

"कहानी, कविता, नाटक, संस्मरण एवं ज्ञान–विज्ञान की सबसे ज़्यादा किताबें हिंदी भाषा में ही छपती हैं। आज हिंदी भाषा एवं साहित्य की गरिमा को आलोकित करने के लिए 500 पत्र–पत्रिकाएँ छप रही हैं। विभिन्न विषयों पर हिंदी में हर रोज़ 20 किताबें छपकर बाज़ार में आ जाती हैं। दुनिया का कोई ऐसा विषय नहीं, जिस पर हिंदी भाषा में दो–चार मानक पुस्तकें उपलब्ध न हों।"

ब्रिटेन में हिंदी प्रसार परिषद् द्वारा 'प्रवासिनी' पत्रिका का प्रकाशन होता है। मॉरीशस से विश्व हिंदी समाचार, विश्व हिंदी पत्रिका, जनता, आर्योदय, वसंत, आदि तथा अमेरिका से प्रकाशित होनेवाली प्रमुख पत्रिकाएँ हिंदी के प्रचार–प्रसार में सहायक हैं। आज के दस बेहतरीन अख़बारों में से अंग्रेज़ी का एक भी नहीं है, सभी हिंदी के ही हैं। वर्तमान समय में दुनिया में सर्वाधिक प्रयोग में लाई जानेवाली आठ भाषाएँ – अंग्रेज़ी, स्पेनिश, रूसी, अरबी, फ्रेंच, पुर्तगाली, मलय, इंडोनेशियन हैं। हिंदी विश्व में सबसे अधिक बोली जानेवाली दस भाषाओं में से है।

हिंदी भाषा का संबंध राष्ट्रीयता से है और बहुराष्ट्रीय निगमों का इससे विरोध है, क्योंकि जातीय चेतना और राष्ट्रीय चेतना से युक्त जन–जागरण का उसे हमेशा खतरा होता है। आज देश को बाज़ार में बदलकर, विकास का नया दर्शन प्रचारित किया जा रहा है। देवनागरी लिपि के स्थान पर रोमन लिपि प्रभावी बनाई जा रही है। हिंदी को पिछड़ों की भाषा मानकर इस प्रकार का प्रचार–प्रसार किया जा रहा है कि यह विज्ञान और प्रौद्योगिकी, समाज–विज्ञान, चिकित्सा और अभियांत्रिकी, वाणिज्य व्यवसाय, विविध अनुशासन, प्रबंध आदि की भाषा नहीं हो सकती। किंतु यह सच नहीं है। मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान के शब्दों में :

"मध्य प्रदेश ने इस बात का भ्रम तोड़ा है कि अभियांत्रिकी और चिकित्सा जैसे क्षेत्रों में हिंदी में पढ़ाई नहीं होती है। हमने प्रदेश में पाणिनि संस्कृत विश्वविद्यालय और अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय की स्थापना की है। यह विश्वविद्यालय अभियांत्रिकी और चिकित्सा के क्षेत्रों में हिंदी में पढ़ाई करा रहा है।"

10 से 14 जनवरी, 1975 को नागपुर में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के तत्वावधान में प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन हुआ था, जिसका उद्घाटन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने किया था। अध्यक्षता मॉरीशस के प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम ने की थी। विश्व स्तर पर हिंदी का यह पहला सम्मेलन था। इसमें सर्वसम्मति से तीन मंतव्य स्वीकृत किए गए थे –

1. अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी के अध्ययन–अध्यापन के लिए वर्धा में विश्व हिंदी विद्यापीठ की स्थापना की जाए।
2. विश्व हिंदी सम्मेलनों की निरंतरता बनाए रखने एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी के व्यापक प्रचार–प्रसार के लिए संवाद बनाए रखने एवं कार्य को आगे बढ़ाने के लिए एक विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना की जाए।
3. संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता प्रदान की जाए।

यह प्रसन्नता की बात है कि राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के प्रयासों से भारत सरकार ने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की मुख्य कर्मभूमि वर्धा में उन्हीं के नाम पर महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय की स्थापना की है। इसी प्रकार मॉरीशस में विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना की गई।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी जब भी विदेशों में जाते हैं, तब अपनी बात हिंदी में रखते हैं। उन्होंने संयुक्त राष्ट्र संघ में भी अपना संबोधन हिंदी में ही दिया, संयुक्त राष्ट्र संघ ने 21 जून को 'अंतरराष्ट्रीय योग दिवस' तथा मिसाइल मैन डॉ. कलाम के जन्मदिन, 15 अक्टूबर को 'वर्ल्ड स्टूडेंट्स डे' के रूप में मनाने का फैसला किया। अभी–अभी आधिकारिक भाषाओं को लेकर बनी संसदीय समिति की सिफ़ारिश को पूर्व राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने स्वीकार किया। राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और मंत्री अब हिंदी में ही भाषण देंगे इन सब बातों को देखकर उम्मीद बंधती है कि संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी भाषा को अवश्य आधिकारिक भाषा का दर्जा मिलेगा।

आज हिंदी का महत्व देश तथा विदेश में काफ़ी बढ़ गया है। विदेशी राष्ट्रों में हिंदी के अध्ययन–अध्यापन, अनुसंधान तथा प्रचार–प्रसार का कार्य ज़ोर पकड़ रहा है। राज–भाषा के साथ–साथ विश्व–भाषा के रूप में हिंदी का प्रचार–प्रसार दिन–ब–दिन बढ़ता जा रहा है। वैसे भी बोलने वालों की संख्या की दृष्टि से हिंदी विश्व में दूसरे स्थान पर है। भले ही हिंदी को विश्व–भाषा का दर्जा न दिया गया हो, फिर भी उसके विश्व–भाषा रूप को संसार की कोई शक्ति रोक नहीं सकती।

हम अंत में इतना ही कह सकते हैं कि भविष्य में हिंदी ज्ञान–विज्ञान की भाषा तब तक नहीं बन सकती, जब तक सत्ताधारी, वैज्ञानिक एवं शिक्षक राष्ट्र के विकास की दृष्टि से इस विषय पर चिंतन नहीं करते, विभिन्न हिंदी सेवी–संस्थाओं द्वारा स्वभाषा के प्रचार–प्रसार को केवल साहित्य के विकास एवं बोलने तक सीमित न रखकर ज्ञान–विज्ञान की भाषा बनाने के लिए प्रचार–प्रसार नहीं होता एवं सत्ताधारी राजनेताओं एवं वैज्ञानिकों की कथनी और करनी में अंतर नहीं मिटता। दुष्यंत जी के शब्दों में कहना चाहूँ तो –

"हो गई है पीर पर्वत–सी पिघलनी चाहिए,
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।
आज यह दीवार, परदों की तरह हिलने लगी,
शर्त लेकिन थी कि ये बुनियाद हिलनी चाहिए।"

संदर्भ ग्रंथः

1. आधुनिक हिंदी साहित्य के विविध परिदृश्य – डॉ. मजीद शेख।
2. तेजस्वी मन महाशक्ति भारत की नींव–ए. पी. जे. अब्दुल कलाम।
3. महाशक्ति भारत – ए. पी. जे. अब्दुल कलाम, वाई सुंदर राजन।
4. मेरे सपनों का भारत – ए. पी. जे. अब्दुल कलाम, ए. शिवताणु पिल्लै।
5. अपनी धरती, अपना आकाश नोबेल के मंच से – विजय शर्मा।
6. रहस्य – रॉन्डा बर्न।
7. कबीर – हज़ारीप्रसाद द्विवेदी।
8. सेवासदन – प्रेमचंद।
9. हिंदी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचंद्र शुक्ल।
10. आलोचना त्रैमासिक (जनवरी–मार्च, 2015), भारतीय जनतंत्र का जायज़ा–एक – प्र. सं. नामवर सिंह।
11. आलोचना त्रैमासिक (अप्रैल–जून, 2015), भारतीय जनतंत्र का जायज़ा–दो – प्र. सं. नामवर सिंह।
12. विश्व हिंदी पत्रिका 2016 – प्र. सं. प्रो. विनोद कुमार मिश्र।
13. दै.लोकमत समाचार (मंगलवार,18 अप्रैल, 2017) – सं. विकास मिश्र।
14. साये में धूप – दुष्यंत कुमार।

औरंगाबाद, महाराष्ट्र, भारत

majidmshaikh@gmail.com

स्वामी शंकरानंद संन्यासी : जिन्होंने बढ़ाया दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी का मान

– डॉ. राकेश कुमार दूबे

औपनिवेशिक काल में प्रवासी भारतवंशियों में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति, विशेषकर हिंदी भाषा के प्रचार–प्रसार में जिन व्यक्तियों का नाम लिया जाता है, उनमें अग्रणी एवं अति विशिष्ट स्थान स्वामी शंकरानंद संन्यासी का रहा है। आर्य समाजी प्रचारक स्वामी शंकरानंद ने उस समय, जबकि कोई भारतीय उपनिवेशों की यात्रा करना ही नहीं चाहता था और जिसे प्रवासी भारतीयों के सबसे बड़े भारतीय हितैषी पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी ने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में लिख दिया था कि "उपनिवेशों की यात्रा करता ही कौन है? देश के बड़े–बड़े आदमी जब कभी यात्रा करने का विचार करते हैं तो सीधे विलायत की ओर चले जाते हैं और फिर वहाँ के अनुभव को सर्वसाधारण तक पहुँचाने के लिए कोई पुस्तक भी नहीं लिखते। मध्यम श्रेणी के आदमी के पास साधन नहीं है और जिनके पास साधन होते हैं वह विलायत यात्रा को महत्व देते हैं। (England Return) 'विलायत से लौटे हुए' ये शब्द योग्यता सूचक समझे जाते थे। उन्होंने दक्षिण अफ़्रीका की यात्रा की और वहाँ के प्रवासी भारतीयों में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का पुरजोर प्रचार हिंदी भाषा में किया और भारतीयों को अपने भाव, भेष, भोजन, भजन, भक्ति, संस्कार और विशेषकर अपनी भाषा अपनाने का मार्ग बतलाया।

स्वामी शंकरानंद का जन्म चैत्र वदी चौथ संवत् 1924 विक्रमी (1867ई.) में पंजाब के जालंधर नगर में हुआ था। इनके पिता का नाम पंडित तुलसीरामजी शास्त्री था, जो कि लाहौर ओरिएंटल कॉलिज में प्रोफ़ेसर थे। इनके बचपन का नाम शंकरनाथ था और 11 वर्ष की आयु में पिता के स्वर्गवास के बाद उन्होंने कुछ समय तक ओरिएंटल कॉलिज में अध्ययन किया और फिर दयानंद एंग्लो वैदिक स्कूल में मैट्रिक तक पढ़ाई की। 1883 ई. में ये देशाटन को निकल पड़े और अनेक नगरों और प्रांतों का भ्रमण करते हुए जब काठियावाड़ पहुँचे तब वहाँ ब्रह्मनिष्ठ स्वामी आत्मानंदजी महाराज से उनकी मुलाकात हुई और उनसे इन्होंने ब्रह्मज्ञान की शिक्षा प्राप्त की।

1891 ई. में बड़े भाई के विशेष अनुरोध करने पर शंकरनाथ देशाटन से घर वापस आ गए और दयानंद एंग्लो वैदिक कॉलिज में अतिरिक्त छात्र के रूप में संस्कृत, इतिहास और साहित्य पढ़ने लगे और साथ ही

जन्म : 15 अक्टूबर, 1982 ई., , नेहियां, वाराणसी

शिक्षा :

- 2004 – बी.ए.,वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर
- 2006 – एम. ए., प्रथम श्रेणी, इतिहास, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
- 2011–पी.एच.डी., काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी (इतिहास)
- 2007 – यू.जी.सी – नेट

व्यवसाय :

- 2014–2015–श्री सच्चियाय संकल्प महाविद्यालय, ओसियां, जोधपुर, राजस्थान में सहायक प्राध्यापक के रूप में कार्य
- फरवरी 2015 – डॉ. एस. राधाकृष्णन् पोस्ट डॉक्टोरल फेलोशिप के अंतर्गत इतिहास विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय में कार्यरत

प्रकाशन :

- पुस्तक : भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन और काशी की नागरीप्रचारिणी सभा, आस्था प्रकाशन, जयपुर, 2017
- शोधपत्र/आलेख : 70 से अधिक शोधपत्र/आलेख राष्ट्रीय और अंतरर्राष्ट्रीय पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं, जिनमें विषय को लेकर काफी विविधता है। एक तरफ भारत की संस्थागत हिंदी पत्रिकाओं–नागरीप्रचारिणी पत्रिका, नागरी, सम्मेलन पत्रिका, हिंदुस्तानी, दक्षिण भारत, केदार–मानस, विकल्प, साहित्य भारती, गवेषणा इत्यादि में तो वहीं गगनांचल, इतिहास–दिवाकर और इतिहास–दर्पण जैसी ऐतिहासिक महत्व की पत्रिकाओं में शोधपत्र/आलेख प्रकाशित हैं। पर्यावरण संजीवनी, भगीरथ और जल चेतना जैसी पर्यावरण एवं जल संरक्षण से संबंधित पत्रिकाओं के अलावा विशुद्ध विज्ञान की राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं–विज्ञान, विज्ञान आपके लिए, विज्ञान–गंगा, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, विज्ञान प्रगति एवं ड्रीम 2047 में शोधपत्र/आलेख प्रकाशित हैं। भारत से बाहर की प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं–विश्व हिंदी पत्रिका (मारीशस), विश्व हिंदी समाचार (मारीशस), विश्वा (अमेरिका), सेतु (अमेरिका), वसुधा (कनाडा) एवं साहित्य कुंज (कनाडा) में भी शोधपत्र/आलेख प्रकाशित हैं।

पुरस्कार/सम्मान :

- ह्विटेकर विज्ञान पुरस्कार (2012), विज्ञान परिषद् प्रयाग, इलाहाबाद
- अंतरराष्ट्रीय हिंदी निबंध प्रतियोगिता पुरस्कार (2015), विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस

वेदांत, व्याकरण, काव्य और धर्मशास्त्र का भी अध्ययन करने लगे। इसी बीच में इनकी पत्नी का देहांत हो गया और पंडित शंकरनाथजी निश्चिंत होकर सार्वजनिक कार्यों में अग्रसर हुए। जालंधर में इन्होंने 'दयानंद एंग्लो वैदिक हाई स्कूल' की स्थापना की और लाहौर से 'स्वदेशी वस्तु प्रचारक' नाम का एक अख़बार भी निकाला। जब पुनर्विवाह के लिए चारों ओर से ज़ोर दिया जाने लगा तब इन्होंने इस झंझट से सदा के लिए छुटकारा पाने के लिए 1895 ई. में हरिद्वार के गंगातट पर संन्यास ग्रहण कर लिया और फिर स्वामी शंकरानंद संन्यासी के नाम से प्रसिद्ध हुए।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा से संबंध और हिंदी के लिए प्रेम :

स्वामी शंकरानंद का हिंदी के प्रचार–प्रसार और हिंदी की आदि संस्था काशी नागरी प्रचारिणी सभा से भी घनिष्ठ संबंध था। वे 1893 ई. में काशी आए थे और उस समय यहाँ पर हिंदी के प्रचारार्थ एक संस्था के निर्माण का उद्योग हो रहा था। यह सौभाग्य की बात थी कि शंकरनाथ इसके पहले ही अधिवेशन में शामिल हुए और उन 12 लोगों में से एक थे, जिन लोगों ने इस सभा की आधारशिला रखी थी। उन्होंने नागरी प्रचारिणी सभा की उसके प्रारंभिक वर्ष में हर प्रकार से सहायता की थी और यहीं से उनके हृदय में हिंदी के लिए असीम प्रेमभाव उत्पन्न हुआ था, जो आजीवन बना रहा। सभा के प्रथम वार्षिक अधिवेशन में, जो कि 30 सितंबर, 1894 ई. को कारमाइकेल लाइब्रेरी में पंडित लक्ष्मीशंकर मिश्र की अध्यक्षता में हुआ था, शंकरनाथ ने जो कुछ कहा था और अपना जो आशीर्वाद सभा को दिया था, वह पूर्णतया सत्य साबित हुआ। उन्होंने कहा था कि ***"धन्य है आज का दिन जो हम हिंदी भाषा के इतने उत्साहित और सच्चे प्रेमियों को आज यहाँ एकत्रित देखते हैं। प्रथम हिंदी भाषा का प्रचार मिशन स्कूलों में बहुत देखने में आता था। उसकी शिक्षा उन्हीं के धर्म ग्रंथों पर होती थी, इससे बालकों का उपकार होना तो दूर रहा, परंतु उनके बिगड़ जाने का पूरा संदेह था। उनकी शिक्षा के आरंभ ही में सनातन धर्म पर आघात होता था। खेद का विषय है कि अनेक लोग हिंदी को वहशी और अशिक्षितों की भाषा कहते हैं, किंतु वे लोग इसके गुणों से परिचित नहीं हैं। यदि उन्हें इसका गुण गौरव विदित होता, तो वे कदापि इस प्रकार का व्यर्थ कलंक इसके माथे न लगाते। आज इस सभा की कार्यवाहियों को देख–सुनकर अत्यंत हर्ष होता है और इसके द्वारा हिंदी भाषा की बहुत कुछ उन्नति होगी और जो कुछ त्रुटि उसमें है, वह भी शीघ्र ही पूर्ण हो जाएगी। इस उत्तम कार्य में लगातार लगे रहने से कुछ दिनों के उपरांत इसका लाभ प्रतीत होगा और जब अन्य देशवासी इस काशीस्थ सभा का ऐसा उद्योग सुफल देखेंगे, तो उन्हें भी उत्साह होगा और वह भी इसके सहायक हो निज मातृभाषा की उन्नति करेंगे और तब ईश्वर की कृपा से एक दिन ऐसा आएगा कि समस्त भारतवर्ष में हम नागरी अक्षर और भाषा का प्रचार देखेंगे।"***

संन्यास ग्रहण करने के बाद स्वामी शंकरानंद ने देशाटन, धर्म प्रचार और शास्त्रार्थ किया। इसी दौरान लंदन में हो रहे 'यूनिवर्सल पीस कॉन्फ़्रेंस' में भाग लेने के लिए 15 मार्च, 1908 को मुंबई से इंग्लैंड के लिए रवाना हुए। इस यात्रा में उन्होंने इटली, फ़्रांस, इंग्लैंड इत्यादि देशों में घूमकर वहाँ की धार्मिक स्थिति का अच्छा अनुभव प्राप्त किया, अनेक महत्त्वपूर्णव्याख्यान दिए और सर हेनरी काटन के साथ कॉमंस सभा और लार्ड सभा की बैठकें भी देखी। वे लंदन में आयोजित 'यूनिवर्सल पीस कॉन्फ़्रेंस' में शामिल हुए, परंतु वहाँ से लौटकर वे सीधे भारत नहीं आए, बल्कि अपने प्रवासी भारतीयों को वैदिक सभ्यता का ज्ञान देने, मातृभाषा की महत्ता बतलाने एवं उनकी समस्याओं के निवारण हेतु दक्षिण अफ़्रीका चले गए और 29 सितंबर, 1908 को केपटाउन पहुँचे।

जो भारतीय उपनिवेशों को ले जाये गये थे, उनकी अवस्था उस समय तक भी काफी दयनीय ही बनी हुई थी और साथ ही उनमें अनेक सामाजिक और धार्मिक विसंगतियाँ भी घर कर गयी थीं। जो भारतवासी मज़दूरों के रूप में उपनिवेशों को ले जाये जाते थे, वे अपनी अज्ञानता और मूर्खता के कारण थोड़े से धन के लोभ में फँसकर अपनी प्यारी जन्मभूमि को सदैव के लिए छोड़ देते थे। उपनिवेशों को जाते हुए ही अपने यज्ञोपवीतों को उतार कर भगवती भागीरथी को सौंप दिया करते थे और अपने प्यारे धर्म के भाव को बिल्कुल तिलांजलि दे देते थे। उपनिवेशों में सामाजिक कुरीतियाँ भारतीयों के जीवन में इतना प्रवेश कर चुकी थीं कि विवाह तक का कोई नियम नहीं था। बूढ़ी स्त्रियाँ युवा पुरुषों के साथ एवं छोटी बच्चियाँ बुड्ढों के साथ बाँध दी जाती थीं और स्त्रियों के लिए लड़ाई झगड़े एवं खून खराबे होते थे। भारतीयों ने अपने त्यौहारों को बिल्कुल तिलांजलि दे दी थी। होली और दिवाली आती और चली जाती पर किसी को कुछ पता ही नहीं रहता। यहाँ के लिए सबसे बड़ा पर्व बन गया था मोहर्रम। हिंदुओं के घर भी ताज़िये बनते, उनकी स्त्रियाँ मातम मनातीं, मर्सिया गातीं और इमाम साहब पर शीरनी और पंजे चढ़ातीं। जब ताज़िया निकलते तो हिंदू लोग छाती पीट–पीटकर हाय हसन! हाय हुसैन! की ऐसी चिल्लाहट मचाते कि देखने

वाले दंग रह जाते थे। ताज़िये का त्यौहार भारतीयों का प्रमुख त्यौहार बन गया था, जिसे गोरे लोगों ने 'कुली क्रिसमस' नाम दे रखा था। इन देशों में भारतीयों की जो संताने उत्पन्न हुईं, उनकी अवस्था और भी करुणाजनक हो गई। उनमें आर्य संस्कृति, धर्म–कर्म एवं मातृभाषा की तो कोई फ़िक्र ही नहीं था, यहाँ तक कि किसी प्रकार की शिक्षा का कोई समुचित प्रबंध नहीं था। अधिकांश बालक या तो निरक्षर रहते या मिशनरियों के माध्यम से थोड़ा बहुत अंग्रेज़ी पढ़ लिख लेते और अपने पूर्वजों को 'कुली' और भारतवर्ष को 'कुलियों का देश' समझने लगे। उनकी श्रेणी 'काले साहब' के नाम से पुकारी जाने लगी अर्थात् उन्होंने अपने प्राचीन भाव, भाषा, भेष, भोजन और भजन को तिलांजलि देकर क्रिश्चियन मत की शरण ले रखी थी।

उपनिवेशों में वैदिक संस्कृति एवं हिंदी के प्रचार में जिन दो प्रारंभिक प्रचारकों का नाम लिया जाता है, वे दोनों ही आर्यसमाजी प्रचारक थे और उसमें प्रथम नाम भाई परमानंद का है, जिन्हें दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतवंशियों के विशेष आग्रह पर डी. ए. वी. कॉलिज, लाहौर के प्राचार्य लाला हंसराज ने आर्य समाज के प्रचार के लिए दक्षिण अफ्रीका भेजा था। केवल 27 वर्ष की अवस्था में भाई परमानंद 5 अगस्त, 1905 ई. को दक्षिण अफ्रीका पहुँचे और वहाँ उन्होंने 4 माह तक निवास किया और जोहांसबर्ग, नेटाल, प्रिटोरिया, केपटाउन इत्यादि शहरों में भारतीय रीति रिवाज़ों और त्यौहारों के बारे में वहाँ के लोगों को बतलाया और वह भी लोकभाषा हिंदी में, क्योंकि वहाँ के अधिकांश भारतीय इसी भाषा को कमोबेश समझ सकते थे। उन्हीं के प्रचार का परिणाम था कि प्रवासी भारतवासियों ने दिवाली मनाना आरंभ किया। उन्हीं के निर्देशन में 1905 ई. में नेटाल में 'यंग मेंस एसोसिएशन' की स्थापना हुई और दक्षिण अफ्रीका में आर्य समाज के सिद्धांतों और हिंदी का प्रचार आरंभ हुआ।

भाई परमानंद ने प्रवासी भारतीयों में जागृति की जो प्यास पैदा कर दी थी, उसको उपदेशामृत से तृप्त करने के लिए इंग्लैंड से स्वामी शंकरानंदजी संन्यासी 1908 ई. में नेटाल, दक्षिण अफ्रीका पहुंचे। ये आर्य समाज के दूसरे प्रचारक थे जो उपनिवेशों में प्रचारार्थ गये थे। आर्य समाज के पहले प्रचारक भाई परमानंद अपनी विद्वत्ता, उत्साह, लगन, देशभक्ति और प्रचारकार्य में अद्वितीय थे, परंतु स्वामी शंकरानंद दक्षिण अफ्रीका में आर्यसमाजी सिद्धांतों और हिंदी के प्रचार में भाई परमानंद से काफी बढ़े–चढ़े थे। वह भाई परमानंद की तुलना में उसी प्रकार दिखलाई पड़ते हैं, जैसे राजा राममोहनराय की तुलना में स्वामी दयानंद सरस्वती या फिर गोपालकृष्ण गोखले की तुलना में बालगंगाधर तिलक। स्वामी शंकरानंद लगभग 4 वर्षों तक दक्षिण अफ्रीका में रहे और वहाँ के विभिन्न नगरों में घूम–घूमकर उन्होंने वैदिक सभ्यता एवं संस्कृति का प्रचार किया और वह भी हिंदी भाषा में।

स्वामी शंकरानंद ने दक्षिण अफ्रीका पहुँचकर मातृभाषा में शिक्षा और 16 संस्कारों को अपनाने की बात पर बल दिया, साथ ही भारतीय रीति रिवाज़ों एवं त्योहारों को अपनाने की शिक्षा दी। भारतीयों के धार्मिक भाव, जो कुसंग और बुरे संस्कारों के कारण दब गये थे, वे स्वामीजी के विद्वत्तापूर्ण भाषणों से फिर पल्लवित हो उठे। उनके प्रचार का फल यह हुआ कि हिंदुओं की अंतर्दृष्टि खुल गई और वह अपना सच्चा स्वरूप देख पाए। ताजिएदारी की जगह रामरथ निकलने लगे। जहाँ हिंदुओं के मुर्दे कब्र में दफनाए जाते थे, वहाँ उनका श्मशान में दाह कर्म होने लगा। मुहर्रम और क्रिसमस के बदले होली और दिवाली मनाई जाने लगी। आज दीपावली, रामनवमी, कृष्ण जन्माष्टमी के साथ ही प्रवासी भारतीयों में अत्यंत लोकप्रिय पर्व महाशिवरात्रि जो मनाया जाता है, वह बहुत कुछ आर्य समाजियों, विशेषकर स्वामी शंकरानंद की देन है। स्वामी शंकरानंद के उद्योग से दिवाली की छुट्टी दक्षिण अफ्रीका की सरकार देने लगी और इस प्रकार दिवाली यहाँ की आर्य जाति का एक सार्वजनिक त्यौहार बन गई।

स्वामी शंकरानंद ने वैदिक संस्कृति का हिंदी भाषा में जो प्रचार किया, उसके परिणाम प्रवासी भारतवासियों के लिए अत्यंत ही सकारात्मक हुए, जिसे दक्षिण अफ्रीकी सरकार एवं प्रवासी भारतवासी दोनों ने स्वीकार किया था। उनके प्रचारकार्य के बारे में नेटाल कॉलोनी के सेक्रेटरी ओ. ग्रेडी ग्यूबिंस ने लिखा था कि "स्वामी जी को नेटाल में ठहरे 15 माह से अधिक हो गए हैं और उन्हें अपने आप को यहाँ बसे हुए भारतीयों की परिस्थितियों से परिचित कराने और उनमें सुधार के संबंध में सरकार के विचारार्थ बहुत सम्मतियाँ पेश करने का अवसर प्राप्त हुआ है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इनका सुपरिणाम केवल स्वामी जी के घोर परिश्रम का ही फल होगा, जो कि अपने देशवासियों की ओर से कर रहे हैं। उनके इस देश में रहते हुए, उनके व्यवहार के प्रति मैं अपनी सराहना प्रकट करते हुए प्रसन्न हूँ।" इसी प्रकार नेटाल के गवर्नर सर मेथ्यू नेथन ने स्वामीजी को लिखे एक पत्र में कहा था कि "नेटाल में अपने धर्मावलंबियों की सहायता करने की जो आपकी इच्छा है, उसे मैं अनुभव करता हूँ। मैंने डॉ. ग्यूबिंस से कह दिया है और मुझे आशा है कि भारतीय हाई स्कूलों में जो आयु संबंधी प्रतिबंध है, शीघ्र ही हटा दिया जाएगा।"

स्वामी शंकरानंद ने अपने प्रचार एवं परिश्रम द्वारा दक्षिण अफ्रीका के हिंदुओं के धार्मिक जीवन का ढाँचा ही बदल दिया। वैदिक धर्म पर भक्ति, आर्य संस्कृति पर श्रद्धा, संध्या, हवन, सलाम के बदले परस्पर नमस्ते से अभिवादन, मातृभाषा से ममता, कुरीतियों से घृणा, सभा–समितियों में अभिरुचि और आत्मसम्मान का ज्ञान भारतीयों की विशेषता बन गई। स्वामी जी ने दक्षिण अफ्रीका के सभी मुख्य नगरों में वेद

धर्म सभाओं की स्थापना की, मेरीत्सबर्ग में 'नेटाल इंडियन ट्रेडर्स' और 'वैदिक आश्रम' की बुनियाद डाली, जिनमें अधिकांश वेदधर्म सभाएँ कालांतर में विलुप्त हो गईं पर उनमें पीटरमेरिट्सबर्ग की धर्मसभा उत्तरोत्तर उन्नति करती रही और दक्षिण अफ्रीका में एक शक्तिशाली संस्था एवं स्वामीजी का सच्चा स्मारक बन गई। स्वामी जी ने समस्त हिंदुओं को संगठित करने के विचार से अप्रैल, 1912 ई. में 'दक्षिणी अफ्रीका हिंदू महासभा' की बुनियाद डाली, जिसका प्रथम अधिवेशन उन्हीं के सभापतित्व में बड़ी धूमधाम से हुआ था, जिसमें यूनियन के सभी प्रांतों के 250 से अधिक प्रतिनिधि शामिल हुए थे।

स्वामी शंकरानंद ने दक्षिण अफ्रीका में संगठन एवं प्रचार का जो कार्य किया, उसपर कुछ लोगों का यह मत था कि भारतीयों के एक भाग के संगठन का अर्थ होगा दूसरे भाग को हानि पहुँचाना और इस प्रकार दो समुदायों में फूट बढ़ेगी। परंतु स्वामीजी का यह उद्देश्य नहीं था। वे हिंदू संन्यासी थे और इस जाति के बिखरे हुए फूलों को एकत्र करके एक माला बना देना चाहते थे। उनका यह दृढ़ विश्वास हो गया था कि संगठन के बिना इस जाति का उद्धार होना असंभव है। प्रवासी भारतवासियों के सबसे बड़े हितैषी और उपनिवेशों में हिंदी के सबसे बड़े प्रचारक भवानी दयाल संन्यासी तक ने स्वामी शंकरानंद के इस कार्य की सराहना करते हुए लिखा कि "मैं उनके दर्शन से वंचित रह गया पर दक्षिण अफ्रीका में उनके महत्त्वपूर्ण कार्यों को देखकर मैं प्रभावित हुए बिना न रहा। उन्होंने दलित, पीड़ित और असंगठित हिंदुओं को अपने पैरों पर खड़ा कर दिया था।"

स्वामी शंकरानंद 1908 से 1912 ई. तक दक्षिण अफ्रीका में रहे और प्रवासी भारतीयों की अमूल्य सेवा की। उनके संबंध में दक्षिण अफ्रीका के प्रमुख समाचार–पत्र 'संडे पोस्ट" ने लिखा था कि "यूरोप के किसी भी फिलोसॉफ़र से स्वामीजी अधिक विद्वान हैं। वे कांट, हेगल, फ़िक्टे, शोपेनहावर आदि के दर्शनशास्त्र का अच्छा अनुभव रखते हैं। उनका कथन है कि दुनिया की समस्त फिलोसॉफ़ी भारत के दर्शनशास्त्रों की ऋणी है और इस बात को सिद्ध करने के लिए उनके पास काफी सबूत हैं।" दक्षिण अफ्रीका में स्वामी शंकरानंद द्वारा किये गये कार्यों की प्रवासी भवानी दयाल संन्यासी तक ने भूरि–भूरि सराहना की थी और अपनी समालोचना में लिखा था कि "नेटाल के जो गोरे लोग हिंदुओं को हीन समझते थे उन्हें स्वामीजी ने बतलाया कि हिंदू धर्म ही सब धर्मों की जननी है और जब यूरोप के लोग अविद्याजनित अधर्म के पलने में पल रहे थे, उस समय हिंदू लोग उत्कर्ष के उच्चासन पर आसीन थे। स्वामी जी के व्याख्यान से जहाँ विधर्मियों के भ्रम दूर हुए, वहाँ पतन के पथ पर जाने वाले हिंदुओं को सुमार्ग पर आने का सहारा मिल गया।"

स्वामी शंकरानंद के दक्षिण अफ्रीका में किये गये संगठन एवं प्रचार कार्यों का सर्वेक्षण करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि इस क्षेत्र में उन्होंने अनुकरणीय कार्य किया था। जब वे दक्षिण अफ्रीका गये थे, तब प्रवासी भारतीयों में अनेक विसंगतियाँ घर कर गयी थीं, पर उन्होंने अपने उपदेशों एवं प्रचार कार्य द्वारा उन्हें दूर कर प्रवासी भारतीयों को उचित मार्ग दिखलाया। भाई परमानंद के पदचिन्हों का अनुसरण करते हुए उन्होंने भी आर्यसमाजी सिद्धांतों का पुरज़ोर प्रचार किया और वह भी अधिकांशतः हिंदी भाषा में। उन्होंने 'मातृभाषा की महत्ता' पर अनेक व्याख्यान वहाँ पर दिये थे। भारतीय रीति–रिवाज़ों एवं परंपराओं का दक्षिण अफ्रीका में रह रहे प्रवासी भारतवंशियों द्वारा तत्काल अपना लिया जाना उनकी महत्ता को स्वयं ही सिद्ध करता है। उनके हिंदी प्रचार कार्य की महत्ता और उपयोगिता का अंदाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कि उनके भारत वापस आने के बाद दक्षिण अफ्रीका में हिंदी के प्रचार की चर्चा ज़ोरों पर चल निकली और उनके बाद जितने भी प्रचारक किसी भी उपनिवेश में गये, उनमें से अधिकांश ने अपना प्रचार कार्य हिंदी भाषा में ही किया और जो अपना संस्मरण भी लिखा वह भी अधिकांशतः हिंदी भाषा में। उपनिवेशों में हिंदी के सबसे बड़े प्रचारक भवानी दयाल संन्यासी ने हिंदी प्रचार की बहुत कुछ प्रेरणा उन्हीं से ही ली थी और दक्षिण अफ्रीका में हिंदी प्रचारिणी संस्थाओं, हिंदी साहित्य सम्मेलनों, वाचनालयों एवं विद्यालयों की स्थापना का एक क्रम आरंभ किया था और इन सबों से बढ़कर 'हिंदी' नामक पत्रिका भी निकाली थी, जो कि उस समय उपनिवेशों में हिंदी और प्रवासी भारतीयों की सबसे लोकप्रिय पत्रिका हो गयी थी। निःसंदेह दक्षिण अफ्रीका में हिंदी का मान बढ़ाने में स्वामी शंकरानंद संन्यासी का अविस्मरणीय योगदान था।

स्रोत :

1. संन्यासी, भवानी दयाल, प्रवासी की कहानी, बाल साहित्य प्रकाशन समिति, कलकत्ता, 1939 ई.
2. हिंदी पत्रिका, अक्टूबर, 1923 ई., जगरानी प्रेस, जेकोब्स, नेटाल, दक्षिण अफ्रीका
3. नागरीप्रचारिणी सभा, काशी का प्रथम वार्षिक विवरण 1893–94 ई., प्रकाशन ज्ञात नहीं
4. शास्त्री, वेद्रव्रत, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी का अर्द्ध–शताब्दी का इतिहास, नागरीप्रचारिणी सभा काशी, सं. 2000 विक्रमी
5. प्रवासी पत्रिका, 1947ई, फाईन आर्ट प्रेस, अजमेर
6. स्वामी, नारायण, विदेशों में आर्य समाज, वैदिक यंत्रालय, अजमेर, 1933 ई.

वाराणसी, भारत
rkdhistory@gmail.com

उपनिवेशों में हिंदी के प्रचार में आर्य समाज का योगदान एवं प्रासंगिकता

– डॉ. एन. के. चतुर्वेदी

उपनिवेशों में हिंदी के प्रचार–प्रसार में जिन व्यक्तियों एवं संस्थाओं का अप्रतिम योगदान रहा है, उनमें स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा स्थापित आर्य समाज का योगदान बहुत ही महत्त्वपूर्णरहा है। भारत में आर्य समाज की स्थापना एवं उसका प्रचार औपनिवेशिक भारत की एक अत्यन्त ही महत्त्वपूर्णघटना थी। भारतीय सामाजिक विसंगतियों पर कुठाराघात करते हुए ज्ञान की ज्योति चमकाने, वैदिक संस्कृति का प्रकाश फैलाने एवं एक सुसंस्कृत समाज स्थापित करने के लिए स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज के रूप में एक सशक्त आन्दोलन का सूत्रपात किया, जो भारत में प्रसारित तो हुआ ही, साथ ही, विदेशों में भी काफी लोकप्रिय हुआ। आर्य समाजी प्रचारकों ने उपनिवेशों में प्रवासी भारतवंशियों के सामाजिक कुसंस्कारों को उद्घाटित करते हुए, उनमें वैदिक धर्म एवं आर्य संस्कृति का प्रचार कर उनके धर्मांतरण पर विराम तो लगाया ही, साथ ही, उन्हें अपने धर्म, शिक्षा, साहित्य, खान–पान, परिधान, रीति–रिवाज़, संस्कार एवं सबसे बढ़कर हिंदी के प्रचार द्वारा अपनी संस्कृति के प्रति सचेत करते हुए, उनमें आत्मसम्मान की भावना भरने का प्रयास किया।

19वीं सदी से भारत में जागृति के चिह्न द्रष्टव्य हैं, जो कि भारत का पुनर्जागरण काल था। भारत में पुनर्जागरण की चेतना का सूत्रपात ब्रह्म–समाज आन्दोलन से होता है। इस समाज की स्थापना वेदान्त धर्म की आधार–शिला पर 1828 में राजा राममोहन राय द्वारा हुई थी। इस समाज के प्रवर्तक तथा नेता अंग्रेज़ी सभ्यता से इतने प्रभावित हुए कि वे उसका साक्षात् विरोध करने से भयभीत होने लगे। इस समाज का प्रभाव बंगाल में अल्पसंख्यक शिक्षित मध्यवर्ग तक ही सीमित था, क्योंकि सैकड़ों वर्षों से अंग्रेज़ी के संपर्क में रहने के कारण उसकी मानसिकता पर अंग्रेज़ियत का यथेष्ट प्रभाव पड़ चुका था।

जन्म : 7 जनवरी, 1956 ई., आगरा, उत्तर प्रदेश

शिक्षा :
- बी. ए. – आगरा विश्वविद्यालय, आगरा, उत्तर प्रदेश
- एम. ए. – इतिहास, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा, उत्तर प्रदेश
- एल. एल. बी. – आगरा विश्वविद्यालय, आगरा, उत्तर प्रदेश
- पी. एच. डी. – "फॉरमेशन ऑफ जम्मू एंड कश्मीर स्टेट एंड महाराजा गुलाब सिंह" (1982), आगरा विश्वविद्यालय, आगरा, उत्तर प्रदेश

व्यवसाय :
- 1982–85 तक आगरा कालेज, आगरा में इतिहास विभाग में प्रवक्ता पद पर
- 1985–86 तक गवर्नमेंट डिग्री कालेज, देवबंद, सहारनपुर, उ. प्र. में प्रवक्ता पद पर
- 1987 में मानवीकी एवं सामाजिक विज्ञान विभाग, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, रुढ़की में सहायक प्राध्यापक पद पर
- 1987 से इतिहास विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य कर रहे हैं
- 1998 से एसोसिएट प्रोफ़ेसर के पद पर सेवारत हैं

प्रकाशन :
- आधुनिक भारत का इतिहास, भाग–1, ओरियंटल पब्लिशर, आगरा
- आधुनिक भारत का इतिहास, भाग–2, ओरियंटल पब्लिशर, आगरा
- "जम्मू कश्मीर के महाराजा गुलाब सिंह" (1845–1857), राजस्थान ग्रंथागार, जोधपुर
- 25 से अधिक शोधपत्र एवं लेख प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित

सामान्य, अशिक्षित किन्तु धार्मिक विश्वासों से सबसे अधिक चिपकी रहने वाली जनता ब्रह्म–समाज के प्रभाव से अछूती रही। आर्य समाज ही ऐसा आन्दोलन था, जिसने सामान्य जनता को भी प्रभावित किया। आर्य समाज की स्थापना स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 10 अप्रैल, 1875 को मुंबई में की थी, जिसके उद्देश्य वैदिक संस्कृति का प्रचार, जाति भेदों का नाश कर कर्मानुसार वर्णाश्रम पद्धति की स्थापना, अछूतोद्धार और राष्ट्र में स्वराज्य की स्थापना आदि थे। उन्होंने भारतीयों से 'वेदों की ओर लौटने' का आह्वान किया। उन्होंने भारतीय अतीत के गौरव को उद्घाटित कर भारतीयों में स्वाभिमान की भावना उत्पन्न करने का कार्य किया।

आर्य समाज के द्वारा, जो प्रचार कार्य किया गया, उसे दो भागों में बाँटा जा सकता है – भारत में आर्य समाज का प्रचार और विदेशों में आर्य समाज का प्रचार। दयानन्द सरस्वती एवं उनके अनुयायियों ने भारत में आर्य समाज का तो खूब प्रचार किया ही, 20वीं सदी के प्रथम दशक से ही आर्य समाजी प्रचारकों को भारत से बाहर भी आर्य समाज का प्रचार करने का मौका मिला। आर्य समाज के जो दस नियम बनाए गए थे, उनमें अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करना, संसार का उपकार करना और सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझना इत्यादि बातें विदेशों में आर्य समाज के प्रचार से कहीं–न–कहीं संबंधित थीं। स्वयं दयानन्द सरस्वती की हार्दिक अभिलाषा थी कि सारे भूमण्डल में वैदिक धर्म का प्रचार और आर्य संस्कृति का पुनरुद्धार हो। उनके जीवित रहते तो भारत से बाहर इस मत का प्रचार न हो सका, परन्तु उनके मरणोपरांत उनके अनुयायियों ने उनके मत का काफ़ी अच्छा प्रचार किया।

अब प्रश्न उठता है कि क्यों आर्य समाजियों को विदेशों में भी आर्य समाज के सिद्धांतों के प्रचार की आवश्यकता का अनुभव हुआ? इसका कारण उपनिवेशों में भारतीयों की अत्यन्त दयनीय स्थिति थी, जिसमें सुधार अत्यावश्यक हो गया था। जो भारतवासी कोलोनियों में ले जाए गए, उनमें बहुत सी बुराइयाँ तो पहले से ही थीं, उपनिवेशों को जाते–जाते उनके धर्म का भी लोप हो गया। कुली की तरह रहकर उनमें अनेक नई सामाजिक बुराइयों का प्रादुर्भाव हुआ, साथ ही, उनकी भाषा, शिक्षा, परिधान, खान–पान, संस्कार एवं संस्कृति भारतीय परंपरा के विपरीत होते गए। इनका जीवन अत्यन्त पतित और गिरा हुआ तो था ही, साथ ही, यूरोपियनों द्वारा इनके साथ बड़ा अमानवीय व्यवहार भी हुआ।

प्रवासी भारतवासियों के मूल देश भारत में भी उस समय अनेक विसंगतियाँ विद्यमान थीं। राजनीतिक दृष्टि से इस समय तक भारत के वृहद् भाग, पर अंग्रेज़ी सत्ता कायम हो चुकी थी। देश में धार्मिक एवं सामाजिक कुरीतियों व कुप्रथाओं का प्रचार बना हुआ था। जातिगत सोपानक्रम, अस्पृश्यता, समुद्रयात्रा निषेध, बहु–विवाह, कुलीनवाद, शिशु हत्या, बाल–विवाह, विधवा विवाह निषेध इत्यादि कुप्रथाएँ समाज में प्रचलित थीं। शिक्षा अधोगति को प्राप्त हो रही थी। अंग्रेज़ी राज्य के अंतर्गत आर्थिक शोषण, जाति और रंगभेद एवं ईसाई मिशनरियों के धर्म–प्रचार कार्य ने देश की दशा को अत्यन्त दयनीय बना दिया था।

1893 में महात्मा गांधी दक्षिण अफ़्रीका गए और लंबे समय तक वहाँ पर प्रवासी भारतवासियों के लिए संघर्ष किया, पर उनका दृष्टिकोण अधिकतर राजनीतिक ही था। सर्वप्रथम 1896 में बंगाल पदाति सेना तीन वर्ष के लिए मॉरीशस गई और जब वापस आने लगी, तब कुछ आर्य समाजी सूबेदारों ने 'सत्यार्थ प्रकाश' की प्रतियाँ लोगों में बाँट दीं और वहाँ के कुछ लोग आर्य समाजी विचारों के संपर्क में पहली बार आए। इसी दौरान लाहौर से प्रकाशित 'आर्य पत्रिका' नामक अंग्रेज़ी पत्र भी यहाँ आने लगा। इसका प्रभाव यह हुआ कि यहाँ पर कुछ लोग आर्य समाज से काफ़ी प्रभावित हो गए और 1903 में तोताराम जी, जगमोहन गोपाल जी और गुरुप्रसाद दलजीत लाल जी ने मॉरीशस में आर्य समाज स्थापित करने के लिए घोर परिश्रम किया, पर पूरी तरह से सफ़ल न हो पाए।

1905 से पूर्व, जो भारतवासी उपनिवेशों को गए उनमें से कुछ आर्य समाजी विचारों से प्रभावित थे और उन्होंने वहाँ जाकर आर्य समाजी विचारों का प्रचार और आर्यसमाजी संस्था स्थापित करने का प्रयास किया। इस तरह की प्रथम संस्था ब्रिटिश पूर्वीय अफ़्रीका में कीनिया के नैरोबी शहर में 3 अगस्त, 1903 को 'आर्य समाज' नाम से स्थापित हुई, जहाँ बाद में विशाल आर्य समाज मंदिर, पुस्तकालय, वाचनालय और विश्रामगृह निर्मित हुए। इस तरह की दूसरी संस्था 1904 में फ़िजी देश के सामाबूला शहर में स्थापित हुई।

ब्रिटिश उपनिवेशों में आर्य समाज का व्यवस्थित रूप में प्रचार 1905 से आरम्भ होता है, जब दक्षिण अफ़्रीका के प्रवासी भारतवासियों के अनुरोध पर दयानन्द कॉलिज के प्रधानाचार्य महात्मा हंसराज ने भाई परमानन्द को केवल 27 वर्ष की उम्र में आर्य समाजी प्रचारक के रूप में नेटाल भेजा। भाई परमानन्द ने वहाँ जाकर नेटाल, मेरित्सबर्ग, लेडीस्मिथ, डंडी, ट्रांसवाल, प्रिटोरिया, केपटाउन इत्यादि नगरों में आर्य आदर्श और प्राचीन वैदिक धर्म का उपदेश दिया। उनके उपदेश का फल यह हुआ कि वहाँ पर 'हिन्दू सुधार सभा' और 'हिन्दू यंगमैंस एसोसिएशन' नामक संस्थाओं की स्थापना हुई और भारतवंशियों में एक नवीन चेतना का संचार हुआ। उनकी प्रसंशा करते हुए अंग्रजी विद्वान जी. डब्ल्यू विलिस ने 'नेटाल विटनेस' नामक पत्र में लिखा था –

"वह केवल 27 वर्ष की युवावस्था वाला एक सुसंस्कृत विद्वान है। उसका जीवन बड़ा उच्च और शानदार है। उसके सम्मुख परोपकार का मिशन है। हमें आशा और विश्वास है कि उस मिशन से उत्पन्न हुआ लाभ विशेषत: उसकी जाति में विस्तृत रूप में प्रसारित होगा।"

भाई परमानन्द के बाद उपनिवेशों में आर्य समाजी प्रचारकों के जाने का एक क्रम आरम्भ हुआ। इस पद्धति को आगे बढ़ाते हुए दक्षिण अफ़्रीका में स्वामी शंकरानंद, भवानी दयाल संन्यासी, पं. ईश्वरदत्त विद्यालंकार, साईदास, ठाकुर प्रवीण सिंह, डॉ. भगतराम सहगल इत्यादि; ब्रिटिश पूर्वीय अफ़्रीका के देशों – कीनिया, ज़ांज़ीबार, युगान्डा और टंगेनिका में पं. पूर्णानंद, महारानी शंकर, स्वामी स्वतंत्रानंद, पं. बालकृष्ण शर्मा, पं. मणिशेखर, महता जैमिनी इत्यादि। मॉरीशस में डॉ. मणिलाल, डॉ. चिरंजीव भारद्वाज, श्रीमती सुमंगली देवी, महता जैमिनी तथा पं. नारायणदत्त इत्यादि; फ़िजी में स्वामी राम मनोहरानंद, गोपेन्द्र नारायण पथिक, पं. श्री कृष्ण, महता जैमिनी इत्यादि; सुरीनाम, गयाना और त्रिनीडाड इत्यादि देशों में महता जैमिनी, पं. लक्ष्मण प्रसाद, पं. गिरजा दयाल शर्मा इत्यादि ने आर्य समाज का प्रचार किया।

उपनिवेशों में आर्य समाज की स्थापना और उसके सिद्धांतों का प्रचार कितना प्रभावकारी और आवश्यक था इस बात का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि मॉरीशस में आर्य समाज के संस्थापक डॉ. मणिलाल, जो इंग्लैंड से यहाँ आए थे, ने जब यहाँ पर अंधविश्वासों की प्रधानता देखी, तब उन्होंने निश्चय किया कि यहाँ पर आर्य समाज की स्थापना आवश्यक है। स्वयं आर्य समाजी न होते हुए भी आर्य समाज स्थापित करवाने का प्रयास किया और उन्हीं के प्रयास से 17 अप्रैल, 1911 को 17 सभासदों की उपस्थिति में पोर्ट लुइस में 'मॉरीशस आर्य समाज' आयोजित हुई और इसी दिन वैदिक धर्म के प्रचार के लिए 'मॉरीशस आर्य पत्रिका' निकालने का निश्चय हुआ, जिसका प्रथमांक 1 जून, 1911 को निकला था।

विदेश में प्रचार को संगठित रूप में चलाने के लिए तीन बातें आवश्यक होती हैं – लोकमत को पैदा करना, धन–जन संग्रह करना तथा भिन्न–भिन्न देशों में मिशन स्थापित करना। आर्य समाज ने यह तीनों ही कार्य किया। जब भारतवासी कोलोनियों में ले जाए गए, तब सर्वप्रथम उनकी सुध लेने ईसाई धर्म–प्रचारक पहुँचे। ईसाई मिशनरियों ने यद्यपि असहाय एवं पीड़ित भारतीयों की सेवा–सुरक्षा करने के साथ–साथ उनकी समस्याओं को भी दूर करने का प्रयास किया, परन्तु इसके मूल में भारतीयों का ईसाईकरण ही था। भारत में सर्वप्रथम आर्य समाज ने ही प्रवासी भारतीयों की समस्या को भारत में उठाने एवं जनसमुदाय को उससे परिचित कराने के साथ ही उपनिवेशों में भी प्रचार का बीड़ा उठाया। विदेशों में, जो आर्य उपदेशक गए, उन्हें चार भागों में विभक्त किया जा सकता है – धन कमाने और प्रचार का भाव रखने वाले, भ्रमण और प्रचार का भाव रखने वाले, चंदा इकट्ठा करने और प्रचार करने का भाव रखने वाले तथा जिनके अंदर यदि कोई इच्छा थी तो वह केवल प्रचार का एकमात्र शुद्ध भावना और सच्ची लगन।

आर्य समाजी प्रचारकों ने प्रवासी भारतीयों में अपनी सभ्यता, संस्कृति, भाषा, साहित्य, धर्म एवं शिक्षा के प्रचार एवं उनमें आपसी एकता स्थापित करने का कार्य किया, जिसके फलस्वरूप इन देशों में आर्य समाजी संस्थाओं का निर्माण, आर्य समाज से संबंधित पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन, बालक एवं बालिकाओं के लिए विद्यालय एवं आर्य समाज मंदिर, तो स्थापित हुए ही, साथ ही प्रवासी भारतवासी अपनी सभ्यता, संस्कृति एवं संस्कार के प्रति सचेत हुए

और उसे आज भी संजोए हुए हैं। आर्य समाजी प्रचारकों के प्रचार का प्रभाव हिंदी भाषा पर भी पड़ा। अधिकांश प्रचारकों ने हिंदी भाषा में ही प्रचार कार्य किया, क्योंकि यह भाषा अधिकांशतः सभी भारतीय समझ सकते थे। आर्य समाजी प्रचारकों ने दक्षिण अफ़्रीका के विभिन्न नगरों सहित कीनिया, जांजीबार, युगान्डा, टंगेनिका, मॉरीशस, फ़िजी, सुरीनाम, गयाना और ट्रिनीदाद इत्यादि देशों के विभिन्न नगरों में हिंदी का प्रचार कार्य किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि इन उपनिवेशों में भी हिंदी प्रचारिणी सभा, नागरी प्रचारिणी सभा, हिंदी साहित्य सम्मेलन, हिंदी विद्यालय एवं पुस्तकालय स्थापित हुए और हिंदी की पत्र–पत्रिकाएँ भी प्रकाशित हुईं। मात्र यही नहीं, उपनिवेशों में भी हिंदी–साहित्य का लेखन आरम्भ हुआ और आज तक हो रहा है।

आर्य समाजियों के प्रचार का क्रांतिकारी प्रभाव यह हुआ कि प्रवासी भारतवासी अपनी सभ्यता और संस्कृति के वास्तविक स्वरूप को जान पाए और काफी हद तक अपनी परंपराओं एवं मान्यताओं को अक्षुण्ण रख सके। आर्य समाजियों के प्रचार का सबसे धनात्मक प्रभाव हिंदी भाषा पर पड़ा और यह भाषा कम–से–कम प्रवासी भारतीयों की बोलचाल की भाषा बन गई। आरंभिक दौर में प्रवासी भारतीयों द्वारा जो साहित्य लिखा गया, उसके प्रकाशन की सुविधा उपनिवेशों में न होने के कारण वे अधिकांशतः भारत से ही प्रकाशित हुए और लगभग सभी हिंदी भाषा में थे। आज भी भारत से बाहर हिंदी का काफ़ी साहित्य तैयार किया जा रहा है और वह दिन–ब–दिन प्रगति ही कर रहा है। आज इस विषय की सबसे बड़ी प्रासंगिकता यह कही जा सकती है कि जिन प्रवासी भारतवासियों को भारत से जोड़ने और हिंदी भाषा को संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषा बनाने का प्रयास किया जा रहा है, उसमें आर्य समाजियों का महत्त्वपूर्णयोगदान रहा है और आज भी है। आज प्रवासी भारतवासी विभिन्न माध्यमों द्वारा विदेशों में हिंदी का अच्छा प्रचार कर रहे हैं।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि भारत में आर्य समाज की स्थापना एवं उसके सिद्धांतों का प्रचार एक युगांतकारी घटना थी, जिसने भारत के जर्जरित समाज को एक ही झटके में आन्दोलित कर दिया और 20वीं सदी का आरम्भ होते ही आर्य समाजी प्रचारकों ने उपनिवेशों का भी रुख किया। उपनिवेशों में जाकर आर्य समाजी प्रचारकों ने जो कार्य किया उसी के फलस्वरूप ही प्रवासी भारतीय अपनी सभ्यता एवं संस्कृति को बहुत कुछ अक्षुण्ण रख सके। आर्य समाजी प्रचारकों द्वारा अधिकांश प्रचार कार्य हिंदी भाषा में किए जाने एवं साथ ही स्वभाषा के रूप में भी हिंदी को ही महत्व देने के कारण हिंदी प्रवासी भारतवासियों की अत्यन्त प्रिय हो गई, जिसका सबसे अच्छा उदाहरण यह है कि उपनिवेशों में सैकड़ों वर्षों बाद आज भी हिंदी रची–बसी है और लाखों लोगों द्वारा बोली जा रही है।

संदर्भ :

1. गंगाप्रसाद उपाध्याय, आर्य समाज, दयानन्द जन्मशताब्दी सभा, मथुरा, 1981
2. जैमिनी, विदेशों में आर्य समाज के प्रचार का प्रभाव तथा अमेरिका में वैदिक सभ्यता, प्रेमी प्रिंटिंग प्रेस, मेरठ, 1939
3. प्रेम नारायण अग्रवाल, प्रवासी भारतीयों की वर्तमान समस्याएँ, मानसरोवर साहित्य निकेतन, मुरादाबाद, 1935
4. बालमुकुन्द मिश्र, आर्य समाज पर संसार क्यों झुका, प्रकाशन विभाग, आर्य युवक संघ, देहली, 1998
5. रामचंद्र शर्मा, फ़िजी दिग्दर्शन, ग्रंथकार मंडावर, बिजनौर, 1937
6. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1997
7. शिवचरण लाल, विदेशों में आर्य समाज, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली 1933

जोधपुर, राजस्थान

दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी की विकास-यात्रा

– श्रीमती सौभाग्यवती धनुकचन्द

"कोस कोस पर बदले पानी
चार कोस पर बदले बानी... ऐसा सुना था।
पर हजारों कोसों परे हुआ क्या
भारतेतर देशों की है अपनी कहानी।

जननी जन्मभूमि छोड़ भारत की
देश देशान्तर में भरने को हरियाली
थे चल पड़े साहसी गिरमिटिया भाई
रग रग में रची पची अपनी संस्कृति
"भाषा गई तो संस्कृति गई" की धुरी
बन गई मशाल और ढाल पूर्वजों की !

ओढ़ भोजपुरी का चोला
संग हिंदी थी चल पड़ी
विदेशी भाषाओं से बचती बचाती
हिचकिचाती, लजाती, सम्भलती
अपनाती, बटोरती, समेटती
नई भूमि में पत्थर तेल सोना ढूँढती

नया इतिहास लिख चली गन्ने के रस से।
अफ़्रीका देशों के जंगलों को चीरकर
सागर के स्निग्ध रेतीले तटों पर
बलखाती लहराती मदमाती
एक नया इतिहास लिख चली
हमारी मातृभाषा – हिंदी महारानी !"

जन्म : 11.05.1948

शिक्षा :
- एम.ए हिंदी (भारत)
- एम.एद (भारत)
- अर्ली चाइल्डहुड एजुकेशन (यू.के.)
- इंटरनेशनल एक्जेक्यूटीव डिवेलोप्मेंट (ऑस्ट्रेलिया)

व्यवसाय :
- चीफ़ टेकनिकल ऑफ़िसर, शिक्षा मंत्रालय (सेवानिवृत्त)
- 3 वर्षों तक उप अध्यक्षा, पब्लिक सर्विस कमिशन
- 2 वर्षों तक युनेस्को मॉरीशस नेशनल कमिशन की सचिव

प्रकाशन :
- Tulsidas – Saint Poet & Philosopher
- 'Sexuality Education for the Family'

सम्मान : महादेवी साहित्य पुरस्कार, इलाहाबाद

हिंदी का अंतरराष्ट्रीय पहलू

डॉ. जयंति प्रसाद नौटियाल के शोधकार्य हिंदी भाषा के तीन प्रगतिशील एवं प्रशस्तिपूर्ण लक्षणों की ओर इशारे करते हैं – प्रयोग, जन संख्या एवं राष्ट्र संख्या। उनके अनुसार भाषा–भाषियों की दृष्टि से हिंदी विश्व में प्रथम एवं सबसे लोकप्रिय भाषा है। सन् 2015 के अपने शोध की रिपोर्ट में उन्होंने आँकड़ों के आधार पर प्रामाण सहित बताया कि विश्व में हिंदी जाननेवाले सर्वाधिक हैं। हिंदी सर्वाधिक बोली व समझी जानेवाली तथा लोकप्रिय भाषा हैं।

- विश्व की 7 बिलियन आबादी में लगभग 1.3 बिलियन लोग हिंदी भाषा का किसी न किसी रूप में प्रयोग करते हैं।
- विश्व के लगभग 170 देशों में हिंदी का प्रयोग होता है।

हिंदी की सार्वभौमिकता, शिक्षण–प्रशिक्षण, आर्थिक व राजनैतिक प्रभाव, मातृभाषा भाषीय स्थिति, राजभाषा के सन्दर्भ, संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी का परिप्रेक्ष्य आदि अनेक पहलुओं की गहराई से अध्ययन और आँकड़ों के आकलन की ज़बरदस्त झाँकी विश्व हिंदी पत्रिका 2015 में प्रकाशित है।

कितनी सशक्त है हिंदी भाषा! कितनी समर्थ है हिंदी

भाषा! कितनी होनहार है हिंदी भाषा! बोली, राजभाषा, जन भाषा, वाणिज्य की भाषा, संस्कारों की भाषा, अध्यात्म की भाषा से अंतरराष्ट्रीय भाषा की कोटि तक पहुँच चुकी है हिंदी। विश्व हिंदी सम्मेलनों! अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी के विकास के अनेक पहलुओं – शिक्षण, लेखन, साहित्य–रचना, पत्रकारिता, मंचन, टंकण, कम्प्यूटर, इंटरनेट, संगीत, मनोविज्ञान आदि पर परिचर्चा हुई है।

अफ़्रीकी देशों में हिंदी का परिप्रेक्ष्य

अफ़्रीकी देशों में हिंदी की विकास–यात्रा का शैशवकाल अपना एक अलग ही स्थान रखता है। आप्रवासी भारतीयों के जीवन की दयनीय दशा का कुठाराघात भी उनकी मातृभाषा और संस्कृति को तोड़ न सकी। भारत से आये गिरमिटिया मज़दूर अपने संस्कारों की बपौती को अपनी जुबान पर भोजपुरी भाषा के रूप में अपनी पोटली में धर्मग्रंथ रामायण के रूप में और अपनी अन्तरात्मा में अनन्त शक्ति भरकर लाये थे। गयाना, त्रिनिदाद, टोबेगो, फ़िजी, बर्मा, सिंगापुर, मलेशिया आदि देशों के साथ–साथ अफ़्रीकी देशों – मॉरीशस, केनिया, तांज़ानिया, मोज़ाम्बिक, मैदागास्कर, युगान्डा, बोत्स्वाना, ज़ाम्बिया, सेशेल्स, अंगोला, घाना, निकाराग्वा, ज़िम्बाबुवे, सियेरा लेओन, कोंगो में हिंदी का उपयोग हिंदी की विकास–यात्रा और समृद्धि में महत्त्वपूर्णयोगदान कर रहा है।

इतिहास साक्षी है कि भारत की सीमाओं के इस पार हिंदी भाषा के रख–रखाव, प्रचार–प्रसार और उन्नत स्थिति तक पहुँचानेवालों की जीवन–गाथा राजनैतिक दुर्दशा, शोषण और रंग–भेद नीति के कारण अत्यन्त दयनीय रही है।

> **"लाये अपने देश में हिंदी भारत माँ के लाल**
> **गम सहे लाखों फिर भी रखे हिंदी को सम्भाल**
> **मौत से बदतर जुल्म सहे कोड़े की भरमार**
> **कठिन समय में जलाये रखे हिंदी की मशाल।"**

अफ़्रीकी देशों में हिंदी की अडिग बुनियाद

हिंदी की विकास–यात्रा में आप्रवासी भारतीय असंख्य चुनौतियों की मार सहते रहे।

- रोजी रोटी के सवाल
- अन्य भाषाओं का दबाव
- अमानवीय उपनिवेश राज्य की यातनाएँ
- भारत माता से प्राप्त विरासत व संस्कृति सुरक्षा की आवश्यकता
- भारत माता से रक्त का अटूट सम्बन्ध और हिंदू अस्मिता

उक्त सारी समस्याओं के बावजूद "भाषा गई तो संस्कृति गई" के जोश का लावा फूट ही चला। इस लावा के प्रकोप की कथा भिन्न–भिन्न रूप धारण कर चली। घर–घर में हिंदी व्यवहार की भाषा, खेतों की मेड़ों पर धर्म–ग्रन्थ का स्मरण व प्रचार, टिमटिमाते दीपकों की रोशनी में रामायण और गीता का पढ़ना, अपने बालकों को भारत में बसे पूर्वजों की कथा सुनाना, भाषा की चिनगारी को सदैव ज्वलन्त करते रहे। मूलतः हिंदी भाषा को जीवन्त रखने के तीन प्रमुख आधार स्तम्भ हैं :

- धार्मिक विरासत की प्रबल चेतना
- सांस्कृतिक सुरक्षा की पक्की धुन
- भारत से रक्त का अटूट सम्बन्ध

दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी की विकास–यात्रा

दक्षिण अफ़्रीका में भाषा का संरक्षण, प्रचार–प्रसार और संवर्धन सामाजिक संगठनों का दायित्व बना रहा। यहाँ भोजपुरी भाषा बोलचाल की भाषा और आपसी व्यवहार की भाषा अवश्य थी, पर इनका झुकाव एवं सतत प्रयास हिंदी भाषा को ही विरासत के रूप में अपनी संतति को प्रदान करने की ओर रहा।

राष्ट्रीय सहयोग के अभाव में धार्मिक और सामाजिक संस्थाएँ हिंदी विकास का मंच बन गईं। इस क्षेत्र में भारत से आए स्वामी शंकरानन्द और गिरमिटिया पुत्र स्वामी भवानी दयाल संन्यासी का अपूर्व योगदान प्राप्त हुआ। हिंदू धर्म के प्रचार–प्रसार में आर्य प्रतिनिधि सभा एवं सनातन धर्म सभा ने हिंदी की जड़ों को मज़बूत बनाए रखा।

1900 में गांधी जी के आगमन ने राजनैतिक चेतना और आप्रवासी भारतीयों में अधिकार की जागरुकता पैदा कर दी, तो धार्मिक और सामाजिक संगठनों ने हिंदी भाषा की ध्वजा फहराने का बीड़ा उठा लिया। दक्षिण अफ़्रीका में आप्रवासी भारतीयों के आगमन (1860) से और सम्पूर्ण Apartheid काल (1948–1994) तक हिंदुओं ने अपनी अस्मिता के अनेक सम्बोधन– Non white, Black, Asians,

Indians बनाए रखा। बाद में वे Indian South Africa के नाम से भी जाने गए। परंतु उनके अन्दर पल रही भाषा और संस्कृति सदैव लगन और आदर भाव से ओतप्रोत रही।

हिंदी के उत्थान में आर्य समाज का योगदान

दक्षिण अफ़्रीका में भाषाओं की आबोहवा की झाँकी पाए बिना हिंदी की चुनौतियों को समझना सरल नहीं। यहाँ दक्षिणी डिबिली, उत्तरी सोथो, दक्षिणी सोथो, स्वाजी, साँगा, स्वाला, शोसा (10 आधिकारिक भाषाएँ); फानागालो, रवोई, लोबेदू, नामा, उत्तरी डिबिली, फूथी, साने और दक्षिण अफ़्रीकी की साईन भाषा (8 आधिकारिक भाषाएँ) और अंग्रेज़ी का प्रयोग होता है।

भाषाओं की इस भीड़ में हिंदी को साँस लेकर जीवित रहना पड़ा हैं। आप्रवासी भारतीय हिंदी भाषा के संग–संग अन्य भारतीय भाषाओं–तमिल तेलुगू, गुजराती, उर्दू और मराठी का भी प्रयोग करते हैं। आँकड़ों के अनुसार दक्षिण अफ़्रीका की आबादी में केवल 72 प्रतिशत की मातृभाषा हिंदी है।

हिंदी के उत्थान व प्रचार–प्रसार में आर्य समाज के पंडित नरदेव वेदालंकार (आगमन 1947) का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्णरहा है। उन्होंने दो राष्ट्रीय हिन्दू धर्म संगठनों – आर्य प्रतिनिधि सभा एवं सनातन धर्म सभा की संगोष्ठी आयोजित की। इसी ऐतिहासिक अवसर पर 'हिंदी शिक्षा संघ' की स्थापना हुई। पंडित वेदालंकार ने इसका प्रथम प्रधान बनकर (1994), 27 वर्ष तक अथक परिश्रम कर हिंदी भाषा को फलने–फूलने का अधिकार दिया।

हिंदी शिक्षा संघ को मुंबई के हिंदी सम्मेलन में सम्मानित किया गया। विश्व हिंदी सम्मेलन, भोपाल में प्रोफ़ेसर डॉ. उषा शुक्ल को दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी प्रचार के लिए सम्मानित किया गया। मॉरीशस में अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन में अपने आलेख की प्रस्तुति में डॉ. शुक्ल से प्राप्त तथ्यों के लिए मैं उनके प्रति आभार प्रकट करती हूँ। आज हिंदी शिक्षा संघ के आयाम और कार्यवाही का उत्तरोत्तर विस्तार और संवर्धन कर रहे हैं। हिंदी शिक्षा के प्रचार में निम्न संस्थाएँ कमर कसके संलग्न हैं –

- Durban **डरबन** - 12
- North Coast **उत्तरी कोस्ट** - 7
- East Coast & Midlands **पूर्वी कोस्ट–मिडलैण्ड्स**- 13
- Gauteng **गौटेंग** - 3
- Port Elizabeth **पोर्ट एलिजाबेथ** - 1
- South Coast Chatswarth **दक्षिण कोस्ट चार्ट्सवर्थ**- 16

आज कल बाल संस्कार केन्द्र, वेद पाठशाला व अनेक धार्मिक संस्थाएँ धर्म के प्रचार–प्रसार में हिंदी का भी प्रयोग करती हैं। इस प्रकार अपनी सांस्कृतिक विरासत की पहचान संस्कृत भाषा–ज्ञान, वेद–मंत्र–उच्चारण, योग आदि के शिक्षण में अवश्य हिंदी का प्रचार होता है।

मीडिया / हिन्दवाणी

हिंदी विकास–यात्रा में हिंदी शिक्षा संघ की सबसे बड़ी उपलब्धि है : हिन्दवाणी, जो 50 वर्षों से कार्यरत है। यह इलेक्ट्रोनिक मीडिया द्वारा हिंदी भाषा के प्रचार–प्रसार और हिंदू संस्कृति की रक्षा में अनेक प्रकार से संलग्न है। संगीत, रेडियो प्रोग्राम, मोबाइल एप्प, फ़ेसबुक, ट्विटर आदि को संकलित कर एक मंच द्वारा दक्षिण अफ़्रीका के हिंदुओं के कानों, आँखों और हृदय तक हिंदी को पहुँचा रही है। क्या–क्या नहीं कर रही है हिन्दवाणी! भाषा, संस्कृति, सेवा, विख्यात दृष्टि, फ़ैशन, विवाह, मनोरंजन, स्वास्थ्य, व्यापार, खेल, पर्यटन, बॉलिवुड, संगीत, गरमागरम ख़बरें, सबको स्थान देकर युवा पीढ़ी का प्रिय सांस्कृतिक केन्द्र बन गई है। मोबाइल रेडियो स्टेशन द्वारा यह चहुँ ओर पहुँच जाती है। हिन्दवाणी हिंदी प्रेमियों की कर्मठ, जागरूक, संलग्न और तटस्थ कर्मचारियों की अनमोल टोली है।

आज विश्व की हिंदी भाषा संबंधित चुनौतियों का एक नया दौर आरम्भ हो चुका है। दुख की घड़ी में वह राम! राम! पुकारती है। पर सुख चैन के समय में पाश्चात्य भाषा और संस्कार धीरे–धीरे संस्कृति के साथ भाषा पर भी हावी हो रहे हैं। विश्व हिंदी सम्मेलन, भोपाल में भारत के प्रधान मंत्री माननीय श्री नरेन्द्र मोदी जी ने कहा था कि विकास के दौर में पता नहीं चला कैसे संस्कृत भाषा को न जानने के कारण हम उसमें ज्ञान के भण्डार की विरासत से धीरे–धीरे अलग हो गए। इसीलिए हर पीढ़ी का दायित्व हिंदी भाषा के विकास और संवर्धन के प्रति सतत जागरूक रहना है।

फ़्लिक ऑ फ़्लाक, मॉरीशस

विद्वानों के वक्तव्य

- 'वैश्विक हिंदी : चुनौतियाँ एवं समाधान' - श्री अतुल कोठारी
- विश्व हिंदी सचिवालय की एक सार्थक पहल - श्री रामदेव धुरंधर

वैश्विक हिंदी : चुनौतियाँ एवं समाधान

– श्री अतुल कोठारी

14 सितम्बर 1949 को हिंदी देश की राजभाषा बनी। तबसे हिंदी ने कई उतार–चढ़ाव देखे, परन्तु हिंदी देश एवं दुनिया में सतत आगे बढ़ती रही। हिंदी वैश्विक पटल पर अपना एक विशिष्ट स्थान बनाने में सफल रही है। आज हिंदी केवल भारत तक सीमित नहीं है, इसका विस्तार विश्व के लगभग १३० से भी ज़्यादा देशों में हो चुका है। विश्व के प्रत्येक महाद्वीप और सभी बड़े राष्ट्रों में हिंदी बोलने–जानने वालों ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। हिंदी भारत की राजभाषा होने के साथ–साथ फ़िजी की भी राजभाषा है तथा मॉरीशस, त्रिनिदाद, गयाना और सूरीनाम में क्षेत्रीय भाषा के रूप में इसे मान्यता प्राप्त है। साथ ही संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, साउथ अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड, जर्मनी, सिंगापुर, कनाडा, यू.ए.ई जैसे देशों में भी हिंदी भाषी बड़ी संख्या में मौजूद हैं। यह विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है। विभिन्न संस्थानों, स्रोतों, शोधों ने ये आँकड़े अलग–अलग दिये हैं। विश्व की भाषाओं की पंक्ति में कुछ लोग हिंदी को प्रथम, तो कुछ द्वितीय या तृतीय स्थान देते हैं। जहाँ विकिपीडिया, हिंदी को चीनी तथा अंग्रेज़ी के बाद तृतीय स्थान देता है, वहीं शोधकर्ता डॉ. जयंती प्रसाद नौटियाल हिंदी का प्रथम स्थान अपने शोध में सिद्ध कर चुके है। विज्ञान के इस वर्तमान युग में भारत जैसे विशाल देश की राजभाषा के जानकारों की संख्या का सुनिश्चित न होना बड़ी विडंबना है। सन् 2001 की जनगणना के अनुसार, लगभग 25.79 करोड़ भारतीय हिंदी का उपयोग मातृभाषा के रूप में करते थे, जबकि लगभग 42.20 करोड़ लोग बोली के रूप में इसका इस्तेमाल करते हैं। एथनोलॉगरू लैंगुएजेस ऑफ़ द वर्ल्ड, 2015 के अनुसार हिंदी का स्थान विश्व में मंदारिन (चीनी) के बाद दूसरे नंबर पर आता है। इस शोध के अनुसार मातृभाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग करने वालों की संख्या लगभग 37 करोड़ है और द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी का इस्तेमाल करने वालों की संख्या लगभग 12 करोड़ है। मातृभाषा के रूप में हिंदी बोलने वालों की संख्या अंग्रेज़ी (34 करोड़), स्पेनिश (35 करोड़) से ज़्यादा है। मंदारिन बोलने वालों की संख्या लगभग 87 करोड़ है, परन्तु एक महत्त्वपूर्णतथ्य यह भी है कि जहाँ मंदारिन भाषा–समूह की सभी भाषाओं को एकत्रित रूप में गणना की जाती है, वहीं हिंदी के साथ ऐसा न कर, हिंदी को राजस्थानी, मारवाड़ी, मैथिली, अवधी, ब्रजभाषा जैसे टुकड़ों में बांटकर प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार विश्व की दो प्रमुख भाषाओं की गणना के लिए अलग–अलग पैमाने अपनाना न्यायपूर्ण नहीं है।

दुनिया के लगभग 170 देशों में किसी न किसी रूप में हिंदी पढ़ाई जाती है। मॉस्को को दुनिया में हिंदी भाषा के अध्ययन–अध्यापन के प्रमुख केंद्रों में से एक माना जाता है। मॉस्को में हिंदी भाषा का अध्ययन और अध्यापन केवल मॉस्को राजकीय विश्वविद्यालय में ही नहीं, बल्कि दो अन्य विश्वविद्यालयों में भी किया

जाता है। मॉस्को विश्वविद्यालय में हिंदी में बी.ए, एम.ए. और पी.एच.डी. की जा सकती है। रूस भारतीय दूतावास के जवाहरलाल नेहरू सांस्कृतिक केंद्र में हिंदी भाषा निःशुल्क पढ़ाई जाती है। मॉस्को में ऐसा विद्यालय भी है, जहाँ बच्चों को छठी कक्षा से ही हिंदी भाषा पढाई जाती है। रूसी वैज्ञानिकों द्वारा हिंदी भाषा के अनेक शब्दकोशों और पाठ्य–पुस्तकों की रचना की जा चुकी हैं। सोवियत सत्ता काल से लेकर आज तक रूस में हिंदी साहित्य का अनुवाद बड़े पैमाने पर किया जाता रहा है। मॉस्को के अलावा रूस के ही सेण्ट–पीटर्सबर्ग राजकीय विश्वविद्यालय का हिंदी विभाग भी बहुत प्रतिष्ठित है। इस विभाग के प्राध्यापकों ने तृतीय क्षेत्रीय अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मलेन में रूसी छात्रों के लिए हिंदी भाषा की नई पाठ्य–पुस्तक पेश की। इसके अलावा रूस के व्लादिवोस्टोक शहर में बने सुदूर पूर्व संघीय विश्वविद्यालय में भी हिंदी भाषा और साहित्य का पाठ्यक्रम चलाया जाता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में हार्वर्ड, येल, शिकागो, वाशिंगटन, मोन्टाना, टेक्सास एवं कैलिफ़ोर्निया विश्वविद्यालयों समेत कई अन्य विश्वविद्यालयों में भी हिंदी भाषा के पाठ्यक्रम चलाये जा रहे हैं। अमेरिका के अनेक राज्यों में पब्लिक (सरकारी) विद्यालयों में भी हिंदी भाषा का विकल्प दिया जा रहा है। इसी प्रकार ऑस्ट्रेलियन नेशनल विश्वविद्यालय, टोक्यो विश्वविद्यालय, जॉन हॉपकिंस विश्वविद्यालय में भी हिंदी के पाठ्यक्रम चलाये जा रहे हैं।

पड़ोसी देश चीन के पेकिंग विश्वविद्यालय, गुआंडोंग विश्वविद्यालय सहित अनेक महाविद्यालयों में तथा बीजिंग स्थित गुरुकुल विद्यालय में हिंदी पढ़ायी जाती है। इसके अलावा ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया तथा सिंगापुर के विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में भी हिंदी पढ़ायी जाती है। ऑस्ट्रेलिया के विद्यालयों में वैकल्पिक विषय के रूप में हिंदी पढ़ाई जा रही है। सुदूर पूर्व के देश फ़िजी में हिंदी को विद्यालयों में अनिवार्य रूप से पढ़ाया जाता है। केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा तथा दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में भी अनेक विदेशी छात्र, जिनमें जापानी, कोरियाई छात्रों की संख्या अधिक है, भारत में स्थित विदेशी कंपनियों में आकर्षक नौकरी हेतु हिंदी भाषा के पाठ्यक्रम में दाखिला ले रहे हैं।

वैश्विक स्तर पर भारत के बढ़ते आर्थिक, सामरिक, राजनैतिक प्रभाव को देखते हुए, भारत की राजभाषा हिंदी को सीखने, जानने की ललक विदेशों में बढ़ती जा रही है। इसी क्रम में मॉरीशस स्थित विश्व हिंदी सचिवालय का उल्लेख यहाँ तर्कसंगत है। मॉरीशस व भारत सरकार द्वारा विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना मॉरीशस में की गयी। हिंदी को अंतरराष्ट्रीय भाषा बनाने के प्रयासों में इस सचिवालय की स्थापना एक महत्त्वपूर्ण कदम है, जिसे वर्तमान प्रधानमंत्री ने समर्थन प्रदान करते हुए सचिवालय के नये भवन का भूमिपूजन 2015 में किया। हिंदी का एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में संवर्द्धन करने और विश्व हिन्दी सम्मेलनों के आयोजन को संस्थागत व्यवस्था प्रदान करने के उद्देश्य से विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना की गई है। यह सचिवालय अंतरराष्ट्रीय हिंदी पत्रिका एवं अंतरराष्ट्रीय हिंदी समाचार का प्रकाशन तथा हिंदी सम्मलेनों एवं अन्य कार्यशालाओं का आयोजन कर विश्व में हिंदी भाषा को प्रचारित करने का कार्य कर रहा है। हिंदी को विश्व पटल पर अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में स्थापित करने के लिए कुछ और प्रयास करने की आवश्यकता है, जिनमें सबसे महत्त्वपूर्णकदम हिंदी भाषा के अपने विशिष्ट फ़ॉण्ट का सृजन करना, जिससे वर्तमान के तकनीकी युग में हिंदी भाषा को नयी पीढ़ी के प्रयोग के लिए सुगम बनाया जा सके। इसके अलावा हिंदी में युवा पीढ़ी केंद्रित मौलिक लेखन

को बढ़ावा देना, विदेश में स्थित भारतीयों एवं अन्य विदेशी नागरिकों को हिंदी सिखाने की उचित व्यवस्था सुनिश्चित करना जैसे कदमों का समावेश है।

वैश्विक परिदृश्य में हिंदी के परिपक्व होते स्थान की तुलना में देश के अंदर हिंदी को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। हाल ही में घटित हिंदी भाषा विरोध की घटना का उल्लेख करना यहाँ तर्कसंगत बनता है। कर्नाटक राज्य की राजधानी बेंगलुरू में मेट्रो ट्रेन स्थानकों (स्टेशनों) में सूचना फलक पर हिंदी के प्रयोग के विरोध में कुछ राजनैतिक उद्देश्यों से प्रेरित संगठनों ने हिंसक प्रदर्शन करके एक प्रकार से भाषायी विवाद निर्माण कर देश में राजभाषा हिंदी विरोधी वातावरण को बढ़ावा देने का कार्य किया है। इस सन्दर्भ में हमें यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि हिंदी देश की संपर्क भाषा के साथ–साथ संवैधानिक रूप से देश की राजभाषा भी है, जिसका सम्मान करना देश के सभी नागरिकों का कर्त्तव्य बनता है। राज्यों की अपनी राजभाषाएँ हैं, जिनका पूर्ण सम्मान किया जाना चाहिए। इसी प्रकार देश की राजभाषा का भी सम्मान किया जाना चाहिए। किसी भाषा का विरोध करके दूसरी भाषा का स्थान नहीं बढ़ेगा, बल्कि राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता को ही आघात पहुंचेगा। यह अत्यंत दु:ख की बात है कि अपने राजनीतिक स्वार्थ हेतु भाषाओं के विवाद खड़े किये जाते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि सारी भारतीय भाषाएँ एक–दूसरे के समर्थन में खड़ी हों। भाषा के माध्यम से देश को तोड़ने नहीं देश को जोड़ने की आवश्यकता है। देश में भारतीय भाषा मंच इसी दिशा में प्रयासरत है।

किसी भी भाषा के संरक्षण एवं विकास हेतु उस भाषा में प्राथमिक एवं उच्च शिक्षा उपलब्ध कराना एक महत्त्वपूर्णआवश्यकता है। देश में शिक्षा व्यवस्था पर वैश्वीकरण के बढ़ते प्रभाव के कारण अब मातृभाषा में शिक्षा की स्थिति कमज़ोर होती जा रही है। प्राथमिक शिक्षा में फिर भी हिंदी या मातृभाषा का विकल्प है किन्तु उच्च शिक्षा में विशेषकर व्यवसायी और तकनीकी शिक्षा में तो अंग्रेज़ी का कोई विकल्प छात्रों के समक्ष दिखाई नहीं देता है। विश्व में विगत 40 वर्षों में लगभग 150 अध्ययनों के निष्कर्ष हैं कि मातृभाषा में ही शिक्षा दी जानी चाहिए क्योंकि बालक को माता के गर्भ से ही मातृभाषा के संस्कार प्राप्त होते हैं। महान वैज्ञानिक एवं भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम ने नागपुर के धरमपेठ महाविद्यालय में आयोजित व्याख्यान में एक छात्र के प्रश्न के उत्तर में कहा था कि उनकी विद्यालयी शिक्षा मातृभाषा में हुई है, इसलिए वे एक अच्छे वैज्ञानिक बन पाए।

देश के उच्च शिक्षा तंत्र में लगभग 60 लाख छात्र गैर–महानगरीय क्षेत्रों से प्रवेश लेते हैं और वे शिक्षा के अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाते, क्योंकि वे अंग्रेज़ी माध्यम के पाठ्यक्रमों से तालमेल नहीं बैठा पाते। भाषा की इस खाई की वजह से देश की उच्च शिक्षा अपने वास्तविक उद्देश्यों को पूरा नहीं कर पा रही है। उच्च शिक्षा के अलग–अलग संकायों का हम विश्लेषण करें, तो अनेक विसंगतियाँ पाई जाती हैं। उदाहरणार्थ दिल्ली विश्वविद्यालय के विधि संकाय की प्रवेश परीक्षा केवल अंग्रेज़ी में होती है; जबकि विधि प्रथम, द्वितीय, तृतीय वर्ष की लिखित परीक्षा में द्विभाषी प्रश्न–पत्र होते हैं एवं हिंदी अथवा अंग्रेज़ी में उत्तर देने का प्रावधान हैं। प्रश्न यह उठता है कि जब प्रवेश परीक्षा केवल अंग्रेज़ी में है, आगे के चरणों में हिंदी के छात्र कैसे पहुंच पाएंगे? पुन: जब संकाय में शिक्षण का माध्यम केवल अंग्रेज़ी है, पाठ्य–सामग्री (कोर्स मटेरियल) केवल अंग्रेज़ी में है, तो हिंदी का विकल्प औचित्यहीन हो जाता है। देश के सबसे बड़े विधि संस्थान, राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालयों की भी यही परिपाटी है।

एक तरफ़ वैश्विक स्तर पर एवं देश में भी हिंदी

विश्व हिंदी सचिवालय की एक सार्थक पहल

– श्री रामदेव धुरन्धर

मॉरीशस में स्थित विश्व हिंदी सचिवालय की ओर से 5 अक्टूबर 2017 को इन्दिरा गांधी भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र में एक साहित्यिक संगोष्ठी का संयोजन हुआ था। विस्तृत संख्या में लोग इस में भाग लेने के लिए उपस्थित हुए थे। संदर्भ था लघुकथा–लेखन और सस्वर पाठ। जहाँ तक मैं जानता हूँ, इस तरह का कार्यक्रम अब तक हमारे देश में हुआ नहीं था। यह भी एक कारण रहा कि युवकों ने इसमें विशेष रूप से रुचि ली।

कार्यक्रम के लिए युवा रचनाकार आमंत्रित थे; इस विषय पर कुछ लिखने से पहले मैं सचिवालय के वर्तमान महासचिव प्रों. विनोद कुमार मिश्र जी का नाम लेना अपना कर्तव्य मान रहा हूँ। उन्होंने हमारे देश के हिंदी लेखन को गंभीरता से लिया है और इसे एक सही दिशा देने के लिए वे दृढ़ संकल्पित हैं। इसी सोच के चलते उन्होंने मॉरीशस के युवा रचनाकारों से एक संवाद जैसा स्वरूप खड़ा किया और हमने देखा कहीं कुछ खाली न था और हर कोण से भरा पूरा था। यह दर्शाता है हिंदी के युवा रचनाकार लिखने के लिए अपने अंतस से बहुत सजग हैं और उन्हें बोध है साहित्य से ही हिंदी के माथे पर सही बिंदी टाँकी जा सकती है। युवा रचनाकारों के मार्गदर्शन के लिए यह संयोजन होने से मैं समझता हूँ, हम सब ने मिलकर एक ऐसे बिंदु का शिलान्यास किया, जो इस बात का प्रमाण था कि मॉरीशस की धरती पर लघुकथा की तमाम संभावनाएँ हैं।

किसी भी भाषा के लिए उसका साहित्य होना ज़रूरी होता है, क्योंकि साहित्य ही उसे इस तरह से थाम कर रखता है मानो माँ की ममता और पिता के स्नेह की उसे सुरक्षा मिल रही हो। कहा भी जाता है कि "बोला हुआ हवा में उड़ जाता है और लिखा हुआ रह जाता है।" मॉरीशस में हिंदी के सदा रह जाने के लिए लेखन ही सब से बड़ा माध्यम हो सकता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारे देश में हिंदी लेखन की तो एक परिपाटी ही बन गई थी, लेकिन यह भी आंशिक सच है। अब उस जोश में बहुत कमी आ गई है। परंतु जो भी रचा जा रहा है, यह अपने आप में बहुत ही मूल्यवान है। विशेष कर युवा रचनाकारों की ओर से कुछ उद्‌भुत होना और भी स्वागत के योग्य है। ये लोग अपने समय के साथ जुड़ कर अपनी रचनाओं का ताना–बाना बुन रहे हैं जो बहुत ही सटीक प्रतीत हो रहा है। वास्तव में समय–बोध रचना के लिए प्राण तत्व जैसा होता है। जो लेखक इस दिशा में अपने को प्राणवान बनाता है उसकी रचना की आत्मा स्वयं बड़ी बन जाती है।

मैंने जब लेखन शुरू किया था तब एक भारतीय मित्र ने मुझसे कहा था कि छोटे से मॉरीशस में ज़्यादा समस्याएँ तो होती नहीं हैं। एक वक्त आएगा जब अनुभव करोगे कि लिखने के लिए कुछ नया रहा ही नहीं। मुझपर उस विद्वान का गहरा असर पड़ा था, लेकिन कालांतर में मुझे यह एक भ्रम लगा और मैंने इससे अपने को मुक्त करना आवश्यक माना था। आज तो मैं ऐसा मानता हूँ कि समस्याओं की चट्टान पर मैं खड़ा हूँ। बहुत सारा लिखूँ फिर भी बहुत कुछ

अनलिखा रह जाएगा। मॉरीशस की युवा पीढ़ी तो और भी जैसे अंगारों से अपना वास्ता मान रही है। यह पीढ़ी जन–जीवन को पढ़ रही है और इस प्रक्रिया में वह अपने देश से पूछ रही है कि तुम कुछ बन रहे हो या बनने के किसी छलावे के शिकार हो? इस प्रश्न में तो निश्चित ही बहुत ही तपन और तड़प है। मैं समझता हूँ इस प्रश्न को जो युवा रचनाकार स्वयं में जीना सीख ले, वह हमारे देश को ज़रूर बहुत बड़ा साहित्य दे सकता है। उस संगोष्ठी में ऐसी ही परख चल रही थी। मेरा सौभाग्य था अध्यक्षता मुझे सौंपी गई थी जो मेरे योग्य ठीक भी बनता था, क्योंकि लघुकथा लेखन में मेरी थोड़ी पहुँच है। बीस तक देश के लड़के लड़कियों की लघु कथाएँ सुनने की प्रक्रिया में मैं लघु कथाकार के नाते अनुभव कर रहा था कि लेखकीय निष्ठा बहुत बड़ी होती है। ये युवा रचनाकार इस जमीन से वह भी निकाल रहे हैं, जो बहुत गहरे किसी अंधेरे में छिपा पड़ा हुआ है। लेखन एक अंतर्दृष्टि का नाम है और यह अंतर्दृष्टि जिसमें हो, वही अंधेरे की परतों से उस सत्य को ढूँढ निकालता है, जिसे हम चाहें तो 'अंधेरे का प्रकाश' का नाम दे सकते हैं।

आज भारत में हिंदी लघुकथा–लेखन को बहुत ही गंभीरता से आँका जा रहा है। हमारे देश में उसी स्वर को मुखर करने हेतु यह संगोष्ठी आयोजित हुई थी और युवा रचनाकारों ने निश्चय ही इसमें अपनी भागीदारी का अच्छा प्रमाण दिया। कुछ ही शब्दों की परिसीमा में आबद्ध लघुकथा में ज़्यादा कहने की गुंजाइश नहीं होती, लेकिन कहने का ढंग आए, तो लघुकथा स्वयं छोटी होकर अपने आप बड़ी बन जाती है। हममें नम्रता हो, तो यह मानने में हमें कोई झिझक होनी नहीं चाहिए कि छोटी लघुकथा को बड़े अर्थों में ढालना हरेक के लिए संभव नहीं होता। अकसर हम इतनी ही समझ से काम लेते हैं कि कुछ शब्दों में जब लघुकथा को पूरा हो जाना है तब इसके लिए ज्यादा मेहनत की आवश्यकता नहीं होती। पर मैं अपने देश के युवा रचनाकारों से यह कहूँगा कि लघुकथा–लेखन बहुत बड़े श्रम की अपेक्षा करता है। शब्द कम हों, लेकिन अर्थ गहन हो। शीर्षक में आकर्षण हो। शब्दों में खास तराश हो। संवाद यथासंभव कम रखें। लघु कथा को इस तरह न खींचे कि उसका स्वरूप लघु कहानी का हो जाए।

उस संगोष्ठी में मेरी परख यही थी और मैं पा रहा था कि सफलता के साथ एक गंभीर चूक भी साथ–साथ निभती चली जा रही है। यह मेरी आलोचना नहीं, अपितु सत्य कथन है कि हमारे युवा लघुकथाकारों को लघुकथा–लेखन की दशा और दिशा का अध्ययन करना अभी बहुत बाकी है। दूसरों की लिखी हुई लघुकथाएँ खूब पढ़ें और उसी अनुपात से अपनी ओर से लिखने में लगे रहें। मेरी राय मानें तो निरंतरता से ही लघुकथा को पल्लवित और पुष्पित किया जा सकता है। देश की युवा पीढ़ी पर हम इतना विश्वास तो कर ही सकते हैं।

कारोलिन, बेल एर रिव्येर सेश, मॉरीशस
rdhoorundhur@gmail-com

टिप्पणियाँ, अनुभव एवं विचार बिंदु

- साहित्य और इतिहास : कुछ मौखिक स्रोत - डॉ. देवेन्द्र चौबे
- हिंदी : राष्ट्रभाषा / विश्वभाषा - श्री गोवर्धन यादव
- 'मोहन राकेश एवं 'आधे-अधूरे' का शिक्षण' विषय पर आयोजित विचार-मंच के अवसर पर संदेश
  - श्री राजीव कुमार ओखोजी
  - श्री लेखराजसिंह पांडोही
  - सुश्री प्रियंका सुखलाल
- 'युवकों द्वारा लघुकथा-लेखन' विषय पर आयोजित विचार-मंच के अवसर पर संदेश
  - श्री निरंजन बिगन

साहित्य और इतिहासः कुछ मौखिक स्रोत
संदर्भ : गांधी और सन् 42 का भारत छोड़ो आंदोलन

– डॉ. देवेन्द्र चौबे

(सार: हाल के वर्षों में हिंदी के क्षेत्र में नये-नये अनुसंधान की चिंता बढ़ी है। इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्णहै, हिंदी के सवालों को समाज-विज्ञान के साथ जोड़कर देखने एवं उसे अनुसंधान का विषय बनाने के प्रयास। यह लेख इस दिशा में एक प्रयास है। यहाँ साहित्य और इतिहास के कुछ मौखिक स्रोतों के बहाने गांधी और सन् ४२ के भारत छोड़ो आंदोलन की एक छोटी-सी पड़ताल करने का प्रयास किया गया है। इस पड़ताल में यह देखने का प्रयास किया गया है कि भारत की स्वाधीनता के लिए महात्मा गांधी किस हद तक जाने की सोचते थे। यद्यपि अहिंसा, स्वदेशी और स्वराज गांधी के चिंतन के मूल में हैं; फिर भी, कुछ साहित्यिक स्रोतों में इस बात के संकेत मिलते हैं कि आम जनता, गांधी की एक हिंसक छवि भी रखे हुए थी।)

हाल के दशकों में इतिहास पर हो रही बहसों के मायने बदले हैं और साथ ही बदला है लोक का इतिहास। खासकर, तबसे; जबसे प्रसिद्ध इतालवी चिंतक और सबाल्र्टन इतिहासकार अंतोनियो ग्राम्शी के प्रभाव में रणजीत गुहा, पार्थ चटर्जी, दीपेश चक्रवर्ती, शाहिद अमीन, ज्ञानेंद्र पाण्डेय, रामचंद्र गुहा, डेविड हार्डीमैन, गौतम भद्र आदि जैसे भारतीय इतिहासकारों ने मुख्यधारा के इतिहास की अवधारणाओं को चुनौती देते हुए भारतीय इतिहास की एक समानांतर अवधारणा सामने रखी तथा ऐतिहासिक समझ के लिए भद्रजन के साथ आमजन की 'सोच' (Thought) को भी अध्ययन का आधार बनाने की वकालत की। चाहे वह औपनिवेशिक भारत का इतिहास हो अथवा साम्राज्यवादी या समकालीन! इतिहास के पूरे सच को समझने के लिए इन इतिहासकारों ने धीरे–धीरे पाठकों और अध्येताओं का ध्यान मौखिक स्रोतों के साथ लोक में मौजूद साहित्यिक स्रोतों, सामाजिक संकेतों, ऐतिहासिक–मिथकीय निर्मितियों, सामाजिक स्तरीकरण के अनुसार हो रहे लोगों के व्यवहारों, सदियों से चली आ रही कहावतों, रंग एवं सामाजिक भेदों आदि का उपयोग करना शुरू किया। इनके आधार पर सामाजिक एवं राष्ट्र के इतिहास के पुनर्लेखन का प्रयास किया, जो कि इतिहास के क्षेत्र में एक बड़ा परिवर्तन था। हिंदी साहित्य में यह काम हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, सुमन राजे एवं चंद्रगुप्त वेदालंकार जैसे इतिहासकारों ने किया है। यद्यपि इतिहास–लेखन की यह धारा अब धीमी पड़ गयी है; परंतु इतिहास की इस नई धारा ने ऐतिहासिक सोच में जो बदलाव किया, उसने एक झटके में साहित्यिक स्रोतों के आधार पर भी इतिहास–लेखन की चेतना को ताकत प्रदान किया। खासकर, आधुनिक भारत के इतिहास लेखन में गांधी की भूमिका को समझने में इन स्रोतों की अहम भूमिका को शाहिद अमीन और ज्ञानेंद्र पाण्डेय जैसे इतिहासकार भी मानते हैं; चाहे वह स्वदेशी आंदोलन का इतिहास हो या सन् 42 का क्रांतिकारी भारत छोड़ो आंदोलन। आज, जब देश सन् 42 के भारत छोड़ो आंदोलन के पचहत्तर वर्ष पूरा होने को समझने का प्रयास कर रहा है, तब इस इतिहास के कुछ साहित्यिक–सामाजिक स्रोतों पर विचार करना ज़रूरी लगता है।

दरअसल, आधुनिक भारत के इतिहास में भारत छोड़ो आंदोलन की छवि इस अर्थ में क्रांतिकारी रही

है कि स्वाधीनता आंदोलन के सबसे बड़े नेता महात्मा गांधी ने 8 अगस्त 1942 को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन में पारित प्रसिद्ध 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव में अहिंसक रूप से जितना संभव हो सके खुलकर जन–संघर्ष के लिए लोगों को प्रेरित किया। इतना ही नहीं, इसमें यह भी कहा गया कि यदि कांग्रेस के सभी नेता गिरफ़्तार हो जाएँ, तो 'आज़ादी की इच्छा रखनेवाले प्रत्येक भारतीय स्वयं अपना मार्गदर्शक बनें' अर्थात् एक प्रकार से यह इतना खुला आह्वान था जिसने यह साफ़ कर दिया कि अब केवल जेल जाने से काम नहीं चलेगा; अपितु 'करो या मरो' का नारा देते हुए गांधी ने यह भी घोषणा की कि "यदि आम हड़ताल करना आवश्यक हो, तो मैं उससे भी पीछे नहीं हटूँगा" । संभवतः पहली बार भारतीय जनता को कांग्रेस की तरफ़ से एक क्रांतिकारी और हिंसक आंदोलन के लिए आंदोलित किया, यद्यपि गांधी की छवि ऐसी नहीं थी। सुमित सरकार ने आधुनिक भारत में लिखा है कि "यह गांधीजी का एक अन्य वक्तव्य था, जो उनके स्वभाव के अनुकूल नहीं था।" कारण, आज भी समाज में गांधी की छवि एक अहिंसक और सदाचारी व्यक्ति की है, जो राष्ट्रीय मुक्ति के लिए समस्त जन को जोड़ने का आजीवन प्रयास करते रहे हैं। यद्यपि गांधी की जो वास्तविक छवि थी, उनके अनुयायी कृषकों में एक हद तक भिन्न भी पायी जाती रही है। कारण, कृषक उनकी सदाचारी छवि से कई बार असहमत भी होते थे; यद्यपि उन्हें अपना एकमात्र नेता भी मानते थे। पर, वे गांधी की एक क्रांतिकारी छवि भी चाहते थे, जिसे इस आंदोलन ने प्रदान किया। प्रसिद्ध इतिहासकार शाहिद अमीन ने 'चौरी–चौरा' पर केंद्रित अपने चर्चित लेख 'स्मृति और इतिहास: चौरी चौरा, 1922–1992' में गांधी पर विचार करते हुए लिखा है कि "ग्रामीण नायकों में गांधी उनकी सोच की उपज थे, न कि जैसे वह वास्तव में थे।" इस संदर्भ में 1921 में आर्य ग्रंथ रत्नाकर, बरेली से प्रकाशित एवं प्रतिबंधित काव्य काशगंज का ख्वाब, लेखक–कवि लालबहादुर वर्मा (बहादुर) की निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है, जिसमें सन् 42 के आंदोलन के इक्कीस वर्ष पूर्व गांधी की छवि एक लड़ाकू फ़ौजी सरदार की दिखलाई पड़ती है :

ख्वाब ड्राइवर ने जो देखा वह मैं करता ज़ाहिर
एक बयाबन में कुछ गुज़र रहा है गरद–ओ–गुबार
आ रही फ़ौज है उस सिमत से दस बीस हज़ार
और हैं गांधीजी फ़ौज में आला सरदार
और सोराज्य का इस हाथ में उनके है आलम
सरे–दुश्मन को वह करते चले आते हैं कलम...
हर एक अंग्रेज़ के जब कान में पहुँची ये सदा
जैसे सोचा किया वह नंगा धड़ंगा भागा...
मैं भागी कि हमें हाय छुपा ले कोई
गांधी आये हमें बचा ले कोई

स्पष्टतः, उस समय गांधी की यह छवि थी नहीं; बल्कि आम जनता अपने नेता की ऐसी छवि चाहती थी और उस ज़माने में वह गांधी के नाम पर जगह–जगह स्थानीय नेता आम जनता के साथ धरना प्रदर्शन करते रहते थे। इसलिए, जब सन् 42 में गांधी ने अंगेज़ों के लिए 'भारत छोड़ो' का नारा दिया और जनता को 'करो या मरो' के लिए आह्वान किया, तब पूरा देश उद्वेलित हो उठा। प्रसिद्ध कहानीकार अमृतलाल नागर ने चर्चित उपन्यास 'पीढ़ियाँ' में इस आंदोलन के पड़े प्रभाव की चर्चा करते हुए उसका वर्णन निम्न किया है:

"अठारह अगस्त को दोपहर होते–होते लगभग पच्चीस हज़ार आदमियों की भीड़ थाने पर एकत्र हो गई। इसमें श्रीमती धनेश्वरी देवी तथा श्रीमती राम झरिया देवी समेत चौव्वन महिलाएँ भी थीं। सभी के हाथ में तिरंगे झंडे थे। महिलाएँ लोकगीतों के माध्यम से जुझारू गीत गा–गाकर जनसमूह का उत्साहवर्धन कर रही थीं। तो दूसरी ओर युवावर्ग, 'सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है, देखना है ज़ोर कितना बाजु–ए–कातिल में है' गा–गाकर चुनौतियाँ दे रहा था। जनसमूह का नेतृत्व भूपनारायण सिंह, सुदर्शन सिंह, राजकुमार मिश्र कर रहे थे। अन्य उपस्थित नेताओं में जंग बहादुर सिंह, शिवपूजन, देवनारायण आदि थे बाद में क्षेत्र के नेता बाबा लक्ष्मणदास, ब्रजबिहारी सिंह तथा जगदीश नारायण तिवारी भी वहाँ पहुँच गए। ..."

उन्मत्त थानेदार ने भीड़ पर गोली चलाने का आदेश दे दिया। पहली गोली सुदर्शन सिंह की जांघ में लगी जो आर–पार हो गई थी। गोलियाँ रुक–रुक के दगती रहीं, जनता आड़ लेकर अपना बचाव करने लगी और कभी–कभी ढेलेबाजी भी करती थी। क्रांति के दीवाने गोली खा–खाकर गिरते जा रहे थे किन्तु भीड़ हटने का नाम ही न ले रही थी। संयोग से उसी समय तेज़ वर्षा होने लगी, ऐसा लगता था मानो इन्द्रदेव भी गिरे हुए शहीदों पर अपनी अश्रुअंजलियाँ चढ़ा रहे थे।' (पीढ़ियाँ, पृष्ठ 389–90)

यद्यपि उपर्युक्त कथन के आखिरी हिस्से में स्वाधीनता आंदोलन की उग्रधारा को 'मिथ' से जोड़ने का प्रयास दिखलाई पड़ता है, जब अमृतलाल नागर जन राष्ट्रवाद की संरचना को 'इंद्र' से जोड़ते हैं। परंतु पूर्व के कथन में (बलिया के) सन् 42 के आंदोलन के उन उग्र राष्ट्रवादियों, खासकर महिलाओं के नाम हैं, जो बलिया के शासन को अंग्रेज़ों से मुक्त कराने का प्रयास करते हैं। ऐसा सिर्फ़ बलिया में ही नहीं होता है, अमृतलाल नागर द्वारा दिये गये निम्नलिखित अंशों को पढ़ें, तो पता चलता है कि सन् 42 का आंदोलन कितना बड़ा था तथा हिंदी कथा–साहित्य में उसकी कितनी महत्त्वपूर्ण उपस्थिति हुई है :

"लखनऊ पहले से ही आग का गोला बना हुआ था। दस अगस्त को आलमनगर और सिटी स्टेशन पर जवानों के हमले हुए। तोड़–फ़ोड़, आगजनी हुई, बड़ा तहलका मच गया था। ... दस अगस्त को विश्वविद्यालय के छात्रों का जुलूस निकलकर अमीनाबाद की ओर चला था। उसपर पुलिस ने हवाई फ़ायर किया। ... एक दक्षिणी छात्र वेंकटेश्वर राव गोली से घायल भी हो गया।' (पीढ़ियाँ, पृष्ठ 384)

'उस समय गाज़ीपुर में भी ऐसा ही ज़बर्दस्त विप्लव हो रहा था। वहाँ के सभी थानों पर तिरंगे फहरा रहे थे।' (वही, पृष्ठ 390)

दरअसल, लोक के अंदर राष्ट्र के लिए बलिदान की जो आकांक्षा होती है, उसे ही जन–लेखकों ने स्वाधीनता आंदोलन के केन्द्र में रखा है। कई बार तो सन् 42 के आंदोलन में बिना अपनी जान की परवाह किए स्थानीय नेता और आमजन ब्रिटिश अधिकारियों से लड़ पड़ते थे। उन्हें ललकारते थे। जानते थे कि जान को खतरा है, फिर भी आज़ादी की आग में कूदने को उन्मत रहते थे :

एक बैलगाड़ी शहर की ओर जा रही थी, मुश्ताक बोला – **"कहाँ जा रहे हो भइयन, अरे बरेली में तो गोलियाँ चल रही हैं, मर जाओगे तो बीबी रांड हो जाएगी।"**

गाड़ीवान बोला : "अरे, लमड़े–लमड़ियन पैदा करे तो भला है रांड हो जाए।..." (पीढ़ियाँ, पृष्ठ 388)

सन् 42 या इस प्रकार के आंदोलन की ये कुछ ऐसी मिसालें हैं, जो देश की मुक्ति के लिए आमजन की व्यापक हिस्सेदारी की तरफ़ संकेत करती हैं। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ये आमजन कभी भी मुख्यधारा के इतिहास में ठीक–ठाक जगह नहीं ले पाते हैं या इन्हें वह जगह दी ही नहीं जाती है। क्यों, यह एक बड़ा सवाल है; लेकिन खास बात यह है कि रणजीत गुहा जैसे इतिहासकारों के लेखन ने इस प्रकार के कई सवाल उठाये, जिनसे इतिहास की इस नयी धारा को बनाने में मदद मिली। निम्नवर्गीय इतिहास–लेखन की प्रक्रिया में ये सवाल इसलिए भी उठते हैं कि जन–साहित्य या जन–काव्य में इतिहास के खोए हुए जिन जन–नायकों या राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन का वर्णन दिखाई पड़ता है, उसका बहुलांश संबंधित नायक अथवा समाज द्वारा रचित नहीं होता है, बल्कि जन–आंदोलन से संबंधित समाज अथवा बाहर के कवियों और लेखकों द्वारा उनका या आंदोलन का गान होता है। कई बार सरकारी और लिखित दस्तावेज़ों में वही तथ्य नहीं होते, जो जन–साहित्य अथवा जन–आंदोलन में दिखाई पड़ते हैं। इतना ही नहीं मुख्यधारा के इतिहास में भी जन नायकों अथवा जन आंदोलन की छवि वही नहीं होती, जो जनता अथवा संबंधित जनसमाज के अंदर होती है जैसा कि लेखक–कवि लालबहादुर वर्मा (बहादुर) के

प्रतिबंधित काव्य काशगंज का ख्वाब में दिखलाई पड़ता है। यद्यपि गांधी की यह हिंसक छवि सन् 1921 ई. में ही दिखलाई पड़ती है, जो वास्तविक रूप में सन् 1942 ई. में जाकर प्रकट होती है। इतिहासकार शाहिद अमीन द्वारा लिखित लेख 'स्मृति और इतिहास: चौरी चौरा, 1922–1992' की निम्नलिखित पंक्तियों से गांधी की इस छवि का अनुमान लगाया जा सकता है, यद्यपि गांधी उस समय वैसे नहीं थे:

"कांड के बाद महात्मा गांधी ने 'चौरी चौरा का जुर्म' नामक एक ऐतिहासिक लेख लिखा था। गांधी के अनुसार 'चौरी चौरा' के बलवाई चाहे उनके नाम से प्रेरित रहे हों, 23 पुलिसकर्मियों की हत्या के वे ज़िम्मेदार थे ही और प्रायश्चित एवं दंड के भागी भी। गांधी ने इसके फलस्वरूप पाँच दिन उपवास रखा था ..."

(यहाँ बीच में शाहिद अमीन स्वाधीनता आंदोलन के दौरान सुरेंद्र शर्मा की प्रकाशित कविता 'प्रायश्चित' का उल्लेख करते हैं, जिसमें 'चौरी चौरा' काण्ड के लिए जनता को ही ज़िम्मेदार ठहराया गया है तथा जिसके प्रायश्चित स्वरूप गांधी उपवास करते हैं।)

याद रहे, गांधी ने 'चौरी चौरा' के लोगों को जिम्मेदार ठहराते हुए उन्हें, 'मुलज़िम', न कि 'राष्ट्रवादी' का खिताब दिया था।

वस्तुतः इतिहास हमेशा वैसा ही नहीं होता है जैसा कि ऐतिहासिक पाठों में बताया जाता है। बल्कि, उन ऐतिहासिक पाठों में मौजूद वह सच वास्तव में इतिहासकार का सच होता है, जिसे वह अपनी सोच और विश्लेषण के ज़रिए प्रस्तुत करता है। इसलिए, लिखित इतिहास की भी बार–बार समीक्षा होना ज़रूरी है, ताकि नये एवं वैकल्पिक इतिहास की दिशा में नयी पीढ़ी के इतिहासकार आगे बढ़ सकें। तभी नये इतिहास की संभावना बनेगी।

संदर्भ:

1. शाहिद अमीन और ज्ञानेन्द्र पाण्डेय, 1995 एवं 2002, निम्नवर्गीय प्रसंग, भाग–1 और 2, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
2. बिपन चंद्र, 1996, भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद, अनामिका पब्लिशर्स, दिल्ली
3. देशभक्ति के गीत (ब्रिटिश राज्य द्वारा प्रतिबंधित साहित्य से) राष्ट्रीय अभिलेखागार,दिल्ली, 1985
4. इस संदर्भ में रश्मि चौधरी की किताब भारतीय राष्ट्रवाद का निम्नवर्गीय प्रसंग की निम्नलिखित पंक्तियों को देखा जा सकता है:

शाहिद अमीन ने 'स्मृति और इतिहास : चौरी चौरा, 1922–92' में इस बात की तरफ़ संकेत किया है कि कई बार स्थानीय नेतृत्व, अभिजन नेतृत्व के समानान्तर और खिलाफ़ जाकर कुछ ऐसा निर्णय ले लेता है, जो स्थानीय समाज के हित में होता है। 42 पर अभिजन समाज अथवा नेतृत्व को लगता है कि उसकी बात नहीं सुनी गई। जैसा कि गांधी जी 'चौरी चौरा' के प्रसंग में महसूस करते हैं। इस प्रसंग में शाहिद अमीन उदाहरण के लिए बुलन्द शहर निवासी श्री पी.एस. वर्मा का काव्य 'सन् 1921 असहयोग आंदोलन का रुकना' (गांधी की लड़ाई ऊर्फ़ सत्याग्रह संग्राम) का उल्लेख करते हैं, जिसके प्रारंभिक अंश इस प्रकार हैं–

गोरखपुर में सुना, चौरी चौरा ग्राम
बिगड़ी पब्लिक एकदम, रोकि न सके लगाम।

अर्थात् गांधी के निर्देशों के बावजूद 'चौरी चौरा' गांव की जनता स्थानीय प्रशासन के निरंकुश बर्ताव को सह नहीं पाती है, परिणामतः हिंसा करने को बाध्य होती है।

रश्मि चौधरी, देवेंद्र चौबे, 2016, आधुनिक भारत के इतिहास लेखन के कुछ साहित्यिक स्रोत, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली

नई दिल्ली, भारत
cdevendra@gmail.com
dkchoubey@mail.jnu.ac.in
website : www.jnu.ac.in/faculty/dkc

हिंदी : राष्ट्रभाषा / विश्वभाषा

– श्री गोवर्धन यादव

इतिहास गवाह है कि हिंदी साहित्य एवं भारतीय संस्कृति, अध्यात्म एवं दर्शन ने समूचे विश्व को सदैव आकर्षित किया है। भारतीय वांग्मय का पूरा सांस्कृतिक वैभव हिंदी के ही माध्यम से जन–जन तक पहुँचा है। हिंदी का क्षेत्र काफ़ी विस्तृत रहा है। यहाँ तक कि इसमें संस्कृत साहित्य की परम्परा और लोक भाषाओं की वाचिक परम्परा की संस्कृति भी समाविष्ट रही है। स्वतंत्रता संग्राम में भी हिंदी और लोक भाषाओं ने घर–घर स्वाधीनता की लौ जगाई थी। यह मात्र मुक्ति के लिए नहीं, वरन् सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा हेतु भी थी। हिंदी राष्ट्रीय आंदोलनों और भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति की भाषा के रूप में न केवल भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती है, अपितु विश्व मानव संस्कृति में भी इसकी अपनी सहभागिता रहती है और अपने अनूठे योगदान से समृद्ध भी करती रहती है।

सन् 1935 में बेल्जियम में जन्मे फ़ादर बुल्के ईसाई धर्म के प्रचार–प्रसार में भारत आए। फ्रेंच–अंग्रेज़ी, फ़्लेमिश, आयरिश भाषाओं पर अधिकार होने के बावजूद आपने हिंदी की दिव्यता को पहचाना। उन्होंने न सिर्फ़ हिंदी सीखी, बल्कि संस्कृत सीखकर वे यहीं रच–बस गए और इस तरह वे रामायण के प्रकांड विद्वान भी कहलाए। 'रामकथा–उद्‌भव और विकास' पर आपने डी.फ़िल की उपाधि प्राप्त की। वे कहते थे – 'संस्कृत माँ, हिंदी गृहणी और अंग्रेज़ी नौकरानी है।'

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता और अभिज्ञानशाकुन्तलम् से प्रभावित होकर जे. विल्किंसन् व जार्ज फ़ास्टर ने क्रमशः हिंदी सीखी और इनका अनुवाद अंग्रेज़ी में किया। सन् 1800 के दौरान स्कॉटलैंड के जान बोधानिक गिलक्रिस्ट ने देवनागरी और उसके व्याकरण पर कई पुस्तकें लिखीं। श्री एल.ए.फ. रुनाल्ड ने 1873 से 1877 तक भारत प्रवास के दौरान हिंदी व्याकरण पर महत्त्वपूर्णकार्य किया और लंदन से इस विषय पर पुस्तक प्रकाशित कराई। इंग्लैण्ड के विद्वान डॉ. आर. एस. मेकग्रेगर कहते हैं – **"विदेशी विद्यार्थी यह जानकर प्रायः आश्चर्यचकित रह जाता है कि आज हिंदी–साहित्य आबदार चमकीले जवाहरातों से ठूँस–ठूँसकर भरा एक ऐसा खज़ाना है, जो निरन्तर बढ़ रहा है।"** एक अंग्रेज़ यात्री ने अपनी भारत यात्रा के बाद लिखा था – **"तीर्थ–स्थानों में, पर्यटन–केन्द्रों में, व्यापारिक मंडियों में साधु–संतों में, सार्वजनिक उत्सवों में, कवि–पंडितों में, राज–दरबारों में आदान–प्रदान की भाषा हिंदी रही है।"**

बात सच है कि भाषा का निर्माण टकसाल में न होकर सड़कों पर होता है... चौपालों में होता है... गाँवों के गलियारों में होता है और उसका शिल्पकार होता है उस देश का आमजन। भाषा की समृद्धि एवं संपन्नता के प्रति सजगता, सक्रियता एवं जागरुकता भी उसी जन पर निर्भर करती है। वही (जन) उसका सर्जक होता है, विध्वंसक होता है और वही ज़िम्मेदार भी होता है।

भाषा अभिव्यक्ति का सर्वोत्तम माध्यम है। यह अभिव्यक्ति आमजन की अस्मिता से लेकर राष्ट्र के आगत भविष्य के लिए भी हो सकती है, इसीलिए भाषा का प्रश्न केवल भाषा तक ही सीमित नहीं होता। हम जो भी सोचते हैं, अपनी मातृभाषा में अभिव्यक्त करते हैं और यही अभिव्यक्ति हमारी

पहचान बनाती है। हमने अपनी स्वतंत्रता की लड़ाई हिंदी के माध्यम से ही जीती है। आमजन की भाषा की राष्ट्रीय गरिमा को प्रतिष्ठित करना एवं उसे कायम रखना हमारा उत्तरदायित्व बनता है।

भारत के कोने–कोने में बोली जाने एवं समझी जाने वाली हिंदी ही एकमात्र भाषा है। सरल और वैज्ञानिक लिपि में लिखी जाने के कारण हिंदी भाषा अत्यन्त सुव्यवस्थित, संपन्न और लोकप्रिय है। भारत के अधिकांश भागों में प्रयोग किए जाने के कारण हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा का गौरव प्राप्त है। राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी एक प्रदेश के लोगों को दूसरे प्रदेशों के लोगों से जोड़ती है एवं संपर्क स्थापित करती है और राष्ट्रीय एकता का भाव जगाती है। हिंदी की इसी विशिष्टता के कारण हमारे संविधान निर्माताओं ने 14 सितम्बर 1949 को देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिंदी को, संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया तथा 26 जनवरी 1950 को संविधान में इसका प्रावधान किया।

हिंदी भाषा की एक नहीं, अनेक खूबियाँ हैं:

1. हिंदी एक सशक्त और सरल भाषा है।
2. हिंदी देवनागरी लिपि में ध्वनि–प्रतीकों (स्वर–व्यंजन) का क्रम वैज्ञानिक है।
3. इसमें प्रत्येक ध्वनि के लिए अलग चिह्न है।
4. इसमें केवल उच्चारित ध्वनियाँ ही लिखी जाती हैं।
5. जिस रूप में यह बोली जाती है, उसी रूप में लिखी भी जाती है।
6. हिंदी जर्मनी की तरह अपने ही प्रत्ययों से नवीन शब्दों का निर्माण कर लेती है।
7. हिंदी ने क्रदंन्त क्रियाओं को अधिक ग्रहण किया है, क्योंकि ये बहुत सरल एवं स्पष्ट होती है।
8. हिंदी की संज्ञा–विभक्तियाँ सिर्फ़ पांच–सात ही हैं।
9. हिंदी के सर्वनाम अपने हैं।
10. हिंदी में विशेषण के साथ अलग–अलग विभक्ति लगाने की ज़रूरत नहीं होती।
11. हिंदी के अपने अव्यय हैं।

स्वाधीन भारत की नींव को सुदृढ़ करने के लिए गांधीजी ने जितने काम किए, उनमें हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का काम भी प्रमुख स्थान रखता है, लेकिन गांधीजी की भाषिक मान्यताओं पर विमर्श करने से पूर्व यह भी जानना आवश्यक है कि गांधीजी से पूर्व हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की आवाज़ किन लोगों ने उठाई थी? हाँ, गांधीजी से पूर्व हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की कोशिश की गई थी। प्रख्यात फ़्रांसीसी विद्वान गार्सा द तासी ने सन् 1852 के फ़्रांस के अपने भाषण में हिन्दुओं–हिन्दुस्तानी को हिन्दुस्तान की लोक या सार्वदेशीय भाषा के रूप में रखा था। अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध कोश 'हिंदुस्तानी जाब्सन' में जिसका प्रकाशन सन् 1886 में लंदन में किया गया था, हिंदुस्तानी को सभी भारतीय मुसलमानों की राष्ट्रभाषा माना गया, फिर तो ग्रियर्सन जैसे अनेक लोग हिंदी के सार्वदेशिक रूप को लेकर आगे आए।

स्वदेशी लोगों में सबसे पहले राजा राममोहन रॉय ने एक भाषण में संकेत दिया था कि श्री पेठे, जो मुंबई के कॉलिज में अध्यापक थे, ने मराठी में 'राष्ट्रभाषा' नाम की पुस्तक सन् 1864 में लिखी, जिसमें हिंदी को भारत की आवश्यक भाषा के रूप में स्वीकार किया। बंगाल के महान धार्मिक नेता केशवचन्द्र ने अपने 'सुलभ समाचार' नामक पत्र में भारत की एकता के लिए हिंदी अपनाने की पूरी वकालत की थी। यही नहीं, श्री सेन ने हिंदी के प्रचार–प्रसार में सक्रिय सहयोग भी दिया। वैदिक धर्म के अनन्य प्रचारक और विद्वान स्वामी दयानन्द सरस्वती ने, जो पहले संस्कृत में ही प्रचार करते थे, 48 वर्ष की अवस्था में उन्हीं 'सेन' के कहने से हिंदी सीखी और उसी में सारा कार्य करने लगे। गुजराती के लल्लुजी 'लाल' ने हिंदी के प्रथम व्यवस्थित ग्रंथ 'प्रेमसागर' की रचना की। 1870 के आसपास मराठी विद्वान हरिगोपाल पाण्डे ने 'भाषा तत्व–दीपिका संज्ञक' हिंदी व्याकरण लिखा। प्रख्यात बंगला साहित्यकार

बंकिमचन्द्र चटर्जी ने बंगाल के प्रसिद्ध साहित्यिक–पत्र 'बंग दर्शन' में 1817 में एक आलेख लिखा, जिसमें राष्ट्रभाषा हिंदी के बारे में अपने विचार दृढ़ता से व्यक्त किए। बंगाली शिक्षाविद भूदेव मुखर्जी ने प्रशासन से टक्कर लेकर बिहार की कचहरियों में नागरी तथा कैथि लिपियों को प्रवेश दिलाया और 'आचार–प्रबन्ध' नामक अपनी पुस्तक में हिंदी को सभी भारतीय भाषाओं की एकता का साधन–सूत्र बतलाया।

सन् 1900 तक आते–आते अनेक बंगाली, मराठी, गुजराती, हिंदी समर्थकों और प्रचारकों की भीड़ खड़ी हो गई, जिसमें योगेन्द्रनाथ बसु, अमृतलाल चक्रवर्ती, सदाशिवराव, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, सेठ गोविन्ददास आदि प्रमुख हैं। इन प्रयासों से बल पाकर जब राष्ट्रनायक जैसे 'महिमंड' व्यक्तित्व के धनी गांधीजी ने हिंदी भाषा के प्रश्न को राजनैतिक दृष्टि से सामने रखा और उन्हीं के प्रयासों से जब इसे संविधान में 'राष्ट्रभाषा' का पद मिला, तब यह मान लिया गया कि वे इस क्षेत्र के अपूर्व नेता है।

भारतीय भाषा समस्या के विषय पर गांधीजी के विचार बड़े निर्मल, वस्तुनिष्ठ और पूरी तरह व्यावहारिक हैं। वैसे भी उनके विचार प्रांजल और पारदर्शी होते हैं। जिन स्त्रोतों से उनके भाषा विषयक विचार उपलब्ध होते हैं, उनमें उनके लेखों का प्रमुख स्थान है, जो 'यंग इण्डिया', 'हरिजन–सेवक', 'हरिजन बन्धु' आदि में प्रकाशित हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी सामग्री 'इण्डियन होमरूल' जैसी पुस्तकों और तत्कालीन विभिन्न व्यक्तियों को लिखे गए उनके पत्रों से मिली है। गांधीजी ने भाषा विषय में सबसे पहले अपने विचार 1909 में अपनी पुस्तक 'हिन्द–स्वराज' और 'होमरूल' के 18वें परिच्छेद में यों व्यक्त किए हैं – **"हर एक पढ़े–लिखे हिन्दुस्तानी को अपनी भाषा का, हिन्दू को संस्कृत का, मुसलमान को अरबी का, पारसी को पर्शियन का और सबको हिंदी का ज्ञान होना चाहिए। कुछ हिन्दुओं को अरबी और कुछ मुसलमानों को हिंदी का और कुछ पारसियों को संस्कृत सीखनी चाहिए। उत्तर और पश्चिम में रहने वाले हिन्दुस्तानी को तमिल सीखनी चाहिए। सारे हिन्दुस्तान के लिए तो हिंदी होनी ही चाहिए। उसे उर्दू या नागरी लिपियाँ जानना ज़रूरी है। ऐसा होने पर हम अपने आपस में व्यवहार से अंग्रेज़ी को बाहर कर सकेंगे।"** गांधीजी की इन भाषिक मान्यताओं के पीछे लोक–संग्रहक संतुलन का भाव प्रमुख था। लोकभाव को अक्षत और अक्षुण्य रखते हुए उसके लिए वे कारगर तरीका अपनाने की बात कहते थे, अंग्रेज़ी जिसे कुछ लोग भ्रम–वश विश्व भाषा समझ बैठे हैं, ऐसा श्रेय पाने की कल्पना भी नहीं कर सकती, क्योंकि वह जड़, दुराग्रह, अवैज्ञानिक, अविकसित और अटपटी भाषा है, जिसके दोष सदा ही बड़े–बड़े विद्वानों को चिंतित और परेशान करते रहे हैं। आर्थर मेक–डोनल भी कुछ इसी तरह का मत रखते थे। वे कहते हैं – **"यूरोपीय लोग 2500 वर्ष बाद इस वैज्ञानिक युग में भी वही वर्णमाला का प्रयोग कर रहे हैं, जो हमारी भाषा की सभी ध्वनियों को व्यक्त करने में अक्षम है। अभी तक हम उसी अव्यवस्थित वर्णक्रम से चिपके हुए हैं।"** सर आर्थर विलियम जोन्स भी कहते हैं – **"अंग्रेज़ी वर्णमाला और वर्तनी ऐसी बुरी तरह अधकचरी है कि प्रायः अत्यंत हास्यास्पद तक हो जाती है।"** दस कदम आगे बढ़ते हुए रिचर्ड लैडरर महाशय ने तो झल्लाते हुए यहाँ तक कह डाला था 'क्रेज़ी इंग्लिश' और उन्होंने 'पागलपन की भाषा अंग्रेज़ी' नामक एक ग्रंथ ही लिख डाला।

संसार में कुल मिलाकर लगभग 2800 भाषाएँ हैं। इनमें 13 ऐसी भाषाएँ हैं, जिनके बोलने वालों की संख्यां 8 करोड़ से अधिक है। ताज़ा आँकड़ों के अनुसार संसार की भाषाओं में, हिंदी भाषा को द्वितीय स्थान प्राप्त है। भारत के बाहर बर्मा, श्रीलंका, फ़िजी, मलाया, दक्षिण और पूर्वी अफ़्रीका में भी हिंदी बोलने वालों की संख्या ज़्यादा है। एशिया महादेश की भाषाओं में हिंदी ही एक ऐसी भाषा

है, जो अपने देश के बाहर भी बोली और लिखी जाती है, क्योंकि यह एक जीवित और सशक्त भाषा है।

ताज़ा आँकड़ों के अनुसार भारत में हिंदी जानने वालों की संख्या सौ करोड़ है। भारत के बाहर पाकिस्तान, इज़राइल, ओमान, इक्वाडोर, फ़िजी, इराक़, बांगलादेश, ग्रीस, ग्वाटेमाला, म्यांमार, यमन, त्रिनीदाद, सउदी अरब, पेरु, रूस, क़तर, मॉरीशस, सूरीनाम, गयाना, इंग्लैण्ड आदि में हिंदी बोली जाती है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी को राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषा की मान्यता मिलने जा रही है। वर्तमान में अंग्रेज़ी, फ्रेंच, चीनी, रूसी एवं स्पेनिश भाषाओं को राष्ट्रसंघ की मान्यता प्राप्त है।

संसार में हिंदी ही एक ऐसी भाषा है, जिसे विदेशियों ने सर्वप्रथम विश्वपटल पर रखा। हिंदी के शोधार्थी डॉ. जुइजिपियोतैस्सी तोरी ने फ़्लोरेंस विश्वविद्यालय, इटली में रामचरितमानस और वाल्मीकि रामायण का तुलनात्मक अध्ययन 1911 में शुभारंभ किया। भारत की संस्कृति ने उनपर इतना असर डाला कि स्वदेश 'इटली' छोड़कर जीवनपर्यंत बीकानेर में रहे। साम्यवादी देशों में तुलसीकृत रामचरितमानस की लोकप्रियता देख स्टालिन ने द्वितीय विश्वयुद्ध के समय अकादमीशियन अलकसई वरान्निकोव द्वारा रूसी भाषा में पद्यानुवाद कराया, जिसमें साढ़े दस वर्ष लगे। तुलसीभक्त बेल्जियम में जन्मे फादर रेवरेण्ड कामिल बुल्के, जिन्होंने हिंदी के कारण भारत की नागरिकता ली। तुलसी की काव्यकृति हनुमानचालीसा का रोमानियन भाषा में, बुकारेस्ट में प्रो. जार्ज अंका ने डॉ. यतीन्द्र तिवारी के सहयोग से अनुवाद किया।

अमेरिका के कई विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। यथा – पेनस्टेटयेल, लोयोला, शिकागो, वाशिंगटन, ड्यूक, आयोवा, ओरेगान, मिशिगन, कोलंबिया, हवाई इलिनाय, अलवामा, युनिवर्सिटी आफ़ वर्ज़िनिया, युनिवर्सिटी ऑफ़ मीनेसोटा, फ़लोरिडा, वैदिक वि. वि. सिराक्यूज़, केलिफ़ोर्निया वि. वि., बर्कली युनिवर्सिटी ऑफ़ टेक्सास, रट्गर्स, एमरी, नॉर्थ केरोलाइना स्टेट, एन.वाय.यू. इन्डियाना, यू.सी.एल.ए., मेनीटावा, लाट्रोब तथा केलगेरी विश्वविद्यालय आदि जहाँ हिंदी की शिक्षा दी जाती है।

आधुनिक चीन में हिंदी की विधिवत शुरुआत सन् 1942 में यूनान प्रांत पूर्वी भाषा और साहित्य कॉलिज में हिंदी विभाग की स्थापना के साथ हुई। यह वह समय था जब सारा संसार द्वितीय विश्वयुद्ध की चपेट में था। ऐसी स्थिति में अपनी सुरक्षा के लिए हिंदी विभाग एक जगह से दूसरी जगह स्थानांतरित होता रहा। तीन वर्ष बाद सन् 1945 में हिंदी विभाग यूनान प्रांत से स्थानांतरित होकर छोंगछिन में आ गया और साल भर बाद हिंदी चीन की राजधानी में स्थित पीकिंग वि. वि. के विदेशी भाषापीठ में आसीन हुई और तबसे यहीं फूलती–फलती रही। यहाँ हिंदी के अलावा संस्कृत, पालि, और उर्दू भाषा साहित्य का अध्ययन–अध्यापन होता है। 1939 से 1959 तक का समय विकास की दृष्टि से बेहतरीन रहा। बाद के वर्षों में काफ़ी शिथिल पड़ा। 1960–1979 तक का समय चीनी जनता और समाज के कठिनाइयों भरे दिन थे, हिंदी विभाग सिकुड़कर छोटा हो गया। 1980–1999 का यह दौर परिवर्तन का दौर रहा। हिंदी की मशाल को प्रज्ज्वलित करने में तीन प्राध्यापकों का योगदान विस्मृत नहीं किया जा सकता। वे हैं प्रो. यीनह्युवैन, प्रो. लियो आनवू और प्रो. चिनतिंनहान। इन तीनों विद्वानों ने अपनी लगन, कर्मठता और आदर्श के बल पर हिंदी के लिए जितना कार्य किया वह प्रेरणादायक है।

जापान में विदेशी भाषाओं के अध्ययन–अध्यापन के दो प्रमुख केन्द्र हैं। तोक्यो युनिवर्सिटी ऑफ़ फॉरेन स्टडीज़ एवं ओसाका युनिवर्सिटी ऑफ़ फ़ॉरेन स्टडीज़। इन दोनों ही वि. वि. में सन् 1011–1021 से ही हिन्दुस्तानी भाषा के रूप में हिंदी–उर्दू की पढ़ाई का सिलसिला प्रारंभ हो गया था। इसकी नींव डालने वाले विद्वान प्रो. रेइची गामो तथा प्रो. एइजो सावा हैं। 1911 में डिग्री कोर्स ऑफ़ हिन्दुस्तानी एण्ड तमिल शुरू हो गया था। सन् 1909 से 1914 के मध्य प्रसिद्ध सेनानी मोहम्मद बरकतउल्ला इस

विश्वविद्यालय में 'हिन्दुस्तानी भाषा' के विज़िटिंग प्रोफ़ेसर के रूप में नियुक्त किए गए। ये दोनों विश्वविद्यालय सरकारी विश्वविद्यालय हैं, जहाँ 4 वर्षीय पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं। आरम्भ में प्रो. देई ने तोक्यो में तथा प्रो. एइजो स्ववा ने ओसाका में हिंदी अध्ययन–अध्यापन की नींव डाली। ये विद्वान प्रोफ़ेसर हिंदी के साथ ही उर्दू भी पढ़ाते थे। सन् 2003 में सूरीनाम में आयोजित सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन में प्रो. तोसियो तनाका को 'विश्व हिंदी सम्मान' से सम्मानित किया गया।

तोकियो और ओसाका के राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के अतिरिक्त अन्य कई गैर सरकारी विश्वविद्यालय और शिक्षा संस्थान भी हैं, जहाँ वैकल्पिक विषय के रूप में प्रारंभिक और माध्यमिक कक्षाओं तक हिंदी पढ़ने–पढ़ाने की व्यवस्था है। ताकुशोक विश्वविद्यालय के प्रो. हिदेआकि इशिदा, सोनोदा वीमेन्स युनिवर्सिटी के प्रो. उचिदा अराकि और ताइगेन हशिमोतो, तोमाया कोकुसाई विश्वविद्यालय के प्रो. शिगोओ अराकि और मिताका शहर में स्थित एशिया–अफ्रीका भाषा के प्रो. योइचि युकिशिता का नाम अत्यंत प्रसिद्ध हैं।

मॉरीशस में भारतीय मज़दूरों के आगमन के साथ ही इस भूमि पर हिंदी का प्रवेश हुआ। जिन मज़दूरों को भारत के भोजपुर इलाके से यहाँ लाया गया था 'गिरमिटिया' कहलाए। वे अपने साथ झोली में रामचरितमानस, हनुमानचालीसा, महाभारत जैसे पवित्र ग्रंथ लेकर आए। इन्हें विरासत में समृद्ध साहित्य, धर्म, और संस्कृति का ज्ञान था। अपनी जमीन से उजड़े–उखड़े इन मज़दूरों को नयी जमीन, यातना शिविर में अपने को जीवित रखने, स्थापित करने और अपनी अस्मिता को बनाए रखने के लिए भोजपुरी और हिंदी का सहारा ही सबसे बड़ा अवलंबन था। मज़दूरी की क्रूर नियति से दुखी और हताश ये मज़दूर, कभी बिरहा, कभी कजरी तो कभी हनुमानचालीसा की पंक्तियों से अपनी आंतरिक शक्ति बचाए रखते और रात में रामचरितमानस का पाठ उनकी थकान मिटाकर हौसला बढ़ाते। कई अवरोधों के बावजूद बैठकाएँ चलतीं और भाषा के साथ संस्कृति और धर्म को गति देते रहे। हिन्दू महासभा, आर्यसभा, हिंदी प्रचरिणी सभा तथा अन्य संस्थानों के सहयोग तथा पण्डित विष्णुदयाल और डॉ. शिवसागर रामगुलाम के नेतृत्व में भारतीय संस्कृति और इसकी वाहक हिंदी अपनी उत्कृष्टता पाने में सफल हुई। आज महात्मा गांधी संस्थान और इन्दिरा गांधी सांस्कृतिक केन्द्र, भाषा प्रचार और सांस्कृतिक गतिविधियों को विस्तार दे रहे हैं। भारत सरकार के सहयोग से अब हिंदी स्पीकिंग यूनियन तथा रवीन्द्रनाथ टैगोर संस्थान भी इस सांस्कृतिक अभियान में जुड़ गए हैं तथा विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना से नया आयाम मिला है।

थाईलैण्ड में हिंदी अध्ययन–अध्यापन का कार्यक्रम सबसे पहले थाई–भारत सांस्कृतिक आश्रम से शुरू हुआ, जिसकी स्थापना सन् 1943 में स्वामी सत्यानन्दपुरीजी ने की थी। आचार्य डॉ. करुणा कुसलासायजी पहले थाई विद्वान थे, जो हिंदी पढ़ने भारत आए थे। महात्मा गांधी से सारनाथ में मिले और जब वे लौटे तब उन्होंने थाई–भारत सांस्कृतिक आश्रम में ही हिंदी पढ़ाना शुरू किया और बैंकॉक के भारतीय दूतावास में नौकरी शुरू की।

सन् 1989 में सिल्पाकोर्न विश्वविद्यालय के पुरातत्व विज्ञान संकाय के प्राच्य भाषा विभाग में एम.ए. संस्कृत पाठ्यक्रम बनाया गया। उस समय आचार्य डॉ. चमलोङां शारफ़ेदनूक हिंदी शिक्षक थे। सन् 1966 में सिलपाकोर्न विश्वविद्यालय के पुरातत्व विज्ञान संकाय के प्राच्य भाषा विभाग के संस्कृत अध्यापन केन्द्र की भारतीय आगन्तुक डॉ. सत्यव्रत शास्त्री के द्वारा स्थापना की गई। 1993 में थमसात विश्वविद्यालय में थाईलैण्ड के भारतीय व्यापारियों के सहयोग से भारत अध्ययन केन्द्र की स्थापना हुई। डॉ. करुणा कुशलासाय, डॉ. चिरफ़द प्राकन्विध्या एवं आचार्य डॉ. चम्लोंग शरफ़दनूक तीनों ने हिंदी कक्षाएँ चलायीं।

इस संबंध में वास्तविकता यह है कि गुट निरपेक्ष राष्ट्रों के मुखिया भारत, संसार की उभरती अर्थ–शक्ति भारत, परमाणुशक्ति संपन्न राष्ट्र भारत, संस्कृति और

दर्शन के क्षेत्र में पथ–प्रदर्शक भारत एवं संसार के सबसे बड़े बाज़ारों में एक भारत से निकटता बढ़ाने के लिए विश्व का हर देश लालायित है। यही कारण है कि विश्व के अनेक देश अपने यहाँ हिंदी शिक्षण की उच्चस्तरीय व्यवस्था कर रहे हैं। इन देशों में अमेरिका, रूस, इंग्लैण्ड, फ्रांस, चीन, जापान, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा जैसे विश्व के प्रभावशाली देश भी शामिल हैं। इतना ही नहीं प्रवासी भारतीयों ने अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए हिंदी के अध्ययन–अध्यापन की व्यवस्था विश्व में बड़े व्यापक स्तर पर की है। वे हिंदी की सुरक्षा, प्रतिष्ठा एवं प्रचार के लिए पूरी तरह प्रतिबद्ध हैं।

विदेशों में पचास से अधिक देशों के 600 से अधिक विश्वविद्यालयों और स्कूलों में हिंदी पढ़ाई जा रही हैं। भारत से बाहर जिन देशों में हिंदी का बोलने, लिखने–पढ़ने तथा अध्ययन और अध्यापन की दृष्टि से प्रयोग होता है, उन्हें हम इन वर्गों में बाँट सकते हैं।

1. जहाँ भारतीय मूल के लोग अधिक संख्या में रहते हैं, जैसे – पाकिस्तान, नेपाल, भूटान, बंगलादेश, म्यांमार, श्रीलंका और मालदीव, मॉरीशस आदि।
2. भारतीय संस्कृति से प्रभावित दक्षिण पूर्वी एशियाई देश, जैसे – इंडोनेशिया, मलेशिया, थाईलैंड, चीन, मंगोलिया, कोरिया तथा जापान आदि।
3. जहाँ हिंदी को विश्व की आधुनिक भाषा के रूप में पढ़ाया जाता है – अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा और यूरोप के देश।
4. अरब और अन्य इस्लामी देश, जैसे – संयुक्त अरब अमीरात (दुबई), अफ़गानिस्तान, कतर, मिस्र, उज़बेकिस्तान, कज़ाकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान आदि।

हिंदी विश्व के सर्वाधिक आबादी वाले दूसरे देश भारत की प्रमुख भाषा है तथा फ़ारसी लिपि में लिखी जाने वाली भाषा उर्दू हिंदी की ही एक अन्य शैली है। लिखने की बात छोड़ दें, तो हिंदी और उर्दू में कोई विशेष अंतर नहीं रह जाता सिवाय इसके कि उर्दू में अरबी, फ़ारसी, तुर्की आदि शब्दों का बहुलता से इस्तेमाल होता है। एक ही भाषा के दो रूपों को हिंदी और उर्दू को अलग–अलग नाम देना अंग्रेज़ों की कूटनीति का एक हिस्सा था।

इस प्रकार हिंदी आज भारत में ही नहीं, बल्कि विश्व के विराट फलक पर अपने अस्तित्व को आकार दे रही है। आज हिंदी विश्व भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त करने की ओर अग्रसर है। अब तक भारत और भारत के बाहर सात विश्व हिंदी सम्मेलन आयोजित हो चुके हैं। अब तक दस विश्व हिंदी सम्मेलन क्रमशः नागपुर (1975), मॉरीशस (1976), नई दिल्ली (1983), मॉरीशस (1993), त्रिनिडाड एंड टोबेगो (1996), लंदन (1999), सूरीनाम (2003), न्यूयॉर्क (2007), जोहान्सबर्ग (2012), भोपाल (2015) में हो चुके हैं। ग्यारहवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन अब मॉरीशस में किया जाना है।

राष्ट्रभाषा हिंदी को पीछे ढकेलने वाली साजिशों के बावजूद हिंदी भारत में ही नहीं, बल्कि विदेशों में भी लोकप्रिय हो रही है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि भारत के लगभग 170 स्वयंसेवी संगठन हिंदी का प्रचार–प्रसार एवं संवर्धन निष्ठा के साथ एवं अधिक सुनियोजित ढंग से कर रहे हैं। जहाँ तक विश्वभाषा के रूप में हिंदी की लोकप्रियता और प्रतिष्ठा का प्रश्न है, शंकरदयाल सिंह के निम्नांकित शब्द इसे भली भांति स्पष्ट करते हैं – **"जिस भाषा की पढ़ाई विश्व के 600 से अधिक विश्वविद्यालयों में हो रही हो, 50 से अधिक देश जिस भाषा का प्रयोग किसी न किसी रूप में कर रहे हों तथा जिसके बोलनेवालों की संख्या अरबों तक पहुँच चुकी हो, वह भाषा विश्वभाषा (अंतरराष्ट्रीय) न कही जायेगी, तो क्या कही जाएगी?"**

छिन्दवाड़ा, मध्य प्रदेश, भारत
goverdhanyadav44@gmail.com

‘मोहन राकेश एवं ‘आधे-अधूरे’ का शिक्षण’ विषय पर आयोजित विचार-मंच में श्री राजीव कुमार ओखोजी का संदेश

त्रैमासिक विचार–मंच का आयोजन एक बहुत ही सफल प्रयास है, जिसमें हिंदी भाषा, साहित्य एवं शिक्षण से संबंधित मुद्दों पर विचार किया जाएगा। आज 'आधे–अधूरे' के शिक्षण पर विमर्श करने के साथ ही नाटक का मंचन होने जा रहा है। मोहन राकेश के इस नाटक से छात्रों को नाटक की अच्छी जानकारी मिल सकेगी और इस के साथ–साथ इस नाटक को देखने के बाद आप सभी बेहतर ढंग से अपनी पढ़ाई कर सकेंगे। मैं भारत सरकार के प्रति आभारी हूँ, क्योंकि उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में सहयोग दिया। साहित्य की पढ़ाई से छात्रों के भाषा–कौशल का विकास होता है और वास्तव में साहित्य के माध्यम से भाषा का प्रचार भी होता है। हमारे शैक्षणिक संस्थाओं में नाटक की पढ़ाई एक महत्त्वपूर्ण विधा के रूप में की जाती है। हिंदी नाटकों के विकास में मोहन राकेश का नाम अलग नहीं रखा जा सकता। उनके द्वारा लिखित 'आधे–अधूरे' नाटक माध्यमिक और विश्वविद्यालयी स्तर पर पढ़ाया जाता हैं, परंतु यह देखा जाता है कि कहानी और उपन्यास की तुलना में नाटकों के अध्ययन पर कम महत्व दिया जाता है। एच.एस.सी. केम्ब्रिज परीक्षाओं की रिपोर्ट से ये पता चलता है कि कम छात्र नाटक के प्रश्नों का चयन करते हैं। इस समस्या का निवारण नाटक संबंधी अनेक गतिविधियों के आयोजन द्वारा हो सकता है और ऐसा ही होना चाहिए। नाटकों के शिक्षण और अध्ययन के माध्यम से हिंदी भाषा का प्रचार–प्रसार करते हुए विश्व हिंदी सचिवालय ने इस महत्त्वपूर्णगतिविधि का आयोजन किया, जिसमें 'आधे–अधूरे' के कुछ अंशों के मंचन के साथ–साथ एक शिक्षक द्वारा इस विषय पर अपने अनुभव व्यक्त करना एवं विचार विनिमय करना सच में प्रशंसनीय है। साहित्य के स्वरूप, उसकी कथा वस्तु और उसकी भाषा–शैली को समझने का कोई निश्चित विज्ञान नहीं है।

मैं शिक्षकों से आग्रह करूँगा कि वे छात्रों को साहित्य पढ़ने हेतु प्रेरित करें, क्योंकि भाषा और साहित्य का गहरा संबंध है। आप सभी हिंदी प्रेमियों ने यह सुना होगा कि 2017 में एच.एस.सी. की अंतरराष्ट्रीय परीक्षा में मॉरीशस की एक लड़की पूरे विश्व में हिंदी में प्रथम आयी है और 2016 में एक लड़का विश्व में प्रथम आया था। मुझे विश्वास है कि मॉरीशस के हिंदी छात्र हिंदी के माध्यम से हमारे देश को भविष्य में भी ऐसे ही सम्मानित करेंगे।

शिक्षा प्रणाली में हो रहे परिवर्तनों के चलते शिक्षा मंत्रालय की दृष्टि में भाषाओं की पढ़ाई एक विशेष स्थान रखती है। अनेक भाषाओं में संप्रेषण–कौशल (कम्यूनिकेशन स्किल) पर ज़ोर देते हुए, हमारा उद्देश्य छात्रों की मौखिक अभिव्यक्ति को बढ़ाने के साथ–साथ भारतीय संस्कृति में उनकी रुचि का विकास करना भी है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि एजुकेशनल रिफ़ॉर्म के फलस्वरूप अधिक से अधिक छात्र साहित्य का चयन करेंगे। विचार–विमर्श के इस पहले प्रयास के बाद मुझे विश्वास है कि नाटकों के अध्ययन में अधिक से अधिक छात्र अपनी रुचि दिखाएँगे और शिक्षक–गण शिक्षण विधाओं के प्रयोग से अपने छात्रों को मनोरंजक ढंग से नाटक पढ़ा सकेंगे। अंत में मैं विश्व हिंदी सचिवालय का धन्यवाद करना चाहूँगा और इस कार्यक्रम के लिए बधाई दूँगा।

प्रबंधक,
शिक्षा व मानव संसाधन, तृतीयक शिक्षा एवं
वैज्ञानिक अनुसंधान मंत्रालय
मॉरीशस

‘मोहन राकेश एवं ‘आधे-अधूरे’ का शिक्षण’ विषय पर आयोजित विचार-मंच में श्री लेखराजसिंह पांडोही का संदेश

‘आधे–अधूरे’ के शिक्षण पर मेरा अनुभव

आधे–अधूरे नाटक मोहन राकेश द्वारा रचित एक समस्याप्रधान नाटक है, जिसकी रचना सन् 1969 में हुई। माध्यमिक विद्यालय के पाठ्यक्रम में इस नाटक को काफ़ी वर्षों के बाद पुनः सन् 2015 में सम्मिलित किया गया। इससे पूर्व जयशंकर प्रसाद का 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक पाठ्यक्रम में सम्मिलित था। इस दौरान यह देखा गया था कि 'ध्रुवस्वामिनी' के साथ दिए गए अन्य विकल्पों में छात्र, निर्धारित कहानी, उपन्यास या कविताओं में अधिक रुचि दिखाते थे। परीक्षा की दृष्टि से भी अपेक्षाकृत कम छात्र ही नाटक की तैयारी करते थे। इसका कारण यह है कि 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में अधिक संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग हुआ है और छात्रों को इसकी भाषा दुरूह लगती थी। परन्तु 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक को पाठ्यक्रम से निकालकर जब 'आधे–अधूरे' नाटक को रखा गया तब छात्रों की मनोवृत्ति बदलने लग गयी।

'आधे–अधूरे' नाटक में मोहन राकेश ने मध्यवर्गीय परिवार की अनेकानेक विसंगतियों का यथार्थ चित्रण किया। मध्यवर्गीय परिवार में जिस तरह की भाषा का प्रयोग किया जाता है, वैसे ही भाषा का प्रयोग इस नाटक में हुआ है। इससे बड़े स्वाभाविक रूप से कथानक का विकास हुआ है और वस्तुतः नाटक की संवेदना तथा उद्देश्य को समझने में छात्रों को किसी तरह की समस्या नहीं होती है। परिणामस्वरूप परीक्षा की दृष्टि से आजकल अधिक छात्र–छात्राएँ 'आधे–अधूरे' नाटक की विशेष तैयारी करते हैं।

इसके अतिरिक्त यह भी देखा गया है कि इस नाटक के बहुत आयाम हैं। नाटककार ने इसमें न सिर्फ़ घटनाओं का वर्णन किया है, परन्तु महेन्द्रनाथ और उसके परिवार के सदस्यों के द्वारा रोज़मर्रा के जीवन के अंतर–बाह्य स्तरों का उद्घाटन किया है। इस दृष्टि से नाटक का अध्ययन करते समय छात्रों की अभिरुचि न सिर्फ़ जागृत होती है, पर यूँ कहा जाए कि यह रचना समकालीन जीवन की समस्याओं को चित्रित करती है, इससे छात्रों का मन नाटक की संवेदना से पूर्णतः जुड़ जाती है। कुशल अध्यापक के समक्ष भी यह एक चुनौती बन जाती है कि किस तरह से आधुनिक परिवेश में व्यक्तिगत तथा पारिवारिक जीवन की समस्याओं तथा विसंगतियों को छात्रों के मध्य रखते हुए उनके निदान की ओर छात्रों का मार्गदर्शन करें।

परिवार का मुख्य सदस्य होते हुए महेन्द्रनाथ का घरेलू ज़िम्मेदारियों से विमुख होकर परजीवियों की तरह जीवन व्यतीत करना और अंततः उपेक्षित होकर रह जाना, सावित्री का परपुरुषगामी बन जाना, किन्नी का अनुशासनहीन व्यवहार करना, बिन्नी का अपने असंतुष्ट वैवाहिक जीवन के प्रति खेद प्रकट करना तथा अशोक का अपने आंतरिक संत्रास और घुटन के कारण विद्रोह का मार्ग अपना लेना, ये कुछ ज्वलंत समस्याएँ हैं। खेद का विषय है कि समकालीन परिस्थितियों में ये सभी समस्याएँ और भी भयानक रूप में नज़र आ रही हैं।

'आधे–अधूरे' नाटक के शिक्षण के दौरान अध्यापक

को इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि वह मात्र अपने विचारों को आरोपित न करें। हमारे छात्र न सिर्फ़ संवेदनशील होते हैं, पर उनमें भी काफ़ी परिपक्वता होती है। कक्षा में अध्यापक को छात्रों के लिए एक ऐसा खुला मंच प्रदान करना चाहिए, जहाँ पर छात्र–छात्राएँ स्वतंत्र रूप से उपर्युक्त समस्याओं पर चिंतन–मनन करते हुए अपने विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करें। उदाहरण स्वरूप – सावित्री और महेन्द्रनाथ, दोनों में से कौन अधिक महत्त्वाकांक्षी है? बिन्नी के अनुशासनहीन होने पर किसका दोष है? निस्संदेह हमारे छात्र अपना तर्क देते हुए अपना उत्तर देने में समर्थ होते हैं।

'आधे–अधूरे' नाटक के अध्ययन–अध्यापन में यदि अध्यापक मनोवैज्ञानिक पहलुओं पर ध्यान दें, तो यह सोने पे सुहागा वाली बात होगी। इस नाटक को समझाते समय Mind Mapping अत्यंत ही सहायक सिद्ध होता है। उदाहरणस्वरूप यह बात किसी से छिपी नहीं कि महेन्द्रनाथ एक कुंठित, उपेक्षित, तिरस्कृत तथा आधा–अधूरा व्यक्ति बनकर रह जाता है। Mind mapping के द्वारा अध्यापक इसको इस रूप में प्रस्तुत कर सकता है :

K ------> कुंठित
OU ----> उपेक्षित
T-------> तिरस्कृत
A------> आधा–अधूरा

अतः (KOUTA) के द्वारा महेन्द्रनाथ के चरित्र के मनोवैज्ञानिक पहलुओं को बड़ी सुगमता से छात्र समझने में समर्थ होता है।

उद्धरणों को स्मरण करने के लिए भी mind mapping बहुत ही लाभदायक सिद्ध होता है। उदाहरणस्वरूप सावित्री महेन्द्रनाथ के बारे में यह कहती है :

"वह तो आधे व्यक्ति का एक चौथाई भी नहीं"

इसे इस रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है: (1/2 *1/4)

इस तरह हम देखते हैं कि mind-mapping के द्वारा विषय को सहजतापूर्वक समझाया जा सकता है।

उल्लेखनीय बात यह है कि यूट्यूब से भी इस नाटक को देखकर इसका रसास्वादन किया जा सकता है। कक्षा में छात्रों के द्वारा इस नाटक के कुछ दृश्यों का मंचन भी किया जा सकता है।

परीक्षा की दृष्टि से तैयारी करने के लिए कैम्ब्रिज रिपोर्ट देखना भी अति लाभप्रद सिद्ध होता है। प्रायः देखा गया है कि परीक्षा में प्रश्नों के उत्तर लिखते समय कुछ छात्र नाटक के केवल प्रथम दृश्य से उदाहरण देते हैं और इस नाटक के दूसरे दृश्य के संबंध में बिल्कुल नहीं लिखते हैं। इससे उनको पूर्ण अंक नहीं मिलता।

यदि इस लेख को पढ़कर छात्रों और शिक्षकों को 'आधे–अधूरे' को तैयार करने में अधिक आत्मविश्वास मिले, तो मुझे बहुत प्रसन्नता होगी।

हिंदी शिक्षक,
मणिलाल डॉक्टर एस.एस.एस.
मॉरीशस

'मोहन राकेश एवं 'आधे-अधूरे' का शिक्षण' विषय पर आयोजित विचार-मंच में सुश्री प्रियंका सुखलाल का संदेश

'आधे–अधूरे' का अध्ययन

सभा में उपस्थित आप सभी लोगों को मेरा सादर अभिवादन।

मैं, प्रियंका सुखलाल, महात्मा गांधी संस्थान से बी.ए. हिंदी की छात्रा आप लोगों के साथ 'आधे अधूरे' के अध्ययन पर अपने विचार बाँटना चाहूँगी।

सर्वप्रथम मैं कहना चाहूँगी कि 'आधे–अधूरे' नाटक एक अत्यंत ही सशक्त और प्रभावशाली कृति है, क्योंकि इसमें समकालीन जीवन के कटु यथार्थ को दर्शाने की क्षमता है।

मैंने इस नाटक के अध्ययन में गहरी रुचि ली है, क्योंकि इसकी जो कथा है, वह केवल नाटक के पात्रों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि वह वर्तमान आधुनिक समाज के प्रत्येक संघर्षशील व्यक्ति की कथा है।

नाटककार ने औद्योगीकरण के चलते आधुनिक वर्तमान जीवन में उलझी हुई मनःस्थितियों तथा मनुष्य की उपभोक्तावादी प्रवृत्ति का विशुद्ध चित्रण किया है।

स्वकेंद्रित विचारधारा, विवाहेत्तर संबंधों, आर्थिक तंगी, पारिवारिक विघटन तथा संबंधों में अजनबीपन जैसी समस्याओं पर मोहन राकेश ने बारीकी से दृष्टि डाली है।

इन सब के भंवर में फँसे मनुष्य की त्रासदायक स्थिति को उन्होंने इस नाटक में उभारा है, जिसके चलते वे एक युगधर्मी साहित्यकार सिद्ध होते हैं।

नाटक में सामाजिक और पारिवारिक समस्याओं के कारण उत्पन्न परिस्थितियों के माध्यम से नाटककार पाठकों तथा दर्शकों को भावी चुनौतीपूर्ण जीवन के प्रति सचेत करते हैं।

'आधे–अधूरे' के अध्ययन के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि कमियाँ सबके जीवन में होती हैं। किसी को भी किसी एक व्यक्ति से सब कुछ प्राप्त करने की आशा नहीं रखनी चाहिए क्योंकि व्यक्ति अपने आप में अधूरा है।

अपने इसी अधूरेपन की पूर्ति हेतु वह दिशाहीन भटक रहा है और वह तब तक भटकता रहेगा जब तक वह अपनी ओर से व्यवहार कुशलता एवं सहनशीलता के माध्यम से अपने आप को स्थिति के अनुकूल ढालने का प्रयास नहीं करेगा। इस प्रकार 'आधे–अधूरे' का अध्ययन मेरे लिए बहुत ही सार्थक सिद्ध हुआ है।

अंत में मैं कहना चाहूँगी कि इस नाटक में चर्चित समस्याओं के माध्यम से मेरे विचार, बोल और व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन आया है। इस दृष्टि से मैं हिंदी छात्रों को विशेष रूप से प्रोत्साहित करना चाहूँगी कि वे हिंदी नाट्य साहित्य का लाभ उठाते हुए 'आधे–अधूरे' का अध्ययन करें और अपने जीवन में भी सकारात्मक परिवर्तन लाएँ।

छात्रा,
बी.ए. (हिंदी), महात्मा गांधी संस्थान
मॉरीशस

'युवकों द्वारा लघुकथा-लेखन' विषय पर आयोजित विचार-मंच में श्री निरंजन बिगन का संदेश

हिंदी उद्यान के समस्त मालियों और मालिनों को मेरा नमन। मैंने "मालियों और मालिनों" शब्दों से आप लोगों का संबोधन किया, क्योंकि अभी–अभी आप लोगों ने सुना कि हमारे वरिष्ठ रचनाकारों ने बीजारोपण कर दिया है और अगर माली केवल पौधा रोप देता है और समय पर सिंचाई न हो, समय पर देख–भाल न हो, तो सभी पौधे मर जाते हैं और उद्यान की शोभा क्षीण पड़ जाती है। इसीलिए मैं विश्व हिंदी सचिवालय के इस सराहनीय प्रयास के प्रति आभार प्रकट करता हूँ कि ऐसा मंच यथासमय प्रस्तुत किया जा रहा है, जहाँ पर शिक्षक, लेखक, छात्र, हिंदी प्रेमी और सभी लोग एक साथ मिलकर विचारों का आदान–प्रदान कर सकें। हिंदी और अन्य भाषाओं के विकास के लिए शिक्षा मंत्रालय की ओर से विशेषकर, जो नयापन लाया जा रहा है, केवल पुस्तकीय ज्ञान नहीं, अपितु छात्रों के सर्वांगीण विकास हेतु अनेक गतिविधियाँ होनेवाली हैं और शुरू भी हो चुकी हैं और हम चाहते हैं कि हमारे छात्र हिंदी के साथ केवल लाचारी की स्थिति में नहीं जुड़े और केवल इसलिए पुस्तक के पन्ने न खोलें क्योंकि उन्हें परीक्षा देनी है, अपितु उनमें वह चाव एवं वह रुचि जगे, जिससे कि वे स्वतः पुस्तक की ओर बढ़ें, हाथ में कलम थामें और कुछ लिख डालें। अगर हम ऐसा करते हैं, तो मैं समझता हूँ कि हमारा प्रयास सफल होगा। हमारे नवयुवकों की ज़िन्दगी में आजकल इतनी सारी गतिविधियाँ हैं, इतने सारे आकर्षण हैं, कि हिंदी की चुम्बकीय शक्ति से बाहर निकल जाते हैं, यहाँ पर उपस्थित सभी लोग हिंदी में बात करेंगे, हिंदी की चर्चा करेंगे, लेकिन इस समूह से परे जब हम झाँकते हैं, तब स्थिति उज्ज्वल नहीं है। मैं इन सबका रोना–धोना प्रस्तुत नहीं करना चाहता हूँ, लेकिन अगर हम कहीं न कहीं अपनी ओर से कुछ न कुछ प्रयास स्वरूप करें, तो मैं समझता हूँ धीरे–धीरे इसका फल सामने अवश्य आएगा। तात्कालिक नहीं, थोड़ा समय लगेगा, लेकिन इसका फल आएगा और यह दायित्व आप मालियों और मालिनों पर है। नहीं तो पहला फूल खूब सुन्दर फूलेगा, फिर उत्तम बीज नहीं होंगे और अगली ऋतु के लिए उद्यान बंजर ही बंजर रहेगा। इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप ऐसे रचनाकारों को, जो सृजनात्मक लेखन की ओर बढ़ रहे हैं, उन्हें हर तरह से प्रोत्साहित करें। अभी स्कूलों में अंग्रेज़ी में कहानी–लेखन की एक प्रतियोगिता चल रही है। क्यों न हमारी जितनी भी संस्थाएँ है या तो सम्मिलित रूप से या किसी भी तरीके से कुछ ऐसी गतिविधि अपनाएँ, जिससे कि वे छात्र कहीं न कहीं हिंदी एक अनुच्छेद या एक कहानी चाहे अध्यापक के सहयोग से, चाहे माता–पिता के सहयोग से लिखें कम से कम उनमें हम वह रुचि जागृत करें कि वे भी अब लिखना शुरू करें। और यह तभी संभव होगा जब हम उन लोगों के लिए उचित अवसर और उचित प्रोत्साहन और संसाधन प्रस्तुत करेंगे। इसलिए मैं यही चाहता हूँ कि हरेक के सहयोग से हम इस दिशा में आगे बढ़ें, जिससे कि आनेवाले दिनों में जब हम युवकों की हिंदी कहानियों के बारे में चर्चा करेंगे, तो हमें सचमुच गर्व होगा। तब बोलेंगे कि हाँ सृजनात्मक लेखन की ओर इतने सारे युवक आ रहे हैं। तब कहीं न कहीं हम चैन की सांस ले पाएँगे। धन्यवाद

प्रशासक ज़ोन 1,
शिक्षा व मानव संसाधन, तृतीयक शिक्षा
एवं वैज्ञानिक अनुसंधान मंत्रालय
मॉरीशस

2017
में हिंदी जगत् की चयनित खबरें

- 2017 में हिंदी जगत् की चयनित खबरों का विश्व हिंदी समाचार में प्रकाशन

  \- विश्व हिंदी सचिवालय

'विश्व हिंदी समाचार' में प्रकाशित वर्ष 2017 की चयनित खबरें

विश्व हिंदी सचिवालय के त्रैमासिक सूचना–पत्र 'विश्व हिंदी समाचार' में वर्ष 2017 में प्रकाशित विशेष सूचनाओं की झलक विश्व हिंदी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की जा रही है।

'विश्व हिंदी समाचार', अंकः 37, मार्च 2017

विश्व हिंदी दिवस 2017ः विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस

13 जनवरी, 2017 को विश्व हिंदी सचिवालय ने शिक्षा व मानव संसाधन, तृतीयक शिक्षा व वैज्ञानिक अनुसंधान मंत्रालय तथा भारतीय उच्चायोग के तत्वावधान में फ़ेनिक्स स्थित इंदिरा गांधी भारतीय सांस्कृतिक केंद्र में विश्व हिंदी दिवस समारोह का भव्य आयोजन किया। समारोह के मुख्य अतिथि मॉरीशस गणराज्य के राष्ट्रपति, महामहिम श्री परमशिवम पिल्ले वायापुरी, (जी.ओ.एस.के.) रहे। सचिवालय ने इस वर्ष हिंदी जगत् के समक्ष पेकिंग विश्वविद्यालय, बीजिंग, चीन से दक्षिण एशियाई विभाग के प्रोफ़ेसर व दक्षिण एशियाई केंद्र के निदेशक, प्रो. जिंगकुई ज्यांग को प्रस्तुत किया, जिन्होंने **'हिंदी का वैश्विक परिप्रेक्ष्य : चीन के विशेष संदर्भ में'** विषय पर वक्तव्य दिया। महामहिम श्री अशोक कुमार, कार्यवाहक भारतीय उच्चायुक्त ने इस अवसर पर भारत गणराज्य के प्रधान मंत्री, महामहिम श्री नरेंद्र मोदी का संदेश पढ़कर सुनाया। विश्व हिंदी दिवस 2017 के उपलक्ष्य में सचिवालय द्वारा वर्ष 2016 में आयोजित 'अंतरराष्ट्रीय हिंदी वाचन प्रतियोगिता' के मॉरीशसीय विजेताओं को पुरस्कार राशि तथा प्रमाण–पत्र प्रदान किया गया। इस वर्ष सचिवालय ने अपने वार्षिक प्रकाशन 'विश्व हिंदी पत्रिका' के 8वें अंक (मुद्रित व वेब प्रारूप) का लोकार्पण किया।

विश्व हिंदी दिवस 2017 : विश्व भर में

पिछले वर्षों के समान, इस वर्ष भी हिंदी के बढ़ते महत्व तथा उसके प्रचार–प्रसार को रेखांकित करने हेतु भारत एवं विश्व के अनेक देशों में विश्व हिंदी दिवस का भव्य आयोजन किया गया। भारत के अतिरिक्त बाली, इंडोनेशिया, बर्मिंघम, कराकास, वेनेजुएला, फ़िजी, फ़्रैंकफ़र्ट, जर्मनी, गोबोर्नी, बोत्सवाना, गौटेंग, दक्षिण अफ़्रीका, होंगकोंग, चीन, कैंडी, श्रीलंका, कीव, युक्रेन, लंदन, ओटावा, कनाडा, पोर्टो, पुर्तगाल, सिडनी, ऑस्ट्रेलिया, त्रिनिदाद एवं टोबैगो, विएना, ऑस्ट्रिया इत्यादि देशों में विश्व हिंदी दिवस के उपलक्ष्य में कई कार्यक्रमों द्वारा हिंदी का महोत्सव मनाया गया।

विश्व हिंदी सचिवालय का 9वाँ आधिकारिक कार्यारंभ दिवस

11 फ़रवरी, 2017 को विश्व हिंदी सचिवालय ने शिक्षा व मानव संसाधन, तृतीयक शिक्षा व वैज्ञानिक अनुसंधान मंत्रालय तथा भारतीय उच्चायोग, मॉरीशस के सौजन्य से मोका के महात्मा गांधी संस्थान के सुब्रह्मण्यम् भारती सभागार में अपने 7वें आधिकारिक कार्यारंभ दिवस का आयोजन किया।

मॉरीशस की शिक्षा व मानव संसाधन, तृतीयक शिक्षा व वैज्ञानिक अनुसंधान मंत्री, माननीया श्रीमती लीला देवी दुकन–लछुमन समारोह की मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित थीं तथा कार्यवाहक भारतीय उच्चायुक्त, महामहिम श्री अशोक कुमार, महात्मा गांधी संस्थान की निदेशिका डॉ. विद्योत्मा कुंजल, संस्थान के परिषद् के अध्यक्ष, श्री जयनारायण मीतू तथा अन्य गणमान्य अतिथि ने समारोह की शोभा बढ़ाई। प्रत्येक आधिकारिक कार्यारंभ दिवस के समान इस वर्ष भी सचिवालय ने भारत के एक प्रसिद्ध हिंदी प्रेमी को समारोह में वक्तव्य हेतु अतिथि वक्ता के रूप में आमंत्रित किया था। इस वर्ष सचिवालय

को भारत के प्रसिद्ध शिक्षाविद् श्री अतुल कोठारी का स्वागत करने का अवसर प्राप्त हुआ, जिन्होंने 'वैश्विक हिंदी : चुनौतियाँ एवं समाधान' विषय पर वक्तव्य दिया। इस अवसर पर श्री मोहनलाल बृजमोहन कृत 'ख़्वाबों की वह खूबसूरत दुनिया' तथा 'वह भूला बिसरा तट' पुस्तकों का लोकार्पण भी किया गया।

विशाखापट्टनम में चतुर्थ अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन

6–8 जनवरी, 2017 को हिंदी संगम प्रतिष्ठान, गीतम विश्वविद्यालय, न.रा.का.स., विशाखापट्टनम और लोक नायक फाउण्डेशन, विशाखापट्टनम के संयुक्त तत्वावधान में गीतम विश्वविद्यालय, विशाखापट्टनम में चतुर्थ अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन का आयोजन किया गया। सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य भारत के विभिन्न क्षेत्रों एवं अन्य देशों, जहाँ अहिंदी–भाषियों को हिंदी पढ़ाई जाती है, के शैक्षणिक विशेषज्ञों के बीच संबंध स्थापित करना था। सम्मेलन का शीर्षक – 'अन्य भाषा के रूप में हिंदी का पठन–पाठन, शैक्षणिक परिप्रेक्ष्य, भाषा–योजना और कार्यक्रम विस्तार' था। यह आयोजन गीतम विश्वविद्यालय के सभापति डॉ. एम.वी. वी.एस. मूर्ति एवं लोकनायक प्रतिष्ठान के अध्यक्ष डॉ. लक्ष्मी प्रसाद यार्लगड्डा के सक्रिय सहयोग से हुआ।

सम्मेलन में अमेरिका सहित अनेक देशों के भाषा–विशेषज्ञों ने अपने शोध–पत्र प्रस्तुत किए, जिनमें यह परिलक्षित हुआ कि विभिन्न देशों में हिंदी–शिक्षण की विविध शैलियों का विकास उन देशों के विद्यार्थियों की ज़रूरतों को ध्यान में रखकर किया जाना ज़रूरी है। हिंदी के शैक्षणिक परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखकर भाषा–योजना बनाई जानी चाहिए और उसका विस्तार होना चाहिए। इस प्रक्रिया में निर्मित पाठ्यक्रम विद्यार्थियों की ज़रूरतों के अनुरूप होने चाहिए ताकि वे भाषा सीखने का संदर्भ जान सकें और पाठ्यक्रम के लक्ष्य की उपयोगिता समझ सकें।

सम्मेलन में कोपनहेगन विश्वविद्यालय, डेनमार्क से रेने एल्मार, केन विश्वविद्यालय न्यू जर्सी से प्रो. जेनिस जेनसेन, न्यू यॉर्क विश्वविद्यालय, न्यू यॉर्क से प्रो. गैब्रिएला निक इलिएवा, वेनिस से प्रो. श्यामा मेढेकर, फ़िलाडेल्फ़िया से ऋतु जयकर, ड्यूक विश्वविद्यालय नॉर्थ कारोलाइना से कुसुम नैपसिक, महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस से श्री गंगाधरसिंह गुलशन सुखलाल, पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग से प्रो. माधवेन्द्र पाण्डे आदि विद्वानों ने पत्र प्रस्तुत किए। विद्यार्थियों को लक्ष्य में रखकर विभिन्न सत्रों में पाठ्यक्रम निर्माण के अनेक पहलुओं पर चर्चा हुई। विशाखापट्टनम में दक्षिण भारत के अनेक विद्यालयों और महाविद्यालयों के अध्यापकों ने हिंदी–शिक्षण–शैलियों पर प्रस्तुतियाँ दीं।

सम्मेलन के अनेक उपलब्धियों में से एक यह है कि गीतम विश्वविद्यालय हिंदी भाषा का पाठ्यक्रम शुरू कर रहा है। विश्वविद्यालय सूचना प्रौद्योगिकी और प्रबंधन की शिक्षा के लिए प्रसिद्ध है, लेकिन गांधी जी के आदर्शों के अनुरूप हिंदी को संवाद और संप्रेषण की भाषा के रूप में अपनाने को तैयार है।

सम्मेलन में यह प्रस्ताव पारित हुआ कि भारतीय प्रवासी संसार में हिंदी पठन–पाठन को सुदृढ़ करने के लिए न्यूयॉर्क क्षेत्र में हिंदी केंद्र की स्थापना के लिए भारत सरकार को हिंदी संगम फाउण्डेशन के साथ सहयोग करना चाहिए। विगत सम्मेलनों में भी यह प्रस्ताव पारित किया जा चुका है कि अमेरिका में हिंदी केंद्र की स्थापना हो।

12 भाषाओं में पढ़ सकेंगे 30 हज़ार वेबसाइट्स

भारतीय सरकार की 30 हज़ार से अधिक वेबसाइट अगले डेढ़ साल में हिंदी समेत 12 भारतीय भाषाओं में उपलब्ध होंगीं। आई.आई.टी. बी.एस.यू., आई.आई.टी. हैदराबाद और सी–डैक, नोएडा इस प्रोजेक्ट पर मिलकर काम कर रहे हैं। ये वेबसाइट्स हिंदी, तमिल, तेलुगू, पंजाबी, उर्दू, मलयाली, कन्नड आदि भाषाओं में होंगीं। आई.आई.टी. बी.एस.यू.एन के निदेशक, प्रो. राजीव संगल ने बताया कि सॉफ़्टवेयर विकसित किया जाएगा, जिसके माध्यम से कोई भी भाषा–भाषी व्यक्ति वेबसाइट की सूचनाओं को अपनी भाषा में खोलकर पढ़ सकेगा। पहले चरण में वेबसाइटों का 12 भाषाओं में अनुवाद किया जा रहा है। इसके बाद 10 और भाषाओं में भी अनुवाद किया जाएगा।

क्रोएशिया में अंतरराष्ट्रीय हिंदी दिवस के उपलक्ष्य में राष्ट्रीय परिसंवाद

26 मार्च, 2017 को ज़ाग्रेब विश्वविद्यालय, क्रोएशिया में मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान संकाय के भारतविद्या विभाग एवं भारतीय दूतावास, क्रोएशिया के संयुक्त तत्वावधान में अंतरराष्ट्रीय हिंदी भाषा दिवस 2017 के उपलक्ष्य में **'संस्कृत, हिंदी एवं क्रोएशिया : भाषा, साहित्य एवं संस्कृति'** विषय पर एक दिवसीय राष्ट्रीय परिसंवाद का आयोजन किया गया। मुख्य अतिथि के रूप में भारतीय दूतावास के राजदूत, महामहिम श्री संदीप कुमार ने भारत और क्रोएशिया के बीच सांस्कृतिक संबंधों का उल्लेख किया तथा विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित प्रो. जेलज्को होलयेवत्स, अधिष्ठाता, मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान संकाय ने इंडोलॉजी विभाग की शैक्षणिक एवं अतिरिक्त पाठ्यक्रम गतिविधियों की सराहना करते हुए भारतीय दूतावास के प्रति आभार प्रकट किया। प्रथम सत्र प्रो. मिस्लाव येजिव की अध्यक्षता में **'संस्कृत एवं क्रोएशिया : भाषा, साहित्य एवं संस्कृति'** विषय पर संपन्न हुआ। द्वितीय सत्र की अध्यक्षता डॉ. इवान आंद्रियानिच ने की। तृतीय सत्र की अध्यक्षता प्रो. रवींद्रनाथ मिश्र ने की तथा डॉ. मरिया यान्चि, शोध–छात्रा, जदर विश्वविद्यालय ने **'इ–ऑन लाइन के माध्यम से हिंदी, संस्कृत एवं अन्य एशियाई भाषाओं के शब्दकोश गठन'** विषय के अंतर्गत बहुभाषी शब्दकोश प्रकल्प कार्य की चर्चा की। अंत में प्रो. रवींद्रनाथ मिश्र ने **'हिंदी एवं क्रोएशियन भाषा, साहित्य और संस्कृति में साम्यता'** विषय पर आलेख प्रस्तुत करते हुए भाषा, साहित्य और संस्कृति की अवधारणा और स्वरूप का उल्लेख किया। समापन–समारोह के अंतर्गत विद्यार्थियों द्वारा बनाए गए चार्ट की प्रतियोगिता के पुरस्कारों की घोषणा की गई।

'विश्व हिंदी समाचार', अंकः 38, जून 2017

बुडापेस्ट में 7वां अंतरराष्ट्रीय साहित्य एवं संस्कृति सम्मेलन

7 जून, 2017 को अमृता शेरगिल कला केंद्र, आई.सी.सी. आर. के सभागार, हंगरी, बुडापेस्ट में विश्व हिंदी साहित्य परिषद्, भारत के तत्वावधान में 7वां अंतरराष्ट्रीय साहित्य एवं संस्कृति सम्मेलन का आयोजन किया गया।

प्रथम सत्र का उद्घाटन मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित हंगरी में भारतीय राजदूत, महामहिम श्री राहुल छाबड़ा द्वारा किया गया। सत्र के अध्यक्ष डॉ. हरीश नवल ने अध्यक्षीय उद्बोधन में हिंदी की वैश्विक स्थिति पर अपने विचार प्रस्तुत किए। इस सत्र के दौरान भारत के कई विख्यात चित्रकारों की चित्रकला प्रदर्शनी लगाई गई। इस अवसर पर एल्ले विश्वविद्यालय से हंगरी की प्रसिद्ध हिंदी विद्वान डॉ. मरिया नेज्येशी, विख्यात व्यंग्यकार डॉ. हरीश नवल, वरिष्ठ शिक्षाविद् एवं कवि डॉ. लल्लन प्रसाद, मॉरीशस में भारतीय उच्चायोग की द्वितीय सचिव डॉ. नूतन पांडेय, अमृता शेरगिल कला केंद्र, आई. सी. सी. आर., भारतीय दूतावास, बुडापेस्ट के निदेशक श्री टी. पी. एस. रावत, प्रसिद्ध पत्रकार श्री ए. के. अग्रवाल, हिंदी पीठ आई.सी.सी.आर. से डॉ. दिलीप शाक्य जैसे विद्वानों की उपस्थिति रही।

द्वितीय सत्र के अंतर्गत 'सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से हिंदी कल, आज और कल' विषय पर विभिन्न प्रतिभागियों ने अपने आलेख प्रस्तुत किए। इस सत्र के मुख्य अतिथि डॉ. स्नेह सुधा नवल रहीं तथा अध्यक्षता प्रसिद्ध लेखिका डॉ. मीनाक्षी जोशी ने की। विशिष्ट अतिथियों में डॉ. आनंद कुमार सिंह, डॉ. गुरमीत सिंह, डॉ. मीना शर्मा तथा वक्ता डॉ. सीमा रानी और डॉ. नूतन पांडेय ने विषय के संदर्भ में नवीन उद्भावनाओं एवं संभावनाओं की ओर संकेत करते हुए अपने विचार व्यक्त किए। लेखक डॉ. राजेश श्रीवास्तव ने सत्र का संचालन किया।

तृतीय सत्र में अंतरराष्ट्रीय कविता उत्सव का आयोजन किया गया। इस सत्र के मुख्य अतिथि कवि श्री प्रेम भारद्वाज 'ज्ञानशिक्षु' रहे तथा अध्यक्षता डॉ. धनंजय सिंह ने की। इस अवसर पर 7 देशों से आमंत्रित कवियों ने काव्य–पाठ किया।

चतुर्थ सत्र में अंतरराष्ट्रीय नृत्य–कला उत्सव का

आयोजन किया गया, जिसमें कलाकारों द्वारा नृत्य एवं गायन–कला का प्रदर्शन हुआ।

समापन–सत्र में विशिष्ट अतिथियों के कर–कमलों द्वारा सभी प्रतिभागियों को 'साहित्य सिंधु', 'कला सिंधु', हिंदी गौरव सम्मान' एवं 'साहित्य गौरव सम्मान' से सम्मानित किया गया। इस सम्मेलन में भारत, हंगरी, अमेरिका, कनाडा, बेल्जियम और स्विट्ज़रलैंड से आये 72 प्रतिभागियों ने भाग लिया। विश्व हिंदी साहित्य परिषद् के अध्यक्ष, डॉ. आशीष कंधवे ने संचालन तथा धन्यवाद–ज्ञापन किया।

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा में विश्व रंगमंच दिवस 27 मार्च, 2017 को महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के प्रदर्शनकारी कला विभाग द्वारा ग़ालिब सभागार में विश्व रंगमंच दिवस का आयोजन किया गया, जिसमें शेक्सपियर का 'माकबेथ', भारतेंदु हरिश्चंद्र का 'अंधेर नगरी', ग्रीक का 'इडिपस' एवं भास का 'दूतवाक्यम' आदि नाटकों का सफल मंचन हुआ। नाट्य प्रस्तुतियों की परिकल्पना, समन्वय एवं निर्देशन सहायक प्रो. सुरभि विप्लव का था तथा निर्माण व संयोजन वरिष्ठ रंगकर्मी सहायक प्रो. सतीश पावड़े का था। नाट्यमंचन के अवसर पर कुलपति प्रो. गिरीश्वर मिश्र, प्रतिकुलपति प्रो. आनंद वर्धन शर्मा, डॉ. उषा शर्मा, साहित्य विद्यापीठ के अधिष्ठाता प्रो. के.के. सिंह सहित अध्यापक, अधिकारी एवं बड़ी संख्या में विद्यार्थी उपस्थित थे।

जम्मू में माइक्रोसॉफ्ट भाषा उत्सव

3–4 मई, 2017 को जम्मू के केंद्रीय विश्वविद्यालय के सहयोग से माइक्रोसॉफ़्ट भाषा उत्सव का आयोजन किया गया। दोनों दिन दो सत्र हुए, जिसमें प्रतिभागियों के लिए भाषाई संदर्भों में नई तकनीक के साथ जुड़ने का यह एक मौका था। इस अवसर पर कार्यक्रम में सैद्धांतिक और व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया गया। विश्वविद्यालय की ओर से जनसंचार विभागाध्यक्ष, प्रो. गोविंद सिंह और माइक्रोसॉफ्ट की ओर से लोकलाइज़ेशन लीड, श्री बालेंदु शर्मा दाधीच ने आयोजकीय दायित्व संभाले। समारोह में छात्रों और शिक्षकों ने भाग लिया।

आधुनिक शंघाई के इतिहास में पहली बार हिंदी नाटक का मंचन

22 अप्रैल, 2017 को शंघाई में प्रसिद्ध नाटककार मोहन राकेश की कृति 'आषाढ़ का एक दिन' का सफ़ल मंचन किया गया। आधुनिक शंघाई के इतिहास में यह पहला अवसर था, जब किसी हिंदी नाटक का मंचन किया गया। अपनी मिट्टी और संस्कारों से प्रेम करनेवालों के साथ हिंदी साहित्य और रंगमंच में रुचि रखनेवालों के लिए शंघाई रंगमंच की ओर से यह पहली प्रस्तुति थी। मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित शंघाई कौंसलावास प्रमुख, श्री प्रकाश गुप्ता ने कलाकारों की तारीफ़ करते हुए कहा कि काफ़ी साल पहले उन्होंने इस कृति को पढ़ा ज़रूर था। लेकिन वर्षों बाद शंघाई में इसका मंचन देखकर मन हर्षित हो उठा। नाटक के निर्देशक एवं कालिदास की भूमिका निभानेवाले श्री मुकेश शर्मा ने कहा "गैर हिंदी प्रदेश के लोग, जिन्होंने कभी रंगमंच के लिए काम नहीं किया, वैसे कलाकारों के साथ संगीत नाटक अकादमी द्वारा पुरस्कृत नाटक के मंचन का फैसला उनके लिए सबसे बड़ी चुनौती थी। टीम के ज़्यादातर सदस्य विभिन्न निजी कंपनियों में बड़ी ज़िम्मेदारी निभा रहे हैं, ऐसे में सप्ताह के दिनों में उनके साथ सिर्फ़ स्काइप पर ही अभ्यास संभव हो पाया।" नाटक में प्रियंका जोशी, अमित वायकर, अमित मेघणे, धनश्री एवं अर्पणा वायकर ने क्रमानुसार मल्लिका, मातुल, आर्य विलोम, अंबिका व राज वधू की भूमिका निभाते हुए दर्शको को मंत्रमुग्ध किया। सहयोगियों के साथ वितरण तथा व्यवस्था की जिम्मेदारी निभा रही श्रीमती बीना वाघले ने कहा कि गैर हिंदी दर्शकों को हिंदी रंगमंच के लिए रंगशाला तक खींचकर लाना चुनौतीपूर्ण कार्य था, लेकिन सबके मिले–जुले प्रयास से यह कार्य भी सरल हो गया। इस अवसर पर शंघाई रंगमंच अकादमी (विदेश रंगमंच विभाग) के उपाध्यक्ष, प्रो. यूउ, भारतीय संघ, शंघाई के प्रमुख

श्री राज खोसा, श्री तुषार भानुशाली तथा श्रीमती अनीता शर्मा सहित कई हिंदी व अहिंदी–भाषी लोग उपस्थित थे। अंत में, चीन की राजधानी बीजिंग एवं व्यावसायिक शहर ग्वांगजौ से इसके मंचन का आग्रह, हिंदी रंगमंच के लिए सुनहरे सफ़र का आगाज़ है।

मॉरीशस में राष्ट्रीय हिंदी नाटक समारोह 2017

सन् 2017 के मई–जून महीने में कला एवं संस्कृति मंत्रालय, मॉरीशस द्वारा हिंदी नाटक समारोह का भव्य आयोजन किया गया। इस वर्ष नाटक समारोह 13 दिनों तक चला। प्रतियोगिता हेतु कुल 25 आवेदन प्राप्त हुए और प्रथम चरण के लिए 22 नाटक प्रस्तुत किए गए। राष्ट्रीय नाटक प्रतियोगिता में 12 कॉलिजों, 1 प्राथमिक स्कूल तथा 9 क्लबों ने भाग लिया।

प्रथम चरण रिव्येर जी रॉंपार युवा केंद्र, मोंटाय ब्लॉश युवा केंद्र और सेर्ज़ कोंस्ताँतें थिएटर वाक्वा में संपन्न हुआ।

29 जून, 2017 को वाक्वा के सेर्ज़ कोंस्ताँतें थिएटर में प्रतियोगिता के अंतिम चरण का आयोजन किया गया। अंतिम चरण के लिए तीन श्रेष्ठ नाटक चुने गए– 'अशोक की चिंता' (वाक्वा रंगभूमि कला मंदिर), 'भंवर' (नाट्य दीप, वाले दे प्रेत) एवं 'सबसे बड़ा रुपय्या' (प्रो. वासुदेव विष्णुदयाल कॉलिज, फ़्लाक)। जूरी के सदस्यों में श्री सूर्यदेव सिबोरत, श्री धननारायण जीऊत और श्री धनराज शम्भु थे।

अंतिम चरण में 'अशोक की चिंता' नाटक के लिए वाक्वा रंगभूमि कला मंदिर को प्रथम पुरस्कार, 'सबसे बड़ा रुपय्या' नाटक के लिए, प्रो. वासुदेव विष्णुदयाल कॉलिज को द्वितीय पुरस्कार, 'भंवर' नाटक के लिए नाट्य दीप को तृतीय पुरस्कार प्राप्त हुए। साथ ही, 'अशोक की चिंता' नाटक के लिए श्री राजेश्वर सितोहल को 'श्रेष्ठ निर्देशक', डॉ. कुमारदत्त गुदारी को 'श्रेष्ठ अभिनेता' एवं 'श्रेष्ठ स्थानीय लेखक', देवंती सितोहल को 'बेस्ट सेटिंग' तथा 'सबसे बड़ा रुपय्या' नाटक के लिए ऋषिका जद्दू को 'श्रेष्ठ अभिनेत्री' और नोट्र डाम कॉलिज, क्यूर्पिप को 'बेस्ट बिगिनर ग्रुप' पुरस्कार प्राप्त हुए।

राष्ट्रीय हिंदी नाटक समारोह 2017 के लिए इंडिपेंडेंट कमिशन एगेंस्ट करप्शन ने भ्रष्टाचार के विरुद्ध मंचित नाटक को विशेष पुरस्कृत किया। इसके विजेता कॉं दे मास्क पावे के 'नवरंग कला' रहे। दूसरी ओर विश्व हिंदी सचिवालय ने 3 श्रेष्ठ नाटकों 'अशोक की चिंता', 'सबसे बड़ा रुपय्या' तथा 'भंवर' को क्रमशः 5000, 3000 और 2000 के नकद पुरस्कार प्रदान किए।

यह समारोह एक प्रतियोगिता के रूप में मनाया जाता है, जिसमें राष्ट्रीय स्तर पर प्राथमिक एवं माध्यमिक स्कूल, धार्मिक संस्थाएँ, क्लब आदि भाग लेते हैं। प्रतियोगिता के लिए उम्र की कोई सीमा निर्धारित नहीं की जाती। इस समारोह का मुख्य उद्देश्य नाटक मंचन द्वारा हिंदी भाषा का प्रचार–प्रसार करना, नाट्य–कला को बढ़ावा देना, युवकों को मंच पर अभिव्यक्ति करने का सुअवसर प्रदान करना तथा हिंदी नाट्य साहित्य और रंगमंच को जीवित रखना है।

17 वर्षीय अमेरिकी–भारतीय इशान प्रसाद द्वारा हिंदी सीखने हेतु 'मेच इट अप' एप की रचना

17 वर्षीय अमेरिकी–भारतीय इशान प्रसाद ने 'मेच इट अप' हिंदी एप का निर्माण किया। यह एप एक मेचिंग कार्ड खेल है, जिसके अंतर्गत विविध स्तरों की कठिनाइयाँ पाई जाती है। इस एप की रचना का मुख्य उद्देश्य यह है कि इशान प्रसाद की भाँति अन्य अमेरिकी–भारतीय बच्चे सरल व मनोरंजक ढंग से हिंदी सीख सकें। इशान का प्रयास यह था कि एक ऐसा खेल समूह बनाया जाए, जिसमें हिंदी सीखने के अलग–अलग पहलू जैसे शब्दावली से लेकर केरेक्टर रिकॉग्निशन और वाक्य–संरचना आदि शामिल हों। एपल इंडिया के आमंत्रण पर इशान ने 5–9 जून, 2017 को सान होज़े, कैलिफ़ोर्निया में आयोजित एपल वर्ल्डवाइस डेवलपर्स कॉन्फ़रेन्स में भी भाग लिया।

केंद्रीय हिंदी संस्थान का 'हिंदी सेवी सम्मान' समारोह

30 मई, 2017 को केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा द्वारा वर्ष 2015 के 'हिंदी सेवी सम्मान' प्रदान करने के लिए राष्ट्रपति भवन में भव्य समारोह का आयोजन किया गया, जिसमें मुख्य अतिथि भारत के पूर्व राष्ट्रपति माननीय श्री प्रणब मुखर्जी के हाथों भारत और विदेश के 26 हिंदी सेवियों को हिंदी के क्षेत्र में उनके उल्लेखनीय कार्य हेतु सम्मानित किया गया। समारोह में मानव संसाधन विकास मंत्री, श्री प्रकाश जावड़ेकर तथा अन्य गणमान्य अतिथि उपस्थित थे।

संस्थान द्वारा हिंदी के उन्नयन, विकास एवं प्रचार–प्रसार के लिए उत्कृष्ट कार्य करनेवाले 21 भारतीय तथा 5 भारतेत्तर हिंदी विद्वानों को निर्धारित 12 पुरस्कार श्रेणियों में सम्मानित किया गया। इसके अंतर्गत प्रो. एस. शेषारत्नम् (विशाखापट्टनम), प्रो. हरमहेन्द्र सिंह बेदी, डॉ. एम. गोविन्द राजन (चेन्नई), प्रो. एच. सुबदनी देवी (मणिपुर), श्री बलदेव भाई शर्मा (गाजियाबाद), श्री राहुल देव (हरियाणा), डॉ. गिरीश चन्द्र सक्सैना (आगरा), डॉ. फणी भूषण दास (बिहार), प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित (लखनऊ), श्रीमती चंद्रकांता (हरियाणा), श्रीमती चित्रा मुद्गल (दिल्ली), डॉ. जयप्रकाश कर्दम (दिल्ली), प्रो. ताकेशि फुजिइ (जापान), प्रो. गाब्रिएला निक इलिएवा (न्यू यॉर्क), डॉ. पुष्पिता अवस्थी (नीदरलैंड), डॉ. पद्मेश गुप्त (लंदन), डॉ. बी.आर. छीपा (राजस्थान), श्री दयाप्रकाश सिन्हा (दिल्ली), श्री श्रीधर गोविन्द पराड़कर (ग्वालियर), डॉ. श्री ए. रंजन सुरिदेव (बिहार), प्रो. नित्यानांद पाण्डेय (असम), श्री जगदीश प्रसाद सिंघल (राजस्थान), प्रो. शिवदत्त शर्मा (उत्तराखंड) तथा अशोक कुमार शर्मा (राजस्थान) को सम्मानित किया गया।

विश्व हिंदी समाचार – अंकः 39, सितंबर 2017

एच.एस.सी. परीक्षा में एक मॉरीशसीय छात्रा हिंदी विषय में विश्व में अव्वल

2016 के कैम्ब्रिज हायर स्कूल सर्टिफिकेट (12वीं) की परीक्षा में मॉरीशस के शर्मा जगदम्बी स्टेट सेकंडरी स्कूल की छात्रा निवेदिता रामी केरिया को पूरे विश्व में हिंदी विषय के लिए सबसे अधिक अंक प्राप्त हुए। उल्लेखनीय है कि कैम्ब्रिज की ये परीक्षाएँ इंग्लैंड और मॉरीशस सहित विश्व के अनेक देशों में आयोजित की जाती हैं, जहाँ माध्यमिक स्तर की पढ़ाई कैम्ब्रिज प्रणाली से होती है। इस उपलक्ष्य में 13 जुलाई, 2017 को मॉरीशस विश्वविद्यालय के पॉल ओक्ताव्ये ऑडिटोरियम, रेज्वी में आयोजित समारोह में निवेदिता रामी केरिया को पुरस्कृत किया गया। इस अवसर पर उसने कहा 'हिंदी केवल फ़िल्मों से सीखी नहीं जा सकती, वह अन्य दूसरे विषयों की तरह है। मैं सदैव हिंदी के प्रति समर्पित रहूँगी।' निवेदिता को इस विशेष उपलब्धि के लिए विश्व हिंदी सचिवालय तथा समस्त हिंदी जगत् की ओर से बधाई तथा उज्ज्वल भविष्य की हार्दिक शुभकामनाएँ।

'ब्रिटेन में हिंदी के 27 वर्ष' विषय पर चर्चा

7 सितंबर, 2017 को हाउस ऑव लोर्ड्स, लंदन में वातायन द्वारा 'ब्रिटेन में हिंदी के 27 वर्ष' विषय पर चर्चा का आयोजन किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता लेखक एवं बी.बी.सी. वर्ल्ड सर्विस के प्रमुख श्री कैलाश बुधवार ने की, जिन्होंने ब्रिटेन में डॉ. पद्मेश का हिंदी के प्रति योगदान का उल्लेख किया। वातायन की संस्थापक और लेखिका, दिव्या माथुर ने कार्यक्रम का परिचय दिया। कृति यू.के. की संस्थापक तितिक्षा शाह ने डॉ. पद्मेश के निजी और व्यावसायिक–करियर में उनके व्यवहार पर बात की। वेल्स से कवि डॉ. निखिल कौशिक ने डॉ. पद्मेश के यू.के. में शुरुआती दिनों की यादें ताज़ा कीं, तो डॉ. के.के. श्रीवास्तव ने उनकी कविता पर बात की। वाणी प्रकाशन से श्री अरुण माहेश्वरी ने डॉ. पद्मेश की कविताओं को प्रगतिशील लेखन का प्रतीक बताया। विद्वान डॉ. दाउजी गुप्त ने उन विभिन्न तथ्यों का उल्लेख किया, जिनसे डॉ. पद्मेश प्रभावित हुए। वातायन के अध्यक्ष और निदेशक मीरा कौशिक ओबाई ने डॉ. पद्मेश का ब्रिटेन में हिंदी साहित्य के प्रति योगदान को व्यक्त किया। डॉ. पद्मेश ने ब्रिटेन में हिंदी आंदोलन के निर्माण, पुरवाई का प्रकाशन, ब्रिटेन, यूरोप और रूस में हिंदी छात्रों हेतु हिंदी ज्ञान

प्रतियोगिता, कवि–सम्मेलन आदि में अपनी भूमिका के बारे में बताया तथा कविता–पाठ किया। साथ–साथ उन्होंने ब्रिटेन के विश्वविद्यालयों की साझेदारी में एक वार्षिक भारतीय साहित्य एवं सांस्कृतिक उत्सव की घोषणा की। कार्यक्रम में ब्रिटेन, यूरोप, भारत और अमेरिका से कई अतिथियों की उपस्थिति रही। धन्यवाद–ज्ञापन शिखा वार्ष्णेय ने किया।

लंदन में अंतरराष्ट्रीय विराट कवि–सम्मेलन, 2017

23 अगस्त–3 सितंबर, 2017 को भारतीय उच्चायोग और आई.सी.सी.आर. के तत्वावधान में इंडियन कम्यूनिटी सेंटर, बेलफास्ट द्वारा स्थानीय हिंदू मंदिर के प्रांगण सहित ब्रिटेन के विभिन्न भागों में अंतरराष्ट्रीय विराट कवि–सम्मेलन का आयोजन किया गया। भोपाल से श्री पवन जैन ने समसामयिक विषयों : आतंकवाद, खेल, पुलिस के जीवन आदि पर कविता–पाठ किया, क्रांति धरा मेरठ से आई श्रीमती तुषा शर्मा ने श्रृंगार और प्रेम के गीत गाए, रोहतक के डॉ. जगवीर राठी ने हास्य–व्यंग्य और हरियाणा के लोकजीवन पर आधारित कविताएँ पढ़ीं, दिल्ली के श्री चरणजीत चरण ने राष्ट्र चेतना के गीत गाए, उज्जैन से आए श्री दिनेश दिग्गज ने हास्य–व्यंग्य की क्षणिकाएँ सुनाईं तथा कोलकाता से श्रीमती ज़रीना ख़ातून ने उर्दू में गज़ल गान किया। कवियों ने बेलफास्ट के अतिरिक्त स्लाव, स्वीडन, बर्मिंघम, मैनचेस्टर, लिवरपूल, कार्डिफ, इंडिया हाउस, साउथ हॉल (मिडलसेक्स) में आयोजित कवि–सम्मेलनों में भी अपनी उत्कृष्ट रचनाओं का पाठ किया। कार्यक्रम के संयोजक श्री के.बी.एल. सक्सेना और श्री तरुण कुमार रहे।

गूगल द्वारा कार्यशाला का आयोजन

14 जुलाई, 2017 को लखनऊ में गूगल ने हिंदी भाषा में अपनी सेवाओं को बेहतर बनाने के उद्देश्य से एक कार्यशाला का आयोजन किया। समारोह में हिंदी दैनिक 'हिंदुस्तान' के मैनपुरी संस्करण के ब्यूरो चीफ श्री हृदयेश सिंह ने क्षेत्रीय भाषाओं में उपलब्ध जानकारियों को गूगल पर लाने में आ रहीं चुनौतियों पर बात करते हुए कहा कि हिंदी भाषा में गूगल के पास सीमित सामग्री है। इसलिए क्षेत्रीय साहित्य, संस्कृति, भाषा, तकनीक आदि को गूगल पर लाना होगा तथा उन्होंने कई सुझाव दिए। साथ–साथ गूगल से जुड़े गैरी ने ब्लॉग और वेबसाइट को गूगल रैंकिंग में शामिल कराने के तरीकों के बारे में जानकारी दी। समारोह में देश भर के हिंदी ब्लॉगर और इंटरनेट पर हिंदी भाषा के जानकारों ने भाग लिया।

विश्व हिंदी सचिवालय द्वारा आयोजित त्रैमासिक कार्यक्रम विचार–मंचः 'मोहन राकेश तथा 'आधे–अधूरे' का शिक्षण'

27 जुलाई, 2017 को स्वराज भवन, लालमाटी, मॉरीशस में विश्व हिंदी सचिवालय, शिक्षा व मानव संसाधन, तृतीयक शिक्षा व वैज्ञानिक अनुसंधान मंत्रालय तथा भारतीय उच्चायोग, मॉरीशस के संयुक्त तत्वावधान में 'मोहन राकेश तथा 'आधे–अधूरे' का शिक्षण' विषय पर विचार–मंच का आयोजन किया गया। इस अवसर पर महात्मा गांधी संस्थान के पूर्व एसोसिएट प्रो. डॉ. संयुक्ता भोवन–रामसारा मुख्य वक्ता रहीं। शिक्षा व मानव संसाधन, तृतीयक शिक्षा व वैज्ञानिक अनुसंधान मंत्रालय के प्रबंधक, श्री राजीव कुमार ओखोजी, कला एवं संस्कृति मंत्रालय के कला अधिकारी, श्री राकेश श्रीकिसुन, मणिलाल डॉक्टर एस.एस.एस. के हिंदी शिक्षक, श्री लेखराजसिंह पांडोही तथा बी.ए. हिंदी की छात्रा सुश्री प्रियंका सुखलाल ने भी कार्यक्रम में अपने वक्तव्य दिए। कार्यक्रम के अंतर्गत 'नाट्य दीप' द्वारा 'आधे–अधूरे' नाटक के प्रारंभिक और 'नव द्वीप नाट्यशाला' द्वारा अंतिम भाग का मंचन हुआ तथा प्रो. संयुक्ता भोवन–रामसारा ने आधे–अधूरे के शिक्षण पर अपना शोधपूर्ण वक्तव्य प्रस्तुत किया। अंत में, परिचर्चा–सत्र के दौरान उपस्थित श्रोताओं ने अपने विचार दिए।

– संपादक मंडल

श्रद्धांजलि

- श्रद्धांजलि 2017 - विश्व हिंदी सचिवालय
- महाकवि गुलाब खंडेलवाल - प्रतिभा खंडेलवाल

विश्व हिंदी सचिवालय की ओर से वर्ष 2017 में हिंदी संसार के दिवंगत महानुभावों को भावपूर्ण श्रद्धांजलि

प्रो. बालेन्दु शेखर तिवारी

19 फ़रवरी, 2017 को हिंदी के विश्रुत व्यंग्यकर्मी, व्यंग्य समीक्षक तथा प्राध्यापक प्रो. बालेन्दु शेखर तिवारी का 68 वर्ष की आयु में निधन हो गया। आपका जन्म 29 अक्टूबर, 1948 को भोजपुर के कायम नगर में हुआ। आपने सन् 1975 नें पटना विश्वविद्यालय, बिहार से 'हिंदी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य' विषय पर पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की और सन् 1983 में राँची विश्वविद्यालय से आपने 'हिंदी व्यंग्य–लेखन का शैलीवैज्ञानिक विश्लेषण' विषय पर डी. लिट. की उपाधि प्राप्त की। सन् 1975 में ही आप राँची विश्वविद्यालय में हिंदी प्राध्यापक के पद पर नियुक्त हुए तथा सन् 2010 में प्रोफ़ेसर के पद से सेवानिवृत्त हुए। आपने व्यंग्य–लेखन की सभी विधाओं – व्यंग्य, लघु व्यंग्य, कविता, नाटक, व्यंग्यालोचन, पत्रकारिता में अमूल्य योगदान दिया। आपने 60 से अधिक पुस्तकों की रचना की, जिनमें 1978 में 'हिंदी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य', 1988 में 'हिंदी व्यंग्य के प्रतिमान', 1997 में 'व्यंग्यालोचन के पारद्वार', 2015 में 'हिंदी हास्य–व्यंग्य कोश', 2016 में 'नमनोस्मरण', 2017 में 'अनुवाद–शास्त्र' आदि शामिल हैं। आपको 1986–1987 में 'शिवपूजन सहाय पुरस्कार', 1993 में 'सर्वश्रेष्ठ आलोचक का ताम्रपत्र', 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र राष्ट्रीय शिखर सम्मान', 1998 में 'राधा देवी स्मृति पुरस्कार', 1998 में 'लोकमान्य साहित्य सम्मान', 1998 में 'जगन्नाथ राय शर्मा स्मृति सम्मान', 2000 में 'राष्ट्रीय हिंदी सेवी सहस्त्राब्दी सम्मान', 2002 में 'साहित्य शीर्ष सम्मान', 2005 में 'व्यंग्य शिखर सम्मान', 2008 में 'व्यंग्यश्री सम्मान' और 2009 में 'रचना सम्मान' से विभूषित किया गया।

श्री दिमलाला मोहित

16 जून, 2017 को मॉरीशस के प्रसिद्ध भोजपुरी साहित्यकार श्री दिमलाला मोहित का 72 वर्ष की आयु में निधन हो गया। आपने एस.सी., जी.सी.ई., उत्तमा (हिंदी), कोविद (संस्कृत), आडल्ट लिटेरेरी कोर्स, हिंदी लेखक कोर्स और सर्टिफ़िकेट इन एजुकेशन की पढ़ाई की। आप 1964 में सरकारी हिंदी अध्यापक और 1986 में डेप्यूटी हेड टीचर के रूप में काम कर चुके हैं और एम.बी.सी. कार्यक्रम 'भोजपुरी बहार' के निर्णायक रह चुके हैं। आपकी रचनाओं में मॉरीशस की भोजपुरी में प्रचलित लोकोक्तियाँ, मुहावरे, गीत, पहेलियाँ और कहानियाँ हैं। आपने 2003 में भोजपुरी के 'हीरा–मोती' (भाग 3, भाग 7 तथा वोल्यूम 2) की रचना की। 2010 में भारत की भोजपुरी पत्रिकाओं में आपके लेख शामिल हैं। आपने अनेकानेक सम्मेलनों एवं कार्यशालाओं में सक्रिय रूप से भाग लिया तथा भोजपुरी और हिंदी भाषाओं में स्थानीय टेलीविज़न पर अनेक कार्यक्रमों में भी भाग लिया। आपको भोजपुरी पुस्तक 'विदेशी छात्र की सर्वश्रेष्ठ रचना' के लिए ऑल इंडिया फ़ोल्क–कल्चर रिसर्च इंस्टिट्यूट, यू.पी. द्वारा मान–पत्र, 'मोका–फ़्लाक ज़िला परिषद्' द्वारा सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों के लिए मान–पत्र, पोस्त दे फ्लाक, पेरेंट टीचर एसोसिएशन द्वारा बच्चों के हित में कार्य हेतु मान–पत्र, मॉरीशस में हुए

'अंतरराष्ट्रीय भोजपुरी सम्मेलन' में 'अंतरराष्ट्रीय भोजपुरी अवार्ड' और 2006 में हिंदी प्रचारिणी सभा द्वारा 'हिंदी मान–पत्र' से सम्मानित किया गया। ह्यूमन सर्विस ट्रस्ट द्वारा निबंध प्रतियोगिता के लिए आपको पुरस्कृत भी किया गया।

डॉ. मिथिलेश कुमारी मिश्र

10 अप्रैल, 2017 को हिंदी–संस्कृत की प्रख्यात साहित्यकार डॉ. मिथिलेश कुमारी मिश्र का पटना में निधन हो गया। हिंदी, संस्कृत व अंग्रेज़ी में महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटक व समीक्षा सहित हर विधा पर आपकी लेखनी चली। अपने जीवन काल में आपने 42 पुस्तकें लिखीं। हिंदी जगत् में महाकाव्य रचनेवाली आप प्रथम महिला रचनाकार हैं तथा हिंदी साहित्य की लेखिकाओं में सबसे कम उम्र में डी.लिट. की उपाधि प्राप्त करने का रिकॉर्ड भी आपके नाम है। थाई रामायण का विश्व में पहला पद्यानुवाद करने पर समारोह में आपको सम्मानित किया था। आपके द्वारा अनूदित प्राकृत रचना 'गौडवहो' का हिंदी संस्करण लखनऊ विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में समाहित है। पटना की 135 वर्ष पुरानी संस्था, संस्कृत संजीवन समाज की महासचिव सहित संस्कृत शोध त्रैमासिकी 'संस्कृत संजीवनम्' की संपादिका भी थीं। आप हिंदी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद की स्थायी सदस्य रहीं तथा कानपुर से निकलनेवाले एकमात्र संस्कृत समाचार–पत्र 'नवप्रभावतम्' के संपादन मंडल की सदस्या भी थीं। इसके अतिरिक्त आपने कई ग्रंथों का संपादन तथा अनुवाद किया तथा अनेक साहित्यिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित व पुरस्कृत भी हुईं।

श्री सी. नारायण रेड्डी

12 जून, 2017 को प्रसिद्ध भारतीय, तेलुगू तथा उर्दू साहित्यकार श्री सी. नारायण रेड्डी का 85 वर्ष की आयु में निधन हो गया। आपका जन्म 29 जुलाई, 1931 को हैदराबाद, तेलंगाना में हुआ था। माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद आप 1949 में उस्मानिया विश्वविद्यालय में पढ़ाई करने गए। 1954 में आपने एम.ए. की डिग्री प्राप्त की तथा आप कॉलिज के व्याख्याता के पद पर नियुक्त हुए। 1962 में पी.एच.डी. प्राप्त करने के बाद 1976 में आपको प्रोफ़ेसर के पद पर नियुक्त किया गया। अगस्त 1997 में आपको भारतीय सांसद के राज्य सभा में नामांकित किया गया। 2015 को आपको 'साहित्य अकादमी महत्तर सदस्यता' प्राप्त हुई। आपकी प्रमुख रचनाओं में 'विश्वंभरा', 'नागार्जुन सागरम', 'विश्वहीति', 'भूमिका' आदि शामिल हैं। इसके अतिरिक्त आपने फिल्मी जगत् में भी प्रसिद्धि पाई। आपने कई नाटक तथा 3000 से अधिक गाने भी लिखे। 1988 में आपको श्री राज्य लक्ष्मी फाउंडेशन द्वारा 'राज लक्ष्मी पुरस्कार', 1988 में 'ज्ञानपीठ पुरस्कार', 1982 में 'सोवियत लेंड नेहरू पुरस्कार', 1978 में आंध्र विश्वविद्यालय द्वारा 'कला प्रपूर्णा अवार्ड', 1973 में आपको अपने काव्य–संग्रह 'मंतलू मानवुडु' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार, पोट्टी श्रीरमुलू तेलुगू विश्वविद्यालय द्वारा 'विशिष्ट पुरस्कार', भारत सरकार द्वारा 1977 में 'पद्मश्री' तथा 1992 में 'पद्म भूषण' से सम्मानित किया गया।

श्री विनोद खन्ना

27 अप्रैल, 2017 को कैंसर से पीड़ित दिग्गज फ़िल्म अभिनेता, फ़िल्म निर्माता तथा राजनीतिज्ञ श्री विनोद खन्ना का 70 वर्ष की आयु में निधन हो गया। आपका जन्म 6 अक्टूबर, 1946 को पेशावर, ब्रितानी भारत (अभी पाकिस्तान) में हुआ था। आपकी प्रारंभिक शिक्षा सेंट मेरी स्कूल तथा 1957 में दिल्ली पब्लिक स्कूल में हुई। 1960 के बाद आपकी स्कूली शिक्षा नासिक के बोर्डिंग स्कूल में हुई। आपने सिद्धेहम कॉलिज से वाणिज्य में स्नातक की उपाधि प्राप्त की। श्री विनोद खन्ना एक सक्रिय राजनीतिज्ञ तथा 1998–2008 और

2014–2017 में पंजाब के गुरदासपुर चुनाव क्षेत्र के संसद सदस्य रहे। जुलाई 2002 में भारत के पूर्व प्रधान मंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी के मंत्रिमंडल में आप संस्कृति तथा पर्यटन मंत्री बनाए गए तथा 6 माह पश्चात् आपको महत्त्वपूर्णविदेश मामलों के मंत्रालय में राज्य मंत्री बनाया गया। आपने अपने 4 दशक लंबे फ़िल्म कैरियर में लगभग 150 फ़िल्मों में अभिनय किया। 1982–1986 तक आप आध्यात्मिक गुरु रजनीश ओशो के अनुगामी बने तथा 5 वर्षों के अंतराल में आप पर्दे पर पुनः आए। आपने अपनी फ़िल्मी सफर का आरंभ 1968 में सुनील दत्त की फ़िल्म 'मन का मीत' में खलनायक के किरदार से किया। 'पूरब और पश्चिम', 'मेरा गाँव मेरा देश', 'मुकद्दर का सिकंदर', 'परवरिश', 'गद्दार', 'सत्यमेव जयते', 'दबंग', 'कुरबानी', 'इमतिहान', 'अचानक', 'अमर अकबर एंथनी' आदि फ़िल्मों में आपकी भूमिका दमदार रही है। 2007 में ज़ी सिने आवर्ड द्वारा 'लाइफ़टाइम अचीवमेंट', 2005 में स्टारडस्ट आवर्ड द्वारा 'रोल मॉडल फ़ॉर द ईयर', 1999 में 3 दशक से हिंदी सिनेमा में योगदान के लिए फ़िल्मफ़ेयर का 'लाइफ़टाइम अचीवमेंट आवर्ड', 1981 में 'कुरबानी' फ़िल्म हेतु फ़िल्मफ़ेयर में मनोनीत, 1979 में 'मुकद्दर का सिकंदर' के लिए फ़िल्मफ़ेयर का 'बेस्ट सपोर्टिंग एक्टर', 1977 में फ़िल्मफ़ेयर द्वारा 'हेरा फेरी' फ़िल्म के लिए 'बेस्ट सपोर्टिंग एक्टर' हेतु मनोनीत तथा 1975 में 'हाथ की सफाई' फ़िल्म हेतु फ़िल्मफ़ेयर का बेस्ट सपोर्टिंग एक्टर आवर्ड' से सम्मानित किया गया।

श्रीमती रीमा लागू

18 मई, 2017 को प्रख्यात अभिनेत्री श्रीमती रीमा लागू का 59 वर्ष जी आयु में निधन हो गया। आपका जन्म 21 जून, 1958 को मुंबई में हुआ था। आप हजुरपगा उच्च माध्यमिक विद्यालय की विद्यार्थिनी रहीं तथा पढ़ाई के बाद आपने पेशेवर तौर पर अभिनय शुरू किया। आप अंत समय तक अभिनय के क्षेत्र में रहीं और स्टार प्लस के धारावाहिक 'नामकरण' में काम कर रही थीं। इसके अतिरिक्त आप मराठी रंगमंच और फ़िल्मों में भी काम कर रही थीं। 1979 में फ़िल्म 'सिंहासन' से आपने मराठी सिनेमा में पदार्पण किया। इसके बाद सन् 1980 में आपने 'कलयुग' चलचित्र में सहायक अभिनेत्री के रूप में हिंदी सिनेमा में कदम रखा। आपने 100 से अधिक फ़िल्मों में काम किया। आप 'हम आपके है कौन', 'हम साथ–साथ है' और 'कल हो न हो' जैसे चलचित्रों में उत्कृष्ट अभिनय के लिए जानी जाती हैं। आप फ़िल्मों में माँ के रूप में निभाए गए किरदारों के लिए प्रसिद्ध हैं। फ़िल्म 'मैंने प्यार किया' में सलमान खान की, 'वास्तव' में संजय दत्त की, 'कल हो न हो' में शाह रुख खान की और 'कुछ कुछ होता है' में काजोल की माँ का किरदार निभा चुकी हैं। आपने 'तू तू मैं मैं' और 'श्रीमान श्रीमती' जैसे लोकप्रिय टी.वी. धारावाहिकों में भी अभिनय किया। 2002 में 'रेशमगढ़' फ़िल्म के लिए आपको सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री हेतु 'महाराष्ट्र राज्य फ़िल्म पुरस्कार' तथा 2000 में सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री हेतु 'भारतीय टेली पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। आपको 1999 में 'वास्तवः द रियलिटि', 1994 में 'हम आपके है कौन', 1990 में 'आशिकी' और 1989 में 'मैंने प्यार किया' चलचित्रों के लिए सर्वश्रेष्ठ सहायक अभिनेत्री हेतु 'फ़िल्मफ़ेयर पुरस्कार' के लिए नामांकित किया गया।

डॉ. मधु धवन

26 जून, 2017 को वरिष्ठ साहित्यकार तथा शिक्षाविद् डॉ. मधु धवन का 65 वर्ष की आयु में निधन हो गया। आपका जन्म 22 फरवरी, 1952 को हुआ था। अन्नमलै विश्वविद्यालय से डिप्लोमा इन प्रोड्यूसर, 1984 में बंगलौर विश्वविद्यालय से पी.एच.डी. और 1977 में पी.जी. डिग्री तथा एम.ए. की उपाधि प्राप्त की। आपने दक्षिण भारत में हिंदी पाठ्यक्रम निर्माण

में अभूतपूर्व योगदान दिया और अनेक पत्रिकाओं द्वारा हिंदी भाषा को बढ़ावा दिया। तमिलनाडु के स्कूल और कॉलिजों में कैरियर ऑरीएन्टड पाठ्यक्रम बनाया। नाटकों के माध्यम से आपने दक्षिण भारत में बोलचाल की हिंदी को बढ़ावा दिया। आपने तमिलनाडु हिंदी साहित्य अकादमी तथा तमिलनाडु मल्टी लिंग्वल विमेन राइटर्स एसोसिएशन की स्थापना की। आप 'मेरी रक्षा' समाचार–पत्र तथा त्रैमासिक 'तमिलनाडु साहित्य बुलेटिन' की संपादक रहीं। आप स्टेला मैरिस कॉलिज में हिंदी विभागाध्यक्षा रहीं। इसके साथ–साथ दक्षिण भारत में हिंदी अध्ययन–अध्यापन की समस्याओं के निवारणार्थ स्कूल शिक्षकों के लिए लगभग 200 कार्यशालाएँ चलाती थीं। 1994 में 'हुतात्मा', 1999 में 'भारत ललत', 1999 में 'कारगिल की ललकार', 2003 में 'मृतमए', 2004 में 'धरपर खिला दिव्य फूल' जैसे महाकाव्य, 'स्वर्णिम भारत', 'तुम बिन बदल गए' जैसे कविता–संग्रह, 2014 में 'आज की पुकार', 1999 में 'भारत कहाँ जा रहा है', 1997 में 'त्रास' और 'भगत सिंह', 1993 में 'भूल', 1992 में 'मैंने खूब चाहा' जैसे नाटक, 'बाल किशोर एकांकी', 2004 में 'साइबर माँ', 'मैं सृष्टि की आत्मा हूँ', 'प्यार भरा पंछी–कल्की', 2002 में 'शिखरों से ऊँचा', 2000 में 'शक्ति पुंज' और 'महा सागर के शंख', 1999 में 'तुफानी झंझा का दिया', 'आकांक्षा', 'करवट लेता वक्त' और 'जुर्माना', 1997 में 'प्यार भरे दादाजी', 2002 में 'उस मोड़ पर' जैसे उपन्यास, 'झरते अश्रु', 'अमृत बूंदें' तथा 'खौफ़' जैसी लघुकथाएँ तथा 'पत्रकारिता एक परिचय' आदि आपकी प्रमुख कृतियों में शामिल हैं। आपको 10वें विश्व हिंदी सम्मेलन के दौरान भारत सरकार द्वारा 'विश्व हिंदी सम्मान 2015' से सम्मानित किया गया। आपको 2013 में जबलपुर में 'कादंबरी पुरस्कार', 2012 में साहित्य अकादमी भोपाल द्वारा 'मुक्ति बोध', 2003 में वाराणसी में 'महादेवी वर्मा आवर्ड' तथा इलाहाबाद में 'रत्न', 'इंटरनेट का माऊस' कहानी–संग्रह के लिए मध्य प्रदेश सरकार द्वारा 'राष्ट्रीय सम्मान', 2008 में तीसरे हिंदी भाषा कुंभ में 'अति विशिष्ट साहित्य सेवी सम्मान', 2002 में साहित्यानुशीलन समिति द्वारा हिंदी के क्षेत्र में साहित्यिक योगदान हेतु सम्मान, 2001 में अखिल भारतीय मानवाधिकार संगठन, एम.पी. द्वारा समाज के प्रति योगदान के लिए सम्मान, 2001 में 'चिंतामणि सम्मान', 2001 में 'भारतीय आवर्ड', 2000 में दिल्ली के मिलेनियम विश्व हिंदी सम्मेलन में सम्मान, बिहार के विक्रमशिला विश्वविद्यालय द्वारा 'विद्यासागर' सम्मान आदि से सम्मानित किया गया।

श्री चन्द्रकान्त देवताले

14 अगस्त, 2017 को प्रसिद्ध कवि श्री चन्द्रकान्त देवताले का 80 वर्ष की आयु में निधन हो गया। आपका जन्म 7 नवंबर, 1936 को मध्य प्रदेश के बैतूल ज़िले के जौल खेड़ा में हुआ था। आपने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा इंदौर से शुरू की। आपने हिंदी में एम.ए. करने के पश्चात सागर यूनिवर्सिटी से मुक्तिबोध पर पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। आपने इंदौर में एक कॉलिज में शिक्षक के रूप में कार्य किया तथा सेवानिवृत्त होकर स्वतंत्र लेखन से जुड़ गए। देवताले साठोत्तरी हिंदी कविता के एक प्रमुख हस्ताक्षर माने जाते हैं। आपकी प्रमुख कृतियों में 'रोशनी के मैदान के उस तरफ़', 'पत्थर फेंक रहा हूँ', 'हड्डियों में छिपे ज्वार', 'दीवारों पर खून से', 'लकड़बग्घा हँस रहा है', 'हर चीज़ आग में बताई गई थी', 'भूखंड तप रहा है', 'सुकरात का घाव', 'पत्थर की बैंच', 'इतनी पत्थर रोशनी', 'उसके सपने', 'बदला बेहद महंगा सौदा' आदि शामिल हैं। आपने 'मुक्तिबोध: कविता और जीवन विवेक' जैसी आलोचना, 'पिसाटी का बुर्ज' का मराठी से हिंदी अनुवाद तथा संत तुकाराम की रचनाओं का अनुवाद, 'दूसरे–दूसरे आकाश 'डबरे पर सूरज का बिम्ब' का संपादन भी किया। आपको 2011 में 'कविता समय सम्मान', 2003 में 'भवभूमि अलंकरण', 2002 में 'पहल

सम्मान', 1986 में 'मध्य प्रदेश शासन शिखर सम्मान', 'माखनलाल चतुर्वेदी कविता पुरस्कार' 'सृजन भारती सम्मान', 'मैथिलीशरण गुप्त सम्मान' और 'साहित्य अकादमी सम्मान' प्राप्त हुए। भारतीय ज्ञानपीठ के निदेशक लीलाधर मंडलोई, विष्णु खरे, विष्णु नागर, मंगलेश डबराल, कवि कुमार अंबुज, कवि बहादुर पटेल, कवि निरंजन श्रोत्रिय समेत कई लेखकों ने श्री चन्द्रकान्त देवताले के निधन पर गहरा दुख व्यक्त किया।

श्री अजीत कुमार

18 जुलाई, 2017 को हिंदी के प्रसिद्ध कवि व गद्यकार श्री अजीत कुमार का 84 वर्ष की आयु में निधन हो गया। आपका जन्म 9 जून, 1933 को लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत में हुआ। आपका पूरा नाम श्री अजित शंकर चौधरी था। आप विख्यात कवयित्री श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिन्हा के बेटे थे। आपने कानपुर, लखनऊ और बाद में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त की। आपने कुछ समय डी.ए.वी. कॉलिज, कानपुर में अध्यापन–कार्य किया। बाद में दिल्ली विश्वविद्यालय के किरोड़ीमल महाविद्यालय में कई वर्षों तक अध्यापन कार्य करके सेवानिवृत्त हुए। आपने लगभग 6 दशकों की अपनी साहित्यिक सक्रियता से हिंदी जगत् को यथेष्ट समृद्ध किया। आपकी रचनाओं में 'अकेले कंठ की पुकार', 'अंकित होने दो', 'ये फूल नहीं', 'घरौंदा', 'हिरनी के लिए', 'घोंघे' और 'ऊसर' जैसे कविता–संग्रह, 'दूरियाँ' उपन्यास, 'राहुल के जूते' तथा 'छाता और चारपाई' जैसे कहानी–संग्रह, 'दूर वन में', 'सफ़री झोले में', 'निकट मन में', 'यहाँ से कहीं भी', 'अँधेरे में जुगनू', 'सफरी झोले में कुछ और' तथा 'जिनके संग जिया' जैसे संस्मरण और यात्रा–वृत्त, 'इधर की हिंदी कविता', 'कविता का जीवित संसार' और 'कविवर बच्चन के सर्ग' जैसी आलोचना पुस्तकें, 9 खंडों में 'बच्चन रचनावली', 'सुमित्रा कुमारी सिन्हा रचनावली', 'बच्चन निकट से', 'बच्चन के चुने हुए पत्र', 'हिंदी की प्रतिनिधि श्रेष्ठ कविताएँ' तथा 'गुरुवर बच्चन से दूर' आदि शामिल हैं। इसके अतिरिक्त आपने श्री देवीशंकर अवस्थी के साथ 'कविताएँ 1954' का संपादन किया।

श्री आत्म प्रकाश शुक्ल

26 जुलाई, 2017 को कवि श्री आत्म प्रकाश शुक्ल का निधन हो गया। आपका जन्म वर्ष 1939 में कायमगंज के गाँव में हुआ। आप अलीगंज स्थित डी.ए.वी. कॉलिज में 4 दशक तक अंग्रेज़ी के प्रवक्ता एवं प्रधानाचार्य रहे। शुरू से ही हिंदी साहित्य में आपकी रुचि रही। आपने छंद–व्यंग्य के माध्यम से समाज को नई दिशा देने का प्रयास किया। आपकी रचनाओं में 3 पुस्तकें प्रकाशित हुईं, जिनमें 'आत्म की धुन न्यारी', 'नहीं मरूँगा मैं' और 'आत्म प्रकाश संपूर्ण' शामिल हैं।

श्रीमती स्नेहमयी चौधरी

29 जुलाई, 2017 को कवयित्री श्रीमती स्नेहमयी चौधरी का 82 वर्ष की आयु में निधन हो गया। आपका जन्म 9 मई, 1935 को उत्तर प्रदेश के उन्नाव ज़िले के मौरावां गाँव में हुआ था। आप जानकी देवी महाविद्यालय, दिल्ली में रीडर के पद पर नियुक्त थीं। सेवानिवृत्ति के बाद आप स्वतंत्र लेखन कर रही थीं। आपकी साहित्यिक कृतियों में 'पूरा गलत पाठ', 'चौतरफ़ा लड़ाई', 'हड़कंप', 'पहचान', 'कैद', 'अपनी ही औरत', 'एक इंटरव्यू', 'घर', 'मेरा अपना कोना', 'लड़की' आदि प्रमुख हैं। आप स्व. लेखक श्री अजीत कुमार की पत्नी थीं।

– संपादक मंडल

महाकवि गुलाब खंडेलवाल

(21 फरवरी, 1924 - 2 जुलाई, 2017)

– प्रतिभा खंडेलवाल

विदेश में रहकर हिंदी की निरंतर सेवा करनेवाले हिंदी के विशिष्ट कवि श्री गुलाब खंडेलवाल का 2 जुलाई, 2017 को अमेरिका में 93 वर्ष की आयु में देहावसान हो गया। वे लगभग 35 वर्ष अपने ज्येष्ठ पुत्र तथा पुत्र–वधु डॉ. आनंद तथा डॉ. शोभा खंडेलवाल के साथ अमेरिका में रहे। कालान्तर में प्रतापगढ़, उ.प्र. में कुछ वर्ष बिताने के पश्चात गुलाब जी अमेरिका के ओहायो प्रदेश में निवास करने लगे। उनका हृदय भारत में ही बसता था और उन्होंने अपने आसपास के परिवेश को भारतीयता के रंग में रंग दिया था। उच्च कोटि के साहित्य का सृजन करने के साथ–साथ उन्होंने विदेश में हिंदी के प्रचार–प्रसार में विशेष योगदान दिया। जीवन के अंतिम दिनों तक वे साहित्य की रचना में लीन रहे।

शिक्षा

श्री गुलाब खंडेलवाल का जन्म 21 फरवरी, 1924 को नवलगढ़ जिला, झुंझनू, राजस्थान में हुआ। उनकी प्रारंभिक शिक्षा बिहार के 'गया' नगर में हुई तथा काशी हिंदू विश्वविद्यालय से उन्होंने सन् 1943 ई. में बी.ए. किया। काशी के छात्र–जीवन में ही उनका संपर्क सर्वश्री बेढब बनारस, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, बाबू संपूर्णानंद, बाबू श्यामसुन्दर दास, पं. रामचंद्र शुक्ल, रायकृष्णदासजी, पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पं. नंददुलारे बाजपेयी, पं. कमलापति त्रिपाठी, पं. सीताराम चतुर्वेदी, पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी आदि से हुआ, जिनसे उनके साहित्यिक संस्कार पल्लवित हुए।

कार्यक्षेत्र

वे 20 वर्षों से भी अधिक काल तक अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग के अध्यक्ष रहे। कोलकाता स्थित 'अर्चना' और पंडित मदनमोहन मालवीय द्वारा स्थापित भारती परिषद् के भी वे अध्यक्ष रहे। इसके अतिरिक्त वे 'अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति' के मुखपत्र 'विश्वा' के संपादक मण्डल के वरिष्ठतम सदस्य रहे।

साहित्यिक पृष्ठभूमि

सन् 1941 में, 17 वर्ष की आयु में उनकी पहली पुस्तक 'कविता' नाम से महाकवि निराला की भूमिका के साथ प्रकाशित हुई। तब से उनकी जीवनी, 2 गद्य नाटक और 60 से ऊपर काव्यग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें से कुछ 'डिजिटल लाइब्रेरी ऑव इंडिया' में digitalized किए गये हैं। इनका कवित्व सामर्थ्य एक ओर संस्कृत तो दूसरी ओर उर्दू के क्षितिज को छूता है।

रचनाएँ

उन्होंने हिंदी में महाकाव्य, खंडकाव्य, गीत, सौनेट, रुबाई (चतुष्पदियाँ), दोहा, संबोधि–गीत (odes), गड़ेरिये के गीत, प्रतीक–काव्य (Elgies), गाथा–काव्य (Lyrical Ballads), गीति–नाट्य(poetic drama), गज़ल, नयी शैली की कविता (मुक्त–छंद), मसनवी आदि के सफल प्रयोग किये हैं। उन्होंने इनमें से कई विधाओं का सूत्रपात किया है और कई को पुनर्जीवित किया है। इन सभी विधाओं पर उनकी लेखनी निर्बाध रूप से चली है।

ये सभी कविताएँ पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी द्वारा संपादित गुलाब–ग्रंथावली के पहले, दूसरे, तीसरे और चौथे खंड में संकलित हैं तथा जिनका परिवर्धित संस्करण आचार्य विश्वनाथसिंह द्वारा संपादित होकर वृहत्तर रूप में 7 खंडों में पुनः प्रकाशित हुआ है।

गुलाब जी ने एक हज़ार से ऊपर गेय गीतों द्वारा साहित्य से संगीत को जोड़ने के दुर्वह कार्य का संपादन करके हिंदी साहित्य की

बहुत बड़ी सेवा की है। यही नहीं, उनके गेय गीतों में 800 से ऊपर भक्ति–गीत हैं। उन्होंने सैकड़ों वर्षों से अवरुद्ध भक्ति–काव्य–धारा को आधुनिक काल के अनुरूप काव्य की वाणी देकर पुनः जीवित कर दिया है। इनमें से कई गीत विभिन्न रागों में पिरोकर भारत, कनाडा और अमेरिका में गाए गए हैं और अब भी गाए जा रहे हैं।

इसके अतिरिक्त, गुलाब जी ने 'गीत–वृन्दावन', 'सीता–वनवास' तथा 'गीत–रत्नावली' जैसे गीति–काव्यों की रचना करके राधा, सीता, और रत्नावली के जीवन की त्रासदी को भी नए रूप में प्रस्तुत किया है। 'गीत–वृन्दावन' और 'सीता–वनवास' के अनेक गीतों को विभिन्न गायकों द्वारा गाया गया है और मंच पर इनकी नृत्य–प्रस्तुति भी हुई है।

गुलाब जी ने लगभग 345 गज़लें लिखी हैं, जिनमें उन्होंने हिंदी में गज़लों की रचना करके उर्दू के स्वीकृत शब्दों के योग से गज़लों के अनुरूप भाषा का सफलतापूर्वक प्रयोग किया ।

उर्दू मसनवी की शैली में उनकी रचना 'प्रीत न करियो कोय', हिंदी के काव्य–साहित्य में एक नया आयाम जोड़ती है। इस मसनवी से वे उर्दू के प्रमुख मसनवी–लेखक मीर हसन और दयाशंकर 'नसीम' की श्रेणी में उसी प्रकार आ गए हैं, जिस प्रकार अपने भक्ति–गीतों की सुदीर्घ श्रृंखला द्वारा कबीर, सूर और तुलसी की परंपरा में उन्होंने अपना स्थान सुरक्षित करा लिया है ।

उन्होंने हिंदी और उर्दू के अलावा अंग्रेज़ी में भी मौलिक रचना की है। अपनी कुछ कविताओं के अंग्रेज़ी अनुवाद, 'The Selected Poems' (भूमिका–लेखक–कश्मीर के पूर्व राजकुमार डॉ. करण सिंह) द्वारा वे अमेरिका में भी ख्याति पा चुके थे। उनकी मौलिक अंग्रेज़ी कविताओं की पुस्तक 'The Evening Rose' ने उन्हें अंग्रेज़ी कवियों के बीच भी स्थापित कर दिया है । उनकी अंग्रेज़ी की नवीनतम पुस्तक 'Omar Khayyam and the Scholar' प्रकाशनाधीन है। वे हिंदी, उर्दू और अंग्रेज़ी में एक साथ प्रतिष्ठा पानेवाले हिंदी के प्रथम कवि हैं। सन् 2013 में प्रकाशित उनकी पुस्तक 'रवीन्द्रनाथः हिंदी के दर्पण में' हिंदी साहित्य में मील का पत्थर है। इसमें उन्होंने रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कुछ कविताओं का मूल बंगला से हिंदी में भावानुवाद किया है।

पुरस्कार

गुलाब जी की 8 पुस्तकें उत्तर प्रदेश, बिहार सरकार द्वारा तथा अन्य संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत हैं। सन् 1985 में उन्हें अमेरिका के बाल्टीमोर नगर की मानद नागरिकता प्रदान की गयी।

6 दिसंबर, 1986 को 'अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति', अमेरिका द्वारा राजधानी वाशिंगटन में 'विशिष्ट साहित्य पदक' से उन्हें सम्मानित किया गया। मेरीलैंड के गवर्नर द्वारा उक्त दिन को समस्त मेरीलैंड स्टेट में हिंदी दिवस के रूप में मनाने की घोषणा की गई।

26 जनवरी, 2006 को अमेरिका की राजधानी वाशिंगटन डी. सी. में अमेरिका और भारत के सम्मिलित तत्वावधान में आयोजित गणतंत्र–दिवस समारोह में मेरीलैंड के गवर्नर द्वारा गुलाब जी को 'कवि–सम्राट' की उपाधि से अलंकृत किया गया।

सन् 1989 में, भारत में हिंदी साहित्य सम्मलेन द्वारा पद्मभूषण डॉ. रामकुमार वर्मा की अध्यक्षता में महात्मा गांधी की भाँति गुलाब जी को भी 'साहित्य वाचस्पति'(पी. एच. डी. के समकक्ष) की उपाधि से सम्मानित किया गया।

उनकी 4 पुस्तकें 'उषा', 'अहल्या', 'कच–देवयानी' तथा 'आलोक–वृत्त' समय–समय पर बिहार और उत्तर प्रदेश के विभिन्न कॉलिजों में पाठ्यक्रम में स्वीकृत हुई हैं।

उनकी दो पुस्तकों का विमोचन भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री शंकर दयाल शर्मा के कर कमलों द्वारा हुआ था तथा उनके सभापतित्व में श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने वाशिंगटन डी.सी. (अमेरिका) में कविता–पाठ किया था।

भारत में अब तक विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा 7 विद्यार्थियों को गुलाब जी के साहित्य पर शोध हेतु पी.एच.डी. की उपाधि प्रदान की गयी तथा उनके काव्य पर एम.ए. में एक शोध–प्रबंध लिखा गया है। इस समय मगध विश्वविद्यालय तथा नागपुर विश्वविद्यालय में पी.एच.डी. के लिए दो और शोध–कार्य चल रहे हैं।

8 जुलाई, 2017 को शिव–विष्णु मंदिर (क्लीवलैंड, ओहायो, यू. एस.ए.) में परिवार और मित्रगणों द्वारा महाकवि गुलाब खंडेलवाल को श्रद्धांजलि दी गई। इसमें उन्हीं की रचनाओं को विभिन्न गायकों ने शास्त्रीय और सुगम संगीत में प्रस्तुत किया। समस्त परिवारजनों ने उनके भक्ति–गीत 'सब कुछ कृष्णार्पणम्' को गाकर कार्यक्रम की समाप्ति की।

साभार : http://en.wikipedia.org/wiki/Gulab_Khandelwal

http://en.wikipedia.org/wiki/गुलाब_खंडेलवाल

http://kavitakosh.org//kk/गुलाब_खंडेलवाल

विश्व हिंदी पत्रिका 2017

विश्व हिंदी सचिवालय
World Hindi Secretariat

स्विफ़्ट लेन, फ़ॉरेस्ट साइड 74427, मॉरीशस
Swift Lane, Forest Side 74427, Mauritius

फ़ोन / Phone : 00-230-6761196 फ़ैक्स / Fax : 00-230-6761224
इ-मेल / E-mail : info@vishwahindi.com
वेबसाइट / Website : www.vishwahindi.com
डेटाबेस / Database : www.vishwahindidb.com

मुद्रक : Star Publications PVT LTD, New Delhi - 110002
info@starpublic.com